छान्दोग्योपनिषद्

भाषा-टीका-सहित

टीकाकार

रायबहादुर बाबू ज़ालिमसिंह

प्रकाशक

नवलकिशोर बुकडिपो

लखनऊ

सेठ केसरीदास सुपरिंटेंडेंट द्वारा

नवलकिशोर प्रेस में मुद्रित

सन् १९२९ ई०

द्वितीय आवृत्ति]
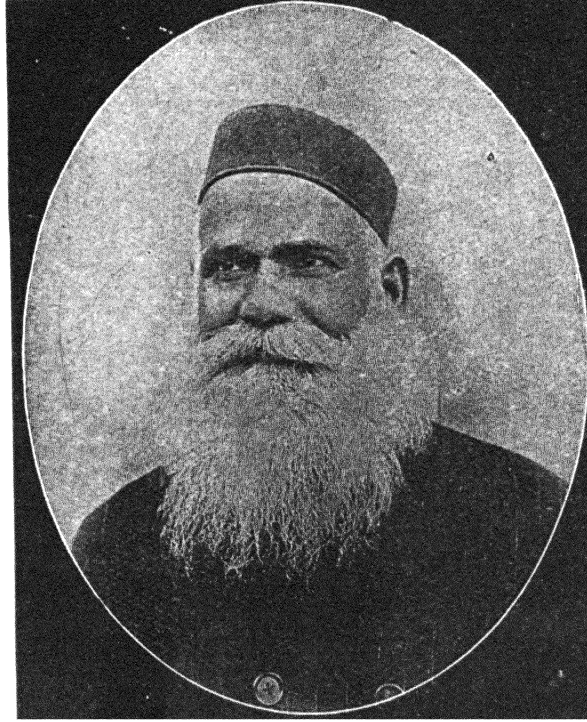
रायबहादुर बाबू ज़ालिमसिंह

नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊ.

भूमिका।
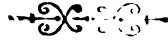
ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥
ब्रह्मानन्दं परमसुखदं केवलं ज्ञानमूर्त्तिं
द्वन्द्वातीतं गगनसदृशं तत्त्वमस्यादिलक्ष्यम्।
एकं नित्यं विमलमचलं सर्वधीसाक्षिभूतं
भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्गुरुं तन्नमामि॥
गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात्परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः॥
ध्यानमूलं गुरोर्मूर्त्तिः पूजामूलं गुरोः पदम्।
मन्त्रमूलं गुरोर्वाक्यं मोक्षमूलं गुरोः कृपा॥

जब मेरा जन्म हुआ, विद्या का प्रकाश न था। चारों ओर अन्धकार छाया था, मार-पीट मची थी। यवनों का राज्य था, जो चाहा सो किया। कोई किसी को पूछता न था, धर्म की जगह अधर्म, नीति की जगह अनीति, शान्ति की जगह अशान्ति फैली थी। बली निर्बली को खाये जाते, दुर्जन सज्जन को तंग करते, दीन दुःखी को दुष्ट पकड़ ले जाते, और मार-मारकर उनका धन हरण करते थे। परमात्मा ने देखा कि अब यवनों के पूर्व कर्म-फल दे चुके। उनके पाप का प्याला भर गया, उसने उसको उलट दिया। अंग्रेज़ी सेना देश में घुसकर फैल गई, यवनों की सेना भाग निकली। दो साल के अन्दर ही अन्दर और का और हो गया। पाठशालाएँ बड़े-बड़े नगरों में खुल गईं, और लड़के पढ़ने लगे। मैंने भी अपना नाम अकबरपुर के स्कूल में लिखा दिया। उस समय स्कूल के इन्स्पेक्टर बाबू रामचन्द्रसेन

वैद्य ने मेरी परीक्षा ली। मुझको पढ़ने में तीव्र पाकर अंग्रेज़ी अक्षर का आरम्भ करा दिया। बहुत दिनों तक छिपा-छिपाकर अंग्रेजी पढ़ता रहा, जब अकबरपुर के स्कूल की अन्तिम परीक्षा में उत्तीर्ण हो गया, तब फ़ैजाबाद के स्कूल को भेजा गया। वहाँ से श्रीअयोध्याजी को अकसर हर रविवार को जाता, और जो बड़े-बड़े महात्मा बाबा माधव-दास, बाबा रघुनाथदास, बाबा जुगलासरन, और पण्डित उमादत्त तिवारीजी के नाम से प्रसिद्ध थे, उनका दर्शन करता, और उनके प्रसाद करके मेरी उपासना श्रीहनुमान्‌जी में जमी, और तत्पश्चात् राम में।

जब मैं डाकखानेजात गोंडा बहरायच का इन्स्पेक्टर हुआ, मेरी श्रद्धा राम और कृष्ण में बढ़ गई, तुलसीकृत रामायण को पढ़ता, और सत्यनारायण की कथा सुनता। मुझको एक बार ऐसा संशय उत्पन्न हुआ कि जो मांस खाते हैं वह नरक को प्राप्त होते हैं। यह शङ्का दिन प्रतिदिन बढ़ती गई, और दिन प्रतिदिन पण्डितों करके दृढ़ होती गई। एक परमहंस गोंडा में आये, और जब मैं उनके पास गया, और अपनी शङ्का प्रकट किया उस पर वह बहुत हँसे, और कहने लगे कि मांस मदिरा खाकर न कोई नरक को जाता है, और न खा करके कोई स्वर्ग को जाता है, जो कुछ खाया जाता है वह मलमूत्र होकर निकल जाता है; और सात वर्ष के पीछे स्थूल शरीर और का और हो जाता है, तुम अपने स्वरूप के जानने के लिये पुरुषार्थ करो। जो कुछ उपदेश दिया करते उसको सुना करता, परन्तु अपने स्वरूपक ज्ञान को न प्राप्त हुआ।

कुछ काल के अनंतर मैं लखनऊ को बदल आया। और, गीता के ऊपर पण्डित यमुनाशङ्कर वेदान्ती करके रचित टीका का देखा। जी फड़क उठा और विचार किया कि जो इस टीका का कर्ता है वह

अवश्य विज्ञानी होगा । उनका खोज करने लगा । कुछ काल के पीछे उनका दर्शन मिला, उनके वाक्य में मेरी अटल श्रद्धा और उनकी अति कृपा मेरे ऊपर ऐसी हुई कि यावत् संशय थे, सब नष्ट होगये, और मेरी आत्मा हस्तामलकवत् मुझको देख पड़ने लगा । अब मैं स्वस्वरूप में स्थित हूं ।

हे प्रिय पाठको ! संस्कृत-विद्या को भली प्रकार न जानने से किसी पण्डित की विना सहायता संस्कृत-ग्रन्थों के विचार में मुझको बड़ी अड़चन पड़ा करती थी, सोचते-सोचते यह विचार में आया कि यदि ऐसी कोई टीका की जाय कि जिसके द्वारा विना सहायता किसी पण्डित की जो हानि हो रही है वह दूर हो जाय । जब इस निकाली हुई श्रेणी को दो चार विद्वानों ने पसन्द किया, तब तदनुसार टीका की रचना आरम्भ की गई । भगवद्गीता, रामगीता, अष्टावक्रगीता, सांख्य-कारिका, विष्णुसहस्रनाम, परापूजा, ईश, केन, कठ माण्डूक्य, मण्डूक, प्रश्न, ऐतरेय, तैत्तिरीय की टीका इसी ढंग पर की गई जो सबको प्रिय लगती है ।

जब मैं संवत् १९७१ में हरिद्वार गया, तब कई एक साधु मुझसे मिले, और इच्छा प्रकट की कि यदि छान्दोग्योपनिषद् की टीका इसी श्रेणी पर और ऐसी ही सरल मध्यदेशी भाषा में कर दिया जाय तो लोगों का बड़ा कल्याण हो । मैंने उनसे कहा कि मैं वाक्यदान का प्रदान तो नहीं करता हूं, पर यदि अपने अन्तःकरणप्रविष्ट परमात्मा की प्रेरणा होगी, तो बशर्त अवकाश काल व जीवन प्रयत्न करूँगा । वहाँ से वापिस आने पर पण्डित गङ्गाधर और पण्डित महावीरप्रसाद और अंग्रेजी में अनुवाद किये हुए ग्रन्थों की सहायता द्वारा छान्दोग्योप-निषद् की टीका निर्विघ्न समाप्त हुई । तदर्थ मैं ईश्वर को धन्यवाद देता हूं ।

हे पाठकजनो ! जैसे सामवेद गान करके पढ़ा जाता है, वैसे ही यह छान्दोग्योपनिषद् भी गाकर पढ़ा जाता है, वह बाह्यफल स्वर्गादि को देता है और यह आभ्यन्तर फल ब्रह्मज्ञान उत्पन्न करके जीवात्मा को अजर अमर बना देता है, और जीव ईश्वर के भेद को हटाकर दोनों का ऐक्य कर देता है ।

हे पाठकजनो ! शङ्कराचार्यजी ने उपनिषद् का अर्थ इस प्रकार किया है, "उप, नि, षद्" उप का अर्थ समीप, नि का अर्थ अत्यन्त, और षद् का अर्थ नाश, अतः संपूर्ण "उपनिषद्" शब्द का अर्थ हुआ कि जो जिज्ञासु श्रद्धा और भक्ति के साथ उपनिषदों के अत्यन्त समीप जाता है, अर्थात् उनका विचार करता है, वह आवागमन के क्लेशों से निवृत्त हो जाता है, और किसी-किसी आचार्यों ने इसका अर्थ ऐसा भी किया है—उप=समीप, नि=अत्यन्त, और षद्=बैठना, अर्थात् जो जिज्ञासु को अध्ययन, अध्यापन के द्वारा ब्रह्म के अति समीप बैठने के योग्य बना देता है, वह उपनिषद् कहा जाता है ।

हे पाठकजनो ! सृष्टि रचने के पहिले सृष्टि-उत्पत्ति के निमित्त जब ईश्वर में इच्छा उठती है, तो एक बड़ा घोर शब्द अर्थ-रहित गूंज के साथ निकलता है, जैसे अंजन में होता है, और वह बड़ी देर तक रहता है, उस शब्द को सुनकर जो जीवन्मुक्त ऋषि होते हैं, वे ॐ, अथवा अ, उ, म, में आरोप कर लेते हैं, और जब वह शब्द फट जाता है, तब उसमें से आकाश, वायु, अग्नि, जल, और पृथ्वी सूक्ष्म-रूप से निकल आते हैं, और वह शब्द शान्त होकर लोप हो जाता है । इन पाँच तत्त्वों करके संपूर्ण सृष्टि की उत्पत्ति होती है, इसलिये जो कुछ सृष्टि है सब ॐरूप ही है । इस कारण ॐकार की उपासना अति श्रेष्ठ है, यह ईश्वर का प्रथम नाम है, जो इन तीन अ, उ, म, अक्षरों के अर्थ को समझकर और इन्हीं में विश्व, तैजस, प्राज्ञ, जाग्रत्,

स्वप्न, सुषुप्ति, जीव, हिरण्यगर्भ, ईश्वर को आरोप करके भजता है, वह ब्रह्मलोक को प्राप्त होता है, और आवागमन से रहित हो जाता है। यही कारण है कि इस छान्दोग्योपनिषद् में प्रथम उपासना उद्गीथ की है, इस उपनिषद् के दो खण्ड हैं, एक पूर्वार्ध है, जिसमें सगुण ब्रह्म की उपासना की है, और उसका फल ब्रह्मलोक की प्राप्ति कहा है, और दूसरा उत्तरार्ध है, जिसमें प्राण की उपासना, पञ्चाग्निविद्या, वैश्वानरविद्या, भूमाविद्या, और दहराविद्या की ज्येष्ठता, श्रेष्ठता का निरूपण किया गया है, इनके विचार करके यह जीवात्मा ही ब्रह्म है, ऐसा हस्तामलकवत् अनुभव में दीखने लगता है, यह उपनिषद् दुःख का नाशक और आनन्द का उत्पादक है।

हे पाठकजनो! इस टीका में पहिले मूलमन्त्र दिया है, फिर पदच्छेद, फिर वाम अङ्ग की ओर संस्कृत अन्वय, और दाहिने अङ्ग की ओर पदार्थ। यदि वाम अङ्ग की ओर का लिखा हुआ ऊपर से नीचे तक पढ़ा जावे, तो संस्कृत अन्वय मिलेगा, यदि दाहिने अङ्ग का लिखा हुआ ऊपर से नीचे तक पढ़ा जावे, तो मन्त्र का पूरा अर्थ मध्यदेशी भाषा में मिलेगा, और यदि बाएँ तरफ़ से दाहिने तरफ़ को पढ़ा जावे, तो हरएक संस्कृत पद का अथवा शब्द का अर्थ भाषा में मिलेगा।

जहाँ तक हो सका है हरएक संस्कृत पद का अर्थ विभक्ति के अनुसार लिखा गया है। इस टीका के पढ़ने से संस्कृत-विद्या की उन्नति उनको होगी, जिनको संस्कृत की योग्यता न्यून है। मन्त्र का पूरा-पूरा अर्थ उसी के शब्दों से ही सिद्ध किया गया है, अपनी कोई कल्पना नहीं की गई है। हाँ, कहीं-कहीं संस्कृत पद मन्त्र के अर्थ स्पष्ट करने के लिये ऊपर से लिखा गया है, और उसके प्रथम यह + चिह्न लगा दिया गया है, ताकि पाठकजनों को विदित हो जावे कि यह पद मूल का नहीं है।

विद्वान् सज्जनों की सेवा में प्रार्थना है कि यदि कहीं अशुद्ध हो अथवा अर्थ स्पष्ट न हो, तो कृपा करके उसको ठीक कर लें, और मेरी भूल-चूक को क्षमा करें, और शुद्ध अन्तःकरण से आशीर्वाद दें कि यह मुझ करके रचित टीका मुमुक्षुजनों को यथोचित फलदायक हो, और इसकी स्थिति चिरकालपर्यन्त बनी रहे।

लाला शिवदयालुसिंहात्मज

रायबहादुर ज़ालिमसिंह

ग्राम अकबरपुर, ज़िला फ़ैज़ाबाद (अवध)

व

पो० मा० जनरल, रियासत ग्वालियर लश्कर,

छान्दोग्योपनिषद्

पूर्वार्ध

(भाषा-टीका-सहित)

---*---

मूलम् ।

ओमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीत । ओमिति ह्युद्गायति तस्योपव्याख्यानम् ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

ॐ, इति, एतत्, अक्षरम्, उद्गीथम्, उप, आसीत, ॐ, इति, हि, उत्, गायति, तस्य, उपव्याख्यानम् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
ॐ	ॐ	ॐ	ॐकार को
इति	ऐसे	इति	उच्चारण करके
एतत्	इस	+सामवेदः	सामवेद
अक्षरम्	अक्षर	उद्गायति	गान करता है
उद्गीथम्	उद्गीथ को	तस्य	उसी ॐकार का
हि	निश्चयपूर्वक	उपव्याख्यानम्	व्याख्यान
उपासीत	सेवन करे अर्थात् उपासना करे	+प्रवर्त्तते	आरंभ किया जाता है
+ यत्	जिस		

भावार्थ ।

ॐ और उद्गीथ अक्षर एक ही हैं । अक्षर का अर्थ यहां अविनाशी के हैं, जो अविनाशी है वही ॐ है । कोई कोई आचार्य अक्षर शब्द

के दो भाग करते हैं, अक्ष+र । अक्ष का अर्थ नेत्रादि इन्द्रियां हैं, र—का अर्थ रहनेवाला है, जो इन्द्रियों के बिषे रहनेवाला हो वही अक्षर है, वही अविनाशी ब्रह्म है, उसी को उद्गीथ भी कहते हैं। उद् माने सबसे बड़े के हैं, और गी—का अर्थ जो गाया गया है, थ—का अर्थ स्थान है, अर्थात् जो स्थान सबसे बड़ा है और जो सब वेदों करके गाया गया है, उसका ध्यान करना चाहिए । जब ईश्वर ने जीवों के कर्मफल भोगार्थ सृष्टि रचने की इच्छा की, तो प्रथम शब्द ध्वन्यात्मक ॐ ऐसा निकला, उसी से उसके पश्चात् वर्णात्मक शब्द "एकोऽहं बहु स्यां" उत्पन्न हुआ अर्थात् ॐकार रूप ब्रह्म एक मैं बहुत प्रकार से होऊं । यह इच्छा होते ही चराचर सृष्टि उत्पन्न हो गई, इसलिए जितनी सृष्टि है, चाहे वह प्रकट भाव से हो, अथवा अप्रकट भाव से हो वह सब ब्रह्मरूप ही है, अथवा ॐकाररूप है । वेदों में जो ऋचा के पहिले अथवा पीछे ॐ—का प्रयोग किया जाता है, वह यह बताता है कि जो कुछ ॐ शब्द के पश्चात् कहा जायगा या ॐ के पहिले कहा गया है, वह सब ॐकाररूप ही है, उससे पृथक् कोई वस्तु नहीं है। ॐकार में तीन अक्षर हैं, अ+उ+म अ—से अर्थ जाग्रत् का अभिमानी देवता विश्व है, उ—से स्वप्न का अभिमानी देवता तैजस है, म—से सुषुप्ति का अभिमानी देवता प्राज्ञ है, अर्थात् इन तीनों अवस्थाओं के जो पृथक् पृथक् अभिमानी देवता हैं, वे ॐकाररूप ही हैं और मायाविशिष्ट ब्रह्म, ईश्वर, हिरण्यगर्भ और विराट् यह भी ॐकाररूप ही हैं अर्थात् ईश्वर से लेकर तृणपर्यन्त सब ॐकाररूप ही हैं । यह ॐकार परमात्मा का मुख्यनाम है, इस नाम के उच्चारण से परमात्मा प्रसन्न होता है, जो वैदिक कर्म ॐ उच्चारण करके मंत्र द्वारा किया जाता है वह सिद्धि को प्राप्त होता है ॥ १ ॥

मूलम् ।

एषां भूतानां पृथिवी रसः पृथिव्या आपो रसः । अपामोषधयो रस ओषधीनां पुरुषो रसः पुरुषस्य वाग्रसो वाच ऋग्रस ऋचः साम रसः साम्न उद्गीथो रसः ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

एषाम्, भूतानाम्, पृथिवी, रसः, पृथिव्याः, आपः, रसः, अपाम्, ओषधयः, रसः, ओषधीनाम्, पुरुषः, रसः, पुरुषस्य, वाक्, रसः, वाचः, ऋक्, रसः, ऋचः, साम, रसः, साम्नः, उद्गीथः, रसः ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
एषाम्	इन	पुरुषस्य	मनुष्य का
भूतानाम्	चराचर भूतों का	वाक्	वाणी
पृथिवी	पृथ्वी	रसः	सार है
रसः	कारण है	वाचः	वाणी का
पृथिव्याः	पृथ्वी का	ऋक्	ऋचा
आपः	जल	रसः	सार है
रसः	कारण है	ऋचः	ऋचा का
अपाम्	जल का	साम	सामवेद
ओषधयः	अन्नादिक	रसः	सार है
रसः	सार है	साम्नः	सामवेद का
ओषधीनाम्	अन्नादि का	उद्गीथः	ॐकार
पुरुषः	मनुष्य	रसः	सार है
रसः	सार है		

भावार्थ ।

चराचर जीवों की उत्पत्ति-स्थिति पृथ्वी से होती है और इसी में सब जीव मर करके लीन भी होते हैं, इसलिये यह पृथ्वी सब जीवों का कारण है, पृथ्वी का जल कारण है, क्योंकि जल से पृथ्वी

की उत्पत्ति है, जल से अन्नादिक उत्पन्न होते हैं अर्थात् अन्नादिक जल का सार है, अन्नादिक से मनुष्य की उत्पत्ति है, इसलिये अन्नादिकों का सार मनुष्य है। मनुष्यों का सार वाणी है, वाणी का सार ऋचा है, ऋचा का सार सामवेद है, सामवेद का सार ॐकार है। यह भी अर्थ हो सकता है कि पृथ्वी का अभिमानी देवता सब जीवों से बढ़ करके है, जल का अभिमानी देवता वरुण पृथ्वी के अभिमानी देवता से बढ़कर है, वरुण से बढ़कर सोम है, सोम से बढ़कर सरस्वती है, सरस्वती से बढ़कर ऋचा है और ऋचा से बढ़कर प्राण है, प्राण से बढ़कर नारायण है, उद्गीथ सबसे बढ़ करके है, उससे बढ़कर और कोई नहीं है ॥ २ ॥

मूलम् ।

स एष रसानाᳬं रसतमः परमः परार्ध्योऽष्टमो यदुद्गीथः ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

सः, एषः, रसानाम्, रसतमः, परमः, परार्ध्यः, अष्टमः, यत्, उद्गीथः ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यत्=जो		रसानाम्=सार वस्तुओं का	
एषः=यह		रसतमः=सार है	
अष्टमः=आठवां		परमः=अतिश्रेष्ठ है	
उद्गीथः=ॐकार है		परार्ध्यः=श्रेष्ठ से श्रेष्ठ है	
सः=वही			

भावार्थ ।

जितनी सार वस्तु होती है अर्थात् सूक्ष्म होती है, उतनी ही वह पूजनीय है। पृथिवी और जल का सार अन्नादिक है; इसलिये पृथिवी

और जल की अपेक्षा अन्नादिक अधिक पूजनीय है; इसी कारण अन्न को देवता कहा है । "अन्नं ब्रह्मेति" अन्न का सार पुरुष है, इसलिये अन्न की अपेक्षा पुरुष अधिक पूजनीय है और पुरुष का सार वाणी है, जिस पुरुष की जिह्वा पर सरस्वती का वास होता है, वह अधिक पूजनीय होता है और वाणी का सार ऋचा है अर्थात् जो पुरुष वेद का जाननेवाला है वह और भी अधिक पूजनीय है और ऋचाओं का सार सामवेद है, इसलिये जो पुरुष सामवेदी है और सामवेदों के मंत्रों करके परमात्मा का गान करता है, वह और भी अधिक पूजनीय है, और सामवेद का सार ॐ या उद्गीथ है, इसी उद्गीथ या ॐ की उपासना जो महात्मा पुरुष करता है, वह अति पूजनीय है । यह उद्गीथ रसतमः, परमः, परार्ध्यः, इन तीन विशेषणों करके युक्त होने से श्रेष्ठ से श्रेष्ठ माना गया है, इस कारण जो पुरुष इसकी उपासना करता है वह भी श्रेष्ठ से श्रेष्ठ ब्रह्मरूप हो जाता है ॥ ३ ॥

मूलम् ।

कतमा कतमर्क्कतमत्कतमत्साम कतमः कतम उद्गीथ इति विमृष्टं भवति ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

कतमा, कतमा, ऋक्, कतमत्, कतमत्, साम, कतमः, कतमः, उद्गीथः, इति, विमृष्टम्, भवति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
कतमा	कौन	कतमत्	कौन
कतमा	कौन	साम	सामवेद है
ऋक्	ऋचा है	+ च	और
कतमत्	कौन	कतमः	कौन

कतमः=कौन	इति=इस प्रकार
उद्गीथः=ॐकार है	विमृष्टम्=विचार करने योग्य
+ यत्=जो	भवति=है

इसका अन्वय अगले मंत्र से है ।

भावार्थ ।

तब ऋचा क्या है, साम क्या है, उद्गीथ क्या है, यह विचार के योग्य है । कतमा कतमा शब्द वहां लाते हैं जहां किसी समूह में से किसी विशेष के निमित्त प्रश्न किया जाता है, यहां ऋक्, साम और उद्गीथ ये तीनों शब्द पृथक् पृथक् अर्थ के बोधक हैं और एक एक व्यक्ति के वाचक हैं, तब कतमा कतमा क्यों लाया गया ? इसके उत्तर में भाष्यकार कहते हैं कि यद्यपि यह तीनों शब्द एक एक व्यक्ति के वाचक हैं, परंतु एक ही के भिन्न भिन्न भाग को बताते हैं, जैसे ऋचा कहने से ऋचामात्र का ग्रहण होता है, प्राण के कहने से प्राणमात्र का बोध होता है, साम के कहने से खंड व मंत्रादिकों का बोध होता है, किसी विशेष ऋचा या प्राण या सामवेद के विशेष मंत्रों का बोध नहीं होता है, इस कारण कतम शब्द लाने की आवश्यकता थी ॥ ४ ॥

मूलम् ।

वागेवर्क्प्राणः सामोमित्येतदक्षरमुद्गीथः । तद्वा एतन्मिथुनं यद्वाक्च प्राणश्चर्क्च साम च ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ।

वाक्, एव, ऋक्, प्राणः, साम, ॐ, इति, एतत्, अक्षरम्, उद्गीथः, तत्, वा, एतत्, मिथुनम्, यत्, वाक्, च, प्राणः, च, ऋक्, च, साम, च ॥

अन्वयः	पदार्थ
वाक्	वाणी
एव	ही
ऋक्	ऋचा है
च	और
प्राणः	प्राण ही
साम	सामवेद है
इति	इस प्रकार
एतत्	यह
अक्षरम्	अक्षर
ॐ	ॐकार
उद्गीथः	उद्गीथ है
यत्	जो
तत्	वह
एतत्	यह
मिथुनम्	जोड़ी
वा	निश्चय करके
+ निर्दिश्यते	कही जाती है
+ तत्	सोई
ऋक्	ऋचा
च	और
वाक्	वाणी है
च	और
+तत्	सोई
प्राणः	प्राण
च	और
साम	सामवेद है

भावार्थ ।

जो वाणी है सोई ऋचा है, जो प्राण है सोई सामवेद है अर्थात् वाणी विना ऋचा के उच्चारण नहीं हो सकती है और प्राण विना सामवेद का गान नहीं हो सकता है, अथवा वाणी, ऋचा, सामवेद, यह तीनों प्राण के आश्रय हैं । जबतक प्राण है तबतक ये तीनों हैं और जबतक यह तीनों हैं तबतक प्राण है । तीन अर्थात् वाणी, ऋचा, साम, एक तरफ करके और प्राण को दूसरी तरफ करके यदि अनुभव किया जाय तो केवल एक ही मिथुन होता है और यदि वाणी और ऋचा का एक मिथुन और प्राण व सामवेद का एक मिथुन समझा जाय तो दो मिथुन होते हैं । ये दोनों मिथुन अविनाशी ॐकार उद्गीथ हैं ॥ ५ ॥

मूलम् ।

तदेतन्मिथुनमोमित्येतस्मिन्नक्षरे सꣳसृज्यते । यदा वै मिथुनौ समागच्छत आपयतो वै तावन्योन्यस्य कामम् ॥६॥

पदच्छेदः ।

तत्, एतत्, मिथुनम्, ॐ, इति, एतस्मिन्, अक्षरे, सम्, सृज्यते, यदा, वै, मिथुनौ, सम्, आगच्छतः, आपयतः, वै, तौ, अन्योन्यस्य, कामम् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यदा	जब	वै	निश्चय करके
तत्	वह	तौ	ये दोनों
एतत्	यह	मिथुनौ	जोड़ी
मिथुनम्	जोड़ी	समागच्छतः	संयोग करती हैं
एतस्मिन्	इसमें अर्थात्	+ च	और
अक्षरे	अविनाशी	अन्योन्यस्य	एक दूसरे के
ॐ	ॐकार में	कामम्	मनोरथ को
संसृज्यते	मिलाई जाती है	वै	निश्चय
+ तदा	तब	आपयतः	पूर्ण करती है

भावार्थ ।

जैसे स्त्री और पुरुष के संयोग से आनंद मिलता है और मनोगत कामना की सिद्धि होती है, उसी प्रकार जब वाक् और प्राण मिलते हैं तथा ऋचा और सामवेद का संयोग होता है और इन दोनों जोड़ियों का संयोग अविनाशी ॐकार से होता है, तब उपासक की कामना पूर्ण होती है ॥ ६ ॥

मूलम् ।

आपयिता ह वै कामानां भवति य एतदेवं विद्वानक्षर-मुद्गीथमुपास्ते ॥ ७ ॥

पदच्छेदः ।

आपयिता, ह, वै, कामानाम्, भवति, यः, एतत्, एवम्, विद्वान्, अक्षरम्, उद्गीथम्, उपास्ते ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यः	=जो	+सः	=वह
विद्वान्	=विद्वान् पुरुष	+विद्वान्	=विद्वान् पुरुष
एतत्	=इस	वै	=अवश्य
अक्षरम्	=अविनाशी	+यजमानस्य	=यजमान के
उद्गीथम्	=ॐकार को	कामानाम्	=मनोरथों का
एवम्	=इस प्रकार	आपयिता	=पूर्ण करनेवाला
ह	=निश्चय के साथ	भवति	=होता है
उपास्ते	=सेवन करता है		

भावार्थ ।

जो विद्वान् पुरुष कहे हुए प्रकार ॐकार का सेवन करता है और फिर यजमान को यज्ञ कराता है, वह यजमान की सब कामनाओं का पूर्ण करनेवाला होता है अर्थात् उसके द्वारा यजमान और उसकी पत्नी के मन में जो जो लौकिक तथा पारलौकिक कामनाएँ उठती हैं वे सब पूर्ण होती हैं ॥ ७ ॥

मूलम् ।

तद्वा एतदनुज्ञाक्षरं यद्धि किञ्चानुजानात्योमित्येव तदाहैषो एव समृद्धिर्यदनुज्ञा समर्धयिता ह वै कामानां भवति य एतदेवं विद्वानक्षरमुद्गीथमुपास्ते ॥ ८ ॥

पदच्छेदः ।

तत्, वा, एतत्, अनुज्ञाक्षरम्, यत्, हि, किञ्च, अनुजानाति, ॐ, इति, एव, तत्, आह, एषा, उ, एव, समृद्धिः, यत्, अनुज्ञा, समर्धयिता, ह, वै, कामानाम्, भवति, यः, एतत्, एवम्, विद्वान्, अक्षरम्, उद्गीथम्, उपास्ते ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
वा	और	एषा एव	वही
तत्	वह	उ	प्रसिद्ध
एतत्	यह अर्थात् ॐकार	समृद्धिः	संपत्ति है
अनुज्ञाक्षरम्	आज्ञावाचक शब्द है	यः	जो
हि	क्योंकि	विद्वान्	विद्वान् पुरुष
+ पुरुषः	विद्वान् पुरुष	एतत्	इस
यत्	जो	अक्षरम्	अक्षर
किञ्च	कुछ	उद्गीथम्	ॐकार को
अनुजानाति	आज्ञा देता है	एवम्	इस प्रकार
तत्	उसको	उपास्ते	सेवन करता है
ॐ	ॐ	+सः	वह विद्वान्
इति	ऐसा कह करके	+यजमानस्य	यजमान के
एव	ही	कामान्	मनोरथों का
आह	देता है	ह वै	निश्चय करके
यत्	जो	समर्धयिता	पूर्ण करनेवाला
अनुज्ञा	ऐसी आज्ञा है	भवति	होता है

भावार्थ ।

ऊपर कहे हुए प्रकार ॐकारशब्द आज्ञा का वाचक है, क्योंकि जब अध्वर्यु होता और उद्गाता को ॐ कह करके आज्ञा देता है कि वेद की ऋचाओं करके यज्ञ में अपने कर्म का आरम्भ करो और वे उसकी आज्ञानुसार करने लगते हैं तब वह आज्ञा संपत्ति का कारण होती है। जो विद्वान् पुरुष ॐकार को भली प्रकार सेवन करके यजमान से यज्ञ कराता है वह विद्वान् यजमान के मनोरथों का पूर्ण करनेवाला होता है ॥ ८ ॥

मूलम् ।

तेनेयं त्रयी विद्या वर्त्तत ॐमित्याश्रावयत्योमिति

शंसत्योमित्युद्गायत्येतस्यैवाक्षरस्यापचित्यै महिम्ना रसेन ॥ ६ ॥

पदच्छेद.।

तेन, इयम्, त्रयी, विद्या, वर्त्तते, ॐ, इति, आश्रावयति, ॐ, इति, शंसति, ॐ, इति, उद्गायति, एतस्य, एव, अक्षरस्य, अपचित्यै, महिम्ना, रसेन ॥

अन्वयः	पदार्थ
+अध्वर्युः	यजुर्वेदी ऋत्विज्
ॐ	ॐ
इति	ऐसा कह करके
आश्रावयति	देवता या यजमान को श्रवण करवाता है
+होता	ऋग्वेदी ऋत्विज्
ॐ	ॐ
इति	ऐसा कह करके
शंसति	प्रशंसा करता है
+उद्गाता	सामवेदी ऋत्विज्
ॐ	ॐ
इति	ऐसा कह करके
उद्गायति	गान करता है
+च	और
एतस्य	उसी
एव	ही
अक्षरस्य	ॐकार के
अपचित्यै	महत्त्व के लिये अर्थात् परब्रह्म के लिये
महिम्ना	महापुरुषों करके अर्थात् ऋत्विज् यजमानादि करके
+च	और
रसेन	व्रीहि यवादि और घृत करके
तेन	उस ॐकार के द्वारा
इयम्	यह
त्रयी विद्या	तीन वेदों में कहा हुआ सोमयज्ञादि कर्म
वर्त्तते	किया जाता है

भावार्थ।

यज्ञ में मुख्य ऋत्विज् अध्वर्यु होता है और वह यजुर्वेदी होता है, क्योंकि आध्वर्यत्व का विशेष सम्बन्ध यजुर्वेद से ही है, उस अध्वर्यु की आज्ञा पा करके अर्थात् जब वह कहता है ॐ आश्रवय जिसको प्रेष कहते हैं, तब ऋग्वेदी होता ऋत्विज् और सामवेदी ऋत्विज् उद्गाता अपने अपने यज्ञिय कर्म हौत्र और औद्गात्र यज्ञ में करने लगते

हैं । यह कह आये हैं कि ॐकार ही परब्रह्म है, इसलिये इसकी प्रसन्नता के निमित्त ऋत्विज्, यजमानादिक और घृतादि होमद्रव्य करके ॐकार के द्वारा तीनों वेदों में कहा हुआ सोमयज्ञादि कर्म किया जाता है ॥ ९ ॥

मूलम् ।

तेनोभौ कुरुतो यश्चैतदेवं वेद यश्च न वेद नाना तु विद्या चाविद्या च यदेव विद्यया करोति श्रद्धयोपनिषदा तदेव वीर्यवत्तरं भवतीति खल्वेतस्यैवाक्षरस्योपसंख्यानं भवति ॥ १० ॥

इति प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

तेन, उभौ, कुरुतः, यः, च, एतत्, एवम्, वेद, यः, च, न, वेद, नाना, तु, विद्या, च, अविद्या, च, यत्, एव, विद्यया, करोति, श्रद्धया, उपनिषदा, तत्, एव, वीर्यवत्तरं, भवति, इति, खलु, एतस्य, एव, अक्षरस्य, उपसंख्यानम्, भवति ॥

अन्वयः	पदार्थ
च	और
यः	जो पुरुष
एतत्	इस ॐकार अक्षर को
एवम्	कहे हुए प्रकार
खलु	अच्छी तरह
वेद	जानता है अर्थात् उसके तात्पर्य को समझता है
च	और
यः	जो
न	नहीं
वेद	जानता है या नहीं समझता है
+ तौ	वे
उभौ	दोनों
तेन	उस ॐकार करके
एव	ही
+ कर्म	यज्ञादि कर्म को
कुरुतः	करते हैं
तु	क्योंकि
विद्या	ज्ञान
नाना	पृथक् है
च	और

अविद्या=अज्ञान
+नाना=पृथक् है
+अतः=इसलिये
यत्=जिस कर्म को
विद्यया=ज्ञान करके
श्रद्धया=श्रद्धा करके
च=और
उपनिषदा=भक्ति करके
+यः=जो
करोति=करता है
+ तस्य=उसका
तत्=वह कर्म
एव=निश्चय करके
वीर्यवत्तरम्=अधिक फल का देने-
वाला
भवति=होता है
इति=इस प्रकार
एतस्य=इस
अक्षरस्य=ॐकार का
एव=ही
उपसंख्यानम्=व्याख्यान
भवति=है

भावार्थ ।

जो पुरुष ॐकार का अर्थ समझता है और जो नहीं समझता है वे दोनों ॐकार उच्चारण करके यज्ञादि कर्म करने के अधिकारी हैं, परन्तु जो विद्वान् पुरुष ॐकार के अर्थ को समझकर यज्ञादि कर्म करता है, उसका वह कर्म विशेष फल का देनेवाला होता है, क्योंकि विद्या और है और अविद्या और है; इन दोनों का फल भी पृथक् २ है । ज्ञान द्वारा कर्म कर्त्ता ऊर्ध्वलोक को जाता है, जहां विशेष सुख है और अज्ञान करके कर्मकर्त्ता अधोलोक को प्राप्त होता है, जहां ऊर्ध्व लोक की अपेक्षा न्यून सुख है ॥ १० ॥

इति प्रथमः खण्डः ॥

अथ प्रथमाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः ।

मूलम् ।

देवासुरा ह वै यत्र संयेतिर उभये प्राजापत्यास्तद्ध देवा उद्गीथमाजह्रुरनेनैनानभिभविष्याम इति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

देवासुराः, ह, वै, यत्र, संयेतिरे, उभये, प्राजापत्याः, तत्, ह, देवाः, उद्गीथम्, आजहुः, अनेन, एनान्, अभिभविष्यामः, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
यत्र	जिस काल
उभये	दो प्रकार की
देवासुराः	इन्द्रियों की सात्त्विक और तामस वृत्तियां
प्राजापत्याः	कश्यप की सन्तान देव और दैत्यों की भांति
ह वै	अच्छे प्रकार
तत्	श्रेष्ठता निमित्त
संयेतिरे	एक दूसरे से झगड़ा करती भई
+ तत्र	उस समय
ह	ही
देवाः	सात्त्विक वृत्तियां
उद्गीथम्	ॐकार को
आजहुः	स्वीकार करती भई
इति	ऐसा
+विचार्य	विचार करके कि
अनेन	इस ॐकार के द्वारा
एनान्	इन तामसी वृत्तियों को
अभिभविष्यामः	हम पराजित करेंगी

भावार्थ ।

एक ही पुरुष में इन्द्रियों की दो प्रकार की वृत्तियां रहती हैं, एक सतोगुणी और दूसरी तमोगुणी । ये दोनों प्रकार की वृत्तियां आपस में विषयभोगार्थ इस तरह से लड़ती हैं जैसे कश्यप ऋषि के सन्तान देवता और असुर यज्ञ बिषे बलि के निमित्त लड़ते हैं और जिस प्रकार असुरों को बलवान् पा करके देवता विष्णु की शरण लेते हैं उसी प्रकार सतोगुणी वृत्तियां तमोगुणी वृत्ति को बलवान् पाकर उद्गीथ नामक परब्रह्म की शरण को प्राप्त होती हैं, यह सोच करके कि हम उसके द्वारा तमोगुणी वृत्तियों पर जय को प्राप्त होवेंगी ॥ २ ॥

मूलम् ।

ते ह नासिक्यं प्राणमुद्गीथमुपासाञ्चक्रिरे तꣳ

ह्यासुराः पाप्मना विविधुस्तस्मात्तेनोभयं जिघ्रति सुरभि च दुर्गन्धि च पाप्मना ह्येष विद्धः ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

ते, ह, नासिक्यम्, प्राणम्, उद्गीथम्, उपासाञ्चक्रिरे, तम्, ह, असुराः, पाप्मना, विविधुः, तस्मात्, तेन, उभयम्, जिघ्रति, सुरभि, च, दुर्गन्धि, च, पाप्मना, हि, एषः, विद्धः ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
ते	वे इन्द्रियों की सात्त्विक वृत्तियां	तस्मात्	इसलिये
ह	निश्चय करके	तेन	उस पाप करके
नासिक्यम्	नासिकासंबंधी	+ जीवः	जीव
प्राणम्	प्राण चेतनरूप	सुरभि	सुगन्धि
उद्गीथम्	उद्गीथ को	च	और
उपासाञ्चक्रिरे	सेवन करती भई	दुर्गन्धि	दुर्गन्धि
च	और	उभयम्	दोनों को
असुराः	इन्द्रियों की तामस वृत्तियां	जिघ्रति	सूंघता है
तम्	नाक में रहनेवाले उस चैतन्य प्राण को	हि	क्योंकि
ह	निश्चय करके	एषः	नासिका अभिमानी देवता
पाप्मना	अपने अधर्म करके	+ तेन	उस
विविधुः	संबंध करती भई	पाप्मना	पाप करके
		विद्धः	संयुक्त है

भावार्थ ।

जिस नासिकासम्बन्धी चेतनरूप प्राणनामक उद्गीथ को इन्द्रियों की सतोगुणी वृत्तियां सेवन करती भई अर्थात् उपासना करती भई उसी नासिकासम्बन्धी प्राण को तमोगुणी वृत्तियां स्पर्श करके अशुद्ध करती हैं, इसलिये जीव सुगंधि और दुर्गंधि दोनों को सूंघता है, क्योंकि उसका नासिकाभिमानी देवता प्राण, दोनों प्रकार की वृत्तियों से संसर्ग रखता है ॥ २ ॥

मूलम् ।

अथ ह वाचमुद्गीथमुपासाञ्चक्रिरे ताᳬहासुराः पाप्मना विविधुस्तस्मात्तयोभयं वदति सत्यं चानृतं च पाप्मना ह्येषा विद्धा ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, ह, वाचम्, उद्गीथम्, उपासाञ्चक्रिरे, ताम्, ह, असुराः, पाप्मना, विविधुः, तस्मात्, तया, उभयम्, वदति, सत्यम् च, अनृतम्, च, पाप्मना, हि, एषा, विद्धा ॥

अन्वयः	पदार्थ
अथ	अब
+ देवाः	देवता अर्थात् इन्द्रियों की सात्त्विक वृत्तियां
वाचम्	वाणी को अथवा वाणी विषे स्थित चेतन प्राण को
उद्गीथम्	ॐकाररूप से
ह	स्पष्ट
उपासाञ्चक्रिरे	उपासना करती भई
च	और
ताम्	उसी वाणी विषे स्थित चेतन प्राण को
असुराः	इन्द्रियों की तामस वृत्तियां
ह	भी
पाप्मना	पाप से संसर्ग
विविधुः	करती भई
च	और
हि	जिस कारण
एषा	यह वाणी
पाप्मना	पाप के संसर्ग करके
विद्धा	युक्त है
तस्मात्	इसी कारण
तया	उस वाणी करके
+जनः	पुरुष
सत्यम्	सत्य
अनृतम्	असत्य
उभयम्	दोनों को
वदति	बोलता है

भावार्थ ।

जैसे जिस जिस स्थान में देवता वास करते थे, उस उस स्थान को असुर भ्रष्ट कर देते थे, उसी तरह सात्त्विक वृत्तियां शरीर के जिस जिस इन्द्रिय में वास करने लगीं, उसी इन्द्रिय को तमोगुणी वृत्तियां

पाप करके अशुद्ध करती भई । जब सतोगुणी वृत्तियां वाणी विषे स्थित चेतन प्राण की उपासना करती भई, तब उस वाणी विषे स्थित चेतन प्राण को तमोगुण-वृत्तियां पाप से भ्रष्ट करती भई और इस प्रकार पाप से संयुक्त हुई वाणी द्वारा पुरुष सत्य व असत्य दोनों बोलता है ॥ ३ ॥

मूलम् ।

अथ ह चक्षुरुद्गीथमुपासाञ्चक्रिरे तद्धासुराः पाप्मना विविधुस्तस्मात्तेनोभयं पश्यति दर्शनीयं चादर्शनीयं च पाप्मना ह्येतद्विद्धम् ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, ह, चक्षुः, उद्गीथम्, उपासाञ्चक्रिरे, तत्, ह, असुराः, पाप्मना, विविधुः, तस्मात्, तेन, उभयम्, पश्यति, दर्शनीयम्, च, आदर्शनीयम्, च, पाप्मना, हि, एतत्, विद्धम् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
च	और	असुराः	इन्द्रियों की तामस वृत्तियां
अथ	फिर	ह	भी
+देवाः	देवता अर्थात् इन्द्रियों की सात्त्विक वृत्तियां	पाप्मना	पाप करके
चक्षुः	चक्षु में स्थित चेतन को अर्थात् चक्षुअभिमानी देवता को	विविधुः	संसर्ग करती भई
उद्गीथम्	ॐकाररूप से	तस्मात्	इसी कारण
ह	भलीप्रकार	+च	निश्चय करके
उपासाञ्चक्रिरे	उपासना करती भई	+जनः	पुरुष
च	और	तेन	उस चक्षु द्वारा
तत्	उसी चक्षु के विषे स्थित चैतन्य को अथवा चक्षुअभिमानी देवता को	उभयम्	दोनों
		दर्शनीयम्	देखने के योग्य
		च	और
		अदर्शनीयम्	न देखने के योग्य वस्तु को
		पश्यति	देखता है

हि=क्योंकि
एतत्=यह नेत्र
पाप्मना=स्पर्शपाप करके
विद्धम्=दोषयुक्त है

भावार्थ ।

जिस चक्षुअभिमानी देवता को ॐकाररूप से इन्द्रियों की सात्त्विक वृत्तियां उपासना करती भईं उसी चक्षुअभिमानी देवता को तमोगुणी वृत्तियां स्पर्शपाप करके भ्रष्ट कर देती भईं और यही कारण है कि पुरुष जो देखने योग्य वस्तु है और जो नहीं देखने योग्य वस्तु है उन दोनों को देखता है ॥ ४ ॥

मूलम् ।

अथ ह श्रोत्रमुद्गीथमुपासाञ्चक्रिरे तद्धासुराः पाप्मना विविधुस्तस्मात्तेनोभयꣳ शृणोति श्रवणीयं चाश्रवणीयं च पाप्मना ह्येतद्विद्धम् ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, ह, श्रोत्रम्, उद्गीथम्, उपासाञ्चक्रिरे, तत्, ह, असुराः, पाप्मना, विविधुः, तस्मात्, तेन, उभयम्, शृणोति, श्रवणीयम्, च, अश्रवणीयम्, च, पाप्मना, हि, एतत्, विद्धम् ॥

अन्वयः पदार्थ

च=और
अथ=फिर
+ देवाः=इन्द्रियों की सात्त्विकवृत्तियां
श्रोत्रम्=श्रोत्रमें स्थित चेतन को अर्थात् श्रोत्राभिमानी देवता को
उद्गीथम्=ॐकाररूप से
उपासाञ्चक्रिरे=उपासना करती भईं
ह=अफ़सोस है कि

अन्वयः पदार्थ

तत्=उसी श्रोत्र में स्थित चैतन्य को अथवा श्रोत्राभिमानी देवता को
असुराः=इन्द्रियों की तामस वृत्तियां
पाप्मना=पाप करके
विविधुः=छेदती भईं अर्थात् संसर्ग करती भईं
तस्मात्=इसलिये
+ जनः=पुरुष
तेन=उस श्रोत्र के द्वारा

उभयम्=दोनों
श्रवणीयम्=सुनने योग्य
च=और
अश्रवणीयम्=न सुनने योग्य शब्द को
शृणोति=सुनता है
हि=क्योंकि
एतत्=यह श्रोत्र
पाप्मना=स्पर्श पाप करके
विद्धम्=छिदा है अर्थात् दोषयुक्त है

भावार्थ ।

फिर इन्द्रियों की सात्त्विक वृत्तियां श्रोत्राभिमानी देवता को ॐकाररूप से उपासना करती भईं, उसी श्रोत्राभिमानी देवता की तमोगुणी वृत्तियां भी स्पर्श करके अशुद्ध करती भईं और यही कारण है कि पुरुष सुनने योग्य और न सुनने योग्य शब्दों को सुनता है ॥ ५ ॥

मूलम् ।

अथ ह मन उद्गीथमुपासाञ्चक्रिरे तद्धासुराः पाप्मना विविधुस्तस्मात्तेनोभयꣳसंकल्पयते संकल्पनीयं चासंकल्पनीयं च पाप्मना ह्येतद्विद्धम् ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, ह, मनः, उद्गीथम्, उपासाञ्चक्रिरे, तत्, ह, असुराः, पाप्मना, विविधुः, तस्मात्, तेन, उभयम्, संकल्पयते, संकल्पनीयम्, च, असंकल्पनीयम्, च, पाप्मना, हि, एतत्, विद्धम् ॥

अन्वयः पदार्थ

च=और
अथ=फिर
+देवाः=इंद्रियों की सात्त्विक वृत्तियां
+हि=निश्चय करके
मनः=मन में स्थित चेतन को अर्थात् मन अभिमानी देवता को
उद्गीथम्=ॐकाररूप से
ह=भलीप्रकार
उपासाञ्चक्रिरे=उपासना करती भईं
च=और
तत्=उसी मन अभिमानी देवता को

असुराः=इन्द्रियों की तामस वृत्तियां
ह=भी
पाप्मना=पाप करके
विविधुः=छेदती भई अर्थात् दोषयुक्त करती भई
+ च=और
तस्मात्=इसी कारण
+ जनः=पुरुष
तेन=उस मन करके
उभयम्=दोनों
संकल्पनीयम्=संकल्प के योग्य
+ च=और
असंकल्पनीयम्=संकल्प के अयोग्य वस्तु को
संकल्पयते=इच्छा करता है
हि=क्योंकि
एतत्=यह मन
पाप्मना=स्पर्श पाप करके
विद्धम्=छिदा है अर्थात् दोषयुक्त है

भावार्थ ।

जब इन्द्रियों की सात्विक वृत्तियां मनअभिमानी देवता को ॐकार-रूप से उपासना करती भईं तब उस मनअभिमानी देवता को इन्द्रियों की तामसवृत्तियां स्पर्श करके पाप से संयुक्त करती भईं और यही कारण है कि पुरुष मन करके संकल्प के योग्य और संकल्प के अयोग्य वस्तु के पाने की इच्छा करता है ॥ ६ ॥

मूलम् ।

अथ ह य एवायं मुख्यः प्राणस्तमुद्गीथमुपासाञ्चक्रिरे तꣳहासुरा ऋत्वा विदध्वंसुर्यथाऽश्मानमाखणमृत्वा विध्वꣳसेत ॥ ७ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, ह, यः, एव, अयम्, मुख्यः, प्राणः, तम्, उद्गीथम्, उपासाञ्चक्रिरे, तम्, ह, असुराः, ऋत्वा, विदध्वंसुः, यथा, अश्मानम्, आखणम्, ऋत्वा, विध्वंसेत ॥

अन्वयः	पदार्थ
+च	और
अथ	फिर
यः	जो
अयम्	यह प्रसिद्ध
मुख्यः	मुख में रहनेवाला
प्राणः	चेतन प्राण है
तम्	उसको
+देवाः	इन्द्रियों की सात्त्विक वृत्तियां
उद्गीथम्	ॐकाररूप से
उपासाञ्चक्रिरे	उपासना करती भई
+च	परन्तु
तम्	उसको
ऋत्वा	प्राप्त हो करके अर्थात् उसको स्पर्श करके
असुराः	इन्द्रियों की तामस वृत्तियां
ह	पूर्ण रूप से
विदध्वंसुः	नष्ट होती भई
यथा	जैसे
+लोष्टः	माटी का बरतन
आखणम्	कठिन
अश्मानम्	पत्थर पर
ऋत्वा	गिर करके
विध्वंसेत	फूट जाता है

भावार्थ ।

जब सात्त्विक वृत्तियां मुख्य प्राण की उपासना करती भई तब उसी को इन्द्रियों की तमोगुण वृत्तियां भी स्पर्श करने को चाहीं; परन्तु स्पर्श करते ही नाश को प्राप्त हुईं। जैसे मिट्टी का बरतन सख़्त पत्थर पर गिरने से चूर चूर होजाता है और उस पत्थर की कोई हानि नहीं होती, वैसे ही मुख्य प्राण ज्यों का त्यों बना रहा, उसको कोई हानि नहीं पहुँची ॥ ७ ॥

मूलम् ।

एवं यथाश्मानमाखणमृत्वा विध्वꣳसत एवꣳहैव सविध्वꣳसते । य एवंविदि पापं कामयते यश्चैनमभिदासति स एषोऽश्माऽऽखणः ॥ ८ ॥

पदच्छेदः ।

एवम्, यथा, अश्मानम्, आखणम्, ऋत्वा, विध्वंसते, एवम्, ह,

एव, सः, विध्वंसते, यः, एवंविदि, पापम्, कामयते, यः, च, एनम्, अभिदासति, सः, एषः, अश्मा, आखणः ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यः	जो	विध्वंसते	नष्ट होजाता है
एवंविदि	इस प्रकार प्राण को जाननेवाले पुरुषकी ओर	यथा	जैसे
पापम्	पाप	आखणम्	कठिन
+ कर्तुम्	करने के लिये	अश्मानम्	पत्थर पर
कामयते	इच्छा करता है	ऋत्वा	गिरकर
च	और	+ लोष्ठः	माटी का बरतन
यः	जो	विध्वंसते	नष्ट होजाता है
एनम्	प्राणवेत्ता को	+ च	क्योंकि
अभिदासति	दुःख देता है	सः	वह
सः	वह	एषः	यह अर्थात् प्राणवेत्ता
एवमेव	इस प्रकार	आखणःअश्मा	कठिन पत्थर के
ह	भलीभांति	एवम्	तुल्य है अर्थात् अविविकारी ब्रह्मरूप है

भावार्थ ।

यह मंत्र प्राण की उपासना के महत्त्व को दिखाता है, यह कहते हुए कि जो कोई प्राण के उपासक को पापवृत्ति से देखता है या उसको दुःख पहुँचाने की इच्छा करता है वह इस तरह से नष्ट होजाता है जैसे मिट्टी का बरतन कठिन पत्थर पर गिरकर चूर चूर होजाता है। यह प्राण अविकारी ब्रह्मरूप है, सब पापकर्मों को भस्म कर देता है, जैसे वशिष्ठ के ब्रह्मदंड ने लड़ाई में विश्वामित्र के शस्त्रप्रहार को निष्फल कर दिया था ॥ ८ ॥

मूलम् ।

नैवैतेन सुरभि न दुर्गन्धि विजानात्यपहतपाप्मा ह्येष

तेन यदश्नाति यत्पिबति तेनेतरान्प्राणानवति । एतमु एवान्ततोऽविरवोत्क्रामति व्याददात्येवान्तत इति ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ।

न, एव, एतेन, सुरभि, न, दुर्गन्धि, विजानाति, अपहतपाप्मा, हि, एषः, तेन, यत्, अश्नाति, यत्, पिबति, तेन, इतरान्, प्राणान्, अवति, एतम्, उ, एव, अन्ततः, अवित्त्वा, उत्क्रामति, व्याददाति, एव, अन्ततः, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
न एव	तामस वृत्ति करके नहीं विधा है जो
+च	और
अपहतपाप्मा	जिससे पाप नष्ट होगया है
एषः	वह मुख्य प्राण
एतेन	इस नासिका द्वारा
दुर्गन्धि	दुर्गन्धि को
+ च	और
सुरभि	सुगन्धि को
न	नहीं
विजानाति	जानता है
तेन	उसी विशुद्ध प्राण द्वारा
+ पुरुषः	पुरुष
यत्	जो कुछ
अश्नाति	खाता है
+ च	और
यत्	जो कुछ
पिबति	पीता है
तेन	उस खान पान करके
इतरान्	अन्य
प्राणान्	नासिका आदि विषे प्राणरूपी देवताओं को
उ	अच्छे प्रकार
अवति	पालन करता है
+ यदा	जब
एतम्	खान पान को
अवित्त्वा	न पा करके
अन्ततः	मरण के समय
एव	निश्चय करके
+ घ्राणादि-प्राणसमुदायः	नासिका आदि अभिमानी देवता का समूह
उत्क्रामति	भाग निकलता है
+ तर्हि	तब
इति	इसी कारण
× पुरुषः	पुरुष
अन्ततः	मरते समय
एव	निश्चय करके
व्याददाति	मुख खोल देता है

भावार्थ ।

इस मंत्र में मुख्य प्राण के कई विशेषण हैं पहिला विशेषण यह है कि वह प्राण तामस वृत्तियों करके नहीं बिंधा है, दूसरा विशेषण यह है कि वह सुगन्धि और दुर्गन्धि से कोई संसर्ग नहीं रखता है, तीसरा विशेषण यह है कि नासिका आदि विषे जो देवता हैं उनको वह पालन करता है । यदि प्राण न रहे तो इन्द्रियाभिमानी देवता खानपान को न पा करके अपने अपने स्थान से निकल भागें और जब पुरुष मरण को प्राप्त होजाता है, तब उसका मुख खुल जाता है; प्राण के रहने का स्थान मुख है और मुख में अग्नि का वास है और अग्नि शुद्ध है, इसलिये मुख्य प्राण अग्निस्थान के कारण घ्राणादि इन्द्रियों में स्थित प्राणों की अपेक्षा अतिशुद्ध है । शास्त्रानुसार क्षुधा, पिपासा प्राण की ऊर्मि हैं, इसलिये जबतक शरीर में प्राण रहता है तबतक वह खानपान करता है और इस खानपान करके कर्मेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रिय पुष्ट होती हैं। जब प्राण निकलने लगता है, तब वह क्षणमात्र भी नहीं ठहर सकती हैं; इससे यह प्रसिद्ध है कि इन्द्रियाभिमानी देवता सब मुख्य प्राण के आधीन हैं ॥ ६ ॥

मूलम् ।

तꣳहाङ्गिरा उद्गीथमुपासाञ्चक्र एतमु एवाऽङ्गिरसं मन्यन्तेऽङ्गानां यद्रसः ॥ १० ॥

पदच्छेदः ।

तम् , ह, अङ्गिरा:, उद्गीथम् , उपासाञ्चक्रे, एतम् , उ, एव, आङ्गिरसम् , मन्यन्ते, अङ्गानाम् , यत् , रसः ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
+ दाल्भ्यः=दल्भ्य ऋषि का पुत्र		तम्=उसी मुख्य प्राण को कि	
+ बकः=बकऋषि			

अङ्गिराः=यह अङ्गिरा है (अर्थात् उद्गीथ है)
ह=निश्चय
+ इति=ऐसी बुद्धि करके
उद्गीथम्=उद्गीथ की
उपासाञ्चक्रे=उपासना करता भया
उ=और
एतम्=इसी मुख्य प्राण को
एव=ही
+ ऋषयः=मुनिलोग
आङ्गिरसम्=अङ्गिरा का पुत्र बृहस्पति
मन्यन्ते=मानते हैं
यत्=क्योंकि
+ सः=वह मुख्य प्राण
अङ्गानां=सब अङ्गों का
रसः=पोषक है अर्थात् सबका पालन करनेवाला है

भावार्थ ।

अङ्गिरा शब्द का अर्थ मुख्य प्राण है, जब से मुख्य प्राण की उपासना अङ्गिरा ऋषि ने की तब से उसका अर्थात् मुख्य प्राण का नाम भी अङ्गिरा पड़ गया, क्योंकि उपास्य उपासक में भेद नहीं रहता है । उद्गीथ और अङ्गिरा एक ही हैं, क्योंकि यह दोनों प्राणरूप हैं और इसी प्रकार अङ्गिरा पिता और अङ्गिरस पुत्र अर्थात् कारण कार्य दोनों एक ही हैं, क्योंकि जैसे उपास्य उपासक में भेद नहीं रहता है, वैसेही कार्य कारण में कोई भेद नहीं रहता है । इस प्रकार दल्भ्यऋषि के पुत्र बक ऋषि ने मुख्य प्राण को अङ्गिरा मानकर ओंकार की उपासना की और अन्य ऋषि लोग भी ऐसी ही उपासना करते भये ॥ १० ॥

मूलम् ।

तेन तᳬह बृहस्पतिरुद्गीथमुपासाञ्चक्र एतमु एव बृहस्पतिं मन्यन्ते वाग्घि बृहती तस्या एष पतिः ॥ ११ ॥

पदच्छेदः ।

तेन, तम्, ह, बृहस्पतिः, उद्गीथम्, उपासाञ्चक्रे, एतम्, उ, एव, बृहस्पतिम्, मन्यन्ते, वाक्, हि, बृहती, तस्याः, एषः, पतिः ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
वाक्=वाणी		बृहस्पतिः बृहस्पति	
बृहती=बृहती है		ह=निश्चय करके	
हि=इसलिये		उपासाञ्चक्रे=उपासना करता भया	
एषः=यह अर्थात् बृहस्पति		उ=और	
तस्याः=उस बृहती का या वाक् का		एतम्=मुख्य प्राण को	
पतिः=स्वामी है		एव=ही	
तेन=इस कारण		+ ऋषयः=मुनि लोग	
तम्=उस मुख्य प्राण को		बृहस्पतिम्=बृहस्पति	
उद्गीथम्=ॐकाररूप से		मन्यन्ते=मानते हैं	

भावार्थ ।

इस मुख्य प्राण की उपासना बृहस्पति ऋषि ने उद्गीथ मान करके की, इसी कारण ऋषियों ने मुख्य प्राण को बृहस्पति माना है, क्योंकि उपास्य उपासक में कोई भेद नहीं होता है । जो उपास्य है वही उपासक है, वाक्ही बृहती है और बृहती का स्वामी बृहस्पति अर्थात् मुख्य प्राण है, क्योंकि वाक् मुख्य प्राण के आधीन है । जब तक पुरुष में मुख्य प्राण रहता है तब तक वाक् भी रहती है ॥ ११ ॥

मूलम् ।

तेनतꣳ ह्यायास्य उद्गीथमुपासाञ्चक्र एतमु एवायास्यम् मन्यन्त आस्याद्यदयते ॥ १२ ॥

पदच्छेदः ।

तेन, तम्, ह, आयास्यः, उद्गीथम्, उपासाञ्चक्रे, एतम्, उ, एव, आयास्यम्, मन्यन्ते, आस्यात्, यत्, अयते ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यत्=चूंकि		आस्यात्=मुख से	
आयास्यः=आयास्य ऋषि		अयते=निकला है	

तेन=इसलिये	उ=और
+ सः=वह	एतम्=इसी मुख्य प्राण को
तम्=मुख्य प्राण को	एव=ही
ह=ही	+ मुनयः=मुनि लोग
उद्गीथम्=ॐकाररूप से	आयास्यम्=आयास्य नाम करके
उपासाञ्चक्रे=उपासना करता भया	मन्यन्ते=मानते हैं

भावार्थ ।

जिस कारण आयास्य ऋषि (आस्यात् अयने इति आयास्यः) मुख से उत्पन्न हुआ है, इसी कारण उसने मुख्य प्राण की उपासना ॐकार-रूप से की है और इसी कारण यह मुख्य प्राण आयास्य नाम करके प्रसिद्ध हुआ है ॥ १२ ॥

मूलम् ।

तेनतꣳह बको दाल्भ्यो विदाञ्चकार । स ह नैमिषीया-नामुद्गाता बभूव स ह स्मैभ्यः कामानागायति ॥ १३ ॥

पदच्छेदः ।

तेन, तम्, ह, बकः, दाल्भ्यः, विदाञ्चकार, सः, ह, नैमिषीयानाम्, उद्गाता, बभूव, सः, ह, स्म, एभ्यः, कामान्, आगायति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
दाल्भ्यः	=दल्भ ऋषि का पुत्र	नैमिषीयानाम्	=नैमिष क्षेत्र के यज्ञकर्ता ऋषियों का
बकः	=बक ऋषि	उद्गाता	=उद्गातानामक ऋत्विज्
तम्	=इस मुख्य प्राण को	बभूव	=हुआ
ह	=निश्चय करके	सः	=वही उद्गाता बक ऋषि
विदाञ्चकार	=जानता भया अर्थात् उपासना करता भया	ह	=निश्चय करके
तेन	=इस कारण		
सः	=वह बक ऋषि		
ह	=प्रसिद्ध		

एभ्यः=इन यज्ञकर्त्ता ऋषियों के	आगायतिस्म=कहता भया अर्थात्
कामान्=मनोरथों को	पूर्ण करता भया

भावार्थ ।

दल्भ्यऋषि का पुत्र बकऋषि मुख्य प्राण के अर्थ को भली प्रकार जानता भया और इसीलिये वह नैमिषारण्यक्षेत्र में यज्ञ करनेवाले ऋषियों का उद्गाता नाम से ऋत्विज् हुआ । जो सामवेदी होता है और यजुर्वेदी अध्वर्यु की आज्ञा से यज्ञ में सामवेद की शाखानुसार काम करता है, वह उद्गाता होता है सो यह उद्गाता बकऋषि उन यज्ञकर्त्ता ऋषियों के मनोरथों को पूर्ण करता भया, अर्थात् जिस मनोरथनिमित्त उन्होंने यज्ञ किया था वे सब सफल हुए ॥ १३ ॥

मूलम् ।

आगाता ह वै कामानां भवति य एतदेवं विद्वानक्षर-मुद्गीथमुपास्त इत्यध्यात्मम् ॥ १४ ॥

इति द्वितीयः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

आगाता, ह, वै, कामानां, भवति, यः, एतत्, एवम्, विद्वान्, अक्षरम्, उद्गीथम्, उपास्ते, इति, अध्यात्मम् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यः	जो पुरुष	कामानाम्	सब मनोरथों का
एवम्	कहे हुए प्रकार	वै	निश्चय करके
विद्वान्	जानता हुआ	आगाता	कहनेवाला अर्थात् पूर्ण करनेवाला
+मुख्यप्राणं	मुख्य प्राण को	भवति	होता है
एतत्	इस	ह	इस प्रकार
अक्षरम्	अविनाशी	अध्यात्मम्	यह अध्यात्म विद्या
उद्गीथम्	ओंकाररूप से	इति	समाप्त हुई
उपास्ते	उपासना करता है		
+ सः	वह पुरुष		

भावार्थ ।

यह मन्त्र ॐकार की उपासना की फलस्तुति के निमित्त है । जो पुरुष ऊपर कहे हुए प्रकार से मुख्य प्राण की अविनाशी ॐकाररूप से उपासना करता है, वह सब मनोरथों का सिद्ध करनेवाला होता है । "देवो भूत्वा देवानप्येति" इस श्रुति के अनुसार उपासक उपास्यरूप होजाता है; क्योंकि ॐकार अविनाशी है इसलिये उपासक भी अविनाशी ब्रह्मरूप होजाता है ॥ १४ ॥

इति द्वितीयः खण्डः ।

अथ प्रथमाध्यायस्य तृतीयः खण्डः ।

मूलम् ।

अथाधिदैवतं य एवासौ तपति तमुद्गीथमुपासीतोद्यन्वा एष प्रजाभ्य उद्गायति उद्यꣳस्तमो भयमपहन्त्यपहन्ता ह वै भयस्य तमसो भवति य एवं वेद ॥१॥

पदच्छेदः ।

अथ, अधिदैवतम्, यः, एव, असौ, तपति, तम्, उद्गीथम्, उपासीत, उद्यन्, वै, एषः, प्रजाभ्यः, उद्गायति, उद्यन्, तमः, भयम्, अपहन्ति, अपहन्ता, ह, वै, भयस्य, तमसः, भवति, यः, एवम्, वेद ॥

अन्वयः	पदार्थ
अथ	अब
अधिदैवतम्	देवता विषयक उद्गीथ की उपासना
+प्रस्तुतम्	प्रारंभ होती है
यः	जो
असौ	यह सूर्य
एव	प्रत्यक्ष
×उद्यन्	निकलता हुआ
तपति	तपता है
+च	और
यः	जो
एषः	यह सूर्य
उद्यन्	निकलता हुआ
प्रजाभ्यः	प्रजा के कल्याणार्थ

वै=निश्चय करके
उद्गायति=उद्गीथ को गाता है
+किंच=और
+यः=जो
उद्यन्=निकलता हुआ
तमः=अंधकार को
+च=और
भयम्=अंधकार के भय को
अपहन्ति=नष्ट करता है
तम्=उसी सूर्य को
उद्गीथम्=ॐकाररूप से
उपासीत=सेवन करे
+यः=जो पुरुष
एवम्=इस प्रकार
वेद=जानता है
× सः=वह
ह=ही
भयस्य=संसार के भय का
+च=और
तमसः=अज्ञान का
वै=निश्चय करके
अपहन्ता=नाश करनेवाला
भवति=होता है

भावार्थ ।

अध्यात्मविषयक उद्गीथ की उपासना के बाद देवता विषयक उद्गीथ की उपासना आरंभ होती है । उपासक को चाहिए कि जो यह प्रत्यक्ष सूर्य निकलता है और प्रजा के कल्याणार्थ प्रकाश देता है और जो अन्धकार और अन्धकार के भय को नाश करता है, उस विषे उद्गीथ या ॐकार की उपासना करे जो पुरुष इस प्रकार उपासना करता है वह संसार के भय का और अज्ञान का नाशक होता है ॥१॥

मूलम् ।

समान उ एवायं चासौ चोष्णोऽयमुष्णोऽसौ स्वर इतीममाचक्षते स्वर इति प्रत्यास्वर इत्यमुं तस्माद्वा एतमिममम चोद्गीथमुपासीत ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

समानः, उ, एव, अयम्, च, असौ, च, उष्णः, अयम्, उष्णः, असौ, स्वरः, इति, इमम्, आचक्षते, स्वरः, इति, प्रत्यास्वरः, इति, अमुम्, तस्मात्, वा, एतम्, इमम्, अमुम्, च, उद्गीथम्, उपासीत ॥

अन्वयः पदार्थ	अन्वयः पदार्थ
अयम्=यह शरीर बिषे स्थित प्राण	स्वरः=स्वर
च=और	+इति=करके
असौ=उस सूर्य बिषे स्थित प्राण दोनों	आचक्षते=लोग कहते हैं
समानः=तुल्य हैं	वा=उसी प्रकार
च=और	अमुम्=सूर्य बिषे स्थित उस प्राण को
इति=जैसे	प्रत्यास्वरः=प्रत्यास्वर
अयम्=यह शरीर बिषे स्थित प्राण	+इति=करके
उष्णः=गर्म है	+आचक्षते=लोग कहते हैं
इति=उसी प्रकार	तस्मात्=इसलिये
असौ=वह सूर्य बिषे स्थित प्राण	इमम्=इस शरीर बिषे स्थित प्राण में
एव=भी	उ=और
उष्णः=गर्म है	अमुम्=उस सूर्य बिषे स्थित प्राण में
इति=जिस प्रकार	एतम्=इस उद्गीथ को
इमम्=शरीर बिषे स्थित प्राण को	उद्गीथम्=ॐकाररूप से
	उपासीत=उपासना करे

भावार्थ ।

जो प्राण इस शरीर बिषे स्थित है वही प्राण सूर्य बिषे भी स्थित है और जैसे शरीर बिषे रहनेवाला प्राण गर्म है, वैसे ही सूर्य बिषे स्थित प्राण भी गर्म है । जिस तरह शरीर बिषे स्थित प्राण को स्वर कहते हैं, उसी प्रकार सूर्य बिषे स्थित प्राण को प्रत्यास्वर कहते हैं । इसलिए उपासक को चाहिए कि सूर्य बिषे स्थित प्राण को अपने बिषे स्थित प्राण से अभेद जानकर उसमें उद्गीथ की उपासना करे ॥ २ ॥

मूलम् ।

अथ खलु व्यानमेवोद्गीथमुपासीत यद्वै प्राणिति स

प्राणो यदपानिति सोऽपानः । अथ यः प्राणापानयोः सन्धिः स व्यानो यो व्यानः सा वाक् तस्मादप्राणन्नन-पानन्वाचमभिव्याहरति ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, खलु, व्यानम्, एव, उद्गीथम्, उपासीत, यत्, वै, प्राणिति, सः, प्राणः, यत्, अपानिति, सः, अपानः, अथ, यः, प्राणापानयोः, सन्धिः, सः, व्यानः, यः, व्यानः, सा, वाक्, तस्मात्, अप्राणन्, अनपानन्, वाचम्, अभिव्याहरति ॥

अन्वयः	पदार्थ
अथ	इसके पश्चात्
व्यानम्	व्यान रूप
उद्गीथम्	उद्गीथ की
एव	ही
उपासीत	उपासना करे
यत्	जिस वायु को
+ पुरुषः	पुरुष
प्राणिति	बाहर निकालता है
सः	वह
वै	ही
प्राणः	प्राण है
यत्	जिस वायु को
+ पुरुषः	पुरुष
अपानिति	नीचे को निकालता है
सः	वह
खलु	ही
अपानः	अपान है
अथ	और
यः	जो वायु
प्राणापानयोः	प्राण अपान का
सन्धिः	मध्यस्थ है
सः	वही
व्यानः	व्यान नाम से प्रसिद्ध है
यः	जो
व्यानः	व्यान वायु है
सा	वही
वाक्	वाणी है
तस्मात्	इसलिये
अप्राणन्	प्राण के व्यापार को रोकता हुआ
+ च	और
अनपानन्	अपान के व्यापार को रोकता हुआ
+ पुरुषः	पुरुष
वाचम्	वाणी को
अभिव्याहरति	उच्चारण करता है

भावार्थ ।

जो वायु इन्द्रियों के विषे स्थित है और जो ऊपर को जाता है वह प्राणवायु है और वह वायु जो गुदा आदि इन्द्रियों के विषे स्थित है और नीचे की तरफ जाता है वह अपान वायु है और जो प्राण अपान के मध्य विषे स्थित है वह व्यान वायु है । यही वाक् है, क्योंकि जब प्राण और अपान वायु के व्यापार बंद होजाते हैं, तब पुरुष व्यान वायु के द्वारा बोलता है । इस व्यान वायु की उद्गीथरूप से उपासना करे ॥ ३ ॥

मूलम् ।

या वाक्सर्क्तस्मादप्राणन्ननपानन्नृचमभिव्याहरति यर्क्तत्साम तस्मादप्राणन्ननपानन्साम गायति यत्साम स उद्गीथस्तस्मादप्राणन्ननपानन्नुद्गायति ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

या, वाक्, सा, ऋक्, तस्मात्, अप्राणन्, अनपानन्, ऋचम्, अभिव्याहरति, या, ऋक्, तत्, साम, तस्मात्, अप्राणन्, अनपानन्, साम, गायति, यत्, साम, सः, उद्गीथः, तस्मात्, अप्राणन्, अनपानन्, उद्गायति ॥

अन्वयः	पदार्थ
या	जो
वाक्	वाणी है
सा	वही
ऋक्	ऋचा है
तस्मात्	इसी कारण
अप्राणन्	प्राण के व्यापार को रोकता हुआ
अनपानन्	अपान के व्यापार को रोकता हुआ
ऋचम्	ऋचा को
+ पुरुषः	पुरुष
अभिव्याहरति	उच्चारण करता है
या	जो
ऋक्	ऋचा है
तत्	वही
साम	सामवेद है
तस्मात्	इसी कारण

अप्राणन्=प्राण के व्यापार को रोकता हुआ
अनपानन्=अपान के व्यापार को रोकता हुआ
+ पुरुषः=पुरुष
साम=सामवेद को
गायति=गान करता है
यत्=जो
साम=साम है
सः=वही
उद्गीथः=उद्गीथ है
तस्मात्=इसीलिये
अप्राणन्=प्राण के व्यापार को रोकता हुआ
अनपानन्=अपान के व्यापार को रोकता हुआ
+ पुरुषः=पुरुष
उद्गायति=व्यान वायु के द्वारा उद्गीथ का गान करता है

भावार्थ ।

वाणी ही ऋचा है, इसी कारण ऋचा को पुरुष प्राण, अपान की गति को रोक करके उच्चारण करता है । ऋचा ही सामवेद है, इसी कारण पुरुष प्राण, अपान के व्यापार को रोक करके सामवेद का गान करता है और जो सामवेद है वही उद्गीथ है, इसलिये पुरुष प्राण, अपान के व्यापार को रोकता हुआ सामवेद के मन्त्रों से व्यानवायु के द्वारा उद्गीथ की उपासना करता है ॥ ४ ॥

मूलम् ।

अतो यान्यन्यानि वीर्यवन्ति कर्माणि यथाग्नेर्मन्थनमाजेः सरणं दृढस्य धनुष आयमनमप्राणन्ननपानꣳस्तानि करोत्येतस्य हेतोर्व्यानमेवोद्गीथमुपासीत ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ।

अतः, यानि, अन्यानि, वीर्यवन्ति, कर्माणि, यथा, अग्नेः, मन्थनम्, आजेः, सरणम्, दृढस्य, धनुषः, आयमनम्, अप्राणन्, अनपानन्, तानि, करोति, एतस्य, हेतोः, व्यानम्, एव, उद्गीथम्, उपासीत ॥

अन्वयः	पदार्थ
अतः	इस कारण
+ एव	ऐसे
यानि	जो
अन्यानि	और
वीर्यवन्ति	अधिक उपाय साध्य
कर्माणि	कर्म हैं
यथा	जैसे
अग्नेः	अग्नि का
मन्थनम्	मन्थन,
आजेः	किसी नियुक्त जगह से
सरणम्	दौड़ना
+ च	और
दृढस्य	पुष्ट कठोर
धनुषः	धनुष का
आयमनम्	खींचना

अन्वयः	पदार्थ
तानि	उन कर्मों को
अप्राणन्	प्राण के व्यापार को रोकता हुआ
अनपानन्	अपान के व्यापार को रोकता हुआ
+ पुरुषः	पुरुष
+ व्यानेन	व्यानवायु के द्वारा
करोति	करता है
एतस्य	इस
हेतोः	कारण
व्यानम्	व्यान की
एव	ही
उद्गीथम्	ॐकाररूप से
उपासीत	उपासना करे

भावार्थ ।

बड़े बड़े जो दुःसाध्य कर्म हैं, जैसे यज्ञ विषे अग्नि का मन्थन और किसी नियुक्त जगह से दौड़ना या लड़ाई की ओर वेग से जाना अथवा पुष्ट कठोर धनुष का खींचना, इन कर्मों को पुरुष प्राण और अपान की गति को रोकता हुआ व्यानवायु करके ही करता है, इसलिये पुरुष व्यानवायु की ही ॐकाररूप से उपासना करे ॥ ५ ॥

मूलम् ।

अथ खलूद्गीथाक्षराण्युपासीतोद्गीथ इति प्राण एवोत्प्राणेन ह्युत्तिष्ठति वाग्गीर्वाचो ह गिर इत्याचक्षतेऽन्नं थमन्ने हीदꣳ सर्वꣳ स्थितम् ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, खलु, उद्गीथाक्षराणि, उपासीत, उद्गीथे, इति, प्राणः, एव,

उत्, प्राणेन, हि, उत्तिष्ठति, वाक्, गीः, वाचः, ह, गिरः, इति, आचक्षते, अन्नम्, थम्, अन्ने, हि, इदम्, सर्वम्, स्थितम् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ	इसके पश्चात्	ह	निश्चय करके
उद्गीथाक्षराणि	उद्गीथ के अक्षरों की	गिरः	गी को
उपासीत	उपासना करे	खलु	ही
उद्गीथे	उद्गीथपद में	वाचः	वाक्
उत्	उत्	आचक्षते	कहते हैं
इति	इस अक्षर का अर्थ	थम्	थ अक्षर का अर्थ
प्राणः	मुख्य प्राण है	अन्नम्	अन्न है
हि	क्योंकि	अन्ने	अन्न में
प्राणेन	प्राणवायु करके	हि	ही
+ पुरुषः	पुरुष	इदम्	यह
उत्तिष्ठति	उठता है	सर्वम्	सब जगत्
गीः	गी	एव	निश्चय करके
इति	इस अक्षर का अर्थ	स्थितम्	ठहरा है
वाक्	वाणी है		

भावार्थ ।

उद्गीथ की उपासना के पश्चात् उद्गीथपद के अक्षरों की उपासना इस प्रकार करे। उद्गीथपद में जो उत्, अक्षर है उसका अर्थ मुख्य प्राण है, क्योंकि पुरुष मुख्यप्राण करके ही व्यवहार करता है। गी का अर्थ वाणी है, गी को ही वाक् कहते हैं, इसीसे गिरः निकला है। थ का अर्थ अन्न है, अन्नही में सारा जगत् ठहरा है, इस प्रकार जान करके उद्गीथ के अक्षरों की उपासना करे ॥ ६ ॥

मूलम् ।

द्यौरेवोदन्तरिक्षं गीः पृथिवी थमादित्य एवोद्वायुर्गीरग्निस्थꣳ सामवेद एवोद्यजुर्वेदो गीर्ऋग्वेदस्थं दुग्धेऽस्मै

वाग्दोहं यो वाचो दोहोऽन्नवानन्नादो भवति य एतान्येवं विद्वानुद्गीथाक्षराणि उपास्त उद्गीथ इति ॥ ७ ॥

पदच्छेदः ।

द्यौः, एव, उत्, अन्तरिक्षम्, गीः, पृथिवी, थम्, आदित्यः, एव, उत्, वायुः, गीः, अग्निः, थम्, सामवेदः, एव, उत्, यजुर्वेदः, गीः, ऋग्वेदः, थम्, दुग्धे, अस्मै, वाग्दोहम्, यः, वाचः, दोहः, अन्नवान्, अन्नादः, भवति, यः, एतानि, एवम्, विद्वान्, उद्गीथाक्षराणि, उपास्ते, उद्गीथः, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
उत्=	अक्षर
एव=	ही
द्यौः=	स्वर्ग है,
गीः=	गी अक्षर
अन्तरिक्षम्=	आकाश है,
थम्=	थ अक्षर
पृथिवी=	पृथ्वी है,
उत्=	उत् अक्षर
एव=	ही
आदित्यः=	सूर्य है,
गीः=	गी अक्षर
वायुः=	वायु है,
थम्=	थ अक्षर
अग्निः=	अग्नि है,
उत्=	उत् अक्षर
एव=	ही
सामवेदः=	सामवेद है,
गीः=	गी अक्षर
यजुर्वेदः=	यजुर्वेद है,
थम्=	थ अक्षर
ऋग्वेदः=	ऋग्वेद है,
यः=	जो
वाचः=	वाणी का
दोहः=	फल है अर्थात् मोक्ष है
+ तम्=	उस
वाग्दोहम्=	वाणी के फल को
अस्मै=	उपासक के लिये
+ उपासना=	ध्यान धारणादि-रूप उपासना
दुग्धे=	पूर्ण करती है अर्थात् देती है
यः=	जो उपासक
एवम्=	कहे हुए प्रकार
एतानि=	इन
उद्गीथाक्षराणि=	उद्गीथ के अक्षरों को
विद्वान्=	जानता हुआ
उपास्ते=	उपासना करता है
+ सः=	वह
अन्नवान्=	अन्न संपत्तिवाला

+ च=और	इति=इस प्रकार
अन्नादः=भोग शक्तिवाला	उद्गीथः=उद्गीथ की उपासना है
भवति=होता है	

भावार्थ ।

उद्गीथ के अक्षरों का इस प्रकार ध्यान करे । उत् स्वर्ग है, गी आकाश है, थ पृथ्वी है, उत् सूर्य है, गी वायु है, थ अग्नि है, उत् सामवेद है, गी यजुर्वेद है, थ ऋग्वेद है । इस प्रकार उपासना करने से वाणी का फल अर्थात् वेदपाठ करने से जो फल मोक्षरूपी है वही उपासक को शरीर त्यागने के पश्चात् प्राप्त होता है और देह रखते हुए जो उपासक उद्गीथ के इन अक्षरों को जानता हुआ उपासना करता है वह अन्नसंपत्तिवाला और भोगशक्तिवाला होता है अर्थात् उसके घर में अन्न वस्त्रादिक की बाहुल्यता होती है और उसका शरीर तन्दुरुस्त रहकर उन दिये पदार्थों को भली प्रकार भोगता है । यह उद्गीथ के अक्षरों की उपासना का महत्फल है ॥ ७ ॥

मूलम् ।

अथ खल्वाशीःसमृद्धिरुपसरणानीत्युपासीत । येन साम्ना स्तोष्यन्स्यात्तत्सामोपधावेत् ॥ ८ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, खलु, आशीःसमृद्धिः, उपसरणानि, इति, उपासीत, येन, साम्ना, स्तोष्यन्, स्यात्, तत्, साम, उपधावेत् ॥

अन्वयः पदार्थ	अन्वयः पदार्थ
अथ=इसके उपरांत	+ उच्यते=कहा जाता है
आशीःसमृद्धिः=फलसिद्धि	उपसरणानि=ध्यान करने योग्य जो ध्येय है
+ यथा=जिस प्रकार	तानि=उनको
खलु=अच्छी तरह	इति=इस प्रकार
+ भवेत्=होवे	

उपासीत=उपासना करे अर्थात्
येन=जिस
साम्ना=सामवेद के मंत्रों करके
स्तोष्यन्=स्तुति करता हुआ
स्यात्=होवे अर्थात् स्तुति करना चाहे तो
+ सः=वह उपासक
साम=उस सामवेद के मंत्र को
उपधावेत्=पहिले चिंतन करे

भावार्थ ।

जिस प्रकार फल की सिद्धि होवे उसको कहते हैं । ध्यान करने योग्य जो ध्येयवस्तु बहुतरूप से हैं (एकं बहुधा वदन्ति) उनकी उपासना करने से पहिले जिस सामवेद के मन्त्र करके उपासक उपासना करना चाहता है वह उस सामवेद के मंत्र को भली प्रकार चिंतन करे अर्थात् उस मंत्र के ऋषि, छन्द, देवता आदि का चिंतन (स्मरण) कर लेवे ॥ ८ ॥

मूलम् ।

यस्यामृचि तामृचं यदार्षेयं तमृषिं यां देवतामभिष्टोष्यन्स्यात्तां देवतामुपधावेत् ॥ ९ ॥

पदच्छेदः ।

यस्याम्, ऋचि, ताम्, ऋचम्, यदार्षेयं, तम्, ऋषिम्, यां, देवताम्, अभिष्टोष्यन्, स्यात्, ताम्, देवताम्, उपधावेत् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यस्याम्	जिस	यदार्षेयम्	जिस ऋषि ने उस ऋचा को स्मरण किया है
ऋचि	ऋचा में	तम्	उस
+ तत्	वह	ऋषिम्	ऋषि को
+ साम	सामवेद है	उपधावेत्	चिंतन करे
ताम्	उस	+ च	और
ऋचम्	ऋचा को		
+ उपधावेत्	चिंतन करे		

याम्=जिस
देवताम्=देवता की
अभिष्टोष्यन् स्यात् = स्तुति करता हुआ होवे अर्थात् जिस देवता की स्तुति करना चाहे

ताम्=उस
देवताम्=देवता को भी
उपधावेत्=चिंतन करे

भावार्थ।

सामवेद में बहुत ऋचा हैं, जिस खास ऋचा करके उद्गीथ की उपासना उपासक करना चाहता है, उस ऋचा का वह पहिले ध्यान कर लेवे और जिस ऋषि ने उस खास ऋचा का स्मरण किया है, उस ऋषि का भी ध्यान पहिले कर लेवे और जिस देवता की स्तुति उस खास ऋचा करके करना चाहता है उस खास देवता का भी चिंतन पहिले कर ले ॥ ९ ॥

मूलम्।

येनच्छन्दसा स्तोष्यन्स्यात्तच्छन्द उपधावेद्येन स्तोमेन स्तोष्यमाणः स्यात्तꣳ स्तोममुपधावेत् ॥ १० ॥

पदच्छेदः।

येन, छन्दसा, स्तोष्यन्, स्यात्, तत्, छन्दः, उपधावेत्, येन, स्तोमेन, स्तोष्यमाणः, स्यात्, तम्, स्तोमम्, उपधावेत् ॥

अन्वयः पदार्थ

येन=जिस
छन्दसा=गायत्री आदि छन्द करके
स्तोष्यन्=स्तुति करनेवाला
स्यात्=होवे
तत्=उस
छन्दः=छन्द को
उपधावेत्=चिंतन करे अर्थात् जानलेवे

अन्वयः पदार्थ

येन=जिस
स्तोमेन=स्वर करके
स्तोष्यमाणः स्यात् = स्तुति करनेवाला हो
तम्=उस
स्तोमम्=स्वर को
उपधावेत्=चिंतन करे अर्थात् जानलेवे

भावार्थ ।

जिस गायत्री आदि छन्द करके उपासक उद्गीथ की उपासना करना चाहता है, उस छन्द को पहिले जानलेवे और जिस स्वर करके वह स्तुति करना चाहता है उस स्वर को भी भलीभांति पहिले जानलेवे, सामवेद सात स्वरों करके गाया जाता है और वह यह है निषाद, ऋषभ, गांधार, खड्ज, मध्यम, धैवत, पंचम इनके भिन्न-भिन्न भेद हैं, जो सामवेद की ऋचाओं करके उद्गीथ की उपासना करना चाहै वह इन स्वरों के भेद को भली प्रकार जान लेवे और इनके साथ ही साथ उदात्त, अनुदात्त, स्वरित आदिकों को भी जानलेवे, जिससे उपासना का फल उसको यथोचित प्राप्त होवे ॥ १० ॥

मूलम् ।

यां दिशमभिष्टोष्यन्स्यात्तां दिशमुपधावेत् ॥ ११ ॥

पदच्छेदः ।

याम्, दिशम्, अभिष्टोष्यन्, स्यात्, ताम्, दिशम्, उपधावेत् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
याम्	जिस	ताम्	उस
दिशम्	दिशा की	दिशम्	दिशा अभिमानी देवता को
अभिष्टोष्यन्	स्तुति करनेवाला	उपधावेत्	चिंतन करै अर्थात् ध्यान करै
स्यात्	होवे		

भावार्थ ।

उद्गीथ का उपासक जिस दिशा की स्तुति करनेवाला होवै उस दिशा के अभिमानी देवता का ध्यान करै ॥ ११ ॥

मूलम् ।

आत्मानमन्तत उपसृत्य स्तुवीत कामं ध्यायन्नप्रमत्तो-

भ्याशो ह यदस्मै स कामः समृध्येत यत्कामः स्तुवीतेति यत्कामः स्तुवीतेति ॥ १२ ॥

इति तृतीयः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

आत्मानम् , अन्ततः, उपसृत्य, स्तुवीत, कामम् , ध्यायन् , अप्रमत्तः, अभ्याशः, ह, यत्, अस्मै, सः, कामः, समृध्येत, यत्कामः, स्तुवीत, इति, यत्कामः, स्तुवीत, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
अप्रमत्तः	सावधान होता हुआ
+ च	और
कामम्	अपने मनोरथ को
ह	निश्चय करके
ध्यायन् + सन्	ध्यान करता हुआ
+ उद्गाता	उद्गीथ का गान करनेवाला
आत्मानम्	अपने आत्मा को
अन्ततः	अन्त में
उपसृत्य	चिंतन करके
स्तुवीत	स्तुति करता है
+ तर्हि	तो
यत्	जिस कर्म में
स्तुवीत	उद्गीथ का गान करता है
+ तत्र	उसी कर्म में
अस्मै	उद्गाता के लिये
अभ्याशः	शीघ्र
सः	वह
कामः	मनोरथ
समृध्येत	फलदायक होता है
यत्कामः	जिस कामना करके
+ सः	वह उपासक
स्तुवीत	स्तुति करता है
इति	इस प्रकार देवता संबंधि उद्गीथ की उपासना समाप्त हुई

भावार्थ ।

उपासक ऋषि छन्द देवता स्वर आदिकों को भली प्रकार जानता हुआ और अपने मनोरथों को स्मरण करता हुआ उद्गीथ और उद्गीथ के अक्षरों की उपासना के पश्चात् यदि उद्गीथ का गान करनेवाला अपने आत्मा की स्तुति करे, तो जिस कर्म में वह जिस मनोरथ के लिये गान करता है, उस कर्म यज्ञ में उसका मनोरथ

पूर्ण होता है ऐसी यह देवतासम्बन्धी उद्गीथ की उपासना समाप्त हुई ॥ १२ ॥

इति तृतीयः खण्डः ।

अथ प्रथमाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः ।

मूलम् ।

ॐ मित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीतोमिति ह्युद्गायति तस्योपव्याख्यानम् ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

ॐ, इति, एतत्, अक्षरम्, उद्गीथम्, उपासीत, ॐ, इति, हि, उद्गायति, तस्य, उपव्याख्यानम् ॥

अन्वयः	पदार्थ
एतत्	इस
ॐ	ॐ
अक्षरम्	अक्षर की
उद्गीथम्	उद्गीथरूप से
उपासीत	उपासना करै
हि	क्योंकि
ॐ	ॐ
इति	कह करके
+उद्गाता	उद्गाता
उद्गायति	उद्गीथ का गान करता है
+ तस्मात्	इसलिये
तस्य	उस ॐकार का
उपव्याख्यानम्	व्याख्यान भली प्रकार
इति	करके
+ उच्यते	कहा जाता है

भावार्थ ।

इस चतुर्थखण्ड में उद्गीथ का माहात्म्य और उसकी उपासना का फल कहा जाता है—

इस ॐ अक्षर की उपासना उद्गीथरूप से करना चाहिए क्योंकि यह अक्षर ॐ ही अविनाशी ब्रह्मरूप है और उसी ॐ को उद्गाता गान करता है ॥ १ ॥

मूलम् ।

देवा वै मृत्योर्बिभ्यतस्त्रयीं विद्यां प्राविशꣳस्ते छन्दोभिरच्छादयन्यदेभिरच्छादयꣳस्तच्छन्दसां छन्दस्त्वम् ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

देवाः, वै, मृत्योः, बिभ्यतः, त्रयीम्, विद्याम्, प्राविशन्, ते, छन्दोभिः, अच्छादयन्, यत्, एभिः, अच्छादयन्, तत्, छन्दसाम्, छन्दस्त्वम् ॥

अन्वयः	पदार्थ
देवाः	इन्द्रियों की सात्त्विक वृत्तियां
मृत्योः	इन्द्रियों की तामसवृत्तियों के संसर्गरूप पाप से
बिभ्यतः	डरती
+ सन्तः	हुई
त्रयीम्	तीनों
विद्याम्	वेदों को
प्राविशन्	प्राप्त भई अर्थात् उनकी शरण लेती भई
+ किंच	और
ते	इन्द्रियों की वे सात्त्विक वृत्तियां
छन्दोभिः	तीनों वेदों के मंत्रों करके
+ आत्मानम्	अपने को
अच्छादयन्	ढकती भई अर्थात् रक्षा करती भई
यत्	जिस कारण
एभिः	इन मंत्रों करके
अच्छादयन्	अपने को ढकती भई अर्थात् अपनी रक्षा करती भई
तत्	तिसी कारण
छन्दसाम्	ढाकनेवाले अर्थात् रक्षा करनेवाले मंत्रों को
छन्दस्त्वम्	छन्द कहते हैं

भावार्थ ।

देवता अर्थात् इन्द्रियों की सात्त्विकवृत्तियां इन्द्रियों की तामस वृत्तियों से भय पाकर तीनों वेदों की शरण को लेती भई और उन

वेदों के मंत्रों करके अपनी रक्षा करती भई चूंकि उन मंत्रों करके वे सात्त्विकवृत्तियां रक्षा करती भईं इसलिये रक्षा करनेवाले मंत्रों को छन्द कहते हैं ॥ २ ॥

मूलम् ।

तानु तत्र मृत्युर्यथा मत्स्यमुदके परिपश्येदेवं पर्यपश्यदृचि साम्नि यजुषि । ते नु विदित्वोर्ध्वा ऋचः साम्नो यजुषः स्वरमेव प्राविशन् ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

तान्, उ, तत्र, मृत्युः, यथा, मत्स्यम्, उदके, परिपश्येत्, एवम्, पर्यपश्यत्, ऋचि, साम्नि, यजुषि, ते, नु, विदित्वा, ऊर्ध्वाः, ऋचः, साम्नः, यजुषः, स्वरम्, एव, प्राविशन् ॥

अन्वयः	पदार्थ
यथा	जैसे
+मत्स्यघातकः	मछली मारनेवाला धीवर
मत्स्यम्	मछली को
उदके	उथले पानी में
परिपश्येत्	देखता है
एवम्	वैसे ही
मृत्युः	मृत्यु (अर्थात् तमोगुणी वृत्तियां)
तत्र	उस वैदिक कर्म के आरंभ होने पर
ऋचि	ऋग्वेदसम्बन्धी
साम्नि	सामवेदसम्बन्धी
यजुषि	यजुर्वेदसम्बन्धी कर्मों में
उ	भली प्रकार
तान्	वैदिककर्म करनेवाली सात्त्विकवृत्तियों को
पर्यपश्यत्	देखता भया
ते	वे सात्त्विकवृत्तियां
नु	निश्चय करके
विदित्वा	मृत्यु की कामना को जान करके
ऋचः	ऋग्वेद
साम्नः	सामवेद
यजुषः	यजुर्वेद के कर्मों से
ऊर्ध्वाः	उपरत होती भईं अर्थात् हटती भईं
+ किंच	और
स्वरम्	ओंकार की शरण को
एव	ही
+ उ	दृढ़ता के साथ
प्राविशन्	प्रवेश करती भईं अर्थात् प्राप्त होती भईं

भावार्थ ।

जैसे मछली मारनेवाला धीवर उथले पानी में मछली पकड़ने के लिये देखता है, तैसे ही मृत्यु अर्थात् तमोगुणीवृत्तियां ऋक्, साम, यजुर्वेदों के मंत्रों करके रक्षा की हुई सात्त्विकवृत्तियों को देखती भई, परंतु उन वेदमन्त्रों से रक्षा न पाकर के और मृत्यु के मनोगत कामना को जानकर ऋक्, साम, यजुर्वेदों के कर्मों से उपरत होती भईं अर्थात् हटती भईं और ॐकार की शरण को प्राप्त होती भईं ॥ ३ ॥

मूलम् ।

यदा वा ऋचमाप्नोत्योमित्येवातिस्वरत्येवꣳसामैवं यजुरेष उ स्वरो यदेतदक्षरमेतदमृतमभयं तत्प्रविश्य देवा अमृता अभया अभवन् ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

यदा, वा, ऋचम्, आप्नोति, ॐ, इति, एव, अतिस्वरति, एवम्, साम, एवम्, यजुः, एषः, उ, स्वरः, यत्, एतत्, अक्षरम्, एतत्, अमृतम्, अभयम्, तत्, प्रविश्य, देवाः, अमृताः, अभयाः, अभवन् ॥

अन्वयः	पदार्थ
यदा वा	जब
+ उपासकः	उपासक
ऋचम्	ऋग्वेद के मंत्रों को
ॐ इति	ॐ करके
आप्नोति	प्राप्त होता है अर्थात् उच्चारण करता है
एव	और जब
एवम्	इसी प्रकार
+ ॐ	ॐ
+ इति	कह करके
साम	सामवेद के मंत्रों को
+ च	और
एवम्	इसी प्रकार
यजुः	यजुर्वेद के मंत्रों को
अतिस्वरति	उच्चारण करता है
+ तदा	तब
एषः	यह ॐ
उ	ही

स्वरः = स्वर है अर्थात् स्वतंत्र है, किसी की सहायता की अपेक्षा नहीं करता है
यत् = जिस कारण
एतत् = यह ॐ
अक्षरम् = अक्षररूप है
+ च = और
+ यत् = जिस कारण
एतत् = यह ॐ
अमृतम् = मरण धर्म रहित है
+ च = और
अभयम् = भय रहित है
+ तस्मात् = इसी कारण
तत् = ॐ रूप उस ब्रह्म को
प्रविश्य = प्राप्त हो करके
देवाः = देवता अर्थात् इन्द्रियों की सात्त्विक वृत्तियां
अमृताः = अमर
+ च = और
अभयाः = अभय
अभवन् = होती भई

भावार्थ ।

जब उपासक ऋक्, साम, यजुर्वेदों के मंत्रों को ॐ कह करके उच्चारण करता है तब यह ॐ स्वर है । स्वर क्या है, इसके जवाब में कहा जाता है कि स्वर वह है जो अविनाशी है, जो किसी की सहायता की अपेक्षा नहीं करता है, जो अजर है, अमर है, अभय है, स्वतंत्र है और जिस कारण यह ऐसा है, इसी कारण इन्द्रियों की सात्त्विकवृत्तियां इसकी उपासना करके अजर, अमर और अभय होती भई ॥ ४ ॥

मूलम् ।

स य एतदेवं विद्वानक्षरं प्रणौत्येतदेवाक्षरꣳ स्वरममृतमभयं प्रविशति तत्प्रविश्य यदमृता देवास्तदमृतो भवति ॥ ५ ॥

इति चतुर्थः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

सः, यः, एतत्, एवम्, विद्वान्, अक्षरम्, प्रणौति, एतत्, एव,

अक्षरम्, स्वरम्, अमृतम्, अभयम्, प्रविशति, तत, प्रविश्य, यत्, अमृताः, देवाः, तत्, अमृतः, भवति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यः	जो पुरुष	अक्षरम्	ओंकार को
एवम्	कहे हुए प्रकार	प्रविशति	प्रवेश करता है अर्थात् प्राप्त होता है
एतत्	इस	यत्	जिस कारण
अक्षरम्	ॐ अक्षर को	देवाः	इन्द्रियों की सात्विक वृत्तियां
विद्वान्	जानता	तत्	ओंकाररूप ब्रह्म को
+ सन्	हुआ	प्रविश्य	ध्यान करके
प्रणौति	उपासना करता है	अमृताः	मरण धर्म रहित
सः	वह	+ अभवन्	होती भई
एतत्	इसी	तत्	इसी कारण
एव	ही	+ उपासकः	ओंकार का उपासक
अमृतम्	अमर	अमृतः	अमर
+ च	और	भवति	हो जाता है
अभयम्	अभयरूप		
स्वरम्	स्वर (स्वतंत्र)		

भावार्थ ।

जो पुरुष कहे हुए प्रकार इस अक्षर ॐ की उपासना करता है वह पुरुष अमर और अभयरूप स्वर अथवा ओंकार को प्राप्त होता है । क्योंकि सात्त्विकवृत्तियां ओंकाररूप ब्रह्म को ध्यान करके अभय और अमर होती भई, इसलिये जो पुरुष ओंकार की उपासना करता है वह भी अमर और अभय होजाता है ॥ ५ ॥

इति चतुर्थः खण्डः ।

अथ प्रथमाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः ।

मूलम् ।

अथ खलु य उद्गीथः स प्रणवो यः प्रणवः स उद्गीथ इत्यसौ वा आदित्य उद्गीथ एष प्रणव ओमिति ह्येष स्वरन्नेति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, खलु, यः, उद्गीथः, सः, प्रणवः, यः, प्रणवः, सः, उद्गीथः, इति, असौ, वा, आदित्यः, उद्गीथः एषः, प्रणवः, ॐ, इति, हि, एषः, स्वरन, एति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ	ऊपर कहे हुए के पीछे	इति	इसी प्रकार
खलु	अब	असौ	यह प्रत्यक्ष
यः	जो	आदित्यः	सूर्य
उद्गीथः	सामवेदियों का उद्गीथ है	वा	भी
सः	वही	उद्गीथः	उद्गीथ है
+ बह्वृचानाम्	ऋग्वेदियों का	एषः	यही
प्रणवः	प्रणव है	प्रणवः	प्रणव है
यः	जो	हि	क्योंकि
प्रणवः	प्रणव है	एषः	यह सूर्य
सः	वही	ॐ	ॐ
+ छान्दोग्यः	सामवेदियों का	इति	ऐसा
उद्गाथः	उद्गीथ है	स्वरन्, सन्	उच्चारण करता हुआ
		एति	प्राणियों के उपकारार्थ उदयाचल पर्वत से निकलता है

भावार्थ ।

उद्गीथ और प्रणव में कोई भेद नहीं है । जो सामवेदियों का उद्गीथ है वही ऋग्वेदियों का प्रणव है, जो सामने सूर्य दिखाई देता है वह

भी उद्गीथ है और वह भी प्रणव है; क्योंकि वह ॐ ॐ ऐसा शब्द उच्चारण करता हुआ उदयाचल पर्वत से प्राणियों के उपकारार्थ और रक्षार्थ निकलता है ॥ १ ॥

मूलम् ।

एतमु एवाहमभ्यगासिषं तस्मान्मम त्वमेकोऽसीति ह कौषीतकिः पुत्रमुवाच रश्मींस्त्वं पर्यावर्त्तयाद्बहवो वै ते भविष्यन्तीति ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

एतम्, उ, एव, अहम्, अभ्यगासिषम्, तस्मात्, मम, त्वम्, एकः, असि, इति, ह, कौषीतकिः, पुत्रम्, उवाच, रश्मीन्, त्वम्, पर्यावर्त्तयात्, बहवः, वै, ते, भविष्यन्ति, इति, अधिदैवतम् ॥

अन्वयः	पदार्थ
उ	और
अहम्	मैं कुषीतक ऋषि का पुत्र
एतम्	इसी सूर्य के
एव	ही
अभ्यगासिषम्	सामने उद्गीथ का गान करताभया अर्थात् उपासना उद्गीथरूप से करता भया
तस्मात्	इसीलिये
मम	मुझको
त्वम्	तू
एकः	एक पुत्र
असि	प्राप्त भया है
इति	ऐसा
कौषीतकिः	कौषीतकि ऋषि
पुत्रम्	अपने पुत्र को
उवाच	कहता भया कि
रश्मीन्	सूर्य के किरणों की
ह	और
+ आदित्यम्	सूर्य की
त्वम्	तू
+ भेदेन	भेद-बुद्धि करके
पर्यावर्त्तयात्	उपासना कर
वै	निश्चय करके
ते	तुझको
बहवः	बहुत
+ पुत्राः	पुत्र
भविष्यन्ति	प्राप्त होंगे
इति	इस प्रकार
अधिदैवतम्	यह देवताविषयक उद्गीथ की उपासना है

भावार्थ ।

कौषीतकि ऋषि अपने पुत्र से इस प्रकार कहते हैं कि हे पुत्र ! मैंने इस प्रत्यक्ष सूर्य की उद्गीथरूप से उपासना की है, उसका यह फल हुआ कि तू मुझको १ पुत्र प्राप्त हुआ है । तू सूर्य और सूर्य की किरणों की उपासना उद्गीथरूप से कर, तेरे को बहुत पुत्र प्राप्त होंगे । यह देवता सम्बन्धी उद्गीथ की उपासना है ॥ २ ॥

मूलम् ।

अथाध्यात्मं य एवायं मुख्यः प्राणस्तमुद्गीथमुपासीतोमिति ह्येष स्वरन्नेति ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, अध्यात्मम्, यः, एव, अयम्, मुख्यः, प्राणः, तम्, उद्गीथम्, उपासीत, ॐ, इति, हि, एषः, स्वरन्, एति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ=	देवता विषयक उपासना के उपरांत	उपासीत=	उपासना करे
अध्यात्मम्=	आध्यात्मिक उपासना कहते हैं	हि=	क्योंकि
यः=	जो	एषः एव=	यह प्राण ही
अयम्=	यह	+ सूर्यवत्=	सूर्य की तरह
मुख्यः=	मुख सम्बन्धी	ॐ=	ॐ
प्राणः=	चैतन्य प्राण है	इति=	ऐसा
तम्=	उसको	स्वरन्=	उच्चारण करता हुआ
उद्गीथम्=	उद्गीथ से अभेद मान कर	एति=	वागिन्द्रियादिक की प्रवृत्ति के लिये चलता है

भावार्थ ।

अब आध्यात्मिक उपासना कहते हैं । जो यह मुख सम्बन्धी चैतन्य प्राण है उसकी उपासना उद्गीथरूप से करे : क्योंकि यह

चैतन्य मुख प्राण सूर्य की तरह ॐ उच्चारण करता हुआ वागिन्द्रिया-दिक की प्रवृत्ति को उनके उनके कार्य में करता है ॥ ३ ॥

मूलम् ।

एतमु एवाहमभ्यगासिषं तस्मान्मम त्वमेकोऽसीति ह कौषीतकिः पुत्रमुवाच प्राणांश्त्वं भूमानमभिगायता-द्बहवो वै मे भविष्यन्तीति ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

एतम्, उ, एव, अहम्, अभ्यगासिषम्, तस्मात्, मम, त्वम्, एकः, असि, इति, ह, कौषीतकिः, पुत्रम्, उवाच, प्राणान्, त्वम्, भूमानम्, अभिगायतात्, बहवः, वै, मे, भविष्यन्ति, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
उ	और	कौषीतकिः	कौषीतकि ऋषि
अहम्	मैं कुषीतक ऋषि का पुत्र	पुत्रम्	अपने पुत्र से
एतम्	इसी	उवाच	कहता भया
एव	ही प्राण के	मे	मेरे को
अभ्यगासिषम्	सामने उद्गीथ का गान करता भया अर्थात् उपासना करता भया	बहवः	बहुत
तस्मात्	इसलिये	+ पुत्राः	पुत्र
मम	मुझको	भविष्यन्ति	हों
त्वम्	तू	इति	ऐसा
एकः	एक पुत्र	वै	निश्चय करके
असि	प्राप्त हुआ है	त्वम्	तू
इति	ऐसा	भूमानम्	वागादि इन्द्रिय संबंधी
ह	निश्चय करके	प्राणान्	प्राणों को
		अभिगायतात्	उपासना कर

भावार्थ ।

कौषीतकि ऋषि अपने पुत्र से कहते हैं कि हे पुत्र ! मैंने इसी

चैतन्य प्राण की उद्गीथरूप से उपासना की इसलिये तू एक पुत्र मुझको प्राप्त हुआ है, बहुत प्रकार करके वागादि इन्द्रिय संबंधी प्राणों की तू उपासना कर, तुझको निश्चय करके बहुत पुत्र प्राप्त होंगे ॥ ४ ॥

मूलम् ।

अथ खलु य उद्गीथः स प्रणवो यः प्रणवः स उद्गीथ इति होतृषदनाद्धैवापि दुरुद्गीतमनुसमाहरतीत्यनुसमाहरतीति ॥ ५ ॥

इति पञ्चमः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

अथ, खलु, यः, उद्गीथः, सः, प्रणवः, यः, प्रणवः, सः, उद्गीथः, इति, होतृषदनात्, ह, एव, अपि, दुरुद्गीतम्, अनुसमाहरति, इति, अनुसमाहरति, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
अथ खलु	निश्चय करके
यः	जो
उद्गीथः	उद्गीथ है
सः	वही
प्रणवः	प्रणव है
यः	जो
प्रणवः	प्रणव है
सः	वही
उद्गीथः	उद्गीथ है
इति	इसलिये
+उद्गाता	उद्गीथ का गान करने वाला ऋत्विक्
होतृषदनात्	होत्र कर्म करके
ह एव	निस्संदेह
दुरुद्गीतम्	अपने उद्गीथ के स्वरवर्णादि दोषयुक्त गान को
अपि	भी
अनुसमाहरति	सम्हाल लेता है अर्थात् अशुद्ध उच्चारण के दोष को दूर करता है
इति	इस प्रकार उद्गीथ की उपासना समाप्त हुई

(अन्त में द्विरुक्ति समाप्त्यर्थ है)

भावार्थ ।

इस खंड बिषे उद्गीथ की उपासना का फल कहते हैं । जो प्रणव है वही उद्गीथ है और जो उद्गीथ है वही प्रणव है । ऐसा जानता हुआ उद्गाता अर्थात् उद्गीथ का गान करनेवाला ऋत्विक् अपने उद्गीथ के गान में जो स्वर वर्णादि करके वेद के अशुद्ध उच्चारण में पाप होता है उस पाप से वह होत्रकर्म के द्वारा निवृत्त हो जाता है ॥ ५ ॥

इति पञ्चमः खण्डः ।

——o——

अथ प्रथमाध्यायस्य षष्ठः खण्डः ।

मूलम् ।

इयमेवर्गग्निः साम तदेतदेतस्यामृच्यध्यूढꣳ साम तस्मादृच्यध्यूढꣳ साम गीयत इयमेव साग्निरमस्तत्साम ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

इयम्, एव, ऋक्, अग्निः, साम, तत्, एतत्, एतस्याम्, ऋचि, अध्यूढम्, साम, तस्मात्, ऋचि, अध्यूढम्, साम, गीयते, इयम्, एव, सा, अग्निः, अमः, तत्, साम ॥

अन्वयः	पदार्थ
इयम् एव	यही पृथ्वी
ऋक्	ऋग्वेद है
+ तथा	और
अग्निः	अग्नि
साम	सामवेद है
तत्	वह
एतत्	यह
साम	सामवेद
एतस्याम्	इस पृथ्वीरूपा
ऋचि	ऋग्वेद में
अध्यूढम्	आधेयभाव करके स्थित है
तस्मात्	इसलिये
ऋचि	ऋग्वेद में

अध्यूढम्=आधेयभाव से स्थित है ऐसा समझकर
साम=सामवेद
+ सामगैः=सामवेदियों करके
गीयते=गाया जाता है
इयम् एव=यही यह पृथ्वी
सा=सा है
+ च=और
अग्निः=अग्नि
अमः=अम है
+ तस्मात्=उस कारण
तत्=वह अग्नि
+ च=और
+ एतत्=यह पृथ्वी दोनों मिलकर
साम=साम शब्द का अर्थ है

भावार्थ ।

यह पृथ्वी ऋग्वेद है और अग्नि सामवेद है पृथ्वीरूपी ऋग्वेद आधार में सामवेद आधेयभाव करके स्थित है, ऐसा समझकर सामवेदी गान करते हैं । साम शब्द दो पदों करके बना है, सा का अर्थ पृथ्वी और अम का अर्थ अग्नि है, इसलिये साम कहने से पृथ्वी और अग्नि का बोध होता है । जैसे पृथ्वी और अग्नि में भेद नहीं है, ऐसे सामवेद और ऋग्वेद में भेद नहीं है, क्योंकि ऋग्वेद आधार है और सामवेद आधेय है ॥ १ ॥

मूलम् ।

अन्तरिक्षमेवर्ग्वायुः साम तदेतदेतस्यामृच्यध्यूढꣳ साम तस्मादृच्यध्यूढꣳ साम गीयतेऽन्तरिक्षमेव सा वायुरमस्तत्साम ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

अन्तरिक्षम, एव, ऋक्, वायुः, साम, तत्, एतत्, एतस्याम्, ऋचि अध्यूढम, साम, तस्मात्, ऋचि, अध्यूढम्, साम, गीयते, अन्तरिक्षम, एव, सा, वायुः, अमः, तत्, साम ।

अन्वयः	पदार्थ
अन्तरिक्षम्	आकाश
एव	ही
ऋक्	ऋग्वेद है
वायुः	वायु
साम	सामवेद है
तत्	वही
एतत्	यह वायुरूपी
साम	सामवेद
एतस्याम्	इस आकाशरूपी
ऋचि	ऋग्वेद विषे
अध्यूढम्	आधेयरूप से स्थित है
तस्मात्	इसलिये
ऋचि	ऋग्वेद में आधेयरूप से स्थित
साम	सामवेद
+ सामगैः	सामवेदियों करके
गीयते	गान किया जाता है
अन्तरिक्षम्	आकाश
एव	ही
सा	सा है
+ च	और
वायुः	वायु
अमः	अम है
तत्	वह आकाश
+ च	और
+ एतत्	यह वायु दोनों मिलकर
साम	साम शब्द का अर्थ है

भावार्थ ।

आकाश ही ऋग्वेद है और वायु सामवेद है । वह वायुरूपी सामवेद इस आकाशरूपी ऋग्वेद विषे आधेयरूप से स्थित है, इस कारण ऋग्वेद विषे आधेयरूप से स्थित हुए सामवेद को ऐसा समझकर सामवेदी गान करते हैं । साम दो पदों करके पूर्वप्रकार युक्त है, सा का अर्थ आकाश और अम का अर्थ वायु है, साम शब्द कहने से आकाश और वायु का बोध होता है । तात्पर्य इस मंत्र का यह है कि जो ऋग्वेद है वही सामवेद है, एक आधाररूप से है और दूसरा आधेयरूप से है ॥ २ ॥

मूलम् ।

द्यौरेवर्गादित्यः साम तदेतदेतस्यामृच्यध्यूढꣳ साम तस्मादृच्यध्यूढꣳ साम गीयते द्यौरेव सादित्योऽमस्तत्साम ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

द्यौः, एव, ऋक्, आदित्यः, साम, तत्, एतत्, एतस्याम्, ऋचि, अध्यूढम्, साम, तस्मात्, ऋचि, अध्यूढम्, साम, गीयते, द्यौः, एव, सा, आदित्यः, अमः, तत्, साम ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
द्यौः=स्वर्ग		साम=सामवेद	
एव=ही		+ सामगैः=सामवेदियों करके	
ऋक्=ऋग्वेद है		गीयते=गाया जाता है	
आदित्यः=सूर्य ही		द्यौः=स्वर्ग	
साम=सामवेद है		एव=ही	
तत्=वही सूर्यरूपी		सा=सा है	
एतत्=सामवद		+ च=और	
एतस्याम्=इस स्वर्गरूपी		आदित्यः=सूर्य ही	
ऋचि=ऋग्वेद में		अमः=अम है	
अध्यूढम्=आधेयरूप से स्थित है		+ तस्मात्=इसलिये	
तस्मात्=इसलिये		तत्=वह स्वर्ग	
ऋचि=ऋग्वेद में		+ एतत्=यह सूर्य दोनों मिलकर	
अध्यूढम्=आधेयरूप से स्थित		साम=साम शब्द का अर्थ है	

भावार्थ ।

स्वर्ग ही ऋग्वेद है और सूर्य ही सामवेद है । यह सूर्यरूपी सामवेद इस स्वर्गरूपी ऋग्वेद में आधेयरूप से स्थित है, ऐसा समझकर सामवेदी सामवेद का गान करते हैं । सामशब्द दो पदों से युक्त है, सा का अर्थ स्वर्ग और अम का अर्थ सूर्य है, इसलिये साम शब्द का अर्थ स्वर्ग और सूर्य है । इस मन्त्र का तात्पर्य पिछले मन्त्र की तरह सामवेद और ऋग्वेद की एकता में है, क्योंकि दोनों आधार और आधेयभाव से स्थित हैं ॥ १ ॥

मूलम् ।

नक्षत्राण्येवर्क्चन्द्रमाः साम तदेतदेतस्यामृच्यध्यूढꣳ साम तस्मादृच्यध्यूढꣳ साम गीयते नक्षत्राण्येव सा चन्द्रमामस्तत्साम ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

नक्षत्राणि, एव, ऋक्, चन्द्रमाः, साम, तत्, एतत्, एतस्याम्, ऋचि, अध्यूढम्, साम, तस्मात्, ऋचि, अध्यूढम्, साम, गीयते, नक्षत्राणि, एव, सा, चन्द्रमाः, अमः, तत्, साम ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
नक्षत्राणि	=नक्षत्र	अध्यूढम्	=आधेयरूप से स्थित
एव	=ही	साम	=सामवेद
ऋक्	=ऋग्वेद है	+ सामगैः	=सामवेदियों करके
चन्द्रमाः	=चन्द्रमा	गीयते	=गाया जाता है
साम	=सामवेद है	नक्षत्राणि	=नक्षत्र
तत्	=वह	एव	=ही
एतत्	=यह चन्द्रनामक	सा	=सा अक्षर है
साम	=सामवेद	+ च	=और
एतस्याम्	=इस नक्षत्ररूपी	चन्द्रमाः	=चन्द्रमा
ऋचि	=ऋग्वेद में	अमः	=अम अक्षर है
अध्यूढम्	=आधेयभाव से स्थित है	तत	=वह नक्षत्र
तस्मात्	=इसलिये (गुरु से ऐसा जानकर)	+ च	=और
ऋचि	=ऋग्वेद विषे	+ एतत्	=यह चन्द्रमा दोनों मिलकर
		साम	=साम शब्द का अर्थ है

भावार्थ ।

नक्षत्र ही ऋग्वेद है, चन्द्रमा ही सामवेद है । यह चन्द्रनामक सामवेद इस नक्षत्ररूपी ऋग्वेद में आधेयभाव से स्थित है, ऐसा

गुरुद्वारा जान करके सामवेदी गान करता है । साम दो पदों करके युक्त है, एक सा है, दूसरा अम है, सा का अर्थ नक्षत्र है और अम का अर्थ चन्द्रमा है । साम का अर्थ नक्षत्र और चन्द्रमा है । जैसे चन्द्रमा और नक्षत्र एक ही हैं, वैसे ही ऋग्वेद और सामवेद एक ही हैं और जैसे नक्षत्र आधार है और चन्द्रमा उसका आधेय है, वैसे ही ऋग्वेद सामवेद का आधार है और सामवेद ऋग्वेद का आधेय है ॥ ४ ॥

मूलम् ।

अथ यदेतदादित्यस्य शुक्लं भाः सैवर्गथ यन्नीलं परः कृष्णं तत्साम तदेतदेतस्यामृच्यध्यूढꣳसाम तस्मा-हच्यध्यूढꣳ साम गीयते ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यत्, एतत्, आदित्यस्य, शुक्लम्, भाः, सा, एव, ऋक्, अथ, यत्, नीलम्, परः, कृष्णम्, तत्, साम, तत्, एतत्, एत-स्याम्, ऋचि, अध्यूढं, साम, तस्मात्, ऋचि, अध्यूढम्, साम, गीयते ॥

अन्वयः	पदार्थ
अथ	निश्चय करके
यत्	जो
एतत्	यह
आदित्यस्य	सूर्य का
शुक्लम्	श्वेत
भाः	रंग है
सा एव	वही
ऋक्	ऋग्वेद है
अथ	और
यत्	जो

अन्वयः	पदार्थ
नीलम्	नीलवर्ण
+ च	और
परः	अधिक
कृष्णम्	काला वर्ण है
तत्	वही
साम	सामवेद है
तत्	वह नीला
+ च	और
एतत्	यह कालावर्ण
साम	सामवेद

एतस्याम्=इस शुक्लवर्णरूपी
ऋचि=ऋग्वेद में
अध्यूढम्=आधेयरूप से स्थित है
तस्मात्=इसलिये
ऋचि=ऋग्वेद में
अध्यूढम्=आधेय रूप से स्थित
साम=सामवेद
+ सामगैः=सामवेदियों करके
गीयते=गाया जाता है

भावार्थ ।

जो सूर्य का श्वेत प्रकाश है वही ऋग्वेद है और जो नीला और काला वर्ण है वही सामवेद है । नीला और कृष्णवर्ण सम्बन्धी सामवेद शुक्लवर्णरूपी ऋग्वेद में आधेयरूप से स्थित है, ऐसा समझकर सामवेदी गान करते हैं ॥ ५ ॥

मूलम् ।

अथ यदेवैतदादित्यस्य शुक्लम्भाः सैव साथ यन्नीलं परः कृष्णन्तदमस्तत्सामाथ य एषोऽन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषो दृश्यते हिरण्यश्मश्रुर्हिरण्यकेश आप्रणखात्सर्व एव सुवर्णः ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यत्, एव, एतत्, आदित्यस्य, शुक्लम्, भाः, सा, एव, सा, अथ, यत्, नीलम्, परः, कृष्णम्, तत्, अमः, तत्, साम, अथ, यः, एषः, अन्तः, आदित्ये, हिरण्मयः, पुरुषः, दृश्यते, हिरण्यश्मश्रुः, हिरण्यकेशः, आप्रणखात्, सर्वः, एव, सुवर्णः ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ	निश्चय करके	शुक्लम्	श्वेत
यत्	जो	भाः	प्रकाश है
एव	प्रसिद्ध	सा एव	वह ही
एतत्	यह	सा	सा है
आदित्यस्य	सूर्य का	अथ	और

यत्=जो
नीलम्=नीलवर्ण
+ च=और
परः=विशेष
कृष्णम्=कृष्णवर्ण है
तत्=वह
एव=ही
अमः=अम है
तत्=सोई
साम=सामवेद
अथ=और
यः=जो
आदित्ये=आदित्य के
अन्तः=बीच में

हिरण्मयः=सुवर्ण के तुल्य प्रकाशमान
दृश्यते=देखा जाता है
हिरण्यश्मश्रुः=जिसके मुख के बाल सुवर्ण के ऐसे हैं
+ च=और
हिरण्यकेशः=जिसके केश सुवर्ण की तरह हैं
+ किंच=और
सर्वः=जिसका सब देह
आप्रणखात्=नखाग्र तक
सुवर्णः=सुवर्ण की तरह है
+ सः=वही
एषः=यह
पुरुषः=पुरुष है

भावार्थ ।

सूर्य का श्वेत वर्णसा है और उसका जो नीला और काला वर्ण है वह अम है, इसलिये सूर्य का श्वेत, नीला और काला वर्ण तीनों मिलाकर सामवेद है । जो सूर्य विषे सुवर्ण ऐसा प्रकाशमान दीखता है और जिसके मुख के बाल सुवर्ण कैसे दिखाई देते हैं और जिसके केश सुवर्ण की तरह चमकते हैं और जिसका सब देह शिख से नखतक सुवर्ण की तरह है, वही यह पुरुष है ॥ ६ ॥

मूलम् ।

तस्य यथा कप्यासं पुण्डरीकमेवमक्षिणी तस्योदिति नाम स एष सर्वेभ्यः पाप्मभ्य उदित उदेति ह वै सर्वेभ्यः पाप्मभ्यो य एवं वेद ॥ ७ ॥

पदच्छेदः ।

तस्य, यथा, कप्यासम्, पुण्डरीकम्, एवम्, अक्षिणी, तस्य, उत्,

इति, नाम, सः, एषः, सर्वेभ्यः, पाप्मभ्यः, उत्, इतः, उत्, एति, ह, वै, सर्वेभ्यः, पाप्मभ्यः, यः, एवम्, वेद ॥

अन्वयः	पदार्थ
तस्य	सूर्य मंडलस्थ सुवर्णमय पुरुष के
अक्षिणी	नेत्र
कप्यासम्	प्रफुल्लित
पुण्डरीकम्	कमल की
यथा	तरह हैं
इति	इसलिये
तस्य	उस पुरुष का
नाम	नाम
उत्	उत् है
स एव	वही
एषः	यह पुरुष
सर्वेभ्यः	संपूर्ण
पाप्मभ्यः	पापों से
उत्	ऊपर
इतः	गया है
एवम्	इस प्रकार
यः	जो उपासक
+ तम्	उस पुरुष को
वेद	जानता है
+ सः	वह
सर्वेभ्यः	संपूर्ण
पाप्मभ्यः	पापों से
ह वै	अवश्य ही
उत्	ऊपर
एति	जाता है अर्थात् निवृत्त होजाता है

भावार्थ ।

सूर्य के विषे स्थित सुवर्णमय पुरुष के नेत्र खिले हुए कमल की तरह हैं, वही यह पुरुष पापों को उल्लंघन करके वर्त्तता है । जो उपासक इस प्रकार उस सूर्यमंडलस्थ पुरुष को जानता है, वह सब पापों से छूट जाता है ॥ ७ ॥

मूलम् ।

तस्यर्क्च साम च गेष्णौ तस्मादुद्गीथस्तस्मात्त्वेवोद्गातैतस्य हि गाता स एष ये चामुष्मात्पराञ्चो लोकास्तेषाञ्चेष्टे देवकामानां चेत्यधिदैवतम् ॥ ८ ॥

इति षष्ठः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

तस्य, ऋक्, च, साम, च, गेष्णौ, तस्मात्, उद्गीथः, तस्मात्, तु, एव, उद्गाता, एतस्य, हि, गाता, सः, एषः, ये, च, अमुष्मात्, पराञ्चः, लोकाः, तेषाम्, च, ईष्टे, देवकामानाम्, च, इति, अधिदैवतम् ॥

अन्वयः	पदार्थ
तस्य	उस आदित्य के बीच में रहनेवाले उत् पुरुष के
ऋक्	ऋग्वेद
च	और
साम	सामवेद
गेष्णौ	गानेवाले हैं
तस्मात्	इसलिये
+ तत्	सोई उत्
उद्गीथः	उद्गीथ है
च	और
तस्मात्	इसलिये
तु	अवश्य
एव	ही
एतस्य	उस उत् नामक पुरुष का
गाता	गानकर्ता
हि	भी
उद्गाता	उद्गाता है
च	और
सः	वही
एषः	उत् नामक पुरुष
अमुष्मात्	सूर्य से
पराञ्चः	ऊपर के
ये	जो
लोकाः	लोक हैं
तेषाम्	उनका
ईष्टे	अधिपति है
च	और
देवकामानाम्	देवताओं की कामनाओं को
+ ईष्टे	पूर्ण करता है
इति	ऐसा यह
अधिदैवतम्	आधिदैविक उपासना का फल है

भावार्थ ।

जो आदित्य बिषे पुरुष उत् नाम करके स्थित है, उसके बायें दहिने ऋग्वेद और सामवेद गानेवाले हैं और वही सूर्यमण्डल बिषे स्थित पुरुष उद्गीथ है इसलिये उद्गीथ नामक पुरुष का गान करता भी उद्गाता कहलाता है और वह सूर्य बिषे स्थित पुरुष सूर्य से ऊपर के जो लोक हैं उनका अधिपति है और वही देवताओं की कामनाओं

को पूर्ण करता है । ऐसा यह आधिदैविक उपासना का फल है ॥ ८ ॥

इति प्रथमाध्यायस्य षष्ठः खण्डः ।

—o—

अथ प्रथमाध्यायस्य सप्तमः खण्डः ।

मूलम् ।

अथाध्यात्मं वागेवर्क्प्राणः साम तदेतदेतस्यामृच्यध्यूढꣳ साम तस्मादृच्यध्यूढꣳ साम गीयते वागेव सा प्राणोऽमस्तत्साम ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, अध्यात्मम्, वाक्, एव, ऋक्, प्राणः, साम, तत्. एतत्, एतस्याम्, ऋचि, अध्यूढम्, साम, तस्मात्, ऋचि, अध्यूढम्, साम, गीयते, वाक्, एव, सा, प्राणः, अमः, तत्, साम ॥

अन्वयः	पदार्थ
अथ	अब
अध्यात्मम्	आध्यात्मिक उपासना
+ उच्यते	कही जाती है
वाक्	वाणी
एव	ही
ऋक्	ऋग्वेद है
प्राणः	नासिकाभ्यंतर स्थित प्राण
साम	सामवेद है
तत्	वही
एतत्	यह
साम	साम
एतस्याम्	इस वाणीरूपी
ऋचि	ऋग्वेद में
अध्यूढम्	आधेयरूप से स्थित है
तस्मात्	इसी कारण
ऋचि	ऋग्वेद विषे
अध्यूढम्	ऐसा स्थित
साम	सामवेद
गीयते	गाया जाता है
वाक्	वाणी
एव	ही
सा	सा है
प्राणः	प्राण ही
अमः	अम है
तत्	वही दोनों मिलकर
साम	सामवेद है

भावार्थ ।

अब अभेद आध्यात्मिक उपासना का वर्णन किया जाता है, जो वाणी है वही ऋग्वेद है, जो नासिकाभ्यन्तर प्राणवायु है, वही सामवेद है, यह सामवेद वाणीरूपी ऋग्वेद में आधेयरूप से स्थित है, इसी कारण ऋग्वेद विषे इसप्रकार स्थित सामवेद सामवेदियों करके गाया जाता है । वाक् ही सा है, प्राण ही अम है, इसलिये साम वाणी और प्राणरूप है ॥ १ ॥

मूलम् ।

चक्षुरेवर्गात्मा साम तदेतदेतस्यामृच्यध्यूढꣳ साम तस्मादृच्यध्यूढꣳ साम गीयते चक्षुरेव सात्मामस्तत्साम २

पदच्छेदः ।

चक्षुः, एव, ऋक्, आत्मा, साम, तत् , एतत् , एतस्याम् , ऋचि, अध्यूढम् , साम, तस्मात् , ऋचि, अध्यूढम्, साम, गीयते, चक्षुः, एव, सा, आत्मा, अमः, तत् , साम ॥

अन्वयः	पदार्थ
चक्षुः	नेत्र
एव	ही
ऋक्	ऋग्वेद है
आत्मा	उसका प्रतिबिम्ब
साम	सामवेद है
तत्	वही
एतत्	यह
साम	सामवेद
एतस्याम्	इस
ऋचि	ऋग्वेद विषे
अध्यूढम्	आधेयरूप से स्थित है
तस्मात्	इसी कारण
ऋचि	ऋग्वेद विषे
अध्यूढम्	आधेयरूप से स्थित
साम	सामवेद
गीयते	गाया जाता है
चक्षुः	नेत्र
एव	ही
सा	सा है
आत्मा	प्रतिबिम्ब ही
अमः	अम है
तत्	वही दोनों मिलकर
साम	सामवेद है

भावार्थ ।

नेत्र ऋग्वेद है और उसका प्रतिबिम्ब सामवेद है । यह सामवेद ऋग्वेद बिषे आधेयरूप से स्थित है, इसलिये ऋग्वेद बिषे इस तरह से स्थित सामवेद सामवेदियों करके गाया जाता है । चक्षु सा है, आत्मा अम है, इसलिये दोनों मिलकर सामवेद है ॥ २ ॥

मूलम् ।

श्रोत्रमेवर्ङ्मनः साम तदेतदेतस्यामृच्यध्यूढꣳ साम तस्मादृच्यध्यूढꣳ साम गीयते श्रोत्रमेव सा मनोऽमस्तत्साम ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

श्रोत्रम्, एव, ऋक्, मनः, साम, तत्, एतत्, एतस्याम्, ऋचि, अध्यूढम्, साम, तस्मात्, ऋचि, अध्यूढम्, साम, गीयते, श्रोत्रम्, एव, सा, मनः, अमः, तत्, साम ॥

अन्वयः	पदार्थ
श्रोत्रम्	कर्ण
एव	ही
ऋक्	ऋग्वेद है
मनः	मन
साम	सामवेद है
तत्	वही
एतत्	यह
साम	सामवेद
एतस्याम्	इस कर्णरूपी
ऋचि	ऋग्वेद बिषे
अध्यूढम्	आधेयरूप से स्थित है
तस्मात्	इसी कारण
ऋचि	ऋग्वेद बिषे
अध्यूढम्	आधेयरूप से स्थित
साम	सामवेद
गीयते	गाया जाता है
श्रोत्रम्	कर्ण
एव	ही
सा	सा है
मनः	मन ही
अमः	अम है
तत्	वही दोनों मिलकर
साम	सामवेद है

भावार्थ ।

कर्ण ऋग्वेद है, मन सामवेद है । यह सामवेद कर्णरूपी ऋग्वेद बिषे आधेयरूप से स्थित है, इसलिये ऋग्वेद बिषे आधेयरूप से स्थित सामवेद सामवेदियों करके गाया जाता है । कर्ण सा है, मन अम है, ये दोनों मिलकर सामवेद है ॥ ३ ॥

मूलम् ।

अथ यदेतदक्ष्णः शुक्लं भाः सैवर्गथ यन्नीलं परः कृष्णं तत्साम तदेतदेतस्यामृच्यध्यूढꣳ साम तस्मादृच्यध्यूढꣳ साम गीयते । अथ यदेवैतदक्ष्णः शुक्लं भाः सैव साथ यन्नीलं परः कृष्णं तदमस्तत्साम ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यत्, एतत्, अक्ष्णः, शुक्लम्, भाः, सा, एव, ऋक्, अथ, यत्, नीलम्, परः, कृष्णम्, तत्, साम, तत्, एतत्, एतस्याम्, ऋचि, अध्यूढम्, साम, तस्मात्, ऋचि, अध्यूढम्, साम, गीयते । अथ, यत्, एव, एतत्, अक्ष्णः, शुक्लम्, भाः, सा, एव, सा, अथ, यत्, नीलम्, परः, कृष्णम्, तत्, अमः, तत्, साम ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ	निश्चय करके	अथ	और
यत्	जो	यत्	जो
एतत्	यह	नीलम्	नीलवर्ण है
अक्ष्णः	नेत्र के बिषे स्थित	+च	और
शुक्लम्	श्वेत	परः	विशेष
भाः	वर्ण है	कृष्णम्	काला वर्ण है
सा एव	वही	तत्	वही
ऋक्	ऋग्वेद है	साम	सामवेद है
		तत्	वही

एतत्=यह
साम=सामवेद
एतस्याम्=इस
ऋचि=ऋग्वेदविषे
अध्यूढम्=आधेयरूप से स्थित है
तस्मात्=इसी कारण
ऋचि=ऋग्वेद बिषे
अध्यूढम्=आधेयभाव से स्थित ऐसा
साम=सामवेद है
गीयते=गाया जाता है
अथ=और
यत्=जो
एतत् एव=यह ऊपर कहा हुआ
अक्ष्णः=नेत्र बिषे स्थित
शुक्लम्=श्वेत
भाः=वर्ण है
सा एव=वही
सा=सा है
अथ=और
यत्=जो
नीलम्=नीलवर्ण
+ च=और
परः=विशेष
कृष्णम्=काला वर्ण है
तत्=वही
अमः=अम है
तत्=वही दोनों मिलकर
साम=सामवेद है

भावार्थ ।

जो नेत्र बिषे श्वेतवर्ण है वह ऋग्वेद है और जो नीलवर्ण है और काला वर्ण है वह सामवेद है । यह सामवेद ऋग्वेद बिषे आधेयरूप से स्थित है, इसलिये ऋग्वेद बिषे ऐसा स्थित सामवेद सामवेदियों करके गाया जाता है । जो नेत्र बिषे श्वेतवर्ण है वह सा है, जो नीला और काला वर्ण है वह अम है, इसलिये ये तीनों वर्ण सूर्य के रंग की तरह सामवेद है ॥ ४ ॥

मूलम् ।

अथ य एषोऽन्तरक्षिणि पुरुषो दृश्यते सैवर्क्तत्साम तदुक्थं तद्यजुस्तद्ब्रह्म तस्यैतस्य तदेव रूपं यदमुष्य रूपं यावमुष्य गेष्णौ तौ गेष्णौ यन्नाम तन्नाम ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यः, एषः, अन्तः, अक्षिणि, पुरुषः, दृश्यते, सा, एव, ऋक्,

तत्, साम, तत्, उक्थम्, तत्, यजुः, तत्, ब्रह्म, तस्य, एतस्य, तत्, एव, रूपम्, यत्, अमुष्य, रूपम्, यौ, अमुष्य, गेष्णौ, तौ, गेष्णौ, यत्, नाम, तत्, नाम ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ	निश्चय करके	तत् एव	वही
यः	जो	रूपम्	रूप
एषः	यह	तस्य	कहे हुए
पुरुषः	पुरुष	एतस्य	इस चक्षु बिपे स्थित पुरुष का
अक्षिणि	नेत्र के	+ अस्ति	है
अन्तः	भीतर	अमुष्य	सूर्यमण्डलस्थपुरुष के
दृश्यते	देखा जाता है	यौ	जो
सा एव	वही	गेष्णौ	अंग हैं
ऋक्	ऋग्वेद है	तौ	वही
तत्	वही	गेष्णौ	अंग
साम	सामवेद है	+ तस्य	उस चक्षु बिपे स्थित पुरुष के
तत्	वही	+ स्तः	हैं
उक्थम्	सामवेद की ऋचा है	+ अमुष्य	इस सूर्य बिपे स्थित पुरुष का
तत्	वही	यत्	जो
यजुः	यजुर्वेद है	नाम	नाम है
तत्	वही	तत्	वही
ब्रह्म	ब्रह्म है	नाम	नाम, चक्षु बिपे स्थित पुरुष का है
यत्	जो		
रूपम्	रूप		
अमुष्य	सूर्यमण्डलस्थपुरुष का		
+ अस्ति	है		

भावार्थ ।

जो यह पुरुष नेत्र बिषे स्थित है, वही ऋग्वेद है, वही सामवेद है, वही सामवेद की ऋचा है, वही यजुर्वेद है, वही ब्रह्म है । जो सूर्य बिषे स्थित पुरुष का रूप है, वही चक्षु बिषे स्थित पुरुष का रूप है

जो सूर्यमण्डल बिषे स्थित पुरुष का अंग है, वही चक्षु विषे स्थित पुरुष का अंग है, और जो सूर्यमण्डल बिषे स्थित पुरुष का नाम है, वही चक्षु बिषे स्थित पुरुष का भी नाम है ॥ ५ ॥

मूलम् ।

स एष ये चैतस्मादर्वाञ्चो लोकास्तेषां चेष्टे मनुष्यकामानां चेति तद्य इमे वीणायां गायन्त्येतं ते गायन्ति तस्मात्ते धनसनयः ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ।

सः, एषः, ये, च, एतस्मात्, अर्वाञ्चः, लोकाः, तेषाम्, च, ईष्टे, मनुष्यकामानाम्, च, इति, तत्, ये, इमे, वीणायां, गायन्ति, एतम्, ते, गायन्ति, तस्मात्, ते, धनसनयः ॥

अन्वयः	पदार्थ
च	और
एतस्मात्	इस प्रत्यक्ष लोक के
अर्वाञ्चः	नीचे ऊपर दहिने बायें
ये	जो
लोकाः	लोक हैं
तेषां	उनका
सः	वही (सूर्य बिषे स्थित पुरुष) और
एषः	यही (चक्षु बिषे स्थित पुरुष)
ईष्टे	स्वामी होता है
च	और
मनुष्यकामानाम्	मनुष्यों की सब कामनाओं को
च	भी
+ ईष्टे	पूर्ण करता है
तत्	इसलिये
इति	कहे हुए प्रकार
ये इमे	जो ये गानेवाले
वीणायाम्	वीणा में
गायन्ति	सूर्य बिषे स्थित पुरुष का गान करते हैं
ते	वे
एतम्	उसी चक्षु बिषे स्थित पुरुष का
+ एव	ही
गायन्ति	गान करते हैं
तस्मात्	इसी कारण
ते	वे गानेवाले
धनसनयः	धनवान् होते हैं

भावार्थ ।

जो इस प्रत्यक्ष सूर्य के नीचे ऊपर दहिने बायें लोक हैं, उनका वही यह चक्षुबिषे स्थित पुरुष स्वामी होता है और मनुष्यों की सब कामनाओं को पूर्ण करता है, इसलिये कहे हुए प्रकार ये जो गायन करनेवाले बीणा में सूर्यबिषे स्थित पुरुष का गान करते हैं, वे चक्षुस्थित पुरुष का ही गान करते हैं, इसी कारण गान करनेवाले पुरुष धनवान् होते हैं ॥ ६ ॥

मूलम् ।

अथ य एतदेवं विद्वान् साम गायत्युभौ स गायति सोऽमुनैव स एष ये चामुष्मात्पराञ्चो लोकास्ताꣳश्चाप्नोति देवकामाꣳश्च ॥ ७ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यः, एतत्, एवम्, विद्वान्, साम, गायति, उभौ, सः, गायति, सः, अमुना, एव, सः, एषः, ये, च, अमुष्मात्, पराञ्चः, लोकाः, तान्, च, आप्नोति, देवकामान्, च ॥

अन्वयः	पदार्थ
अथ	इसके उपरान्त
यः	जो
एवम्	कहे हुए प्रकार
एतत्	इस
साम	सामवेद को
विद्वान्+सन्	जानता हुआ
गायति	गान करता है
सः	वह
उभौ	दोनों को अर्थात् चक्षुबिषे स्थित पुरुष और सूर्य बिषे स्थित पुरुष को
गायति	गान करता है
सः	वही पुरुष
अमुना एव	दोनों के इसी अभेद उपासना द्वारा
ये	जो
लोकाः	लोक
अमुष्मात्	इस उपास्य सूर्य से
पराञ्चः	ऊपर नीचे दहिने बायें हैं
तान्	उन सबको
आप्नोति	प्राप्त होता है

च=और
सः=वही
एषः=यह उपासक
देवकामान्=देवताओं की इच्छा
च=भी
आप्नोति=अपने यजमान की कामना के लिये प्राप्त करता है

भावार्थ ।

जो पुरुष कहे हुए प्रकार सामवेद को जानता हुआ गान करता है वह चक्षु बिषे स्थित पुरुष और सूर्य बिषे स्थित पुरुष दोनों का गान करता है । वही पुरुष दोनों की अभेद उपासना द्वारा, जो लोक सूर्य से ऊपर नीचे दहिने बायें हैं, उन सबको प्राप्त होता है और वही उपासक देवताओं की प्रसन्नता को भी अपने यजमान के लिये प्राप्त करता है अर्थात् उसके द्वारा यजमान अपनी कामना को देवताओं से पाता है ॥ ७ ॥

मूलम् ।

अथानेनैव ये चैतस्मादर्वाञ्चो लोकास्ताꣳश्चाप्नोति मनुष्यकामाꣳश्च तस्मादु हैवंविदुद्गाता ब्रूयात् ॥ ८ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, अनेन, एव, ये, च, एतस्मात्, अर्वाञ्चः, लोकाः, तान्, च, आप्नोति, मनुष्यकामान्, च, तस्मात्, उ, ह, एवंवित्, उद्गाता, ब्रूयात् ॥

अन्वयः	पदार्थ
च	और
अथ	इसके उपरांत
ये	जो
एतस्मात्	इस लोक के
अर्वाञ्चः	नीचे ऊपर दहिने बायें
लोकाः	लोक हैं
च	और
+ ये	जो
मनुष्यकामान्	मनुष्य संबंधी कामनायें हैं
तान्	उन सबको
अनेन एव	इसी चक्षुबिषे स्थित पुरुष करके ही

+स्वयजमानार्थम्=अपने यजमान के लिये
आप्नोति=प्राप्त करता है
उ=और
ह=निश्चय करके
तस्मात्=इसलिये
एवंवित्=ऐसा जाननेवाला
उद्गाता=उद्गाता
+स्वम्=अपने
+यजमानम्=यजमान को
ब्रूयात्=अगले मंत्र के अनुसार कहता है अर्थात् पूछता है

भावार्थ ।

जो इस लोक के अतिरिक्त और लोक हैं और जितनी मनुष्य सम्बन्धी कामनायें हैं उन सबको चक्षुबिषे और सूर्यबिषे स्थित पुरुष करके ही उद्गाता अपने यजमान के लिये प्राप्त कर सक्ता है, इसलिये उद्गाता अपने यजमान से अगले मंत्र के अनुसार पूछता है ॥ ८ ॥

मूलम् ।

कं ते काममागायानीत्येष ह्येव कामागानस्येष्टे य एवं विद्वान् साम गायति साम गायति ॥ ६ ॥

इति प्रथमाध्याये सप्तमः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

कम्, ते, कामम्, आगायानि, इति, एषः, हि, एव, कामागानस्य, ईष्टे, यः, एवम्, विद्वान्, साम, गायति, साम, गायति ॥

अन्वयः पदार्थ

हि=क्योंकि
एषः=यह उद्गाता
एव=ही
कामागानस्य=गानकरके अपने यजमान के मनोरथों के
ईष्टे=देने को समर्थ होता है

अन्वयः पदार्थ

+तस्मात्=इसलिये
यः=जो उद्गाता
एवम्=ऐसा
विद्वान्=जानता हुआ
+स्वयजमानम्=अपने यजमान से ज्ञात इसप्रकार
+पृच्छति=पूछता है कि

ते=तेरे	+ सः=वह
कम्=कौन से	+ यजमानात्=यजमान से
कामम्=मनोरथ के लिये	+ श्रुत्वा=सुन करके
आगायानि=गाऊं मैं	साम=सामवेद को
+ तर्हि=तब	गायति=गाता है

भावार्थ ।

उद्गाता अपने को यजमान के मनोरथों के देने में समर्थ पाकर अपने यजमान से इसप्रकार पूछता है कि कह मैं तेरे किस मनोरथ के लिये सामवेद का गायन करूं ? जब यजमान की कामना सुन लेता है, तब वह सामवेद का गान करता है ॥ ९ ॥

इति प्रथमाध्याये सप्तमः खण्डः ।

अथ प्रथमाध्यायस्याष्टमः खण्डः ।

मूलम् ।

त्रयो होद्गीथे कुशला बभूवुः शिलकः शालावत्यश्चैकितायनो दाल्भ्यः प्रवाहणो जैवलिरिति ते होचुरुद्गीथे वै कुशलाः स्मो हन्तोद्गीथे कथां वदाम इति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

त्रयः, ह, उद्गीथे, कुशलाः, बभूवुः, शिलकः, शालावत्यः, चैकितायनः, दाल्भ्यः, प्रवाहणः, जैवलिः, इति, ते, ह, ऊचुः, उद्गीथे, वै, कुशलाः, स्मः, हन्त, उद्गीथे, कथाम्, वदामः, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
शालावत्यः=शालावान् का पुत्र		चैकितायनः=चिकितायन का पुत्र	
शिलकः=शिलक ऋषि		दाल्भ्यः=दाल्भ्य ऋषि	
जैवलिः=जीवल का पुत्र		त्रयः=ये तीनों	
प्रवाहणः=प्रवाहण ऋषि		उद्गीथे=उद्गीथज्ञान में	
+च=और		ह=भली प्रकार	

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
कुशलाः	निपुण	वै	ही
बभूवुः	थे	कुशलाः	निपुण
इति	इस प्रकार	स्मः	हैं
ते	वे	+ अतः	इसलिये
+ त्रयः	तीनों ऋषि	हन्त	यदि इच्छा हो तो
+ परस्परम्	एक दूसरे से	उद्गीथे	उद्गीथ में ज्ञानप्राप्ति के निमित्त
ऊचुः	बोलते भये कि	कथाम्	पक्ष प्रतिपक्ष बात को
ह	जिस कारण	वदामः	करें
+ वयम्	हम सब		
उद्गीथे	उद्गीथ ज्ञान में		

भावार्थ ।

शालावान् का पुत्र शिलक ऋषि, जीवल का पुत्र प्रवाहण ऋषि और चिकितायन का पुत्र दाल्भ्य ऋषि ये तीनों उद्गीथ के ज्ञान में निपुण थे । ये एक दूसरे से इस प्रकार बोले कि यदि सबकी इच्छा हो तो विशेष ज्ञानप्राप्ति के निमित्त, पक्ष प्रतिपक्ष वाद को स्वीकार करके, आपस में प्रश्न उत्तर करें ॥ १ ॥

मूलम् ।

तथेति ह समुपविविशुः स ह प्रवाहणो जैवलिरुवाच भगवन्तावग्रे वदतां ब्राह्मणयोर्वदतोर्वाचꣳ श्रोष्यामीति ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

तथा, इति, ह, समुपविविशुः, सः, ह, प्रवाहणः, जैवलिः, उवाच, भगवन्तौ, अग्रे, वदताम्, ब्राह्मणयोः, वदतोः, वाचम्, श्रोष्यामि इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
तथा	बहुत अच्छा	+ उक्त्वा	कहकर
इति	ऐसा	+ ते	वे सब

ह=स्वस्थ होकर
समुपविविशुः=बैठ गये
+ तर्हि=तब
सः=वह
जैवलिः=जीवल का पुत्र
प्रवाहणः=प्रवाहण
उवाच=बोलता भया कि
भगवन्तौ=आप दोनों मान-योग्य
अग्रे=पहिले
वदताम्=कहें
ह=निश्चय करके
वदतोः=आप दोनों कहने-वाले
ब्राह्मणयोः=ब्राह्मणों की
वाचम्=बात को
+ अहम्=मैं
श्रोष्यामि=सुनूंगा
इति=ऐसा कहा

भावार्थ ।

तीनों ऋषि एक दूसरे से सुनकर कहते भये कि ज्ञानप्राप्ति के निमित्त हम सब बातचीत करें और ऐसा कहकर जब बैठ गये, तब जीवल का पुत्र प्रवाहण कहता भया कि आप दोनों ऋषि मानने-योग्य हैं और ब्राह्मण हैं, मैं चाहता हूं कि आप लोगों की बातों को सुनूं ॥ २ ॥

मूलम् ।

स ह शिलकः शालावत्यश्चैकितायनं दाल्भ्यमुवाच हन्त त्वा पृच्छानीति पृच्छेति होवाच ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

सः, ह, शिलकः, शालावत्यः, चैकितायनम्, दाल्भ्यम्, उवाच, हन्त, त्वा, पृच्छानि, इति, पृच्छ, इति, ह, उवाच ॥

अन्वयः	पदार्थ
ह	तब
शालावत्यः	शालावान् का पुत्र
शिलकः	शिलकऋषि
चैकितायनम्	चिकितायन का पुत्र
दाल्भ्यम्	दाल्भ्यऋषि से
उवाच	कहता भया कि
हंत	जो आप कहें तो
त्वा	आपसे

+ अहम्=मैं
पृच्छानि=प्रश्न करूं
इति=ऐसा
+ श्रुत्वा=सुनकर
सः=उसने
+ आह=कहा
पृच्छ=प्रश्नकर
+ तदा=तब
इति=इसतरह अर्थात् अगले मंत्र के अनुसार
+ शिलकः=शिलक नामक ऋषि
उवाच=पूछता भया

भावार्थ ।

ऐसा सुनकर शालावान् का पुत्र शिलक ऋषि चिकितायन के पुत्र दाल्भ्यऋषि से कहता भया कि यदि आप आज्ञा देवें तो मैं आपसे कुछ प्रश्न करूं ? ऐसा सुनकर दाल्भ्य ऋषि ने कहा कि तुम बड़ी प्रसन्नतापूर्वक प्रश्न करो, तब शिलक ऋषि पूछता भया ॥ ३ ॥

मूलम् ।

का साम्नो गतिरिति स्वर इति होवाच स्वरस्य का गतिरिति प्राण इति होवाच प्राणस्य का गतिरित्यन्नमिति होवाचान्नस्य का गतिरित्याप इति होवाच ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

का, साम्नः, गतिः, इति, स्वरः, इति, ह, उवाच, स्वरस्य, का, गतिः, इति, प्राणः, इति, ह, उवाच, प्राणस्य, का, गतिः, इति, अन्नम्, इति, ह, उवाच, अन्नस्य, का, गतिः, इति, आपः, इति, ह, उवाच ॥

अन्वयः पदार्थ

+ शिलकउवाच=शिलक ऋषि प्रश्न करता भया कि
साम्नः=सामवेद का
का=कौन
गतिः=आश्रय है
स्वरः=स्वर है
इति=ऐसा
उवाच=दाल्भ्य ऋषि कहता भया
स्वरस्य=स्वर का
का=कौन
गतिः=आश्रय है

प्राणः=प्राण है
इति=ऐसा
उवाच=दाल्भ्य ऋषि बोलता भया
प्राणस्य=प्राण का
का=कौन
गतिः=आश्रय है
अन्नम्=अन्न है
इति=ऐसा
उवाच=दाल्भ्य ऋषि बोलता भया
अन्नस्य=अन्न का
का=कौन
गतिः=आश्रय है
इति=ऐसे
+ पृष्टः=पूछेहुए दाल्भ्यऋषि ने
उवाच=कहा
आपः=जल है

भावार्थ ।

हे दाल्भ्यऋषे ! सामवेद का कौन आश्रय है ? उसने कहा स्वर है । स्वर का कौन आश्रय है ? उसने कहा प्राण है । प्राण का कौन आश्रय है ? उसने कहा अन्न है । अन्न का कौन आश्रय है ? उसने कहा जल है ॥ ४ ॥

मूलम् ।

अपां का गतिरित्यसौ लोक इति होवाचामुष्य लोकस्य का गतिरिति न स्वर्गं लोकमतिनयेदिति होवाच स्वर्गं वयं लोकꣳ सामाभिसंस्थापयामः स्वर्गसꣳस्तावꣳ हि सामेति ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ।

अपाम्, का, गतिः, इति, असौ, लोकः, इति, ह, उवाच, अमुष्य, लोकस्य, का, गतिः, इति, न, स्वर्गम्, लोकम्, अतिनयेत्, इति, ह, उवाच, स्वर्गम्, वयम्, लोकम्, साम, अभिसंस्थापयामः, स्वर्गसंस्तावम्, हि, साम, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
अपाम्=जल का	
का=कौन	
गतिः=आश्रय है	
असौ=यह	

लोकः=स्वर्गलोक है
इति=ऐसा
ह=निश्चय करके
उवाच=दाल्भ्य ऋषि कहता भया
अमुष्य=इस
लोकस्य=स्वर्गलोक का
का=कौन
गतिः=आश्रय है
स्वर्गम्=स्वर्ग
लोकम्=लोक को
न=नहीं
अतिनयेत्=कोई उल्लंघन कर सकता है अर्थात् सामवेद का आश्रय स्वर्ग से दूसरा और कोई नहीं है
इति=ऐसा
उवाच=दाल्भ्य ऋषि बोलत भया
वयम्=हम भी
स्वर्गम्=स्वर्ग
लोकम्=लोक को
साम=सामरूप से
ह=अच्छी तरह
अभिसंस्थापयामः=प्रतिष्ठा करते हैं अर्थात् जो स्वर्ग है वही साम है
हि=क्योंकि
साम=सामवेद की
स्वर्गसंस्तावम्=स्तुति स्वर्गरूप से की है
इति=प्रश्न और उत्तर की समाप्ति ऊपर कहे हुए प्रकार होती भई

भावार्थ ।

शिलक ऋषि ने फिर पूछा, जल का कौन आश्रय है ? दाल्भ्य ऋषि ने कहा स्वर्गलोक है । इस स्वर्गलोक का कौन आश्रय है ? उसने कहा कि सामवेद का आश्रय स्वर्गलोक से दूसरा लोक नहीं है । मैं स्वर्गलोक की प्रतिष्ठा सामरूप करके करता हूं ॥ ५ ॥

मूलम् ।

तꣳ ह शिलकः शालावत्यश्चैकितायनं दाल्भ्यमुवाचाप्रतिष्ठितं वै किल ते दाल्भ्य साम यस्त्वेतर्हि ब्रूयान्मूर्धा ते विपतिष्यतीति मूर्धा ते विपतेदिति ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ।

तम्, ह, शिलकः, शालावत्यः, चैकितायनम्, दाल्भ्यम्, उवाच,

अप्रतिष्ठितम् , वै, किल, ते, दाल्भ्य, साम, यः, तु, एतर्हि, ब्रूयात् , मूर्धा, ते, विपतिष्यति, इति, मूर्धा, ते, विपतेत् , इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
शालावत्यः	शालावान् का पुत्र
शिलकः	शिलक ऋषि
तम्	उस
चैकितायनम्	चैकितायन के पुत्र
दाल्भ्यम्	दाल्भ्य ऋषि से
उवाच	कहता भया कि
दाल्भ्य	हे दाल्भ्य !
ह वै	निश्चय करके
ते	तेरा
+कथनम्	कहना कि
साम	साम
+स्वर्गाश्रयम्	स्वर्गाश्रय है
अप्रतिष्ठितम्	अप्रतिष्ठित है
यः	जो कोई
+त्वाम्	तुझसे
ब्रूयात्	कहे कि
ते	तेरा
मूर्धा	मस्तक
विपतेत्	गिर जाय
तु	तो
एतर्हि	उसी समय
ते	तेरा
मूर्धा	मस्तक
किल	अवश्य
विपतिष्यति	गिर जायगा
इति इति	ऐसा कहकर समाप्त किया

भावार्थ ।

शालावान् का पुत्र शिलकऋषि चैकितायन के पुत्र दाल्भ्य ऋषि से कहता भया, हे दाल्भ्य ! तेरा ऐसा कहना कि साम स्वर्ग का आश्रित है, ठीक नहीं है । जब कभी तू किसी विद्वान् सामवेदी से ऐसा कहेगा तो उसके कहने से तेरा मस्तक तेरी गर्दन से अलग होकर गिर पड़ेगा ॥ ६ ॥

मूलम् ।

हन्ताहमेतद्भगवतो वेदानीति विद्धीति होवाचामुष्य लोकस्य का गतिरित्ययं लोक इति होवाचास्य लोकस्य का गतिरिति न प्रतिष्ठां लोकमतिनयेदिति होवाच प्रतिष्ठां वयं लोकꣳ सामाभिसꣳस्थापयामः प्रतिष्ठासꣳस्तावꣳ हि सामेति ॥ ७ ॥

पदच्छेदः ।

हन्त, अहम्, एतत्, भगवतः, वेदानि, इति, विद्धि, इति, ह, उवाच, अमुष्य, लोकस्य, का, गतिः, इति, अयम्, लोकः, इति, ह, उवाच, अस्य, लोकस्य, का, गतिः, इति, न, प्रतिष्ठाम्, लोकम्, अति, नयेत्, इति, ह, उवाच, प्रतिष्ठाम्, वयम्, लोकम्, साम, अभिसंस्थापयामः, प्रतिष्ठासंस्तावम्, हि, साम, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
+दाल्भ्यः	दाल्भ्यऋषि
+उवाच	बोलता भया कि
हन्त	यदि आप कहैं तो
भगवतः	आप पूजने योग्य से
अहम्	मैं
एतत्	इस साम के आश्रय को
वेदानि	जानूं
इति	तब
+पृष्टः	पूछा हुआ शिलक ऋषि
उवाच	कहता भया कि
अमुष्य	इस
लोकस्य	स्वर्गलोक का
का	कौन
गतिः	आश्रय है
+ एतत्	इसको
+ त्वम्	तू
ह	भली प्रकार
विद्धि	जान
+ शृणु	सुन
इति	ऐसा
अयम्	यह
लोकः	मृत्युलोक है
इति	तब
+ दाल्भ्यः	दाल्भ्य ऋषि
उवाच	बोलता भया कि
अस्य	इस
लोकस्य	मृत्युलोक का
ह	निश्चय करके
का	कौन
गतिः	आश्रय है
इति	तब
+ शिलकः	शिलक ऋषि
इति	ऐसा
ह	स्पष्ट
उवाच	कहता भया कि
+ इमम्	इस
लोकम्	मृत्युलोक को
अति (अतीत्य)	उल्लंघन करके
साम	साम का
प्रतिष्ठाम्	दूसरा आश्रय
न	कोई नहीं
नयेत्	पासा है

इति=इसलिये
वयम्=हम लोग
साम=साम को
लोकम्=इस मृत्युलोक का
प्रतिष्ठाम्=आश्रय
अभिसंस्थापयामः=मानते हैं
हि=क्योंकि
साम=साम की
प्रतिष्ठासंस्तावम्=स्तुति वेद में पृथ्वीरूप से की गई है
इति=इस प्रकार प्रश्नोत्तर की समाप्ति हुई

भावार्थ ।

दाल्भ्य ऋषि बोलता भया कि आप पूजने योग्य से मैं सामवेद का आश्रय जानना चाहता हूं । तब शिलक ऋषि ने कहा कि इसका आश्रय मृत्युलोक है । इस पर दाल्भ्य ऋषि ने पूछा कि मृत्युलोक का आश्रय कौन है ? तब शिलक ऋषि ने कहा कि मृत्युलोक को उल्लंघन करके साम का दूसरा आश्रय कोई नहीं है, इसी कारण हम सब साम को मृत्युलोक का आश्रय मानते हैं, क्योंकि साम की स्तुति वेद में पृथ्वीरूप से की गई है ॥ ७ ॥

मूलम् ।

तꣳ ह प्रवाहणो जैवलिरुवाचान्तवद्वै किल ते शालावत्य साम यस्त्वेतर्हि ब्रूयान्मूर्धा ते विपतिष्यतीति मूर्धा ते विपतेदिति हन्ताहमेतद्भगवतो वेदानीति विद्धीति होवाच ॥ ८ ॥

इत्यष्टमः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

तम्, ह, प्रवाहणः, जैवलिः, उवाच, अन्तवत्, वै, किल, ते शालावत्य, साम, यः, तु, एतर्हि, ब्रूयात्, मूर्धा, ते, विपतिष्यति, इति, मूर्धा, ते, विपतेत्, इति, हन्त, अहम्, एतत्, भगवतः, वेदानि, इति, विद्धि, इति, ह, उवाच ॥

अन्वयः	पदार्थ
जैवलिः	जीवल का पुत्र
प्रवाहणः	प्रवाहणऋषि
तम्	उस शिलक ऋषि से
ह	स्पष्ट
उवाच	कहता भया कि
शालावत्य	हे शिलक ऋषि !
ते	तेरा
साम	सामवेद
अन्तवत्	नाशवान् है
यः	जो कोई
+ त्वाम्	तुझ
+ सामाज्ञातारम्	साम बिषे अज्ञानी से
ब्रूयात्	कहे कि
ते	तेरा
मूर्धा	मस्तक
विपतेत्	गिर जाय
तु	तो
एतर्हि	उसी काल
ते	तेरा
मूर्धा	मस्तक
किल	निश्चय करके
विपतिष्यति	गिर जायगा
इति	ऐसा सुनने पर
+ शिलकः	शिलक ऋषि
+ उवाच	बोलता भया कि
हन्त	यदि आप कहैं तो
अहम्	मैं
एतत्	इस अविनाशी साम को
भगवतः	आप पूजने योग्य से
वेदानि	जानूं
इति	इस प्रार्थना वाक्य को सुनकर
+ प्रवाहणः	प्रवाहण
+ उवाच	बोलता भया कि
विद्धि	जान तू
इति	तब अगले मंत्र के अनुसार
ह्वै	निश्चय करके
+ शिलकः	शिलक ऋषि
उवाच	कहता भया

भावार्थ ।

जीवल का पुत्र प्रवाहण ऋषि शिलक ऋषि से कहता भया कि हे शिलक ! ऐसा तेरा कहा हुआ साम नाशवान् है, जब कभी कोई सामवेदी तुझसे सुनेगा कि साम स्वर्ग के आश्रित है तो उसके शाप देने से तेरा मस्तक गिर पड़ेगा । ऐसा सुनकर शिलक ऋषि बोलता भया कि यदि आप कहें तो मैं आपसे प्रश्न करके जानूं ? तब इस प्रार्थना वाक्य को सुनकर प्रवाहण ऋषि बोलता भया कि तू प्रश्न

कर, मैं बताऊंगा । ऐसा सुनकर शिलक ऋषि अगले मंत्र के अनुसार पूछता भया ॥ ८ ॥

इत्यष्टमः खण्डः ।

अथ प्रथमाध्यायस्य नवमः खण्डः ।

मूलम् ।

अस्य लोकस्य का गतिरित्याकाश इति होवाच सर्वाणि ह वा इमानि भूतान्याकाशादेव समुत्पद्यन्त आकाशं प्रत्यस्तं यन्त्याकाशो ह्येवैभ्यो ज्यायानाकाशः परायणम् ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

अस्य, लोकस्य, का, गतिः, इति, आकाशः, इति, ह, उवाच, सर्वाणि, ह, वै, इमानि, भूतानि, आकाशात्, एव, समुत्पद्यन्ते, आकाशम्, प्रति, अस्तम्, यन्ति, आकाशः, हि, एव, एभ्यः, ज्यायान्, आकाशः, परायणम् ॥

अन्वयः	पदार्थ
+शिलक उवाच	शिलक ऋषि पूछता भया कि
अस्य	इस
लोकस्य	लोक का
का	कौन
गतिः	आश्रय है
इति	ऐसा प्रश्न होने पर
+ प्रवाहणः	प्रवाहण ऋषि
ह	स्पष्ट
उवाच	कहता भया कि
आकाशः	आकाश है
+ च	और
+अस्मात्	इसी
आकाशात्	आकाशसे
एव	ही
इमानि	ये सब
भूतानि	स्थावर जंगम प्रजाएँ
ह	निश्चय करके
समुत्पद्यन्ते	उत्पन्न होती हैं
+ च	और
आकाशं प्रति	आकाश में ही
अस्तम्	लयभाव को

यन्ति=प्राप्त होती हैं	ज्यायान्=श्रेष्ठ है
हि=इसी कारण	+च=और
आकाशः=आकाश	आकाशः=आकाश
एव=ही	एव=ही
एभ्यः=इन स्थावर जंगम पदार्थों से	परायणम्=सर्व भूतों का मुख्य आश्रय है
वै=अवश्य	इति=ऐसा उत्तर देता भया

भावार्थ ।

शिलक ऋषि पूछता है कि मृत्युलोक का आश्रय कौन है ? उसके जवाब में प्रवाहण ऋषि कहता है कि आकाश है, क्योंकि आकाश से स्थावर जंगम सब उत्पन्न हुए हैं और आकाश ही में लीन होते हैं । आकाश परमात्मा का देह है, देह और देही एकही समझे जाते हैं । देह देही से पृथक् नहीं रह सकता है, इसलिये आकाश परमात्मा का रूप है । आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथ्वी उत्पन्न होते भये और प्रलयकाल में पृथ्वी जल में जल अग्नि में अग्नि वायु में और वायु आकाश में लीन होते हैं । सृष्टि के आदि में सब प्राणी आकाश से ऊपर कहे हुए प्रकार पञ्चमहाभूतों करके उत्पन्न होते हैं और अन्त में आकाश ही में लीन होते हैं: इसलिये सबका आधार आकाश ही है । यह आकाश सबमें व्याप्त है और सब इसके अन्तर्भूत हैं, कोई वस्तु या कोई प्राणी इससे पृथक् नहीं रह सकता है । यह सबका पूजनीय है ॥ १ ॥

मूलम् ।

स एष परोवरीयानुद्गीथः स एषोऽनन्तः परोवरीयो हास्य भवति परोवरीयसो ह लोकाञ्जयति य एतदेवं विद्वान्परोवरीयांसमुद्गीथमुपास्ते ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

सः, एषः, परोवरीयान्, उद्गीथः, सः, एषः, अनन्तः, परोवरीयः, ह, अस्य, भवति, परोवरीयसः, ह, लोकान्, जयति, यः, एतत्, एवम्, विद्वान्, परोवरीयांसम्, उद्गीथम्, उपास्ते ॥

अन्वयः	पदार्थ
सः	वही
एषः	यह आकाश
उद्गीथः	उद्गीथरूप
परोवरीयान्	परमात्मा है
सः ह	वही
एषः	यह आकाश
अनन्तः	अंतरहित ब्रह्म है
अस्य	इस ज्ञाता का
+जीवनम्	जीवन
परोवरीयः	श्रेष्ठ से श्रेष्ठ
भवति	होता है
यः	जो
एतत्	इस आकाशरूप ब्रह्म को
एवम्	कहे हुए प्रकार
विद्वान्	जाननेवाला है
+सः	वह
ह	ही
परोवरीयांसम्	श्रेष्ठ से श्रेष्ठ
उद्गीथम्	उद्गीथ की
उपास्ते	उपासना करता है
+ च	और
परोवरीयसः	श्रेष्ठ से श्रेष्ठ
लोकान्	लोकों को
जयति	पाता है

भावार्थ ।

वही यह आकाश उद्गीथ है, वही यह परमात्मा रूप है, वही यह ब्रह्मरूप है । इस आकाश का जाननेवाला श्रेष्ठ और पूजनीय होता है और जो इस आकाशरूपी उद्गीथ ब्रह्म को जानता है वह श्रेष्ठ लोकों को प्राप्त होता है ॥ २ ॥

मूलम् ।

त ँ हैतमतिधन्वा शौनक उदरशाण्डिल्यायोक्त्वो-वाच यावत्त एनं प्रजायामुद्गीथं वेदिष्यन्ते परोवरीयो हैभ्यस्तावदस्मिँल्लोके जीवनं भविष्यति ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

तम्, ह, एतम्, अतिधन्वा, शौनकः, उदरशाण्डिल्याय, उक्त्वा, उवाच, यावत्, ते, एनम्, प्रजायाम्, उद्गीथम्, वेदिष्यन्ते, परोवरीयः, ह, एभ्यः, तावत्, अस्मिन्, लोके, जीवनम्, भविष्यति ॥

अन्वयः	पदार्थ
तम्ह	उसी
एतम्	उद्गीथ का
+ वेत्ता	जाननेवाला
शौनकः	शुनक ऋषि का पुत्र
अतिधन्वा	अतिधन्वा
उदरशाण्डिल्याय	अपने शिष्य उदरशांडिल्य से
+ उद्गीथदर्शनम्	उद्गीथ को
उक्त्वा	भली प्रकार अनुभव करा करके
उवाच	कहता भया कि
+उदरशांडिल्य	हे उदरशांडिल्य !
यावत्	जब तक
ते	तेरे
प्रजायाम्	वंश के लोग
एनम्	इस
उद्गीथम्	उद्गीथ को
वेदिष्यन्ते	जानते रहेंगे
तावत्	तब तक
अस्मिन्	इस
लोके	लोक में
एभ्यः	साधारण लोकों से
+ तेषाम्	उनका
जीवनम्	जीवन
परोवरीयः	अति उत्कृष्ट
ह	अवश्य
भविष्यति	रहेगा

भावार्थ ।

शुनक ऋषि का पुत्र अतिधन्वा अपने शिष्य उदरशाण्डिल्य ऋषि को भली प्रकार उद्गीथ का अनुभव करा करके उससे कहता भया कि हे उदरशाण्डिल्य ! तूने मेरे कहे प्रकार उद्गीथ को जान लिया है, इसलिये तेरे वंश के लोग उद्गीथ की उपासना करते रहेंगे और इसलिये संसार में प्रतिष्ठित पद को प्राप्त होते रहेंगे ॥ ३ ॥

मूलम् ।

तथामुष्मिँल्लोके लोक इति स य एतदेवं विद्वानु-

पास्ते परोवरीय एव हास्यास्मिँल्लोके जीवनं भवति तथामुष्मिँल्लोके लोक इति लोके लोक इति ॥ ४ ॥

इति नवमः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

तथा, अमुष्मिन् , लोके, लोकः, इति, सः, यः, एतत्, एवम् , विद्वान् , उपास्ते, परोवरीयः, एव, ह, अस्य, अस्मिन्, लोके, जीवनम् , भवति, तथा, अमुष्मिन् , लोके, लोकः, इति, लोके, लोकः, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
तथा	और
यः	जो कोई
एतत्	इस उद्गीथ को
एवम्	ऊपर कहे हुए प्रकार
विद्वान्	जानता हुआ
उपास्ते	उपासना करता है
सः	वह
अमुष्मिन्	दूसरे
लोके	लोक में
लोकः	उत्तम पुरुष
+ भवति	होता है
तथा	और
ह एव	निश्चय करके
अस्मिन्	इस
लोके	लोक में
अस्य	उस उपासक का
जीवनम्	जीवन
परोवरीयः	श्रेष्ठतर
भवति	होता है
इति इति	इस प्रकार इस खंड की समाप्ति हुई

भावार्थ ।

जो कोई ऊपर कहे हुए प्रकार उद्गीथ की उपासना करता है वह इस लोक में श्रेष्ठ पदवी को प्राप्त होता है और शरीर के त्यागने के पश्चात् उत्तम लोकों को प्राप्त होता है । इस उद्गीथ की ऐसी महिमा सब प्राणियों के हितार्थ कही गई है, यह उपासना तीनों वर्ण के अधिकारी पुरुषों के लिये है ॥ ४ ॥

इति नवमः खण्डः ।

अथ प्रथमाध्यायस्य दशमः खण्डः ।

मूलम् ।

मटचीहतेषु कुरुष्वाटिक्या सह जाययोषस्तिर्ह चाक्रायण इभ्यग्रामे प्रद्राणक उवास ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

मटचीहतेषु, कुरुषु, आटिक्या, सह, जायया, उषस्तिः, ह, चाक्रायणः, इभ्यग्रामे, प्रद्राणकः, उवास ॥

अन्वयः	पदार्थ
चाक्रायणः	तश्चक्र का पुत्र
उषस्थितः	उषस्ति नामक ऋषि
कुरुषु	कुरुदेश के खेतों में
मटचीहतेषु	जो अन्नादिक थे उनके ओला करके नाश होने पर
+ स्व	अपनी
आटिक्या	अक्षता
जायया	स्त्री के
सह	साथ
इभ्यग्रामे	किसी श्रीमान् के ग्राम विषे
ह	इति
प्रद्राणकः	निंदित वृत्ति होकर (अर्थात् भीख मांगता हुआ)
उवास	वास करता भया

भावार्थ ।

जिस काल में कुरुदेश विषे खेतों में ओला पड़ने के कारण सब अन्नादिक नष्ट हो गये थे और दुर्भिक्षता आगई थी, उस समय तश्चक्र का पुत्र उषस्तिनामक ऋषि अपनी अक्षता स्त्री के साथ दुःख करके ग्रसित हुआ और भिक्षा मांग करके अपना जीवन निर्वाह करता हुआ एक श्रीमान् के ग्राम विषे रहता भया ॥ १ ॥

मूलम् ।

स हेभ्यं कुल्माषान्खादन्तं बिभिक्षे तꣳ होवाच नेतोऽन्ये विद्यन्ते यच्च ये म इम उपनिहिता इति ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

सः, ह, इभ्यम्, कुल्माषान्, खादन्तम्, विभिक्षे, तम्, ह, उवाच, न, इतः, अन्ये, विद्यन्ते, यत्, च, ये, मे, इमे, उपनिहिताः, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
+ च	और	इमे	ये अर्थात् मेरे सामने
सः	वह उषस्ति	+ कुल्माषाः	उड़द हैं
ह	निश्चय करके	च	और
कुल्माषान्	निन्दित उड़दों को	यत्	जो
+ तस्मिन्ग्रामे	उसी ग्राम में	ये	यह
खादन्तम्	खानेवाले	मे	मेरे
इभ्यम्	धनिक से	+ भाजने	बर्त्तन में
विभिक्षे	मांगता भया	उपनिहिताः	रक्खे हैं
+ तदा	तब	इतः	उनसे
तम्	उस उषस्ति से	अन्ये	भिन्न और उड़द
+ सः	वह धनिक	न	नहीं
उवाच	बोलता भया कि	विद्यन्ते	हैं
ये	जो		

भावार्थ ।

उषस्ति ऋषि निन्दित उड़दों को, जिसको उस ग्राम में धनिक खा रहा था, मांगता भया । तब उस धनिक ने उषस्ति से कहा कि जो उड़द मेरे सामने बर्त्तन में रक्खे हैं और जिसमें से मैं खा रहा हूं उनके अलावा मेरे पास और उड़द नहीं हैं ॥ २ ॥

मूलम् ।

एतेषां मे देहीति होवाच तानस्मै प्रददौ हन्तानुपानमित्युच्छिष्टं वै मे पीतꣳ स्यादिति होवाच ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

एतेषाम्, मे, देहि, इति, ह, उवाच, तान्, अस्मै, प्रददौ, हन्त,

अनुपानम्, इति, उच्छिष्टम्, वै, मे, पीतम्, स्यात्, इति, ह, उवाच ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
एतेषाम्=इन उड़दों को		+ उवाच=कहता भया कि	
मे=मेरे लिये		अनुपानम्=भोजन के पश्चात् जल	
देहि=दे तू		+ गृहाण=ग्रहण कर	
इति=ऐसा		+ तदा=तब	
उवाच=उषस्तिऋषि कहता भया		+उषस्तिः=उषस्ति ऋषि ने	
हन्त=बहुत अच्छा ऐसा कहकर		इति=इस प्रकार	
तान्=उन उड़दों को		उवाच=कहा कि	
अस्मै=उस उषस्तिऋषि के लिये		उच्छिष्टम्=जूठा	
ह=निश्चय करके		+ जलम्=जल	
+इभ्यः=वह धनिक		वै=निश्चय	
प्रददौ=देता भया		मे=मुझ करके	
+ ततः=तिसके पश्चात्		पीतम्=पिया हुआ	
+ धनिकः=धनिक		ह=अवश्य	
		स्यात्=समझा जायगा	

भावार्थ ।

ऐसा धनिक से सुनकर उषस्ति ऋषि कहता भया कि तू इन्हीं उड़दों को मुझको दे । तब धनिक ने कहा यदि तेरी ऐसी इच्छा है तो इन उड़दों को ले । ऐसा कहकर उन उड़दों को देता भया और जब उषस्तिऋषि उड़दों को खा चुका, तब धनिक ने उससे कहा कि मेरा जूठा जल, जो मेरे सामने रक्खा है, पी । इसपर उषस्तिऋषि ने कहा कि तेरा जूठा जल मैं नहीं पीऊँगा ॥ ३ ॥

मूलम् ।

न स्विदेतेऽप्युच्छिष्टा इति न वा अजीविष्यमिमानखादन्निति होवाच कामो म उदकपानमिति ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

न, स्वित्, एते, अपि, उच्छिष्टाः, इति, न, वा, अजीविष्यम्, इमान्, अखादन्, इति, ह, उवाच, कामः, मे, उदकपानम्, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
+ धनिकः	धनिक ने	अखादन्	न खाता तो
उवाच	कहा	वा	अवश्य
अपि स्वित्	क्या	न	नहीं
एते	ये	अजीविष्यम्	जीता मैं
+ कुल्माषाः	उड़द	+ परम्	परंतु
उच्छिष्टाः	जूठे	उदकपानम्	जल का पीना
न	नहीं हैं	मे	मेरी
+तदा	तब	कामः	इच्छा पर है अर्थात् न पीऊं तो मर नहीं सकता हूं
+ उषस्तिः	उषस्तिऋषि	इति इति	इस प्रकार धनिक और उषस्तिऋषि का संवाद समाप्त हुआ
ह	स्पष्ट		
+अवोचत्	कहता भया कि		
+ यदि	अगर		
इमान्	इन जूठे उड़दों को		

भावार्थ ।

तब धनिक ने कहा कि क्या उड़द जूठे नहीं थे ? इस पर उषस्ति ऋषि ने जवाब दिया कि यदि इन जूठे उड़दों को मैं न खाता तो ज़िन्दा न रहता, जल का पीना मेरी इच्छा पर है, चाहे पीऊं चाहे न पीऊं । अगर न पीऊं तो मैं मर नहीं सकता हूं ॥ ४ ॥

मूलम् ।

स ह खादित्वातिशेषाञ्जायाया आजहार । साऽग्र एव सुभिक्षा बभूव तान्प्रतिगृह्य निदधौ ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ।

सः, ह, खादित्वा, अतिशेषान्, जायायाः, आजहार, सा, अग्रे, एव, सुभिक्षा, बभूव, तान्, प्रतिगृह्य, निदधौ ॥

अन्वयः	पदार्थ
सः	वह उपस्तिऋषि
ह	अच्छी तरह
खादित्वा	खा करके
अतिशेषान्	बचे हुए उड़दों को
जायायाः	अपनी स्त्री के लिये
आजहार	देता भया
+ परन्तु	परन्तु
सा	वह ऋषिपत्नी
अग्रे	पहिले
एव	ही से
सुभिक्षा	अच्छी प्रकार खाये हुए
बभूव	थी
तान्	उन उड़दों को
प्रतिगृह्य	पति से लेकर
निदधौ	रख देती भई

भावार्थ ।

उषस्तिऋषि उड़दों को अच्छी प्रकार खा करके बचे खुचे उड़दों को अपनी स्त्री को देता भया । वह ऋषिपत्नी उन उड़दों को अपने पति से लेकर एक जगह रख देती भई, क्योंकि वह पहिले ही से खा चुकी थी ॥ ५ ॥

मूलम् ।

स ह प्रातः संजिहान उवाच यद्बतान्नस्य लभेमहि लभेमहि धनमात्राꣳ राजासौ यक्ष्यते स मा सर्वैरार्त्विज्यैर्वृणीतेति ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ।

सः, ह, प्रातः, संजिहानः, उवाच, यत् , बत, अन्नस्य, लभेमहि, लभेमहि, धनमात्राम्, राजा, असौ, यक्ष्यते, सः, मा, सर्वैः, आर्त्विज्यैः, वृणीत, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
सः	वह उपस्तिऋषि
प्रातः	प्रातःकाल
संजिहानः	बिस्तर से उठते ही
बत	खेद के साथ
उवाच	अपनी स्त्री से कहा कि
यत्	जो
अन्नस्य	अन्न का
+ स्तोकम्	थोड़ा भी हिस्सा
लभेमहि	पाऊँ तो

+चलनशक्तिं लब्ध्वा कुतश्चित् = चलने की शक्ति को पाकर कहीं से भी
धनमात्राम्=कुछ धन
लभेमहि=प्राप्त करूँ
+इति=ऐसा
+ श्रुतम्=सुना है कि
असौ=कहीं समीपस्थ
राजा=राजा
यक्ष्यते=यज्ञ कर रहा है
सः=वह राजा
मा=मुझको
सर्वैः=संपूर्ण
आर्त्विज्यैः=ऋत्विक्कर्म जानने के कारण
वृणीत=वरण करेगा
इति=इस प्रकार उपस्ति ऋषि बोलता भया

भावार्थ ।

उषस्तिऋषि प्रातःकाल बिस्तर से उठते ही अपनी स्त्री से खेद के साथ कहता भया कि यदि मैं थोड़ासा भी अन्न पाता तो मेरे में चलने की शक्ति आजाती और मैं चल फिर के कहीं से कुछ धन प्राप्त करता । मैंने ऐसा सुना है कि कहीं थोड़ी दूर पर एक राजा यज्ञ कर रहा है, वह ऋत्विक्कर्म के जानने के कारण अवश्य मुझको यज्ञ में वरणी करेगा अर्थात् ऋत्विज् बनावेगा ॥ ६ ॥

मूलम् ।

तं जायोवाच हन्त पत इम एव कुल्माषा इति तान्खादित्वामुं यज्ञं विततमेयाय ॥ ७ ॥

पदच्छेदः ।

तम्, जाया, उवाच, हन्त, पते, इमे, एव, कुल्मापाः, इति, तान्, खादित्वा, अमुम्, यज्ञम्, विततम्, एयाय ॥

अन्वयः पदार्थ

पते=हे पालनकर्ता पते !
इमे एव=यही अर्थात् आपके दिये हुए
कुल्मापाः=निन्दित उड़द वर्तमान हैं
इति=ऐसा
हन्त=खेद के साथ
जाया=ऋषिपत्नी
तम्=उपस्तिऋषि से
उवाच=कहती भई

+ तदा=तब
+ सः=वह उपस्तिऋषि
तान्=उन्हीं उड़दों को
खादित्वा=खा करके
अमुम्=उस
विततम्=ऋत्विजों करके किये जाते हुए
यज्ञम्=यज्ञ को
एयाय=जाता भया

भावार्थ ।

ऋषिपत्नी ने खेद के साथ कहा कि हे पते ! आपके दिये हुए उड़द मौजूद हैं । यह सुनकर उषस्तिऋषि ने कहा लावो, मैं उन्हीं उड़दों करके अपना उदर भरूंगा । तब ऋषिपत्नी ने उड़द लाकर दिये, उनको खाकर उस यज्ञ की ओर गया जिसको कि ऋत्विज् कर रहे थे ॥ ७ ॥

मूलम् ।

तत्रोद्गातॄनास्तावे स्तोष्यमाणानुपोपविवेश स ह प्रस्तोतारमुवाच ॥ ८ ॥

पदच्छेदः ।

तत्र, उद्गातॄन्, आस्तावे, स्तोष्यमाणान्, उप, उपविवेश, सः, ह, प्रस्तोतारम्, उवाच ॥

अन्वयः	पदार्थ
तत्र	उस यज्ञ विषे
आस्तावे	आस्ताव कर्म में
स्तोष्यमाणान्	उद्गीथ का गान करते हुए
उद्गातॄन् उप	उद्गाता पुरुषों के समीप
सः	वह उपस्ति ऋषि
उपविवेश	बैठता भया
+ च	और
ह	स्पष्ट
प्रस्तोतारम्	प्रस्तोता ऋत्विज् से
उवाच	कहता भया

भावार्थ ।

जब उषस्ति ऋषि यज्ञ के समीप पहुँचा, तब देखा कि आस्ताव कर्म में उद्गीथ का गान हो रहा है । वह उद्गाता पुरुषों के समीप बैठ गया, और प्रस्तोता ऋत्विज् से नीचे लिखे हुए प्रकार पूछता भया ॥ ८ ॥

मूलम् ।

प्रस्तोतर्या देवता प्रस्तावमन्वायत्ता तां चेदविद्वान्प्रस्तोष्यसि मूर्धा ते विपतिष्यतीति ॥ ९ ॥

पदच्छेदः ।

प्रस्तोतः, या, देवता, प्रस्तावम्, अन्वायत्ता, ताम्, चेत्, अविद्वान्, प्रस्तोष्यसि, मूर्धा, ते, विपतिष्यति, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
प्रस्तोतः	हे प्रस्तोता ऋत्विज् !
या	जो
देवता	देवता
प्रस्तावम्	प्रस्ताव कर्म से
अन्वायत्ता	संबंध रखनेवाला है अर्थात् उस कर्म का अधिष्ठाता है
चेत्	यदि
ताम्	उस देवता को
अविद्वान्	न जानता हुआ
प्रस्तोष्यसि	यज्ञ बिषे गान करेगा तू
+ तु	तो
ते	तेरा
मूर्धा	मस्तक
विपतिष्यति	गिर जायगा
इति	इस प्रकार उपस्ति ऋषि कहता भया

भावार्थ ।

उषस्ति ऋषि ने कहा कि हे प्रस्तोता ऋत्विज् ! उस देवता को जिसका कि संबंध प्रस्ताव कर्म से है अर्थात् जो देवता उसका अधिष्ठाता है, अगर तू उसको न जानता हुआ यज्ञ बिषे उद्गीथ का गान करेगा तो तेरा मस्तक तेरी गर्दन से अवश्य गिर जायगा ॥ ९ ॥

मूलम् ।

एवमेवोद्गातारमुवाचोद्गातर्या देवतोद्गीथमन्वायत्ता तां चेदविद्वानुद्गास्यसि मूर्धा ते विपतिष्यतीति ॥ १० ॥

पदच्छेदः ।

एवम्, एव, उद्गातारम्, उवाच, उद्गातः, या, देवता, उद्गीथम्,

अन्वायत्ता, ताम्, चेत्, अविद्वान्, उद्गास्यसि, मूर्धा, ते, विपतिष्यति, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
एवम्	इसी प्रकार	चेत्	यदि
उद्गातारम्	उद्गाता नामक ऋत्विज् से	इति	ऐसे
एव	भी	ताम्	उस देवता को
उवाच	उषस्ति ऋषि कहता भया कि	अविद्वान्	न जानता हुआ
उद्गातः	हे उद्गातः !	त्वम्	तू
या	जो	उद्गास्यसि	उद्गीथ का गान करेगा
देवता	देवता	+ तु	तो
उद्गीथम्	उद्गीथ कर्म से	ते	तेरा
अन्वायत्ता	संबंध रखनेवाला है अर्थात् उस कर्म का वह अधिष्ठाता है	मूर्धा	मस्तक
		विपतिष्यति	गिर जायगा

भावार्थ ।

इसी प्रकार उषस्ति ऋषि उद्गातानामक ऋत्विज् से भी कहता भया कि हे उद्गातः ! अगर तू उस देवता को जो कि उद्गीथ कर्म का अधिष्ठाता है, उसको न जानता हुआ उद्गीथ का गायन करेगा तो तेरा मस्तक अवश्य तेरी गर्दन से गिर जायगा ॥ १० ॥

मूलम् ।

एवमेव प्रतिहर्त्तारमुवाच प्रतिहर्त्तर्या देवता प्रतिहारमन्वायत्ता तां चेदविद्वान्प्रतिहरिष्यसि मूर्धा ते विपतिष्यतीति ते ह समारतास्तूष्णीमासाञ्चक्रिरे ॥ ११ ॥

इति दशमः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

एवम्, एव, प्रतिहर्त्तारम्, उवाच, प्रतिहर्त्तः, या, देवता, प्रति-

हारम्, अन्वायत्ता, ताम्, चेत्, अविद्वान्, प्रतिहरिष्यसि, मूर्धा, ते, विपतिष्यति, इति, ते, ह, समारताः, तूष्णीम्, आसाञ्चक्रिरे ॥

अन्वयः	पदार्थ
एवम्	इसी तरह
प्रतिहर्त्तारम्	प्रतिहर्त्ता से
एव	भी
उवाच	उपस्ति ऋषि कहता भया कि
प्रतिहर्त्तः	हे प्रतिहर्त्तः !
या	जो
देवता	देवता
प्रतिहारम्	प्रतिहार कर्म से
अन्वायत्ता	संबंध रखनेवाला है अर्थात् जो उसका अधिष्ठाता है
चेत्	यदि
ताम्	उस
+ देवताम्	देवता को
अविद्वान्	न जानता हुआ
प्रतिहरिष्यसि	प्रतिहार कर्म करेगा तू तो
ते	तेरा
मूर्धा	मस्तक
विपतिष्यति	नीचे गिर जायगा
इति	ऐसा
+ श्रुत्वा	सुनकर
ते	वे सब ऋत्विज्
ह	स्पष्ट
समारताः	अपने अपने कर्म करने से ठहर गये
+ च	और
तूष्णीम्	चुपचाप
आसाञ्चक्रिरे	बैठ गये

भावार्थ ।

इसी प्रकार उषस्ति ऋषि ने प्रतिहर्त्ता से कहा कि हे प्रतिहर्त्ता ! जो देवता प्रतिहार कर्म का अधिष्ठाता है उसको अगर तू न जानता हुआ प्रतिहार कर्म करेगा तो तेरा मस्तक तेरी गर्दन से गिर जायगा । ऐसा सुनकर उन सब ऋत्विजों ने अपना अपना कर्म उस देवता के जानने के लिये बंद कर दिया और उषस्ति ऋषि के संमुख हुए॥ ११॥

इति दशमः खण्डः ।

——०——

अथ प्रथमाध्यायस्यैकादशः खण्डः ।

मूलम् ।

अथ हैनं यजमान उवाच भगवन्तं वा अहं विविदिषाणीत्युषस्तिरस्मि चाक्रयण इति होवाच ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, ह, एनम्, यजमानः, उवाच, भगवन्तम्, वै, अहम्, विविदिषाणि, इति, उषस्तिः, अस्मि, चाक्रयणः, इति, ह, उवाच ॥

अन्वयः	पदार्थ
अथ	सब ऋत्विजों के चुपचाप बैठ जाने पर
यजमानः	यजमान
एनम्	उषस्ति ऋषि से
ह	स्पष्ट
इति	इस प्रकार
उवाच	विनयपूर्वक बोलता भया कि
भगवन्तम्	आप पूजनेयोग्य को
विविदिषाणि	मैं जानने की इच्छा करता हूं
इति	इस प्रकार
+ पृष्टः	पूछा हुआ उषस्ति ऋषि
उवाच	कहता भया कि
अहम्	मैं
चाक्रयणः	तश्चक्र का बेटा
उषस्तिः	उषस्ति ऋषि
ह वै	निश्चय करके
अस्मि	हूँ

भावार्थ ।

जब ऋत्विज् चुपचाप बैठ गये तब यजमान अर्थात् राजा यज्ञ करनेवाला विनयपूर्वक उषस्ति ऋषि से बोलता भया कि हे भगवन्! आप कौन हैं? ऐसा प्रश्न होने पर ऋषि ने कहा कि मैं तश्चक्र का पुत्र उषस्ति नामक ऋषि हूँ ॥ १ ॥

मूलम् ।

स होवाच भगवन्तं वा अहमेभिः सर्वैरार्त्विज्यैः पर्यैषिषं भगवतो वा अहमवित्याऽन्यानवृषि ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

सः, ह, उवाच, भगवन्तम्, वै, अहम्, एभिः, सर्वैः, आर्त्विज्यैः, पर्यैषिषम्, भगवतः, वै, अहं, अवित्या, अन्यान्, अवृषि ॥

अन्वयः पदार्थ	अन्वयः पदार्थ
सः=वह यजमान	पर्यैषिषम्=ढूंढ़ता भया था
भगवन्तम्=पूजने योग्य उषस्ति ऋषि से	+ परंतु=परंतु
उवाच=कहता भया कि	भगवतः=आपके
अहम्=मैं	अवित्या=न मिलने से
+ भगवन्तम्=आपको	अहम्=मैं
एभिः=इन	वै=निश्चय करके
सर्वैः=सब	अन्यान्=औरों को
आर्त्विज्यैः=ऋत्विक्कर्मों के लिये	अवृषि=वरणी अर्थात् नियत करता भया
ह वै=अच्छी तरह	

भावार्थ ।

तब यजमान राजा ने उषस्ति ऋषि से कहा कि मैं आपको गुणवान् सुनकर इन सब ऋत्विज् कर्मों के लिये बहुत ढूँढ़ा, पर आपके न मिलने के कारण मुझे औरों को इन कर्मों के लिये नियत करना पड़ा ॥ २ ॥

मूलम् ।

भगवांस्त्वेव मे सर्वैरार्त्विज्यैरिति तथेत्यथ तर्ह्येत एव समतिसृष्टाः स्तुवतां यावत्त्वेभ्यो धनं दद्यास्तावन्मम दद्या इति तथेति ह यजमान उवाच ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

भगवान्, तु, एव, मे, सर्वैः, आर्त्विज्यैः, इति, तथा, इति, अथ, तर्हि, एते, एव, समतिसृष्टाः, स्तुवताम्, यावत्, तु, एभ्यः, धनम्, दद्याः, तावत्, मम, दद्याः, इति, तथा, इति, ह, यजमानः, उवाच ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
तु=परंतु		+ मया=मुझसे	
+ अद्यापि=आज भी		समतिसृष्टाः=आज्ञा पाये हुए	
भगवान् एव=आप ही		स्तुवताम्=यज्ञ बिषे स्तुति करें	
मे=मेरे		तु=किन्तु	
सर्वैः=सब		यावत्=जितना	
आर्त्विज्यैः=ऋत्विककर्मों के लिये		धनम्=धन	
अस्तु=हैं		एभ्यः=इन ऋत्विजों के लिये	
इति=तब		दद्याः=दे तू	
+ उक्तः=उषस्ति ऋषि कहता भया कि		तावत्=उतना ही धन	
तथा=अच्छा		मम=मुझको	
इति=ऐसा		दद्याः=दे	
एव=ही		इति इति=ऐसा	
+ स्यात्=होगा		+ श्रुत्वा=सुन करके	
अथ=अब		यजमानः=यजमान ने	
तर्हि=तो		ह=स्पष्ट	
एते एव=ये ही सब ऋत्विज्		उवाच=कहा	
		तथा=बहुत अच्छा	

भावार्थ ।

अब भी आपही मेरे इन सब कर्मों के लिये ऋत्विज् होवें । तब उषस्ति ऋषि ने कहा कि अच्छा मैं हूंगा, यह कहकर यज्ञकर्म कराने को स्वीकार किया । यह कहते हुए कि यह सब ऋत्विज् जो वर्तमान हैं मेरी आज्ञानुसार यज्ञबिषे स्तुति करें और जितना धन आप इनको देना उतनाही मुझको भी देना, उससे अधिक नहीं । इसको राजा ने स्वीकार किया ॥ ३ ॥

मूलम् ।

अथ हैनं प्रस्तोतोपससाद प्रस्तोतर्या देवता प्रस्तावमन्वायत्ता तां चेदविद्वान्प्रस्तोष्यसि मूर्धा ते विपतिष्यतीति मा भगवानवोचत्कतमा सा देवतेति ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, ह, एनम्, प्रस्तोता, उपससाद, प्रस्तोतः, या, देवता, प्रस्तावम्, अन्वायत्ता, ताम्, चेत्, अविद्वान्, प्रस्तोष्यसि, मूर्धा, ते, विपतिष्यति, इति, मा, भगवान्, अवोचत्, कतमा, सा, देवता, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
अथ	यजमान की बात सुनने पर
प्रस्तोता	प्रस्तोता ऋत्विज्
ह	भी
एनम्	इस उषस्ति के
उपससाद	पास आता भया
+ उषस्तिः	उषस्ति ऋषि ने
+ उवाच	कहा कि
प्रस्तोतः	हे प्रस्तोतः !
या	जो
देवता	देवता
प्रस्तावम्	प्रस्ताव भक्ति से
अन्वायत्ता	संबंध रखनेवाला है अर्थात् उसका अधिष्ठाता है
चेत्	यदि
ताम्	उस देवता को
अविद्वान्	न जानता हुआ
प्रस्तोष्यसि	स्तुति करेगा तू तो
ते	तेरा
मूर्धा	मस्तक
विपतिष्यति	गर्दन से अलग होकर गिर जायगा
इति	तब
+ प्रस्तोता	प्रस्तोता
+ उवाच	कहता भया कि
भगवान्	आपने
मा	नहीं
अवोचत्	कहा कि
सा	वह
कतमा	कौन
देवता इति	देवता है जो प्रस्ताव भक्ति कर्म का अधिष्ठाता है

भावार्थ ।

राजा और उषस्ति ऋषि से जो बात हुई है उसको सुनकर प्रस्तोता ऋत्विज् चाक्रायण उषस्ति के पास गया और नम्रतापूर्वक बैठ गया, तब उससे चाक्रायण उषस्ति ऋषि ने कहा, हे प्रस्तोतः ! जो प्रस्ताव भक्ति का अधिष्ठाता देवता है उसको न जानकर यदि तू यज्ञ बिषे स्तुति करेगा तो तेरा मस्तक तेरे गर्दन से अवश्य गिर जायगा । इस

पर प्रस्तोता ने कहा कि हे भगवन्! आपने यह नहीं कहा कि वह कौन देवता है ॥ ४ ॥

मूलम् ।

प्राण इति होवाच सर्वाणि ह वा इमानि भूतानि प्राणमेवाभिसंविशन्ति प्राणमभ्युज्जिहते सैषा देवता प्रस्तावमन्वायत्ता तां चेदविद्वान्प्रास्तोष्यो मूर्धा ते व्यपतिष्यत्तथोक्तस्य मयेति ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ।

प्राणः, इति, ह, उवाच, सर्वाणि, ह, वै, इमानि, भूतानि, प्राणम्, एव, अभिसंविशन्ति, प्राणम्, अभ्युज्जिहते, सा, एषा, देवता, प्रस्तावम्, अन्वायत्ता, ताम्, चेत्, अविद्वान्, प्रास्तोष्यः, मूर्धा, ते, व्यपतिष्यत्, तथा, उक्तस्य, मया, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
इति	इस प्रकार
+ पृष्टः	पूछे हुए उषस्ति ऋषि ने
उवाच	कहा कि
ह	निश्चय करके
+ सः	वह देवता
प्राणः	प्राण है
वै	क्योंकि
ह	निश्चय
इमानि	ये
सर्वाणि	सब
भूतानि	स्थावर जंगम भूत
प्राणम् अभ्युज्जिहते	सृष्टि के आदि में उसी प्राण से ही निकलते हैं
+ च	और
प्राणम् एव	प्रलय होने पर उसी प्राण में ही
अभिसंविशन्ति	लीन हो जाते हैं
+ अतः	इसलिये
सा	वही
एषा	यह
देवता	देवता (प्राण)
प्रस्तावम्	प्रस्ताव कर्म से
अन्वायत्ता	संबंध रखनेवाला है अर्थात् उसका अधिष्ठाता है
चेत्	यदि
ताम्	उसको
अविद्वान्	न जानता हुआ

प्रास्तोष्यः=तू स्तुति करेगा	उक्तस्य=कहा गया
तथा=तो	ते=तेरा
मया=मुझसे	मूर्धा=मस्तक
इति=इस प्रकार	व्यपतिष्यत्=गिर जायगा

भावार्थ ।

इस प्रकार पूछा हुआ उषस्ति ऋषि कहने लगा कि जिस देवता के बारे में मैंने प्रश्न किया था वह देवता प्राण है, क्योंकि उसी प्राण से सृष्टि के आदि में ये सब स्थावर जंगम भूत निकलते हैं और प्रलय होने पर उसी प्राण में ही लय होते हैं, इसीलिये वह प्राण देवता प्रस्तावभक्ति कर्म से संबन्ध रखनेवाला है अर्थात् उस कर्म का अधिष्ठाता है । अगर तू उसको न जानता हुआ तू इस यज्ञ बिषे स्तुति करेगा तो तेरा मस्तक, जैसे कि मैंने तुझसे पहिले कहा था, गिर जायगा ॥ ५ ॥

मूलम् ।

अथ हैनमुद्गातोपससादोद्गातर्या देवतोद्गीथमन्वायत्ता तां चेदविद्वानुद्गास्यसि मूर्धा ते विपतिष्यतीति मा भगवानवोचत्कतमा सा देवतेति ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, ह, एनम्, उद्गाता, उपससाद, उद्गातः, या, देवता, उद्गीथम्, अन्वायत्ता, ताम्, चेत्, अविद्वान्, उद्गास्यसि, मूर्धा, ते, विपतिष्यति, इति, मा, भगवान्, अवोचत्, कतमा, सा, देवता, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ=इसके पीछे		+ तदा=तब	
उद्गाता=उद्गाता ऋत्विज्		+ उषस्तिः=उषस्ति ऋषि	
ह=स्वस्थ होकर		+ उवाच=बोलता भया कि	
एनम्=इस उषस्तिऋषिके		उद्गातः=हे उद्गातः!	
उपससाद=समीप बैठता भया		या=जो	

देवता=देवता
उद्गीथम्=उद्गीथ से
अन्वायत्ता=संबंध रखनेवाला है अर्थात् उसका अधिष्ठाता है
चेत्=यदि
ताम्=उस देवता को
अविद्वान्=न जानता हुआ
उद्गास्यसि=तू गान करेगा तो
ते=तेरा
मूर्धा=मस्तक
विपतिष्यति=गिर जायगा
+ उद्गाता=उद्गाता
+ उवाच=बोलता भया कि
सा=वह
कतमा=कौन
देवता=देवता है
इति=ऐसा
भगवान्=आपने
मा=नहीं पहिले
अवोचत्=कहा था

भावार्थ ।

इसके पीछे उद्गाता ऋत्विज् स्वस्थचित्त होकर उस उषस्ति ऋषि के पास बैठता भया, तब उषस्ति ऋषि ने उससे पूछा कि हे उद्गातः ! जो देवता उद्गीथ भक्ति कर्म का अधिष्ठाता है क्या तू उसको जानता है ? अगर तू उस देवता को न जानता हुआ इस यज्ञ विषे स्तुति करेगा अर्थात् गान करेगा तो तेरा मस्तक गिर जायगा । तब उद्गाता ने कहा कि हे भगवन् ! वह कौन देवता है ? आपने उस देवता का नाम नहीं बताया ॥ ६ ॥

मूलम् ।

आदित्य इति होवाच सर्वाणि ह वा इमानि भूतान्यादित्यमुच्चैः सन्तं गायन्ति सैषा देवतोद्गीथमन्वायत्ता तां चेदविद्वानुदगास्यो मूर्धा ते व्यपतिष्यत्तथोक्तस्य मयेति ॥ ७ ॥

पदच्छेदः ।

आदित्यः, इति, ह, उवाच, सर्वाणि, ह, वै, इमानि, भूतानि, आदित्यम्, उच्चैः, सन्तम्, गायन्ति, सा, एषा, देवता, उद्गीथम्,

अन्वायत्ता, ताम्, चेत्, अविद्वान्, उद्गास्यः, मूर्धा, ते, व्यपतिष्यत्, तथा, उक्तस्य, मया, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
+ सा	वह देवता
आदित्यः	सूर्य है
इति	इस प्रकार
+ उषस्तिः	उषस्ति ऋषि
ह	स्पष्ट
उवाच	कहता भया
+ यम्	जिस
उच्चैः	ऊपर
सन्तम्	स्थित
आदित्यम्	सूर्य की
इमानि	ये
सर्वाणि	सब
भूतानि	स्थावर जंगम प्राणी
ह वै	निश्चय करके
गायन्ति	स्तुति करते हैं
सा	वही
एषा	यह
देवता	सूर्य देवता
उद्गीथम्	उद्गीथ से
अन्वायत्ता	संबन्धरखनेवाला है अर्थात् उसका अधिष्ठाता है
ताम्	इस देवता को
चेत्	यदि
अविद्वान्	न जानता हुआ
उद्गास्यः	तू स्तुति करेगा अर्थात् गान करेगा
तथा	तो
इति	इस प्रकार
मया	मुझ करके
उक्तस्य	कहा हुआ
ते	तेरा
मूर्धा	मस्तक
व्यपतिष्यत्	अलग होकर गिर जायगा

भावार्थ ।

उषस्ति ऋषि ने कहा कि वह देवता सूर्य है जिसकी सब स्थावर जंगम प्राणी स्तुति करते हैं । वही सूर्य देवता उद्गीथ का अधिष्ठाता है । अगर तू उसको न जानता हुआ स्तुति करेगा अर्थात् गान करेगा तो तेरा मस्तक गिर जायगा ॥ ७ ॥

मूलम् ।

अथ हैनं प्रतिहर्त्तोपससाद प्रतिहर्त्तर्या देवता प्रति-

हारमन्वायत्ता तां चेदविद्वान्प्रतिहरिष्यसि मूर्धा ते विपतिष्यतीति मा भगवानवोचत् कतमा सा देवतेति ॥ ८ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, ह, एनम्, प्रतिहर्त्ता, उपससाद, प्रतिहर्त्तः, या, देवता, प्रतिहारम्, अन्वायत्ता, ताम्, चेत्, अविद्वान्, प्रतिहरिष्यसि, मूर्धा, ते, विपतिष्यति, इति, मा, भगवान्, अवोचत्, कतमा, सा, देवता, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
अथ	इसके पीछे
प्रतिहर्त्ता	प्रतिहर्त्ता
ह	भी
एनम्	इस उषस्ति ऋषि के
उपससाद	पास जाता भया
+ उपस्तिः	उषस्ति ऋषि ने
+ उवाच	उससे कहा कि
प्रतिहर्त्तः	हे प्रतिहर्त्तः ।
या	जो
देवता	देवता
प्रतिहारम्	प्रतिहारकर्म से
अन्वायत्ता	संबन्धरखनेवाला है अर्थात् उसका अधिष्ठाता है
चेत्	यदि
ताम्	उस देवता को
अविद्वान्	न जानता हुआ
प्रतिहरिष्यसि	तू प्रतिहार कर्म करेगा तो
ते	तेरा
मूर्धा	मस्तक
विपतिष्यति	गिर जायगा
सा	वह
कतमा	कौन
देवता	देवता है
भगवान्	आपने
मा	नहीं
अवोचत्	कहा
इति	इस प्रकार
+ प्रतिहर्त्ता	प्रतिहर्त्ता
+ उवाच	कहता भया

भावार्थ ।

इसके पीछे प्रतिहर्त्ता भी उस उषस्तिऋषि के पास गया और उससे उषस्ति ऋषि ने कहा कि हे प्रतिहर्त्तः ! जो देवता प्रतिहारकर्म

का अधिष्ठाता है क्या तू उसको जानता है ? अगर तू उसको न जानता हुआ प्रतिहार कर्म करेगा तो तेरा मस्तक गिर जायगा । यह सुनकर प्रतिहर्त्ता ने कहा हे भगवन् ! वह कौन देवता है ? ॥ ८ ॥

मूलम् ।

अन्नमिति होवाच सर्वाणि ह वा इमानि भूतान्यन्नमेव प्रतिहरमाणानि जीवन्ति सैषा देवता प्रतिहारमन्वायत्ता तां चेदविद्वान्प्रत्यहरिष्यो मूर्धा ते व्यपतिष्यत्तथोक्तस्य मयेति तथोक्तस्य मयेति ॥ ९ ॥

इति एकादशः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

अन्नम्, इति, ह, उवाच, सर्वाणि, ह, वै, इमानि, भूतानि, अन्नम्, एव, प्रतिहरमाणानि, जीवन्ति, सा, एषा, देवता, प्रतिहारम्, अन्वायत्ता, ताम्, चेत्, अविद्वान्, प्रत्यहरिष्यः, मूर्धा, ते, व्यपतिष्यत्, तथा, उक्तस्य, मया, इति, तथा, उक्तस्य, मया, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
सा	वह देवता
अन्नम् ह	अन्नही है
इति	ऐसा
+ उपस्तिः	उपस्ति ऋषि
उवाच	कहता भया
+ हि	क्योंकि
वै	निश्चय करके
इमानि	ये
सर्वाणि	सब
भूतानि	भूत
अन्नम् एव	अन्नही को
प्रतिहरमाणानि	खाते हुए
जीवन्ति	जीते हैं
सा	सोई
एषा	यह
ह	निश्चय करके
देवता	देवता (अन्न)
प्रतिहारम्	प्रतिहारकर्म से
अन्वायत्ता	संबंध रखनेवाला है अर्थात् उसका अधिष्ठाता है
ताम्	उस अन्न देवता को
चेत्	यदि

अविद्वान्=न जानता हुआ
प्रत्यहरिष्यः=तू प्रतिहार कर्म करेगा
तथा=तो
इति=इसी प्रकार

मया=मुझ करके
उक्तस्य=कहा हुआ
ते=तेरा
मूर्धा=मस्तक
व्यपतिष्यत्=गिर जायगा

भावार्थ ।

इस पर उषस्तिऋषि ने कहा कि वह देवता अन्न है क्योंकि ये सब प्राणी अन्नही को खाकर जीते हैं, इसीलिये अन्नही देवता प्रतिहारकर्म का अधिष्ठाता है। यदि उस अन्न को न जानता हुआ तू प्रतिहार कर्म करेगा तो तेरा मस्तक, जैसे मैंने कहा है, गिर जायगा ॥ ९ ॥

इति एकादशः खण्डः ।

अथ प्रथमाध्यायस्य द्वादशः खण्डः ।

मूलम् ।

अथातः[१] शौव उद्गीथस्तद्ध बको दाल्भ्यो ग्लावो वा मैत्रेयः स्वाध्यायमुद्वव्राज ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, अतः, शौवः, उद्गीथः, तत्, ह, बकः, दाल्भ्यः, ग्लावः, वा, मैत्रेयः, स्वाध्यायम्, उद्वव्राज ॥

अन्वयः	पदार्थ
अथ	इसके पश्चात्
अतः	अन्न लाभ की इच्छा से
शौवः	कुत्तों से संबन्ध रखनेवाला
उद्गीथः	उद्गीथ
+ प्रस्तूयते	आरंभ किया जाता है
ह	निश्चय करके
दाल्भ्यः	दल्भ्य ऋषि का पुत्र
बकः	बक ऋषि

---

१ अतः हेतुपञ्चमी है इसलिये इसका अर्थ "अन्नलाभ के लिये" लिखा गया है।

वा=अथवा	+ कर्त्तुम्=करने के लिये
मैत्रेयः=मित्रा का पुत्र	उद्वव्राज= पवित्र और निर्जन स्थल में जल समीप जाता भया
ग्लावः=ग्लाव ऋषि	
तत्=एक समय	
स्वाध्यायम्=उद्गीथाध्ययन	

भावार्थ ।

इसके पश्चात् अन्न की प्राप्ति के लिये कुत्तों से संबन्ध रखनेवाला उद्गीथ आरंभ किया जाता है । दल्भ्य ऋषि का पुत्र बक ऋषि अथवा मित्रा का पुत्र ग्लाव ऋषि एक समय उद्गीथ का अध्ययन करने के लिये एक पवित्र निर्जन स्थल बिषे जल के समीप जाता भया । इस मन्त्र बिषे जो कुत्तों से संबन्ध रखनेवाला उद्गीथ लिखा है उसका तात्पर्य यह है कि अन्न के न पाने से पीड़ित कुत्ते जब भूंकते थे तब उनके शब्द को सुनकर अन्न के न पाने से जो दुःख होता है उसका अनुभव करके उसकी निवृत्ति के लिये और अन्न की प्राप्ति के लिये बक ऋषि उद्गीथ का गान करने लगता था, इस कारण इस उद्गीथ का नाम "शौव उद्गीथ" है । बक ऋषि दल्भ्य का पुत्र था और मित्रा नाम ऋषिस्त्री ने उसको गोद लिया था इसलिये वह मैत्रेय और दाल्भ्य नाम करके प्रसिद्ध भया ॥ १ ॥

मूलम् ।

तस्मै श्वा श्वेतः प्रादुर्बभूव तमन्ये श्वान उपसमेत्योचुरन्नं नो भगवानागायत्वशनायाम वा इति ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

तस्मै, श्वा, श्वेतः, प्रादुर्बभूव, तम्, अन्ये, श्वानः, उपसमेत्य, ऊचुः, अन्नम्, नः, भगवान्, आगायतु, अशनायाम, वै, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
श्वेतः=सफ़ेद		तस्मै=उस बक ऋषि पर दया करने के लिये	
श्वा=कुत्ते के रूप में एक ऋषि			

प्रादुर्बभूव=प्रकट होता भया
अन्ये=और छोटे छोटे अन्य
श्वानः=कुत्ते
तम्=उस श्वेत कुत्ते के
उपसमेत्य=पास जाकर
इति=ऐसे
ऊचुः=कहते भये कि
भगवान्=आप

नः=हमारे निमित्त
अन्नम्=अन्न
आगायतु=उत्पन्न करने के लिये गान करें
वै=ताकि
अशनायाम= { हम खायँ अर्थात् क्षुधा की निवृत्ति करें

भावार्थ ।

उस बकऋषि पर दया करने के लिये एक ऋषि सफ़ेद कुत्ते के रूप में उसके समीप प्रकट होता भया और उसके आसपास बहुत से छोटे छोटे कुत्ते जाकर उस श्वेत कुत्ते से कहते भये कि आप हमारे निमित्त अन्न उत्पन्न करने के लिये गान करें ताकि हम सब अन्न को खाकर क्षुधा की निवृत्ति करें ॥ २ ॥

मूलम् ।

तान्होवाचेहैव मा प्रातरुपसमीयातेति तद्ध बको दाल्भ्यो ग्लावो वा मैत्रेयः प्रतिपालयाञ्चकार ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

तान्, ह, उवाच, इह, एव, मा, प्रातः, उपसमीयात, इति, तत्, ह, बकः, दाल्भ्यः, ग्लावः, वा, मैत्रेयः, प्रतिपालयाञ्चकार ॥

अन्वयः	पदार्थ
+ सः	वह ऋषि श्वान की सूरत में
तान्	उन छोटे कुत्तों से
उवाच	कहता भया कि
इह एव	इसीही जगह
प्रातः	प्रातःकाल
ह	अवश्य

अन्वयः	पदार्थ
मा (माम्)	मेरे
उपसमीयात्	पास तुम सब आओ
इति	इस प्रकार
+ उक्तः	कहे हुए
दाल्भ्यः	दल्भ्य ऋषि का पुत्र
बकः	बक ऋषि
वा	अर्थात्

मैत्रेयः=मित्रा का दत्तक पुत्र	प्रतिपालयाञ्चकार	=उस श्वेत कुत्ते के आने की राह देखता रहा
ग्लावः=ग्लाव ऋषि		
तत् ह=उसी ही स्थान पर		

भावार्थ ।

यह सुनकर वह ऋषि जो श्वेत श्वान की सूरत में था उन छोटे कुत्तों से कहता भया कि कल प्रातःकाल तुम सब कोई मेरे पास आओ । ऐसा सुनकर बक ऋषि भी उसी स्थानपर प्रातःकाल उस श्वेत कुत्ते के आने की राह देखता रहा ॥ ३ ॥

मूलम् ।

ते ह यथैवेदं वहिष्पवमानेन स्तोष्यमाणाः संरब्धाः सर्पन्तीत्येवमाससृपुस्ते ह समुपविश्य हिं चक्रुः ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

ते, ह, यथा, एव, इदम् , वहिष्पवमानेन, स्तोष्यमाणाः, संरब्धाः, सर्पन्ति, इति, एवम्, आससृपुः, ते, ह, समुपविश्य, हिम्, चक्रुः ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यथा	=जैसे	संरब्धाः	=मिले हुए एक दूसरे के पीछे
+ इह	=यहां अर्थात् यज्ञ कर्म में	ह	=भली प्रकार
इदम् एव	=ऐसे निश्चयपूर्वक	सर्पन्ति	=चलते हैं
वहिष्पवमानेन	=वहिष्पवमान स्तोत्र करके गान करने के लिये	+तथा एव	=उसी प्रकार मिले हुए
स्तोष्यमाणाः	=स्तुति करनेवाले	* ते	=वे छोटे कुत्ते
+अध्वर्य्वादृत्विजः	=अध्वर्यु आदि ऋत्विज्	आससृपुः	=चलते भये
		च	=और
		ते	=वे छोटे कुत्ते

*वह छोटे कुत्ते के रूप में ऋषिलोग थे ।

ह=भलीभांति	इति=ऐसा शब्द
समुपविश्य=बैठ करके	चक्रुः=करते भये
हिं="हिं हिं"	

भावार्थ ।

प्रातःकाल सब छोटे कुत्ते एक की पूंछ को दूसरा अपने मुँह में रक्खे हुए इस तरह पंक्तिबद्ध जाते भये जैसे यज्ञकर्म में वहिष्यवमान-स्तोत्र करके अध्वर्यु आदि ऋत्विज् गान करने के लिये जाते हैं और वे सब छोटे कुत्ते श्वेत कुत्ते के पास बैठकर "हिं हिं" शब्द करते भये । इस मंत्र में अन्योक्ति अलंकार है । यह अलंकार वहां पर लाया जाता है जहां पर एक के बहाने से दूसरे को कहा जाता है । श्वेत श्वान से यहां मतलब मुख्य प्राण से है और छोटे छोटे कुत्तों से मतलब वागिन्द्रियों से है । वह बक ऋषि अपने वागिन्द्रिय से कहता है कि हे वाणियो ! तुम लोग उद्गीथ की उपासना करके अन्न को उत्पन्न करो और मेरे मुख्य प्राण को देओ ताकि मैं अन्न की दुर्भिक्षता करके पीड़ित न होऊं ॥ ४ ॥

मूलम् ।

ओ३म् ३ मदा ३ मों ३ पिबामों ३ देवो वरुणः प्रजापतिः सविता २ ऽन्नमिहा २ ऽऽहरदन्नपते ३ ऽन्नमिहा २ ऽऽहरा २ ऽऽहरो ३ मिति ॥ ५ ॥

इति द्वादशः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

ओम्, अदाम, ओम्, पिबाम, ओम्, देवः, वरुणः, प्रजापतिः, सविता, अन्नम्, इह, आहरत्, अन्नपते, अन्नम्, इह, आहर, आहर, ओम्, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
+ ततः	इसके पीछे
+ ऊचुः	कहते भये कि
ॐ	ॐ
अदाम	हम खावें
ॐ	ॐ
पिबाम	हम पीवें
ॐ	ॐ
देवः	प्रकाशमान
वरुणः	वृष्टिकर्त्ता
प्रजापतिः	पालनकर्त्ता
सविता	सृष्टिकर्त्ता सूर्य
+ नः	हमारे लिये
इह	इस संसार बिषे
अन्नम्	अन्न को

अन्वयः	पदार्थ
आहरत्	दे तू
+ पुनरपि	फिर भी
+ ऊचुः	बोलते भये कि
+ हे	हे
अन्नपते	अन्न उत्पन्न करनेवाले सूर्य
इह	इसी जगह
अन्नम्	अन्न को
+ नः	हमारे लिये
आहर २	दे तू २
ॐ	ॐ कहकर
इति	भक्ति बिषे उपासना की समाप्ति हुई

भावार्थ ।

इसके पीछे सब कुत्ते कहते भये कि हे प्रकाशवान्, वृष्टिकर्त्ता, पालनकर्त्ता, सृष्टिकर्त्ता, सूर्य ! हमारे लिये इस संसार बिषे अन्न को उत्पन्न कर, पानी को दे ताकि हम ॐ कहकर अन्न को खावें और ॐ कहकर पानी को पीवें ॥ ५ ॥

इति द्वादशः खण्डः ।

——०——

अथ प्रथमाध्यायस्य त्रयोदशः खण्डः ।

मूलम् ।

अयं वाव लोको हाउकारो वायुर्हाइकारश्चन्द्रमा अथकारः । आत्मेहकारोऽग्निरीकारः ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

अयम्, वाव, लोकः, हाउकारः, वायुः, हाइकारः, चन्द्रमाः, अथकारः, आत्मा, इहकारः, अग्निः, ईकारः ॥

अन्वयः	पदार्थ
अयम्=	यह
लोकः=	लोक
वाव=	निश्चय करके
हाउकारः=	हाउ अक्षर में आरोपित है
वायुः=	पवन
हाइकारः=	हाइ अक्षर में आरोपित है
चन्द्रमाः=	चन्द्रमा
अथकारः=	अथ अक्षर में आरोपित है
आत्मा=	आत्मा
इहकारः=	इह अक्षर में आरोपित है
अग्निः=	अग्नि
ईकारः=	ई अक्षर में आरोपित है

भावार्थ ।

अब अन्य प्रकार की उपासना का वर्णन किया जाता है। यह उपासना स्तोभनाम करके प्रसिद्ध है। यह स्तोभ सामवेद का १ भाग है। सामवेद गान के यह स्तोभाक्षर साधक हैं–हाउ, हाइ, अथ, इह, ई आदि स्तोभाक्षर जब आते हैं तो उनके अभिमानी देवता का ध्यान पढ़ते समय किया जाता है। हाउ शब्द में यह संसार आरोपित है, हाइ में वायु आरोपित है, अथ में चन्द्रमा आरोपित है, इह में आत्मा और ई में अग्नि आरोपित हैं। उपासक मंत्र पढ़ते समय जहां पर ऊपर लिखे हुए शब्द आते हैं वहां पर उनके अभिमानी देवता पृथ्वी, वायु, चन्द्रमा, सूर्य और आत्मा का मन में ध्यान करता है। प्रार्थना करते हुए कि हे देवताओ ! मेरा कल्याण करो ॥ १ ॥

मूलम् ।

आदित्य ऊकारो निहव एकारो विश्वेदेवा

औहोयिकारः प्रजापतिर्हिङ्कारः प्राणः स्वरोऽन्नं या वाग्विराट् ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

आदित्यः, ऊकारः, निहवः, एकारः, विश्वेदेवाः, औहोयिकारः, प्रजापतिः, हिङ्कारः, प्राणः, स्वरः, अन्नम्, या, वाक्, विराट् ॥

अन्वयः	पदार्थ
आदित्यः	सूर्य
ऊकारः	ऊकार अक्षर है
निहवः	आह्वान
एकारः	एकार अक्षर है
विश्वेदेवाः	विश्वेदेव
औहोयिकारः	औहोयिकार है
प्रजापतिः	प्रजापति
हिङ्कारः	हिंकार है
प्राणः	प्राण
स्वरः	स्वर है
अन्नम्	अन्न
या	या है
वाक्	वाणी
विराट्	विराट् है

भावार्थ ।

इस मंत्र बिषे सूर्य "ऊकार" अक्षर है, आह्वान "एकार" अक्षर है, विश्वेदेवा "औहोयि" अक्षर हैं, प्रजापति "हिं" अक्षर है, प्राण "स्वर" है, अन्न "या" है, वाक् "विराट्" है । सूर्य "ऊ" अक्षर है क्योंकि यह उष्णता को देता है और आह्वान "ए" अक्षर है, क्योंकि यह शब्द इन्द्र का निर्देशक है, जब वह आवाहन किया जाता है तब वह पहुँचता है। विश्वेदेवा "औहोयि" स्तोभाक्षर है, क्योंकि जब "औहोयि" अक्षर का उच्चारण किया जाता है तब विश्वेदेवों के आराधन का अनुभव होता है, प्रजापति "हिं" स्तोभाक्षर है क्योंकि वह प्रजापति अवर्णनीय है । इसी तरह वह "हिं" भी अवर्णनीय है, प्राण "स्वर" है क्योंकि प्राण स्वर का उद्गमस्थान है अर्थात् निकलने की जगह है । अन्न जो है वह "या" अक्षर है क्योंकि प्राण करके यह अन्न सर्व शरीर में प्रवेश करता है। वाक् जो है वह "विराट्" है क्योंकि

"वैराजसाम" में विराट् का स्तोभवाक् है इसलिये वाकूरूपी स्तोभाक्षर में विराट्दृष्टि से उपासना करनी चाहिए ॥ २ ॥

मूलम् ।

अनिरुक्तस्त्रयोदशः स्तोभः सञ्चरो हुङ्कारः ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

अनिरुक्तः, त्रयोदशः, स्तोभः, सञ्चरः, हुङ्कारः ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अनिरुक्तः	=कारणात्मा	त्रयोदशः	=तेरहवाँ
सञ्चरः	=कार्यरूपी	स्तोभः	=स्तोभ अक्षर है
हुङ्कारः	=हुंकार		

भावार्थ ।

कार्य, कारणरूपी आत्मा हुंकार तेरहवां स्तोभ अक्षर है, इस स्तोभ अक्षर का अर्थ भी अनिर्वचनीय है । इसकी उपासना करने से जो अर्थ सिद्ध होता है वह वर्णन नहीं हो सकता है । उसकी उपासना अवश्य कर्त्तव्य है ॥ ३ ॥

मूलम् ।

दुग्धेऽस्मै वाग्दोहं यो वाचो दोहोऽन्नवानन्नादो भवति य एतामेवꣳ साम्नामुपनिषदं वेदोपनिषदं वेद ॥ ४ ॥

इति प्रथमाध्यायः ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

दुग्धे, अस्मै, वाग्दोहम्, यः, वाचः, दोहः, अन्नवान्, अन्नादः, भवति, यः, एताम्, एवम्, साम्नाम्, उपनिषदम्, वेद, उपनिषदम्, वेद ॥

१—प्रायः समाप्ति में अन्तिम के पद पुनरुक्त होते हैं अतः उनका अर्थ अलग अलग नहीं किया जाता क्योंकि वे समाप्त्यर्थ होते हैं ।

अन्वयः	पदार्थ
यः	जो जो
वाचः	वाणी का
दोहः	फल है
+ तम्	उस उस
वाग्दोहम्	फल को
अस्मै	उस उपासक के लिये
+ उपासना	उसकी उपासना
दुग्धे	देती है
यः	जो उपासक
साम्नाम्	सामवेद के स्तोभाक्षरों के
एताम्	इस
उपनिषदम्	विषय को
एवम्	ऊपर कहे हुए प्रकार
वेद	जानता है
सः	वह उपासक
अन्नवान्	अन्न संपत्तिवाला
+ च	और
अन्नादः	भोजन शक्तिवाला
भवति	होता है

भावार्थ ।

जो जो वाणी का फल है उस उस फल को उपासक को स्तोभाक्षरों की उपासना देती है । जो उपासक सामवेद के स्तोभ अक्षर के विषय को ऊपर कहे हुए प्रकार जानता है वह उपासक अन्न संपत्तिवाला और भोजन शक्तिवाला होता है ॥ ४ ॥

इति प्रथमाध्यायः ॥ १ ॥

———o———

अथ द्वितीयाध्यायस्य प्रथमः खण्डः ।

मूलम् ।

ओं[१] समस्तस्य खलु[२] साम्नः उपासनꣳ साधु यत्खलु साधु तत्सामेत्याचक्षते यदसाधु तदसामेति ॥ १ ॥

१—ओं इस अध्याय के आरंभ में लिखने से मालूम होता है कि इसका संबंध पिछले खंड से है । २—खलुपद यहां कुछ अर्थ नहीं देता है केवल वाक्य की शोभा को दिखाता है ।

पदच्छेदः ।

ॐ, समस्तस्य, खलु, साम्नः, उपासनम्, साधु, यत्, खलु, साधु, तत्, साम, इति, आचक्षते, यत्, असाधु, तत्, असाम, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
समस्तस्य	अंगों के साथ
साम्नः	सामवेद की
उपासनम्	उपासना
साधु	करने योग्य है
यत्	जो साम
साधु	अंगों के साथ है
तत्	वह
खलु	निश्चय करके
साम	साम है
यत्	जो साम
असाधु	अंगों के सहित नहीं है
तत्	वह साम
असाम	साम नहीं है
इति	ऐसा
+ कुशलाः	सामवेद के जाननेवाले निपुण लोक
+ आचक्षते	कहते हैं

भावार्थ ।

अंगों के साथ सामवेद की उपासना करना योग्य है । जो साम अंगों के सहित है वही साम है और जो साम अंगों के सहित नहीं है वह साम नहीं है, ऐसा सामवेद के जाननेवाले निपुणलोक कहते हैं । इस उपनिषद् में पहिले ॐ अक्षर की उपासना कही गई है, उसके पीछे स्तोभ अक्षरों की उपासना कही गई है और उनका महान् फल भी कहा गया है । अब अखंडसाम की उपासना कही जाती है । यह उपासना अतिश्रेष्ठ है, इसके करने से उपासक का बहुत प्रकार से कल्याण होता है ॥ १ ॥

मूलम् ।

तदुताप्याहुः साम्नैनमुपागादिति साधुनैनमुपागादित्येव तदाहुरसाम्नैनमुपागादित्यसाधुनैनमुपागादित्येव तदाहुः ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

तत्, उत, अपि, आहुः, साम्ना, एनम्, उपागात्, इति, साधुना, एनम्, उपागात्, इति, एव, तत्, आहुः, असाम्ना, एनम्, उपागात्, इति, असाधुना, एनम्, उपागात्, इति, एव, तत्, आहुः ॥

अन्वयः	पदार्थ
उतअपि	पहिले कहे हुए के अनन्तर और भी
तत्	फल
एव	स्पष्ट
आहुः	कहते हैं
+ कश्चित्	कोई पुरुष
एनम्	राजा के पास
साम्ना	शान्तिवचनों के साथ
उपागात्	गया
तत्	वहां
+ बन्धनादिरहितम्	बंधनादिक की सज़ा से रहित
+ तम्	उसको
+ दृष्ट्वा	देख करके
इति	ऐसा
आहुः	लोक कहते हैं कि
+ सः	वह
साधुना	अच्छी नीयत के साथ
एनम्	राजा के पास
उपागात्	गया था
+ च	और
+ कश्चित्	कोई पुरुष
असाम्ना	कठोर वचनों के साथ
एनम्	राजा के पास
उपागात्	गया
+ च	और
तत्	वहां
+बन्धनादिसहितम्	क़ैद वग़ैरह की सज़ा से युक्त
+ तम्	उसको
+ दृष्ट्वा	देख करके
इति	ऐसा
आहुः	लोक कहते हैं कि
+ सः	वह
असाधुना एव	बुरी नीयत से ही
एनम्	राजा के पास
उपागात्	गया था
इति	ऐसा महान् भेद असाम और साम के बिषे है

भावार्थ ।

पहिले जो फल कह आये हैं उसके सिवाय साम की उपासना के

और भी फल को कहते हैं । अगर कोई पुरुष साम के सहित अर्थात् शान्तिवचनों के साथ किसी राजा के पास गया और वहां आदर पाया और वापिस आया तो लोक कहते हैं कि वह पुरुष अच्छी नीयत के साथ राजा के पास गया था और अगर कोई पुरुष असाम के साथ अर्थात् कठोर वचनों के साथ किसी राजा के पास गया और वहां कारागार में पड़ गया तो उसको ऐसा देखकर लोक कहते हैं कि वह बुरी नीयत से साम को तिरस्कार करके राजा के पास गया था । राजनैतिक साम शब्द में जो यह गुण है वह इस कारण है कि यह "साम" उस वैदिक "साम" से अक्षर में एकता रखता है । यहां पर श्लेषालंकार से वैदिक साम की स्तुति की गई है ॥ २ ॥

मूलम् ।

अथोताप्याहुः साम नो बतेति यत्साधु भवति साधु बतेत्येव तदाहुरसाम नो बतेति यदसाधु भवत्यसाधु बतेत्येव तदाहुः ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, उत, अपि, आहुः, साम, नः, बत, इति, यत्, साधु, भवति, साधु, बत, इति, एव, तत्, आहुः, असाम, नः, बत, इति, यत्, असाधु, भवति, असाधु, बत, इति, एव, तत्, आहुः ॥

अन्वयः	पदार्थ
अथ=	इसके पश्चात्
उतअपि=	और भी इस विषय में
इति=	ऐसा
आहुः=	लोक कहते हैं
यत्=	जो
नः=	हमारा
साम=	साम
भवति=	है
तत्=	वहां
नः=	हमारा
साधु साधु=	साधु है
+ किंच=	और
यत्=	जो

+ नः=हमारा	+ कुशलाः=विद्वान्
असाम=असाम है	बत बत=निश्चय करके
तत्=वही	आहुः=कहते हैं
+नः=हमारा	इति इति=ऐसा
एव एव=अवश्यही	बत बत=निश्चय करके
असाधु असाधु=असाधु है	आहुः=कहते हैं
इति=ऐसा	

भावार्थ ।

इसके पश्चात् और भी इस विषय में लोग ऐसा कहते हैं कि जो हमारा साम है वही हमारा साधु है और जो हमारा असाम है वही हमारा असाधु है । साम के अर्थ अच्छे के हैं और असाम के अर्थ बुरे के हैं । इसी तरह असाधु के अर्थ बुरे के हैं और साम के अर्थ अच्छे के हैं । साधु में जो अच्छेपन का अर्थ है वह इस कारण से है कि साम शब्द का "सा" और साधुशब्द का "सा" एक दूसरे से एकता रखता है । यह साम की महिमा है ॥ ३ ॥

मूलम् ।

स य एतदेवं विद्वान्साधु सामेत्युपास्तेऽभ्याशो ह यदेनꣳ साधवो धर्मा आ च गच्छेयुरुप च नमेयुः[1] ॥ ४ ॥

इति प्रथमः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

सः, यः, एतत्, एवम्, विद्वान्, साधु, साम, इति, उपास्ते, अभ्याशः, ह, यत्, एनम्, साधवः, धर्माः, आ, च, गच्छेयुः, उप, च, नमेयुः ॥

१—आगच्छेयुः और उपनमेयुः भविष्यत्काल का लिंग रखते हैं पर अर्थ वर्तमानकाल का देते हैं ।

अन्वयः	पदार्थ
यत्	जिस कारण
यः	जो उपासक
सः	वह साम असाम के भेद का जाननेवाला
एतत्	इस
साधु	शोभन अंग सहित
साम	साम को
एवम्	कहे हुए प्रकार
विद्वान्	जानता हुआ
इति	ऐसी
उपास्ते	उपासना करता है
+ अतः	इसी कारण
अभ्याशः ह	अतिशीघ्र
एनम्	उस उपासक के पास
साधवः	श्रुतिस्मृति प्रतिपादित
धर्माः	धर्म
आगच्छेयुः	प्राप्त होते हैं
च	और
उपनमेयुः	उपस्थित रहते हैं

भावार्थ ।

जिस कारण साम और असाम के भेद को जान करके उपासक अंगोंसहित साम की उपासना कहे हुए प्रकार करता है इसी कारण उस उपासक को श्रुतिस्मृतिप्रतिपादित धर्म प्राप्त होते हैं और उपस्थित रहते हैं ॥ ४ ॥

इति प्रथमः खण्डः ।

अथ द्वितीयाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः ।

मूलम् ।

लोकेषु पञ्चविधꣳ सामोपासीत पृथिवी हिङ्कारः । अग्निः प्रस्तावोऽन्तरिक्षमुद्गीथ आदित्यः प्रतिहारो द्यौर्निधनमित्यूर्ध्वेषु ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

लोकेषु, पञ्चविधम्, साम, उपासीत, पृथिवी, हिङ्कारः, अग्निः,

प्रस्तावः, अन्तरिक्षम्, उद्गीथः, आदित्यः, प्रतिहारः, द्यौः, निधनम्, इति, ऊर्ध्वेषु ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
ऊर्ध्वेषु	=ऊपर की गति है जिसमें ऐसे	पृथिवी	=पृथ्वी है
लोकेषु	=पृथिव्यादि लोकों में	अग्निः	=अग्नि
+ साधु	=अंगसहित	प्रस्तावः	=प्रस्ताव है
पञ्चविधम्	=पांच प्रकार के	अन्तरिक्षम्	=आकाश
साम	=साम की	उद्गीथः	=उद्गीथ है
इति	=इस प्रकार	आदित्यः	=सूर्य
उपासीत	=उपासना करे	प्रतिहारः	=प्रतिहार है
हिङ्कारः	=हिंकार	द्यौः	=स्वर्ग
		निधनम्	=गये हुए उपासकों का स्थान है

भावार्थ ।

उपासक पांच प्रकारवाले साम की उपासना इस प्रकार करे कि हिंकार पृथिवी है, प्रस्ताव अग्नि है, उद्गीथ आकाश है, प्रतिहार सूर्य है, गये हुए उपासकों का स्थान स्वर्ग है । यहां वादी कहता है कि साम का अर्थ साधु अर्थात् धर्म है और पृथिव्यादिक असाम है । साम और असाम की सदृशता कैसे हो सकती है ? इसके जवाब में भाष्यकार कहते हैं कि वादी का कथन असंगत है क्योंकि धर्मरूपी ब्रह्म से पृथिव्यादिक की उत्पत्ति है इसलिये ये सब असाम नहीं हैं सामरूपही हैं । कारण और कार्य में कोई भिन्नता नहीं होती है, जो कारण है वही कार्य है, ऐसा समझ कर मंत्र ने साम की पांच प्रकार की उपासना पृथिव्यादिक में आरोप करके कही है ॥ १ ॥

मूलम् ।

अथावृत्तेषु द्यौर्हिङ्कार आदित्यः प्रस्तावोऽन्तरिक्ष-

मुद्गीथोऽग्निः प्रतिहारः पृथिवी निधनम् ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, आवृत्तेषु, द्यौः, हिङ्कारः, आदित्यः, प्रस्तावः, अन्तरिक्षम्, उद्गीथः, अग्निः, प्रतिहारः, पृथिवी, निधनम् ॥

अन्वयः	पदार्थ
अथ	फिर
आवृत्तेषु	नीचे के लोकों में
+ साम	साम की
+ इति	इस प्रकार
+ उपासीत	उपासना करे
द्यौः	स्वर्ग
हिङ्कारः	हिंकार है
आदित्यः	सूर्य
प्रस्तावः	प्रस्ताव है
अन्तरिक्षम्	आकाश
उद्गीथः	उद्गीथ है
अग्निः	अग्नि
प्रतिहारः	प्रतिहार है
पृथिवी	पृथ्वी
निधनम्	ऊपर लोकों से आये हुए उपासकों का स्थान है

भावार्थ ।

वही उपासक साम के पांच अंगों की नीचे कहे हुए प्रकार की उपासना करे। स्वर्ग हिंकार है, सूर्य प्रस्ताव है, आकाश उद्गीथ है, अग्नि प्रतिहार है और पृथिवी स्वर्ग लोक से आये हुए उपासकों का स्थान है ॥ २ ॥

मूलम् ।

कल्पन्ते हास्मै लोका ऊर्ध्वाश्चावृत्ताश्च य एतदेवं विद्वाँल्लोकेषु पञ्चविधं सामोपास्ते ॥ ३ ॥

इति द्वितीयः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

कल्पन्ते, ह, अस्मै, लोकाः, ऊर्ध्वाः, च, आवृत्ताः, च, यः, एतत्, एवम्, विद्वान्, लोकेषु, पञ्चविधम्, साम, उपास्ते ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
लोकेषु	लोकों में	ऊर्ध्वाः	ऊपर के
यः	जो उपासक	लोकाः	लोक
एतत्	इस	च	और
पञ्चविधम्	स्तोभाक्षरयुक्त पांच प्रकारवाले	आवृत्ताः	नीचे के
साम	साधु साम को	+ लोकाः	लोक
एवम्	पूर्वोक्त प्रकार से	च	भी
विद्वान्	जानता हुआ	ह	निश्चय करके
उपास्ते	उपासना करता है	कल्पन्ते	भोग्यरूप से उपस्थित होते हैं
अस्मै	उस उपासक के लिये		

भावार्थ ।

लोकों में जो उपासक साम की उपासना स्तोभाक्षर सहित पूर्वोक्त प्रकार से जानता हुआ करता है, तो उसके लिये ऊपर के स्वर्गादि लोक और नीचे के भूमि आदि लोक भोग सहित प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

इति द्वितीयः खण्डः ।

अथ द्वितीयाध्यायस्य तृतीयः खण्डः ।

मूलम् ।

वृष्टौ पञ्चविधꣳ सामोपासीत पुरोवातो हिङ्कारो मेघो जायते स प्रस्तावो वर्षति स उद्गीथो विद्योतते स्तनयति स प्रतिहारः ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

वृष्टौ, पञ्चविधम्, साम, उपासीत, पुरोवातः, हिङ्कारः, मेघः, जायते, सः, प्रस्तावः, वर्षति, सः, उद्गीथः, विद्योतते, स्तनयति, सः, प्रतिहारः ॥

अन्वयः	पदार्थ
वृष्टौ	वृष्टि विषे
पञ्चविधम्	पांच प्रकार के भेद हैं जिसमें ऐसे
साम	साम की
+ इति	इस प्रकार
+ उपासकः	उपासक
उपासीत	उपासना करे
पुरोवातः	वह वायु जो पानी बरसने के पहिले चलता है
सः	वह
हिङ्कारः	हिंकार
जायते	है
+ यः	जो
मेघः	मेघ है
सः	वह
प्रस्तावः	प्रस्ताव है
+ यः	जो
वर्षति	बरसता है
सः	वह
उद्गीथः	उद्गीथ है
+ यः	जो
विद्योतते	प्रकाश के साथ चमकता है
+ च	और
स्तनयति	शब्द करता है
सः	वह
प्रतिहारः	प्रतिहार है

भावार्थ ।

वृष्टि विषे उपासक पांच प्रकारवाले साम की उपासना इस प्रकार करे । जो वायु पानी आने के पहिले चलता है वह हिंकार है, जो मेघ है वह प्रस्ताव है, जो बरसता है वह उद्गीथ है, जो प्रकाश के साथ चमकता है और शब्द करता है अर्थात् बिजुलीरूप है वह प्रतिहार है । सृष्टि का कल्याण वर्षा द्वारा होता है, जब वृष्टि विषे उपासना कहे हुए प्रकार की जाती है तो उसका फल प्राणिमात्र के वास्ते सुखदायक होता है ॥ १ ॥

मूलम् ।

उद्गृह्णाति तन्निधनं वर्षति हास्मै वर्षयति ह य एतदेवं विद्वान्वृष्टौ पञ्चविधꣳ सामोपास्ते ॥ २ ॥

इति तृतीयः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

उद्गृह्णाति, तत्, निधनम्, वर्षति, ह, अस्मै, वर्षयति, ह, यः, एतत्, एवम्, विद्वान्, वृष्टौ, पञ्चविधम्, साम, उपास्ते ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
+ यत्	जो साम	पञ्चविधम्	पांच प्रकार के अंग-सहित
उद्गृह्णाति	वर्षा को रोकता है	एतत्	इस
तत्	वही साम	साम	साम की
निधनम्	निधन है	उपास्ते	उपासना करता है
+ तत्	वही साम	+ अस्मै	उसके लिये
अस्मै	उपासक के लिये	+ ऊर्ध्वाः	ऊपर के
वर्षति	बरसता है	+ च	और
ह	और	+ आवृत्ताः	नीचे के
वर्षयति	वृष्टि कराता है	+ लोकाः	लोक
यः	जो उपासक	+ कल्पन्ते	उपस्थित रहते हैं अर्थात् वह उन सब लोकों को प्राप्त होता है
एवम्	इस प्रकार		
विद्वान्	जानता हुआ		
वृष्टौ	वृष्टि बिषे		

भावार्थ ।

जो साम वर्षा को रोकता है वही साम निधन है अर्थात् उस साम बिषे जल जमा रहता है और फिर वही साम उपासक के कल्याण के लिये बरसा करता है । जो उपासक इस प्रकार जानता हुआ वृष्टि बिषे पांचों अंगों सहित साम की उपासना करता है, उसको ऊपर और नीचे के सब लोक प्राप्त होते हैं, अर्थात् वह सब लोकों का स्वामी होता है ॥ २ ॥

इति तृतीयः खण्डः ।

——०——

अथ द्वितीयाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः ।

मूलम् ।

सर्वास्वप्सु पञ्चविधꣳ सामोपासीत मेघो यत्संप्लवते स हिङ्कारो यद्वर्षति स प्रस्तावो याः प्राच्यः स्यन्दन्ते स उद्गीथो याः प्रतीच्यः स प्रतिहारः समुद्रो निधनम् ॥१॥

पदच्छेदः ।

सर्वासु, अप्सु, पञ्चविधम् , साम, उपासीत, मेघः, यत् , संप्लवते, सः, हिङ्कारः, यत् , वर्षति, सः, प्रस्तावः, याः, प्राच्यः, स्यन्दन्ते, सः, उद्गीथः, याः, प्रतीच्यः, सः, प्रतिहारः, समुद्रः, निधनम् ॥

अन्वयः	पदार्थ
+ उपासकः	उपासक
सर्वासु	सब
अप्सु	जलों में
पञ्चविधम्	पांच प्रकारवाले
साम	साम की
+ इति	इस प्रकार
उपासीत	उपासना करे
यत्	जो
मेघः	मेघ
संप्लवते	इकट्ठा होता है
सः	वह
हिङ्कारः	हिंकार है
यत्	जो
वर्षति	बरसता है
सः	वह
प्रस्तावः	प्रस्ताव है
याः	जो जल
प्राच्यः	पूर्व ओर से गंगादिक नदियों में
स्यन्दन्ते	बहता है
सः	वह
उद्गीथः	उद्गीथ है
याः	जो जल
प्रतीच्यः	पूर्व से पश्चिम को नर्मदादि नदियों में बहता है
सः	वह
प्रतिहारः	प्रतिहार है
समुद्रः	समुद्र
निधनम्	निधन है अर्थात् जल के रहने का घर है

भावार्थ ।

उपासक जल बिषे पांचों अंगों सहित साम की उपासना इस

प्रकार करे–जो मेघ इकट्ठा होता है वह हिंकार है, जो बरसता है वह प्रस्ताव है, जो जल पूर्व की तरफ़ गंगादिक नदियों में जाता है वह उद्गीथ है, जो जल पूर्व से पश्चिम की तरफ़ नर्मदा आदि नदियों में बहता है वह प्रतिहार है और जो समुद्र है वह निधन है अर्थात् जल के रहने का घर है ॥ १ ॥

मूलम् ।

न हाप्सु प्रैत्यप्सुमान्भवति य एतदेवं विद्वान्सर्वास्वप्सु पञ्चविधꣳ सामोपास्ते ॥ २ ॥

इति चतुर्थः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

न, ह, अप्सु, प्रैति, अप्सुमान्, भवति, यः, एतत्, एवम्, विद्वान्, सर्वासु, अप्सु, पञ्चविधम्, साम, उपास्ते ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यः	जो उपासक	+ सः	वह
एतत्	इस	अप्सु	जलों में डूब करके
पञ्चविधम्	पांच प्रकारवाले	न	नहीं
साम	साम को	प्रैति	मरता है
एवम्	इस कहे हुए प्रकार	च	और
सर्वासु	सब	ह	निश्चय करके
अप्सु	जलों में	अप्सुमान्	जल का स्वामी
विद्वान्	जानता हुआ	भवति	होता है
उपास्ते	उपासना करता है		

भावार्थ ।

जो उपासक कहे हुए प्रकार पांचों अंगों सहित साम की उपासना जल विषे जानता हुआ करता है वह जल में डूबकर नहीं मरता है

और जल का स्वामी होता है अर्थात् जो समुद्रादिक में मोती, मूंगा आदि उत्पन्न होते हैं वह सब उसको प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

इति चतुर्थः खण्डः ।

अथ द्वितीयाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः ।

मूलम् ।

ऋतुषु पञ्चविधꣳ सामोपासीत वसन्तो हिङ्कारो ग्रीष्मः प्रस्तावो वर्षा उद्गीथः शरत्प्रतिहारो हेमन्तो निधनम् ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

ऋतुषु, पञ्चविधम्, साम, उपासीत, वसन्तः, हिङ्कारः, ग्रीष्मः, प्रस्तावः, वर्षा, उद्गीथः, शरत्, प्रतिहारः, हेमन्तः, निधनम् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
ऋतुषु	ऋतुओं में	प्रस्तावः	प्रस्ताव है
पञ्चविधम्	पांच प्रकारवाले	वर्षा	वर्षाऋतु
साम	साम की	उद्गीथः	उद्गीथ है
+ इति	इस प्रकार	शरत्	शरद्ऋतु
उपासीत	उपासना करे	प्रतिहारः	प्रतिहार है
वसन्तः	वसंतऋतु	हेमन्तः	हेमन्तऋतु
हिङ्कारः	हिंकार है	निधनम्	निधन है
ग्रीष्मः	ग्रीष्मऋतु		

भावार्थ ।

पांच प्रकार के जो ऋतु हैं, उनमें पांचों अंगों सहित साम की उपासना इस प्रकार करे—वसंतऋतु हिंकार है, ग्रीष्मऋतु प्रस्ताव है, वर्षाऋतु उद्गीथ है, शरद्ऋतु प्रतिहार है और हेमंतऋतु निधन है क्योंकि इस ऋतु में जीव बहुत मरते हैं ॥ १ ॥

मूलम् ।

कल्पन्ते हास्मा ऋतव ऋतुमान्भवति य एतदेवं विद्वानृतुषु पञ्चविधꣳ सामोपास्ते ॥ २ ॥

इति पञ्चमः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

कल्पन्ते, ह, अस्मै, ऋतवः, ऋतुमान्, भवति, यः, एतत्, एवम्, विद्वान्, ऋतुषु, पञ्चविधम्, साम, उपास्ते ॥

अन्वयः	पदार्थ
यः	जो उपासक
ऋतुषु	ऋतुओं में
एतत्	इस
पञ्चविधम्	पांच प्रकार के
साम	साम को
एवम्	कहे हुए प्रकार
विद्वान्	जानता हुआ अर्थात् भावना करता हुआ
उपास्ते	उपासना करता है
अस्मै	उस उपासक के लिये
ऋतवः	पञ्च ऋतु
कल्पन्ते	अपने अपने समय में फल देने को तैयार होते हैं
ह	और
+ सः	वह उपासक
ऋतुमान्	सब ऋतुओं का सुख भोगनेवाला
भवति	होता है

भावार्थ ।

जो उपासक पांच ऋतुओं में पांचों अंगों सहित साम की उपासना कहे हुए प्रकार करता है उस उपासक के लिये सब ऋतुएँ अपने अपने समय के फल देने को तैयार रहती हैं और वह उपासक सब ऋतुओं का सुख भोगनेवाला होता है ॥ २ ॥

इति पञ्चमः खण्डः ।

अथ द्वितीयाध्यायस्य षष्ठः खण्डः ।

मूलम् ।

पशुषु पञ्चविधꣳ सामोपासीताजा हिङ्कारोऽवयः,

प्रस्तावो गाव उद्गीथोऽश्वाः प्रतिहारः पुरुषो निधनम् ॥१॥

पदच्छेदः ।

पशुषु, पञ्चविधम्, साम, उपासीत, अजाः, हिङ्कारः, अवयः, प्रस्तावः, गावः, उद्गीथः, अश्वाः, प्रतिहारः, पुरुषः, निधनम् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
पशुषु	पशुओं में	प्रस्तावः	प्रस्ताव हैं
पञ्चविधम्	पांच प्रकारवाले	गावः	गौवें
साम	साम की	उद्गीथः	उद्गीथ हैं
+ इति	इस प्रकार	अश्वाः	अश्व
उपासीत	उपासना करे	प्रतिहारः	प्रतिहार हैं
अजाः	बकरे	पुरुषः	पुरुष
हिङ्कारः	हिंकार हैं	निधनम्	निधन है
अवयः	भेड़ें		

भावार्थ ।

पशुओं में उपासक पांच प्रकार अंगों सहित साम की उपासना इस प्रकार करे—बकरे हिंकार हैं, भेड़ें प्रस्ताव हैं, गौवें उद्गीथ हैं, घोड़े प्रतिहार हैं और पुरुष निधन है । जिस क्रम से पशु उत्पन्न हुए हैं उसी क्रम से इस मंत्र बिषे उनमें साम की उपासना करने के लिये लिखी गई है ॥ १ ॥

मूलम् ।

भवन्ति हास्य पशवः पशुमान्भवति य एतदेवं विद्वान्पशुषु पञ्चविधꣳ साम उपास्ते ॥ २ ॥

इति षष्ठः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

भवन्ति, ह, अस्य, पशवः, पशुमान्, भवति, यः, एतत्, एवम्, विद्वान्, पशुषु, पञ्चविधम्, साम, उपास्ते ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
एवम्	ऊपर कहे हुए प्रकार	अस्य	उस उपासक के घर
विद्वान्	जानता हुआ	पशवः	बहुत से पशु
यः	जो	भवन्ति	होते हैं
पशुषु	पशुओं में	+ च	और
पञ्चविधम्	पांच प्रकारवाले	+ सः	वह
साम	साम को	ह	निश्चय करके
+ इति	इस प्रकार	पशुमान्	बहुत से पशुओं का स्वामी
उपास्ते	उपासना करता है	भवति	होता है

भावार्थ ।

जो उपासक ऊपर कहे हुए प्रकार जानता हुआ पांचों अंगों सहित साम की उपासना पशुओं में करता है, उसके घर में बहुत से पशु हो जाते हैं और वह बहुत से पशुओं का मालिक हो जाता है। पूर्वकाल में पशु ही धन समझे जाते थे इसलिये पशुओं की वृद्धि धन की वृद्धि समझी जाती थी। अब भी देहातों में ऐसे ही समझते हैं ॥ २ ॥

इति षष्ठः खण्डः ।

अथ द्वितीयाध्यायस्य सप्तमः खण्डः ।

मूलम् ।

प्राणेषु पञ्चविधꣳ परोवरीयः सामोपासीत प्राणो हिङ्कारो वाक्प्रस्तावश्चक्षुरुद्गीथः श्रोत्रं प्रतिहारो मनो निधनं परोवरीयाꣳसि वा एतानि ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

प्राणेषु, पञ्चविधम्, परोवरीयः, साम, उपासीत, प्राणः, हिङ्कारः,

वाक्, प्रस्तावः, चक्षुः, उद्गीथः, श्रोत्रम्, प्रतिहारः, मनः, निधनम्, परोवरीयांसि, वै, एतानि ॥

अन्वयः	पदार्थ
+ उपासकः	उपासक
प्राणेषु	प्राणों में
पञ्चविधम्	पांच प्रकारवाले
परोवरीयः	अतिश्रेष्ठ
साम	साम की
+ इति	इस प्रकार
उपासीत	उपासना करे
प्राणः	नासिका
हिङ्कारः	हिंकार है
वाक्	वाणी
प्रस्तावः	प्रस्ताव है
चक्षुः	नेत्र
उद्गीथः	उद्गीथ है
श्रोत्रम्	कर्ण
प्रतिहारः	प्रतिहार है
मनः	मन
निधनम्	निधन है
एतानि	ये नासिकादिक इन्द्रियां
वै	निश्चय करके
परोवरीयांसि	उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं

भावार्थ ।

उपासक पांचों अंगों सहित साम की उपासना इन्द्रियों विषे इस प्रकार करे—नासिका हिङ्कार है, वाणी प्रस्ताव है, नेत्र उद्गीथ है, कर्ण प्रतिहार है और मन निधन है । जैसे इन्द्रियां क्रमवार श्रेष्ठ हैं अर्थात् नासिका से वाणी श्रेष्ठ है, वाणी से नेत्र श्रेष्ठ हैं, नेत्र से कर्ण श्रेष्ठ हैं और कर्ण से मन श्रेष्ठ है उसी तरह हिङ्कार से वाणी श्रेष्ठ है, वाणी से प्रस्ताव श्रेष्ठ है, प्रस्ताव से उद्गीथ श्रेष्ठ है, उद्गीथ से प्रतिहार श्रेष्ठ है, प्रतिहार से निधन श्रेष्ठ है । घ्राणेन्द्रिय से वाक् इन्द्रिय श्रेष्ठ है क्योंकि घ्राणेन्द्रिय से केवल प्राप्त गन्ध का प्रकाश होता है परन्तु वाक् इन्द्रिय से गन्ध और दूसरे विषयों का भी प्रकाश होता है । वाक् इन्द्रिय की अपेक्षा चक्षु इन्द्रिय श्रेष्ठ है क्योंकि वाणी तो केवल विषयों को बताती है और नेत्र विषयों को प्रत्यक्ष दिखलाता है । नेत्र की अपेक्षा कर्ण श्रेष्ठ है क्योंकि चक्षु केवल सामने की

वस्तु को प्रत्यक्ष करता है परन्तु श्रोत्र इन्द्रिय अप्रत्यक्ष अर्थात् दूर के शब्द को भी प्रत्यक्ष करता है । श्रोत्र की अपेक्षा मन श्रेष्ठ है क्योंकि विना मन की सहायता के कोई इन्द्रिय भी अपने भोग्यविषय के ग्रहण करने में समर्थ नहीं होती है ॥ १ ॥

मूलम् ।

परोवरीयो हास्य भवति परोवरीयसो ह लोका-ञ्जयति य एतदेवं विद्वान्प्राणेषु पञ्चविधं परोवरीयः सामोपास्त इति तु पञ्चविधस्य ॥ २ ॥

इति सप्तमः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

परोवरीयः, ह, अस्य, भवति, परोवरीयसः, ह, लोकान्, जयति, यः, एतत्, एवम्, विद्वान्, प्राणेषु, पञ्चविधम्, परोवरीयः, साम, उपास्ते, इति, तु, पञ्चविधस्य ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यः	जो उपासक	भवति	होता है
एवम्	इस प्रकार	ह	और
विद्वान्	जानता हुआ	+ सः	वह
प्राणेषु	इन्द्रियों विषे	परोवरीयसः	उत्कृष्टतर
एतत्	इस	लोकान्	लोकों को
पञ्चविधम्	पांच अंगों सहित	जयति	जीतता है अर्थात् प्राप्त होता है
परोवरीयः	अतिश्रेष्ठ	इति	ऐसा
साम	साम की	तु	निश्चयपूर्वक
उपास्ते	उपासना करता है	पञ्चविधस्य	इस पांच प्रकार-वाले साम की
अस्य	उसका	+ उपासना	उपासना है
+ जीवनम्	जीवन		
परोवरीयः	अतिश्रेष्ठ		

भावार्थ ।

जो उपासक इस प्रकार जानता हुआ इन्द्रियों विषे पांचों अंगों सहित साम की उपासना करता है उसका जीवन अतिश्रेष्ठ होता है और वह उत्कृष्ट लोकों को प्राप्त होता है ॥ २ ॥

इति सप्तमः खण्डः ।

अथ द्वितीयाध्यायस्याष्टमः खण्डः ।

मूलम् ।

अथ सप्तविधस्य वाचि सप्तविधꣳ सामोपासीत यत्किंच वाचो हुमिति स हिङ्कारो यत्प्रेति स प्रस्तावो यदेति स आदिः ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, सप्तविधस्य, वाचि, सप्तविधम् , साम, उपासीत, यत्किंच, वाचः, हुम् , इति, सः, हिङ्कारः, यत् . प्र, इति, सः, प्रस्तावः, यत् , आ, इति, सः, आदिः ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ	अब	सः	वह
सप्तविधस्य	सात प्रकार के	हुम्	हुंकार है
+ साम्नः	साम की	इति	ऐसा
+ उपासना	उपासना	+ सः	वह हुंकार
इति	इस प्रकार	हिङ्कारः	हिंकार है
+ उच्यते	कही जाती है	यत्	जो
वाचि	वाणी में	प्र	प्र, उपसर्ग है
सप्तविधम्	सात अंगों सहित	सः	वह
साम	साम की	प्रस्तावः	प्रस्ताव है
इति	इस प्रकार	यत्	जो
उपासीत	उपासना करे	आ	आ, उपसर्ग है
यत्किंच	जो कुछ	सः	वह
वाचः	वाणी है	आदिः	आदि है

भावार्थ ।

इस मंत्र में तीन अंग सहित और अगले मन्त्र में चार अंग सहित, इस तरह सात अंगों सहित साम की उपासना अब कही जाती है। जो वाणी है वह हुंकार है, जो हुंकार है वह हिंकार है, जो प्र उपसर्ग है वह प्रस्ताव है, जो आ उपसर्ग है वह आदि है ॥ १ ॥

मूलम् ।

यदुदिति स उद्गीथो यत्प्रतीति स प्रतिहारो यदुपेति स उपद्रवो यन्नीति तन्निधनम् ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

यत्, उत्, इति, सः, उद्गीथः, यत, प्रति, इति, सः, प्रतिहारः, यत्, उप, इति, सः, उपद्रवः, यत्, नि, इति, तत्, निधनम ॥

अन्वयः	पदार्थ
यत्	जो
उत्	उत्
इति	ऐसा उपसर्ग है
सः	वह
उद्गीथः	उद्गीथ है
यत्	जो
प्रति	प्रति
इति	ऐसा उपसर्ग है
सः	वह
प्रतिहारः	प्रतिहार है
यत्	जो
उप	उप
इति	ऐसा उपसर्ग है
सः	वह
उपद्रवः	उपद्रव है
यत्	जो
नि	नि
इति	ऐसा उपसर्ग है
तत्	वह
निधनम्	निधन है

भावार्थ ।

जो उत् उपसर्ग है वही उद्गीथ है, जो प्रति उपसर्ग है वही प्रतिहार है, जो उप उपसर्ग है वही उपद्रव है और जो नि उपसर्ग है वही निधन है ॥ २ ॥

मूलम् ।

दुग्धेऽस्मै वाग्दोहं यो वाचो दोहोऽन्नवानन्नादो भवति य एतदेवं विद्वान्वाचि सप्तविधꣳ सामोपास्ते ॥ ३ ॥

इत्यष्टमः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

दुग्धे, अस्मै, वाग्दोहम्, यः, वाचः, दोहः, अन्नवान्, अन्नादः, भवति, यः, एतत्, एवम्, विद्वान्, वाचि, सप्तविधम्, साम, उपास्ते ॥

अन्वयः	पदार्थ
यः	जो
वाचः	वाणी का
दोहः	फल है
+ तत्	उस
वाग्दोहम्	वाणी के फल को
अस्मै	उपासक के लिये
+ उपासना	उपासना
दुग्धे	पूर्ण करती है
एवम्	कहे हुए प्रकार
विद्वान्	जानते हुए
यः	जो उपासक
वाचि	वाणी में
एतत्	इस
सप्तविधम्	सात प्रकार के
साम	साम की
उपास्ते	उपासना करता है
+ सः	वह उपासक
अन्नवान्	अन्नसंपत्तिवाला
+ च	और
अन्नादः	भोजनशक्तिवाला
भवति	होता है

भावार्थ ।

वाणी के जो जो फल हैं उन सब फलों को उपासना प्राप्त करती है । जो उपासक इस प्रकार जानता हुआ वाणी विषे सातों अंगों सहित साम की उपासना करता है वह अन्नसंपत्तिवाला और भोजनशक्तिवाला होता है ॥ ३ ॥

इत्यष्टमः खण्डः ।

——०——

अथ द्वितीयाध्यायस्य नवमः खण्डः ।

मूलम् ।

अथ खल्वमुमादित्यꣳ सप्तविधꣳ सामोपासीत सर्वदा समस्तेन साम मां प्रति मां प्रतीति सर्वेण समस्तेन साम ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, खलु, अमुम्, आदित्यम्, सप्तविधम्, साम, उपासीत, सर्वदा, समः, तेन, साम, माम्, प्रति, माम्, प्रति, इति, सर्वेण, समः, तेन, साम ॥

अन्वयः	पदार्थ
अथ	वाणी में साम की उपासना कहने के पश्चात्
अमुम्	उस
आदित्यम्	सूर्य बिषे
सप्तविधम्	सात प्रकार के
साम	साम की
इति	इस खण्ड में कहे हुए प्रकार
उपासीत	उपासना करे
+ यतः	जिस कारण
+ इति	ऐसा
+ आदित्यः	सूर्य
सर्वदा	सर्वदा
समः	एकरूप है
तेन	इसी कारण
साम	साम
सर्वेण	सब करके
समः	समान है
तेन	उसी कारण
साम	साम
+ आदित्यः	सूर्यरूप है
+ हि	क्योंकि
+ सः	वह सूर्य
मां प्रति मां प्रति	मेरे सामने है मेरे सामने है अर्थात् हर एक के सामने है यह समान बुद्धि का उत्पन्न करने वाला है

भावार्थ ।

पिछले खण्ड में पांच स्तोभ अक्षरों सहित आदित्य बिषे साम की उपासना कही गई है, अब इस खण्ड बिषे सात स्तोभ अक्षरों सहित

साम की उपासना कही जाती है । जैसे आदित्य सदा एकरस वृद्धि-क्षय से रहित है ऐसे ही साम भी वृद्धिक्षय से रहित है, इसलिये आदित्य ही साम है और साम ही आदित्य है, क्योंकि जैसे आदित्य समान बुद्धि का उत्पन्न करनेवाला है वैसे ही साम भी समान बुद्धि का उत्पन्न करनेवाला है ॥ १ ॥

मूलम् ।

तस्मिन्निमानि सर्वाणि भूतान्यन्वायत्तानीति विद्यात्तस्य यत्पुरोदयात्स हिङ्कारस्तदस्य पशवोऽन्वायत्तास्तस्मात्ते हिं कुर्वन्ति हिङ्कारभाजिनो ह्येतस्य साम्नः ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

तस्मिन्, इमानि, सर्वाणि, भूतानि, अन्वायत्तानि, इति, विद्यात्, तस्य, यत्, पुरा, उदयात्, सः, हिङ्कारः, तत्, अस्य, पशवः, अन्वायत्ताः, तस्मात्, ते, हिं, कुर्वन्ति, हिङ्कारभाजिनः, हि, एतस्य, साम्नः ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
तस्मिन्	उस आदित्य विषे	+ तस्य	उस सूर्य का
इमानि	यह	यत्	जो स्वरूप है
सर्वाणि	सब	सः	वह
भूतानि	भूत जिनका वर्णन इस खण्ड में आगे किया जायगा	हिङ्कारः	हिंकार है
अन्वायत्तानि	अनुगत हैं	अस्य	उस सूर्य का
इति	इस प्रकार	तत्	वह हिंकारस्वरूप
विद्यात्	सूर्य को जाने	अन्वायत्ताः	सूर्य से संबंध रखनेवाले
तस्य	उस सूर्य के	पशवः	गवादिक पशु हैं
उदयात्	उदय होने से	तस्मात्	इसी कारण
पुरा	पहिले	एतस्य	इस आदित्यरूप
		साम्नः	साम के

हिङ्कारभाजिनः=हिंकार की उपासना करनेवाले
ते=वे गवादिक पशु
हि=निश्चय करके
हिम्=हिंहिं
कुर्वन्ति=किया करते हैं

भावार्थ ।

उस आदित्य विषे सब भूत जिनका व्याख्यान आगे किया जायगा अनुगत हैं, ऐसा जानकर सूर्य विषे सूर्य के उदय होने से पहिले जो समय है वह धर्मरूप है और उस समय का जो सूर्य का स्वरूप है वह हिंकार है, उस सूर्य के हिंकारस्वरूप विषे गवादिक पशु अनुगत हैं इस कारण आदित्यरूप साम के हिंकार की उपासना करनेवाले गवादि पशु सदा हिंहिं शब्द करते हैं ॥ २ ॥

मूलम् ।

अथ यत्प्रथमोदिते स प्रस्तावस्तदस्य मनुष्या अन्वायत्तास्तस्मात्ते प्रस्तुतिकामाः प्रशꣳसाकामाः प्रस्तावभाजिनो ह्येतस्य साम्नः ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यत्, प्रथमोदिते, सः, प्रस्तावः, तत्, अस्य, मनुष्याः, अन्वायत्ताः, तस्मात्, ते, प्रस्तुतिकामाः, प्रशंसाकामाः, प्रस्तावभाजिनः, हि, एतस्य साम्नः ॥

अन्वयः	पदार्थ
अथ	अब और प्रकार से उपासना कहते हैं
प्रथमोदिते	प्रथम उदय होने पर
यत्	जो
सः	वह
+ सवितृरूपम्	सूर्य का रूप है
अस्य	उसका
तत्	वह रूप
प्रस्तावः	प्रस्ताव है
+ तस्मिन्	इस प्रस्ताव में
मनुष्याः	मनुष्य
अन्वायत्ताः	शरण को प्राप्त हैं

तस्मात्=इस कारण
एतस्य=इस सूर्यरूप
साम्नः=साम के
प्रस्तावभाजिनः=प्रस्ताव की उपासना करनेवाले
ते=वे मनुष्य,
प्रस्तुतिकामाः=अपरोक्ष प्रशंसा चाहनेवाले
हि=और
प्रशंसाकामाः=परोक्ष प्रशंसा चाहनेवाले
+ भवन्ति=होते हैं

भावार्थ ।

अब और प्रकार से साम की उपासना को कहते हैं जो सूर्य का रूप उदय होने से पहिले है वह प्रस्ताव है । मनुष्यों का जीवन उस प्रस्ताव के आश्रय है इस कारण सूर्यरूप साम के प्रस्ताव की उपासना करनेवाले जो मनुष्य हैं वे परोक्ष प्रशंसा और अपरोक्ष प्रशंसा के चाहनेवाले होते हैं ॥ ३ ॥

मूलम् ।

अथ यत्सङ्गववेलायाᳬ स आदिस्तदस्य वयाᳬस्य-न्वायत्तानि तस्मात्तान्यन्तरिक्षेऽनारम्बणान्यादायात्मानं परिपतन्त्यादिभाजीनि ह्येतस्य साम्नः ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यत्, सङ्गववेलायाम्, सः, आदिः, तत्, अस्य, वयांसि, अन्वायत्तानि, तस्मात्, तानि, अन्तरिक्षे, अनारम्बणानि, आदाय, आत्मानम्, परिपतन्ति, आदिभाजीनि, हि, एतस्य, साम्नः ॥

अन्वयः — पदार्थ

अथ=अब दूसरे प्रकार से उपासना का वर्णन करते हैं
सङ्गववेलायाम्=पांच भागों में बँटे हुए दिन के दूसरे भाग में
यत्=जो
+ सावित्रम्=सूर्य का रूप है
सः=वह
आदिः=सामवेद का एक भाग "भक्तिविशेष ॐकार है"
अस्य=सामवेद के भक्तिविशेष ॐकार का
तत्=वह रूप

अन्वाय-त्तानि = सूर्य के भक्ति-विशेष ॐकार-रूप से संबन्ध रखनेवाले
वयांसि=पक्षी हैं
तस्मात्=इसी कारण
तानि=वे पक्षी
अन्तरिक्षे=आकाश में
अनारम्बणानि = विना किसी की सहायता के
आत्मानम्=अपनी ही शक्ति को
आदाय=ग्रहण करके
परिपतन्ति=उड़ते हैं
हि=क्योंकि
+ वयांसि=पक्षी
एतस्य=इस भक्ति विशेष ॐकाररूप
साम्नः=साम के
आदिभाजीनि = संगवकाल के सूर्यरूप आदि की उपासना करनेवाले हैं

भावार्थ ।

अब और प्रकार से साम की उपासना का वर्णन करते हैं। धर्मशास्त्र के अनुसार दिन के पांचभाग होते हैं, ऐसे दिन के दूसरे भाग में जो सूर्य का रूप है वह सामवेद का भक्तिविशेष ॐकारभाग है, उस आदित्यरूप साम के भक्तिविशेष ॐकाररूप में पक्षी प्रविष्ट हैं इसलिये पक्षी आकाश बिषे विना किसी की सहायता के अपने बल का भरोसा रखते हुए उड़ते हैं, क्योंकि पक्षी उस भक्तिविशेष ॐकाररूप साम के संगवकाल के होनेवाले सूर्य की उपासना करनेवाले हैं ॥ ४ ॥

मूलम् ।

अथ यत्संप्रति मध्यन्दिने स उद्गीथस्तदस्य देवा अन्वायत्तास्तस्मात्ते सत्तमाः प्राजापत्यानामुद्गीथभाजिनो ह्येतस्य साम्नः ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यत्, संप्रति, मध्यन्दिने, सः, उद्गीथः, तत्, अस्य, देवाः, अन्वायत्ताः, तस्मात्, ते, सत्तमाः, प्राजापत्यानाम्, उद्गीथभाजिनः, हि, एतस्य, साम्नः ॥

अन्वय: पदार्थ	अन्वय: पदार्थ
अथ=अब और प्रकार से कहते हैं	देवा:=देवता हैं
यत्=जो	तस्मात्=इसी कारण
संप्रति=ठीक	ते=वे देवता
मध्यन्दिने=मध्याह्नकाल में	प्राजापत्यानाम्=प्रजापति के सन्तानों में
+ सवित्रम्=सूर्य का रूप है	सत्तमा:=अतिश्रेष्ठ हैं
स:=वह	हि=क्योंकि
उद्गीथ:=उद्गीथ है	+ ते=वे देवता
अस्य=उस सूर्य का	एतस्य=इस
तत्=वह उद्गीथरूप	साम्न:=साम के
अन्वायत्ता:=सूर्य के उद्गीथ में प्रविष्ट	उद्गीथभाजिन:=उद्गीथ की उपासना करनेवाले हैं

भावार्थ ।

अब और प्रकार से उपासना कहते हैं । जो ठीक मध्याह्नकाल में सूर्य का रूप है वह उद्गीथ है, उस उद्गीथ में देवता प्रविष्ट हैं क्योंकि मध्याह्नकाल का सूर्य श्रेष्ठ होता है, इसी कारण वे देवता प्रजापति के सन्तानों में अतिश्रेष्ठ हैं क्योंकि वे देवता इस साम के उद्गीथ की उपासना करनेवाले हैं ॥ ५ ॥

मूलम् ।

अथ यदूर्ध्वं मध्यन्दिनात्प्रागपराह्णात्स प्रतिहारस्तदस्य गर्भा अन्वायत्तास्तस्मात्ते प्रतिहृता नावपद्यन्ते प्रतिहारभाजिनो ह्येतस्य साम्नः ॥ ६ ॥ *

पदच्छेद: ।

अथ, यत्, ऊर्ध्वम्, मध्यन्दिनात्, प्राक्, अपराह्णात्, स:, प्रतिहार:, तत्, अस्य, गर्भा:, अन्वायत्ता:, तस्मात्, ते, प्रतिहृता:, न, अवपद्यन्ते, प्रतिहारभाजिन:, हि, एतस्य, साम्न: ॥

* दिन के पांच भाग धर्मशास्त्र के अनुसार होते हैं । दिन का पहिला भाग प्रात:काल, दूसरा संगवकाल, तीसरा मध्याह्न, चौथा अपराह्ण और पांचवां सायाह्न ।

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ	अब	गर्भाः	गर्भ हैं
मध्यन्दिनात्	मध्याह्नकाल से	तस्मात्	इसी कारण
ऊर्ध्वम्	पीछे	ते	वे गर्भ
+ च	और	प्रतिहृताः	गर्भाशय में स्थापित किए हुए
अपराह्णात्	अपराह्ण काल से	न	नहीं
प्राक्	पहिले	अवपद्यन्ते	गिरते हैं
यत्	जो	हि	क्योंकि
+ सवितुः	सूर्य का	+ ते	वे गर्भ
+ रूपम्	रूप है	एतस्य	इस
सः	वह रूप	साम्नः	साम के
प्रतिहारः	प्रतिहार है	प्रतिहारभाजिनः	प्रतिहार के उपासक हैं
अस्य	उस सूर्य का		
तत्	वह प्रतिहार रूप		
अन्वायत्ताः	सूर्य के प्रतिहार रूपमें प्रविष्ट		

भावार्थ ।

अब दूसरे प्रकार से उपासना कहते हैं । मध्याह्नकाल से पीछे और अपराह्णकाल से पहिले जो सूर्य का रूप है वह प्रतिहार है, उस प्रतिहार में गर्भ प्रविष्ट है इसी कारण गर्भाशय में प्राप्त हुए वे गर्भ नहीं गिरते हैं क्योंकि वे गर्भ इस साम के प्रतिहार की उपासना करनेवाले हैं ॥ ६ ॥

मूलम् ।

अथ यदूर्ध्वमपराह्णात्प्रागस्तमयात्स उपद्रवस्तदस्यारण्या अन्वायत्तास्तस्मात्ते पुरुषं दृष्ट्वा कक्षꣳश्वभ्रमित्युपद्रवन्त्युपद्रवभाजिनो ह्येतस्य साम्नः ॥ ७ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यत्, ऊर्ध्वम्, अपराह्णात्, प्राक्, अस्तमयात्, सः, उपद्रवः,

तत्, अस्य, आरण्याः, अन्वायत्ताः, तस्मात्, ते, पुरुषम्, दृष्ट्वा, कक्षम्, श्वभ्रम्, इति, उपद्रवन्ति, उपद्रवभाजिनः, हि, एतस्य, साम्नः ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ	अब	आरण्याः	वन के पशु हैं
अपराह्णात्	अपराह्ण से	तस्मात्	इसी कारण
ऊर्ध्वम्	ऊपर	ते	वे वन के पशु
+ च	और	पुरुषम्	पुरुष को
अस्तमयात्	अस्तकाल से	दृष्ट्वा	देखकर
प्राक्	पहिले	+ भीताः	भययुक्त
+ आदित्यस्य	सूर्य का	इति	होकर
यत्	जो	श्वभ्रम्	भय से रहित
+ रूपम्	रूप है	कक्षम्	वन को
सः	वह रूप	उपद्रवन्ति	भागते हैं
उपद्रवः	उपद्रव है	हि	क्योंकि
अस्य	इस सूर्य का	+ ते	वे वन के पशु
तत्	वह रूप	एतस्य	इस
अन्वायत्ताः	सूर्य के उपद्रव रूप में प्रविष्ट हुए	साम्नः	साम के
		उपद्रवभाजिनः	उपद्रव के उपासक हैं

भावार्थ ।

अपराह्णकाल से ऊपर और अस्तकाल से पहिले जो सूर्य का रूप है वह रूप उपद्रव स्तोभ है । इसके आश्रय वन के पशु अपना जीवन रखते हैं इसी कारण वे पशु पुरुष को देखकर भयभीत होकर भय से रहित जो वन है उसमें भाग जाते हैं क्योंकि वे पशु इस उपद्रव स्तोभ के उपासक हैं ॥ ७ ॥

मूलम् ।

अथ यत्प्रथमास्तमिते तन्निधनं तदस्य पितरोऽन्वायत्तास्तस्मात्तान्निदधति निधनभाजिनो ह्येतस्य साम्न एवं खल्वमुमादित्यꣳसप्तविधꣳ सामोपास्ते ॥ ८ ॥

इति नवमः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

अथ, यत्, प्रथमास्तमिते, तत्, निधनम्, तत्, अस्य, पितरः, अन्वायत्ताः, तस्मात्, तान्, निदधति, निधनभाजिनः, हि, एतस्य, साम्नः, एवम्, खलु, अमुम्, आदित्यम्, सप्तविधम, साम, उपास्ते ॥

अन्वयः पदार्थ

अथ=और प्रकार से उपासना कहते हैं
प्रथमास्तमिते=प्रथम अस्त काल के समय
यत्=जो
+ सवितुः=सूर्य का
+ रूपम्=रूप है
तत्=वह
निधनम्=निधन है
अस्य=उस सूर्य का
तत्=वह रूप
अन्वायत्ताः=जिसमें वे प्रविष्ट हैं
पितरः=पितर हैं
तस्मात्=इसी कारण
+ दर्भेषु=कुशों पर
तान्=उन पितरों को पिता पितामह प्रपितामहरूप से

अन्वयः पदार्थ

निदधति=रखते हैं
हि=क्योंकि
+ ते=पिता आदिक
एतस्य=इस
साम्नः=साम के
निधनभाजिनः=निधन के उपासक थे
एवम्=इस प्रकार
खलु=निश्चय करके
यः=जो उपासक
अमुम्=इस
आदित्यम्=सूर्यरूप
सप्तविधम्=सात प्रकार के
साम=साम की
उपास्ते=उपासना करता है
+ तस्य=उसको
+ सूर्यप्राप्तिः=सूर्य की प्राप्तिरूप
+ फलम्=फल
+ भवति=होता है

भावार्थ ।

जो अस्तकाल के समय का सूर्य है वह निधनरूप है उसमें पितर प्रविष्ट हैं, इसी कारण कुशों पर पितरों को पिता, पितामह और प्रपितामह-रूप से रखते हैं क्योंकि पिता आदिक उस साम के निधन स्तोभ के

उपासक थे, इस कारण जो उपासक सूर्यरूप सात प्रकार के साम की उपासना करता है वह सूर्य के तुल्य हो जाता है ॥ ८ ॥

इति नवमः खण्डः ।

अथ द्वितीयाध्यायस्य दशमः खण्डः ।

मूलम् ।

अथ खल्वात्मसंमितमतिमृत्यु सप्तविधꣳ सामोपासीत हिङ्कार इति त्र्यक्षरं प्रस्ताव इति त्र्यक्षरं तत्समम् ॥१॥

पदच्छेदः ।

अथ, खलु, आत्मसंमितम्, अतिमृत्यु, सप्तविधम्, साम, उपासीत, हिङ्कारः, इति, त्र्यक्षरम्, प्रस्तावः, इति, त्र्यक्षरम्, तत्, समम् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ=	इसके पीछे	इति=	ऐसा
खलु=	निश्चय करके	त्र्यक्षरम्=	तीन अक्षरवाला
आत्मसंमितम्=	परमात्मा के तुल्य	हिङ्कारः=	हिंकार
+ च=	और	+ च=	और
अतिमृत्यु=	मृत्यु को जय करनेवाले	इति=	ऐसा
सप्तविधम्=	सात प्रकार के	त्र्यक्षरम्=	तीन अक्षरवाला जो
साम=	साम की	प्रस्तावः=	प्रस्ताव है
उपासीत=	उपासना करे	तत्=	सो
		समम्=	आपस में बराबर हैं

भावार्थ ।

परमात्मा के तुल्य और मृत्यु का जय करनेवाला आगे कहे हुए प्रकार सातों अंगों सहित जो साम है उसकी उपासना हिंकार और प्रस्तावरूप से करना चाहिए । जैसे हिंकार तीन अक्षरवाला है वैसेही तीन अक्षरवाला प्रस्ताव भी सामरूप है इसलिये हिंकार और प्रस्ताव आपस में बराबर हैं । इन दोनों की उपासना सामबुद्धि से करे ॥ १ ॥

मूलम् ।

आदिरिति द्व्यक्षरं प्रतिहार इति चतुरक्षरं तत इहैकं तत्समम् ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

आदिः, इति, द्व्यक्षरम्, प्रतिहारः, इति, चतुरक्षरम्, ततः, इह, एकम्, तत्, समम् ॥

अन्वयः	पदार्थ
इति	ऐसा
द्व्यक्षरम्	दो अक्षरवाला
आदिः	आदि है
इति	इसी प्रकार
चतुरक्षरम्	चार अक्षरवाला
प्रतिहारः	प्रतिहार है
ततः	इस प्रतिहार से
एकम्	एक अक्षर
इह	आदि में
+ प्रक्षिप्यते	जोड़ दिया जाय
+ तदा	तब
तत्	वह आदि
समम्	प्रतिहार के समान होगा

भावार्थ ।

दो अक्षरवाला आदि स्तोभ है और चार अक्षरवाला प्रतिहार स्तोभ है । यदि प्रतिहार में से एक अक्षर निकाल कर आदि में जोड़ दिया जाय तो दोनों तीन तीन अक्षर करके बराबर होजाते हैं । ऐसा अनुभव करके उपासक साम विषे "आदि" और "प्रतिहार" की उपासना करे ॥ २ ॥

मूलम् ।

उद्गीथ इति त्र्यक्षरमुपद्रव इति चतुरक्षरं त्रिभिस्त्रिभिः समं भवत्यक्षरमतिशिष्यते त्र्यक्षरं तत्समम् ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

उद्गीथः, इति, त्र्यक्षरम्, उपद्रवः, इति, चतुरक्षरम्, त्रिभिः, त्रिभिः, समम्, भवति, अक्षरम्, अतिशिष्यते, त्र्यक्षरम्, तत्, समम् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
इति=ऐसा		भवति=है	
त्र्यक्षरम्=तीन अक्षरवाला		तत्=इसलिये	
उद्गीथः=उद्गीथ है		+ त्र्यक्षरम्=तीन तीन अक्षर	
+ च=और		समम्=बराबर हैं	
इति=ऐसा		+ यत्=जो	
चतुरक्षरम्=चार अक्षरवाला		अक्षरम्=एक अक्षर	
उपद्रवः=उपद्रव है		अतिशिष्यते=बचता है	
त्रिभिः=तीन		+ तत् एव=वह भी	
त्रिभिः=तीन अक्षरों करके		त्र्यक्षरम्=तीन अक्षरवाला है	
समम्=दोनों बराबर			

भावार्थ ।

तीन अक्षरवाला उद्गीथ स्तोभ है और चार अक्षरवाला उपद्रव भी स्तोभ है । ये दोनों तीन अक्षर करके बराबर हैं । साम विषे उद्गीथ की और उपद्रव की उपासना करे । उपद्रव स्तोभ अक्षरमें से जो एक अक्षर बचता है वह भी तीन अक्षरवाला उपास्य है । इस अक्षर की उपासना करने से ब्रह्मलोक की प्राप्ति कही है ॥ ३ ॥

मूलम् ।

निधनमिति त्र्यक्षरं तत्सममेव भवति तानि ह वा एतानि द्वाविंशतिरक्षराणि ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

निधनम्, इति, त्र्यक्षरम्, तत्, समम्, एव, भवति, तानि, ह, वै, एतानि, द्वाविंशतिः, अक्षराणि ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
निधनम्=निधन		त्र्यक्षरम्=तीन अक्षरवाला स्तोभ है	
इति=ऐसा		तत्=वह प्रथम मंत्रोक्त आदित्य के तीन अक्षरों के	
+ यत्=जो			

सममू=बराबर
एव=ही
भवति=है
ह वै=निश्चयपूर्वक
तानि=वे अर्थात् पहिले कहे हुए उन्नीस अक्षर
+ च=और
एतानि=ये तीन अक्षर दोनों मिलकर
द्वाविंशतिः=बाईस
अक्षराणि=अक्षर हुए

भावार्थ ।

निधन तीन अक्षरवाला स्तोभ है । यह भी हिंकार और प्रस्ताव के बराबर है जिसका वर्णन इस खंड के पहिले मंत्र में कह आये हैं और जिसकी उपासना का लक्ष्य सूर्यलोक की प्राप्ति है इसलिये उन्नीस अक्षर अर्थात् हिंकार, प्रस्ताव, आदि, प्रतिहार, उद्गीथ और उपद्रव जो पहिले कह आये हैं और तीन अक्षर निधन के ये दोनों मिलकर २२ अक्षर होते हैं । इनमें से इक्कीस अक्षरों करके हिंकार आदि की उपासना करने से सूर्यलोक की प्राप्ति होती है और उपद्रव में से बचे हुए एक अक्षर करके त्रय अक्षर की भावना से ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है । जैसे कि आगे मंत्रों में कहा है ॥ ४ ॥

मूलम् ।

एकविंशत्यादित्यमाप्नोत्येकविंशो वाइतोऽसावादित्यो द्वाविंशेन परमादित्याज्जयति तन्नाकं तद्विशोकम् ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ।

एकविंशत्या, आदित्यम्, आप्नोति, एकविंशः, वै, इतः, असौ, आदित्यः, द्वाविंशेन, परम्, आदित्यात्, जयति, तत्, नाकम्, तत्, विशोकम् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
+ उपासकः	=उपासक	परम्	=ऊपर के
एकविंशत्या	=इक्कीस अक्षरों करके	+ब्रह्मलोकम्	=ब्रह्मलोक को
आदित्यम्	=सूर्यलोक को	जयति	=जीतता है अर्थात् प्राप्त होता है
आप्नोति	=प्राप्त होता है	तत्	=वह लोक
असौ	=वह	नाकम्	=सुखरूप है
आदित्यः	=सूर्यलोक	+च	=और
इतः	=इस लोक से	तत् वै	=वह ही लोक
एकविंशः	=इक्कीसवां है	विशोकम्	=शोकरहित है
द्वाविंशेन	=बाईसवें अक्षर करके		
आदित्यात्	=सूर्य से		

भावार्थ ।

उपासक साम के इक्कीस स्तोभ अक्षरों करके जैसे कि ऊपर कह आये हैं सूर्यलोक को प्राप्त होता है जो इस लोक से इक्कीसवां लोक है । बाइसवें अक्षर करके अर्थात् उस अक्षर का जो उपद्रव स्तोभ में बचता है उसके द्वारा उपासक ब्रह्मलोक को प्राप्त होता है । वह ब्रह्मलोक सुखरूप है और शोकरहित है ॥ ५ ॥

मूलम् ।

आप्नोति हादित्यस्य जयम्परो हास्यादित्यजयाज्जयो भवति य एतदेवं विद्वानात्मसंमितमतिमृत्यु सप्तविधꣳ सामोपास्ते सामोपास्ते[१] ॥ ६ ॥

इति दशमः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

आप्नोति, ह, आदित्यस्य, जयम्, परः, ह, अस्य, आदित्यजयात्,

१—यहांपर जो सामोपास्ते सामोपास्ते दो बार लिखा है वह साम की समाप्ति का बोधक है ।

जयः, भवति, यः, एतत्, एवम्, विद्वान्, आत्मसंमितम्, अतिमृत्युं, सप्तविधम्, साम, उपास्ते, साम, उपास्ते ॥

अन्वयः	पदार्थ
यः	जो उपासक
एवम्	पूर्वोक्त प्रकार से
विद्वान्	जानता हुआ
आत्मसंमितम्	परमात्मा के तुल्य
अतिमृत्युं	मृत्यु को जीतनेवाले
सप्तविधम्	सात प्रकार के
साम	साम की
उपास्ते	उपासना करता है
+ सः	वह
ह	निश्चय
आदित्यस्य	सूर्य के
जयम्	जय को
आप्नोति	प्राप्त होता है
+ च	और
आदित्यजयात्	सूर्य लोक के प्राप्त होने से
परः	पीछे
अस्य	इस उपासक को
जयः	ब्रह्मलोक की प्राप्ति
ह	निश्चय करके
भवति	होती है

भावार्थ ।

ऊपर कहे हुए प्रकार परमात्मा के तुल्य और मृत्यु का जीतनेवाला जो सातों अंगों सहित साम है, उसकी उपासना जो पुरुष करता है वह सूर्यलोक को जीतता हुआ ब्रह्मलोक को प्राप्त होता है । वहां ब्रह्मा से उपदेश पाकर मोक्ष को प्राप्त होजाता है ॥ ६ ॥

इति दशमः खण्डः ।

अथ द्वितीयाध्यायस्यैकादशः खण्डः ।

मूलम् ।

मनो हिङ्कारो वाक्प्रस्तावश्चक्षुरुद्गीथः श्रोत्रं प्रतिहारः प्राणो निधनमेतद्गायत्रं प्राणेषु प्रोतम् ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

मनः, हिङ्कारः, वाक्, प्रस्तावः, चक्षुः, उद्गीथः, श्रोत्रम्, प्रतिहारः, प्राणः, निधनम्, एतत्, गायत्रम्, प्राणेषु, प्रोतम् ॥

अन्वयः पदार्थ	अन्वयः पदार्थ
मनः=मन	प्राणः=प्राण
हिङ्कारः=हिंकार है	निधनम्=निधन है
वाक्=वाणी	एतत्=यह
प्रस्तावः=प्रस्ताव है	गायत्रम्=गायत्र
चक्षुः=नेत्र	+ साम=साम
उद्गीथः=उद्गीथ है	प्राणेषु=प्राणों में
श्रोत्रम्=कर्ण	प्रोतम्=अनुगत है अर्थात् रहता है
प्रतिहारः=प्रतिहार है	

भावार्थ ।

पिछले खण्डों में पांच प्रकार और सात प्रकार के साम की उपासना कही गई है, अब इस खण्ड में और प्रकार से साम की उपासना कहते हैं । यह उपासना गायत्र साम की है, इस गायत्र साम की उपासना इन्द्रियविशिष्ट प्राण विषे है । मन हिंकाररूप है अर्थात् मन विषे हिंकार की उपासना करे, वाणी प्रस्ताव है अर्थात् वाणी में प्रस्ताव की उपासना करे, नेत्र उद्गीथ है अर्थात् नेत्र विषे उद्गीथ की उपासना करे, कर्ण प्रतिहार है अर्थात् कर्ण में प्रतिहार की उपासना करे और प्राण निधन है अर्थात् प्राण विषे निधन की उपासना करे । इस तरह इन्द्रियविशिष्ट प्राण में गायत्र साम की उपासना अनुगत है ॥ १ ॥

मूलम् ।

स य एवमेतद्गायत्रं प्राणेषु प्रोतं वेद प्राणी भवति सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति महान्प्रजया पशुभिर्भवति महान्कीर्त्या महामनाः स्यात्तद् व्रतम् ॥ २ ॥

इति एकादशः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

सः, यः, एवम्, एतत्, गायत्रम्, प्राणेषु, प्रोतम्, वेद, प्राणी,

भवति, सर्वम्, आयुः, एति, ज्योक्, जीवति, महान्, प्रजया, पशुभिः, भवति, महान्, कीर्त्या, महामनाः, स्यात्, तत्, व्रतम् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यः	जो	एति	प्राप्त होता है
महामनाः	उदार चित्तवाला उपासक	ज्योक्	निर्मल
एतत्	इस	जीवति	जीवनवाला होता है
गायत्रम्	गायत्र नाम के साम को	प्रजया	सन्तान करके
एवम्	कहे हुए प्रकार	पशुभिः	पशुओं करके
प्राणेषु	प्राणों में	महान्	श्रेष्ठ
प्रोतम्	प्रविष्ट हुआ	भवति	होता है
वेद	जानता है	+ च	और
सः	वह उपासक	कीर्त्या	यश करके
प्राणी	इन्द्रियों की शक्ति से संपन्न	महान्	श्रेष्ठ
भवति	होता है	स्यात्	होता है
सर्वम्	संपूर्ण (पूरी)	+ गायत्रोपासकस्य	गायत्रसाम के उपासक का
आयुः	आयुष्य को	तत्	यह
		व्रतम्	व्रत है

भावार्थ ।

जो पुरुष उदार चित्तवाला गायत्र साम की उपासना इन्द्रियविशिष्ट प्राण में करता है वह उपासक इन्द्रियों की शक्ति से संपन्न होता है, पूर्ण आयुष्य को प्राप्त होता है, उसका अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है और वह सन्तान करके, पशुओं करके और यश करके युक्त होता हुआ श्रेष्ठ होता है ॥ २ ॥

इति एकादशः खण्डः ।

अथ द्वितीयाध्यायस्य द्वादशः खण्डः ।

मूलम् ।

अभिमन्थति स हिङ्कारो धूमो जायते स प्रस्तावो ज्वलति स उद्गीथोऽङ्गारा भवन्ति स प्रतिहार उपशाम्यति तन्निधनꣳ सꣳ शाम्यति तन्निधनमेतद्रथन्तरमग्नौ प्रोतम् ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

अभिमन्थति, सः, हिङ्कारः, धूमः, जायते, सः, प्रस्तावः, ज्वलति, सः, उद्गीथः, अङ्गाराः, भवन्ति, सः, प्रतिहारः, उपशाम्यति, तत्, निधनम्, संशाम्यति, तत्, निधनम्, एतत्, रथन्तरम्, अग्नौ, प्रोतम् ॥

अन्वयः	पदार्थ
अभिमन्थति	मंथन करने से जो अग्नि उत्पन्न होती है
सः	वह
हिङ्कारः	हिंकार है
+ यत्	जो
धूमः	धूम
जायते	होता है
सः	वह
प्रस्तावः	प्रस्ताव है
ज्वलति	जो लौ निकलती है
सः	वह
उद्गीथः	उद्गीथ है
अङ्गाराः	जो अङ्गार
भवन्ति	होते हैं
सः	वह
प्रतिहारः	प्रतिहार है
उपशाम्यति	जो शांत होता है अर्थात् कुछ कुछ बुझने लगता है
तत्	वह
निधनम्	निधन है
संशाम्यति	जो भली प्रकार बुझ जाता है
तत्	वह भी
निधनम्	निधन है
एतत्	यह
रथन्तरम्	रथन्तर नामक साम
अग्नौ	अग्नि में
प्रोतम्	अनुगत है अर्थात् अग्निमंथन के समय पढ़ा जाता है

भावार्थ ।

यज्ञ करने के प्रथम जो अग्नि दो लकड़ियों के अर्थात् अरणियों के रगड़ने से उत्पन्न होती है वह अग्नि हिंकाररूप है, जो धूम होता है वह प्रस्तावरूप है, जो अग्नि में लौ (ज्वाला) निकलती है वह उद्गीथ है, जो अङ्गार प्रतीत होते हैं वह प्रतिहार है, जो अग्नि कुछ कुछ बुझने लगता है वह निधन है और जो बिलकुल बुझ जाता है वह भी निधन है । इस प्रकार साम रथन्तर की उपासना कही जाती है । यह रथन्तर नामक साम अग्नि बिषे अनुगत है अर्थात् अग्निमन्थन के समय ऐसा पढ़कर ध्यान करना चाहिए ॥ १ ॥

मूलम् ।

स य एवमेतद्रथन्तरमग्नौ प्रोतं वेद ब्रह्मवर्चस्व्यन्नादो भवति सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति महान्प्रजया पशुभिर्भवति महान्कीर्त्या न प्रत्यङ्ङग्निमाचामेन्न निष्ठीवेत्तद्व्रतम् ॥ २ ॥

इति द्वादशः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

सः, यः, एवम्, एतत्, रथन्तरम्, अग्नौ, प्रोतम्, वेद, ब्रह्मवर्चस्वी, अन्नादः, भवति, सर्वम्, आयुः, एति, ज्योक्, जीवति, महान्, प्रजया, पशुभिः, भवति, महान्, कीर्त्या, न, प्रत्यङ्, अग्निम्, आचामेत्, न, निष्ठीवेत्, तत्, व्रतम् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यः	=जो	रथन्तरम्	=रथन्तर साम को
अग्नौ	=अग्नि में	एवम्	=इस प्रकार
प्रोतम्	=अनुगत	वेद	=जानता है
एतत्	=इस	सः	=वह

ब्रह्मवर्चस्वी=विद्या और ब्रह्म प्रकाशवाला
+ च=और
अन्नादः=भोजन शक्तिवाला
भवति=होता है
सर्वम्=पूर्ण
आयुः=आयुष्य को
एति=प्राप्त होता है
ज्योक्=अपने और दूसरे पर उपकार करता हुआ
जीवति=जीता है
प्रजया=सन्तानों करके
पशुभिः=पशुओं करके
महान्=श्रेष्ठ
भवति=होता है
कीर्त्या=यश करके
महान्=श्रेष्ठ
+ भवति=होता है
अग्निम्=अग्नि के
प्रत्यङ्=सामने
न=न
आचामेत्=भोजन करे
+ च=और
न=न
निष्ठीवेत्=थूके
तत्=यह
व्रतम्=नियम उपासक को करना चाहिए

भावार्थ ।

जो पुरुष अग्नि में अनुगत रथन्तर साम की उपासना करता है वह विद्या और ज्ञानवाला होता है और शरीर से हृष्ट पुष्ट होता है, पूरी आयु को प्राप्त होता है और अपना तथा दूसरों का भला करनेवाला होता है । वह सन्तानों करके, पशुओं करके और यश करके श्रेष्ठ होता है । ऐसे उपासकों का यह नियम होता है कि अग्नि के सामने वह न भोजन करते हैं और न थूकते हैं ॥ २ ॥

इति द्वादशः खण्डः ।

अथ द्वितीयाध्यायस्य त्रयोदशः खण्डः ।

मूलम् ।

उपमन्त्रयते स हिङ्कारो ज्ञपयते स प्रस्तावः स्त्रिया सह शेते स उद्गीथः प्रति स्त्रीं सह शेते स प्रतिहारः

कालं गच्छति तन्निधनं पारं गच्छति तन्निधनमेतद्वाम-देव्यं मिथुने प्रोतम् ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

उपमन्त्रयते, सः, हिङ्कारः, ज्ञपयते, सः, प्रस्तावः, स्त्रिया, सह, शेते, सः, उद्गीथः, प्रति, स्त्रीम्, सह, शेते, सः, प्रतिहारः, कालम्, गच्छति, तत्, निधनम्, पारम्, गच्छति, तत्, निधनम्, एतत्, वामदेव्यम्, मिथुने, प्रोतम् ॥

अन्वयः	पदार्थ
उपमन्त्रयते	जो स्त्री का ध्यान किया जाता है
सः	वह
हिङ्कारः	हिङ्कार है
ज्ञपयते	जो स्त्री से बातचीत करता है
सः	वह
प्रस्तावः	प्रस्ताव है
स्त्रिया	जो स्त्री के
सह	साथ
शेते	सोया जाता है
सः	वह
उद्गीथ	उद्गीथ है
स्त्रीम्प्रति	जो स्त्री के
सह	साथ
शेते	एक शय्या पर अभिमुख सोता है
सः	वह
प्रतिहारः	प्रतिहार है
कालम्	जो काल को
गच्छति	व्यतीत करता है अर्थात् स्त्री के साथ मैथुन करता है
तत्	वह
निधनम्	निधन है
पारम्	जो मैथुन की समाप्ति को
गच्छति	प्राप्त होता है
तत्	वह भी
निधनम्	निधन है
एतत्	यह
वामदेव्यम्	वामदेव्यनामक साम
मिथुने	ऊपर कहे हुए वायुरूपी पुरुष और जल रूपी स्त्री के मिथुन में
प्रोतम्	प्रविष्ट है अर्थात् संबंध रखनेवाला है

भावार्थ ।

स्त्री का ध्यान करना हिंकार है, स्त्री से बातचीत करना प्रस्ताव है,

स्त्री के साथ सोना उद्गीथ है, स्त्री के साथ एक शय्या पर स्त्री के मुख की ओर सोना प्रतिहार है, स्त्री से भोग करना निधन है और मैथुन को समाप्त करना भी निधन है । यह उपासना वामदेव्य नाम के साम की उपासना है, यह वायुरूपी पुरुष और जलरूपी स्त्री के मिथुन में प्रविष्ट है अर्थात् संबन्ध रखनेवाला है ॥ १ ॥

मूलम् ।

स य एवमेतद्वामदेव्यं मिथुने प्रोतं वेद[1] मिथुनी भवति मिथुनान्मिथुनात्प्रजायते सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति महान्प्रजया पशुभिर्भवति महान्कीर्त्या न काञ्चन परिहरेत्तद्व्रतम् ॥ २ ॥

इति त्रयोदशः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

सः, यः, एवम्, एतत्, वामदेव्यम्, मिथुने, प्रोतम्, वेद, मिथुनी, भवति, मिथुनात्, मिथुनात्, प्रजायते, सर्वम्, आयुः, एति, ज्योक्, जीवति, महान्, प्रजया, पशुभिः, भवति, महान्, कीर्त्या, न, काञ्चन, परिहरेत्, तत्, व्रतम् ॥

अन्वयः	पदार्थ
यः	जो उपासक
मिथुने	वायुरूपी पुरुष और स्त्रीरूपी जल के मिथुन में
प्रोतम्	अनुगत
एतत्	इस
वामदेव्यम्	वामदेव्य नामक साम को
एवम्	कहे हुए प्रकार
वेद	जानता है अर्थात् उपासना करता है
सः	वह उपासक
मिथुनी	सदा स्त्री युक्त अर्थात् स्त्री के वियोग के दुःख से रहित
भवति	होता है

[1]—वेद भूतकाल है, पर यहां अर्थ वर्त्तमानकाल का देता है ।

मिथुनात् मिथुनात् = मिथुन की उपासना से
प्रजायते = अमोघ वीर्यवाला होता है
सर्वम् = पूर्ण
आयुः = आयु को
एति = प्राप्त होता है
ज्योक् = अपने और दूसरे के उपकार में समर्थ होता हुआ
जीवति = जीता है
प्रजया = सन्तानों करके
पशुभिः = पशुओं करके
महान् = श्रेष्ठ
कीर्त्या = यश करके
महान् = श्रेष्ठ
भवति = होता है
काञ्चन = किसी अपनी विवाहिता स्त्री को
न = न
परिहरेत् = त्यागे
तत् = यह
व्रतम् = नियम वामदेव्य मिथुन साम के उपासक का
+ भवति = होता है

भावार्थ ।

जो उपासक वायुरूपी पुरुष और जलरूपी स्त्री के मिथुन विषे अनुगत इस वामदेव्य नामक साम को ऊपर कहे हुए प्रकार जानता है वह सदा स्त्रीयुक्त होता है अर्थात् उसको स्त्री का वियोग नहीं होता है । इस मिथुन की उपासना करने से वह पुरुष अमोघ वीर्यवाला होता है, पूर्ण आयु को प्राप्त होता है, अपने तथा पराये उपकार के करने में समर्थ होता है और सन्तानों करके, पशुओं करके तथा यश करके श्रेष्ठ होता है । उसका नियम यह है कि कोई पुरुष अपनी विवाहिता स्त्री को न त्यागे ॥ २ ॥

इति त्रयोदशः खण्डः ।

अथ द्वितीयाध्यायस्य चतुर्दशः खण्डः ।

मूलम् ।

उद्यन् हिङ्कार उदितः प्रस्तावो मध्यन्दिन उद्गीथोऽपराह्णः प्रतिहारोऽस्तं यन्निधनमेतद्बृहदादित्ये प्रोतम् ॥ १

पदच्छेदः ।

उद्यन्, हिंकारः, उदितः, प्रस्तावः, मध्यंदिनः, उद्गीथः, अपराह्णः, प्रतिहारः, अस्तम्, यत्, निधनम्, एतत्, बृहत्, आदित्ये, प्रोतम् ॥

अन्वयः	पदार्थ
उद्यन्	उदय को प्राप्त होता हुआ
+ सविता	सूर्य
हिंकारः	हिंकार है
उदितः	उदय को पूरी तरह से प्राप्त हुआ सूर्य
प्रस्तावः	प्रस्ताव है
मध्यंदिनः	ठीक मध्याह्न काल का
+ सविता	सूर्य
उद्गीथः	उद्गीथ है
अपराह्णः	अपराह्ण काल का सूर्य
प्रतिहारः	प्रतिहार है
यत्	जो
अस्तम्	अस्त को
+ यन्	प्राप्त हुआ सूर्य है
+ तत्	वह
निधनम्	निधन है
एतत्	यह
बृहत्	बृहत्साम
आदित्ये	सूर्य बिषे
प्रोतम्	अनुगत है अर्थात् इस साम का सूर्य अधिपति देवता है

भावार्थ ।

उदय होता हुआ सूर्य हिंकार है, उदय को प्राप्त हुआ सूर्य प्रस्ताव है, ठीक मध्याह्न काल का सूर्य उद्गीथ है, अपराह्ण काल का सूर्य प्रतिहार है, अस्तकाल को प्राप्त हुआ सूर्य निधन है, यह ऊपर कही हुई बृहत्साम की उपासना है, यह बृहत्साम सूर्य बिषे अनुगत है अर्थात् इसका अधिष्ठाता देवता सूर्य है ॥ १ ॥

मूलम् ।

स य एवमेतद्बृहदादित्ये प्रोतं वेद तेजस्व्यन्नादो भवति सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति महान्प्रजया पशुभिर्भवति महान्कीर्त्या तपन्तं न निन्देत् तद् व्रतम् ॥ २ ॥

इति चतुर्दशः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

सः, यः, एवम्, एतत्, बृहत्, आदित्ये, प्रोतम्, वेद, तेजस्वी, अन्नादः, भवति, सर्वम्, आयुः, एति, ज्योक्, जीवति, महान्, प्रजया, पशुभिः, भवति, महान्, कीर्त्या, तपन्तम्, न, निन्देत्, तत्, व्रतम् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यः	जो	जीवति	जीता है
एतत्	इस	प्रजया	सन्तानों करके
बृहत्	बृहत् साम को	पशुभिः	पशुओं करके
आदित्ये	सूर्य विषे	महान्	श्रेष्ठ
एवम्	कहे हुए प्रकार	+ च	और
प्रोतम्	अनुगत	कीर्त्या	यश करके
वेद	जानता है	महान्	श्रेष्ठ
सः	वह	भवति	होता है
तेजस्वी	तेजवाला	तपन्तम्	किसी तपस्वी की
अन्नादः	भोजन शक्तिवाला	न	न
भवति	होता है	निन्देत्	निंदा करे
सर्वम्	पूर्ण	तत्	उस उपासक का यह
आयुः	आयु को	व्रतम्	नियम
एति	प्राप्त होता है	+ भवति	होता है
ज्योक्	उपकार करने योग्य होकर		

भावार्थ ।

जो इस बृहत्साम की उपासना आदित्य विषे ऊपर कहे हुए प्रकार करता है वह तेजवाला, भोजन शक्तिवाला, पूर्ण आयुवाला होता है, वह उपकार करने योग्य होकर जीता है। वह सन्तानों करके, अनेक पशुओं करके और यश करके श्रेष्ठ होता है। उसका नियम यह होता है कि कोई किसी तपस्वी की निन्दा न करे ॥ २ ॥

इति चतुर्दशः खण्डः ।

अथ द्वितीयाध्यायस्य पञ्चदशः खण्डः ।

मूलम् ।

अभ्राणि संप्लवन्ते स हिंकारो मेघो जायते स प्रस्तावो वर्षति स उद्गीथो विद्योतते स्तनयति स प्रतिहार उद्गृह्णाति तन्निधनमेतद्वैरूपं पर्जन्ये प्रोतम् ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

अभ्राणि, संप्लवन्ते, सः, हिंकारः, मेघः, जायते, सः, प्रस्तावः, वर्षति, सः, उद्गीथः, विद्योतते, स्तनयति, सः, प्रतिहारः, उद्गृह्णाति, तत्, निधनम्, एतत्, वैरूपम्, पर्जन्ये, प्रोतम् ॥

अन्वयः	पदार्थ
अभ्राणि	जो हलके बादल इकट्ठे
संप्लवन्ते	होते हैं
सः	वह
हिंकारः	हिंकार है
मेघः	जो मेघ अर्थात् बादल
जायते	उत्पन्न होता है
सः	वह
प्रस्तावः	प्रस्ताव है
वर्षति	जो बरसता है
सः	वह
उद्गीथः	उद्गीथ है
विद्योतते	जो चमकता है अर्थात् जो बिजुली है
+ च	और
स्तनयति	कड़कता है
सः	वह
प्रतिहारः	प्रतिहार है
उद्गृह्णाति	जो वृष्टि बंद करता है
तत्	वह
निधनम्	निधन है
एतत्	यह
वैरूपम्	वैरूप साम
पर्जन्ये	मेघ बिषे
प्रोतम्	अनुगत है

भावार्थ ।

जो हलके बादल इकट्ठे होते हैं वह हिंकार है, जो घने बादल उत्पन्न होते हैं वह प्रस्ताव है, जो बरसता है वह उद्गीथ है, जो विद्युत् होकर चमकता है व कड़कता है वह प्रतिहार है, जिस करके

वृष्टि बंद हो जाती है वह निधन है, यह वैरूप साम की उपासना है। यह वैरूप साम मेघ विषे अनुगत है अर्थात् मेघ का अधिष्ठाता देवता है ॥ १ ॥

मूलम् ।

स य एवमेतद्वैरूपं पर्जन्ये प्रोतं वेद विरूपाꣳश्च सुरूपाꣳश्च पशूनवरुन्धे सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति महान्प्रजया पशुभिर्भवति महान्कीर्त्या वर्षन्तं न निन्देत् तद् व्रतम् ॥ २ ॥

इति पञ्चदशः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

सः, यः, एवम्, एतत्, वैरूपम्, पर्जन्ये, प्रोतम्, वेद, विरूपान्, च, सुरूपान्, च, पशून्, अवरुन्धे, सर्वम्, आयुः, एति, ज्योक्, जीवति, महान्, प्रजया, पशुभिः, भवति, महान् , कीर्त्या, वर्षन्तम्, न, निन्देत् तत्, व्रतम् ॥

अन्वयः	पदार्थ
यः	जो
एतत्	इस
वैरूपम्	वैरूप साम को
एवम्	कहे हुए प्रकार
पर्जन्ये	मेघ में
प्रोतम्	अनुगत
वेद	जानता है
सः	वह
विरूपान्	कुरूप
च	और
सुरूपान्	सुरूपवाले
पशून्	पशुओं को
अवरुन्धे	प्राप्त होता है
सर्वम्	पूर्ण
आयुः	आयु को
एति	प्राप्त होता है
ज्योक्	उपकार करने योग्य होकर
जीवति	जीता है
प्रजया	सन्तानों करके
पशुभिः	पशुओं करके
महान्	श्रेष्ठ
भवति	होता है
+ च	और

कीर्त्या=यश करके	न=न
महान्=श्रेष्ठ	निन्देत्=निंदा करे
भवति=होता है	तत्=यह
वर्षन्तम्=वृष्टि करनेवाले मेघ की	व्रतम्=उस उपासक का नियम है

भावार्थ ।

जो पुरुष इस वैरूप साम को ऊपर कहे हुए प्रकार मेघ विषे अनुगत जानता है वह सुरूप, कुरूपवाले पशुओं करके युक्त होता है, पूर्ण आयु को प्राप्त होता है, उपकार करने योग्य होकर जीता है, सन्तानों करके, पशुओं करके, यश करके श्रेष्ठ होता है । उसका यह नियम होता है कि कोई मेघ की निन्दा न करे ॥ २ ॥

इति पञ्चदशः खण्डः ।

——:०:——

अथ द्वितीयाध्यायस्य षोडशः खण्डः ।

मूलम् ।

वसन्तो हिंकारो ग्रीष्मः प्रस्तावो वर्षा उद्गीथः शरत्प्रतिहारो हेमन्तो निधनमेतद्वैराजमृतुषु प्रोतम् ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

वसन्तः, हिंकारः, ग्रीष्मः, प्रस्तावः, वर्षाः, उद्गीथः, शरत्, प्रतिहारः, हेमन्तः, निधनम्, एतत्, वैराजम्, ऋतुषु, प्रोतम् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
वसन्तः=वसंतऋतु		वर्षाः=वर्षाऋतु	
हिंकारः=हिंकार है		उद्गीथः=उद्गीथ है	
ग्रीष्मः=ग्रीष्मऋतु		शरत्=शरदृतु	
प्रस्तावः=प्रस्ताव है		प्रतिहारः=प्रतिहार है	

हेमन्तः=हेमंतऋतु
निधनम्=निधन है
एतत्=यह
वैराजम्=वैराज साम
ऋतुषु=ऋतुओं में
प्रोतम्=अनुगत है

भावार्थ।

अब ऋतुओं बिषे साम की उपासना कही जाती है। यह उपासना वैराज साम करके प्रसिद्ध है। इसको इस प्रकार करे—वसंतऋतु हिंकार है, ग्रीष्मऋतु प्रस्ताव है, वर्षाऋतु उद्गीथ है, शरदृतु प्रतिहार है, हेमंतऋतु निधन है ॥ १ ॥

मूलम्।

स य एवमेतद्वैराजमृतुषु प्रोतं वेद विराजति प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति महान्प्रजया पशुभिर्भवति महान्कीर्त्यर्त्तून्न निन्देत्तद् व्रतम् ॥ २ ॥

इति षोडशः खण्डः।

पदच्छेदः।

सः, यः, एवम्, एतत्, वैराजम्, ऋतुषु, प्रोतम्, वेद, विराजति, प्रजया, पशुभिः, ब्रह्मवर्चसेन, सर्वम्, आयुः, एति, ज्योक्, जीवति, महान्, प्रजया, पशुभिः, भवति, महान्, कीर्त्या, ऋतून्, न, निन्देत्, तत्, व्रतम् ॥

अन्वयः पदार्थ

यः=जो
एतत्=इस
वैराजम्=वैराज साम को
एवम्=पूर्वोक्त प्रकार से
ऋतुषु=ऋतुओं में
प्रोतम्=अनुगत
वेद=जानता है

अन्वयः पदार्थ

सः=वह
प्रजया=सन्तानों करके
पशुभिः=पशुओं करके
ब्रह्मवर्चसेन=ब्रह्मतेज करके
विराजति=सुशोभित होता है
सर्वम्=पूरे
आयुः=आयु को

एति=प्राप्त होता है	कीर्त्या=यश करके
ज्योक्=उपकार करने में समर्थ होकर	महान्=श्रेष्ठ
जीवति=जीता है	भवति=होता है
प्रजया=सन्तानों करके	ऋतून्=ऋतुओं की
पशुभिः=पशुओं करके	न=न
महान्=श्रेष्ठ	निन्देत्=निन्दा करे
+भवति=होता है	एतत्=यह
+च=और	व्रतम्=नियम उस उपासक का है

भावार्थ ।

जो उपासक वैराजसाम को पूर्वोक्त कहे हुए प्रकार अनुगत जानता है वह सन्तानों करके, पशुओं करके, यश करके, ब्रह्मतेज करके सुशोभित होता है, पूरे आयु को प्राप्त होता है, उपकार करने में समर्थ होता है। उस उपासक का यह नियम है कि ऋतुओं की निंदा न करे ॥ २ ॥

इति षोडशः खण्डः ।

अथ द्वितीयाध्यायस्य सप्तदशः खण्डः ।

मूलम् ।

पृथिवी हिंकारोऽन्तरिक्षं प्रस्तावो द्यौरुद्गीथो दिशः प्रतिहारः समुद्रो निधनमेताः शक्वर्यो लोकेषु प्रोताः ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

पृथिवी, हिंकारः, अन्तरिक्षम्, प्रस्तावः, द्यौः, उद्गीथः, दिशः, प्रतिहारः, समुद्रः, निधनम्, एताः, शक्वर्यः, लोकेषु, प्रोताः ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
पृथिवी	पृथिवी	प्रस्तावः	प्रस्ताव है
हिंकारः	हिंकार है	द्यौः	स्वर्ग
अन्तरिक्षम्	आकाश	उद्गीथः	उद्गीथ है

दिशः=दिशा	एताः=यह
प्रतिहारः=प्रतिहार है	शक्वर्य्यः=शक्वरी साम
समुद्रः=समुद्र	लोकेषु=लोकों में
निधनम्=निधन है	प्रोतम्=अनुगत है

भावार्थ ।

पृथिवी हिंकार है, आकाश प्रस्ताव है, स्वर्ग उद्गीथ है, चारों दिशाएँ प्रतिहार हैं, समुद्र निधन है । यह उपासना शक्वरी साम की है, यह लोकों विषे अनुगत है ॥ १ ॥

मूलम् ।

स य एवमेताः शक्वर्यो लोकेषु प्रोता वेद लोकी भवति सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति महान्प्रजया पशुभिर्भवति महान्कीर्त्या लोकान्न निन्देत्तद् व्रतम् ॥ २ ॥

इति सप्तदशः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

सः, यः, एवम्, एताः, शक्वर्यः, लोकेषु, प्रोताः, वेद, लोकी, भवति, सर्वम्, आयुः, एति, ज्योक्, जीवति, महान्, प्रजया, पशुभिः, भवति, महान, कीर्त्या, लोकान्, न, निन्देत्, तत्, व्रतम् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यः=जो		लोकी=लोकों का स्वामी	
एताः=इस		भवति=होता है	
शक्वर्यः=शक्वरी साम को		सर्वम्=पूर्ण	
एवम्=ऊपर कहे हुए प्रकार		आयुः=आयु को	
लोकेषु=लोकों में		एति=प्राप्त होता है	
प्रोताः=अनुगत		ज्योक्=उपकार के करने में समर्थ होकर	
वेद=जानता है		जीवति=जीता है	
सः=वह			

प्रजया=सन्तानों करके
पशुभिः=पशुओं करके
महान्=श्रेष्ठ
कीर्त्या=यश करके
महान्=श्रेष्ठ
भवति=होता है
लोकान्=लोकों की
न=न
निन्देत्=निन्दा करे
तत्=यह
व्रतम्=नियम शक्करी साम के उपासक का है

भावार्थ ।

जो उपासक इस शक्करी साम को लोकों विषे अनुगत जानता है, वह लोकों का स्वामी होता है, पूर्ण आयु को प्राप्त होता है, लोगों पर उपकार करने में समर्थ होता है। सन्तानों करके, पशुओं करके, यश करके ऐश्वर्यवान् होता है। उसका यह नियम है कि लोकों की निन्दा न की जावे ॥ २ ॥

इति सप्तदशः खण्डः ।

अथ द्वितीयाध्यायस्याष्टादशः खण्डः ।

मूलम् ।

अजा हिंकारोऽवयः प्रस्तावो गाव उद्गीथोऽश्वाः प्रतिहारः पुरुषो निधनमेता रेवत्यः पशुषु प्रोताः ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

अजाः, हिंकारः, अवयः, प्रस्तावः, गावः, उद्गीथः, अश्वाः, प्रतिहारः, पुरुषः, निधनम्, एताः, रेवत्यः, पशुषु, प्रोताः ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अजाः	बकरे	गावः	गौवें
हिंकारः	हिंकार हैं	उद्गीथः	उद्गीथ हैं
अवयः	भेड़ें	अश्वाः	घोड़े
प्रस्तावः	प्रस्ताव हैं	प्रतिहारः	प्रतिहार हैं

पुरुषः=पुरुष
निधनम्=निधन है
एताः=यह
रेवत्यः=रेवती नामक साम
पशुषु=पशुओं में
प्रोताः=अनुगत हैं

भावार्थ ।

जीवों विषे जो साम की उपासना की जाती है वह रेवती नामक साम की उपासना है। वह इस प्रकार की जाती है कि बकरे हिंकार हैं, भेड़ें प्रस्ताव हैं, गौवें उद्गीथ हैं, घोड़े प्रतिहार हैं, पुरुष निधन हैं ॥ १ ॥

मूलम् ।

स य एवमेता रेवत्यः पशुषु प्रोता वेद पशुमान् भवति सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति महान्प्रजया पशुभिर्भवति महान् कीर्त्या पशून्न निन्देत्तद् व्रतम् ॥ २ ॥

इत्यष्टादशः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

सः, यः, एवम्, एताः, रेवत्यः, पशुषु, प्रोताः, वेद, पशुमान्, भवति, सर्वम्, आयुः, एति, ज्योक्, जीवति, महान्, प्रजया, पशुभिः, भवति, महान्, कीर्त्या, पशून्, न, निन्देत्, तत्, व्रतम् ॥

अन्वयः	पदार्थ
एताः	यह
रेवत्यः	रेवती नामक साम
पशुषु	पशुओं में
प्रोताः	अनुगत हैं
एवम्	इस प्रकार
यः	जो
वेद	जानता है
सः	वह
पशुमान्	पशु करके संपन्न
भवति	होता है
सर्वम्	पूर्ण
आयुः	आयु को
एति	प्राप्त होता है
ज्योक्	उपकार करने में समर्थ होता हुआ
जीवति	जीता है
प्रजया	सन्तानों करके
पशुभिः	पशुओं करके
महान्	श्रेष्ठ
+ भवति	होता है

कीर्त्या=यश करके	निन्देत्=निन्दा करे
महान्=श्रेष्ठ	तत्=यह
भवति=होता है	व्रतम्=नियम रेवती नामक
पशून्=पशुओं की	साम के उपासक का है
न=न	

भावार्थ ।

जो उपासक इस रेवती नामक साम को पशुओं में ऊपर कहे हुए प्रकार अनुगत जानता है वह पशुओं करके संपन्न होता है, पूर्ण आयु को प्राप्त होता है, लोगों पर उपकार करने में समर्थ होता है । सन्तानों करके, पशुओं करके, यश करके श्रेष्ठ कहलाता है, पशुओं की कोई निन्दा न करे यह उसका नियम होता है ॥ २ ॥

इत्यष्टादशः खण्डः ।

अथ द्वितीयाध्यायस्यैकोनविंशः खण्डः ।

मूलम् ।

लोम हिंकारस्त्वक्प्रस्तावो मांसमुद्गीथोऽस्थि प्रतिहारो मज्जा निधनमेतद्यज्ञायज्ञीयमङ्गेषु प्रोतम् ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

लोम, हिंकारः, त्वक्, प्रस्तावः, मांसम्, उद्गीथः, अस्थि, प्रतिहारः, मज्जा, निधनम्, एतत्, यज्ञायज्ञीयम्, अङ्गेषु, प्रोतम् ॥

अन्वयः पदार्थ	अन्वयः पदार्थ
लोम=रोवाँ	मज्जा=मज्जा
हिंकारः=हिंकार है	निधनम्=निधन है
त्वक्=त्वचा	एतत्=यह
प्रस्तावः=प्रस्ताव है	यज्ञायज्ञीयम्=यज्ञायज्ञीय नाम का साम
मांसम्=मांस	अङ्गेषु=अंगों में
उद्गीथः=उद्गीथ है	प्रोतम्=अनुगत है
अस्थि=हाड़	
प्रतिहारः=प्रतिहार है	

भावार्थ ।

अंगों विषे यज्ञायज्ञीय नामक साम की उपासना अनुगत है, यह शरीर विषे उपासना इस प्रकार की जाती है कि रोएँ हिंकार हैं, त्वचा प्रस्ताव है, मांस उद्गीथ है, हाड़ प्रतिहार हैं, मज्जा निधन है ॥ १ ॥

मूलम् ।

स य एवमेतद्यज्ञायज्ञीयमङ्गेषु प्रोतं वेदाङ्गी भवति नाङ्गेन विहूर्च्छति सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति महान्प्रजया पशुभिर्भवति महान्कीर्त्या संवत्सरं मज्ज्ञो नाश्नीयात्तद्व्रतं मज्ज्ञो नाश्नीयादिति वा ॥ २ ॥

इत्येकोनविंशः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

सः, यः, एवम्, एतत्, यज्ञायज्ञीयम्, अङ्गेषु, प्रोतम्, वेद, अङ्गी भवति, न, अङ्गेन, विहूर्च्छति, सर्वम्, आयुः, एति, ज्योक्, जीवति, महान्, प्रजया, पशुभिः, भवति, महान्, कीर्त्या, संवत्सरम्, मज्जः, न, अश्नीयात्, तत्, व्रतम्, मज्जः, न अश्नीयात्, इति, वा ॥

अन्वयः	पदार्थ
यः	जो
एतत्	इस
यज्ञायज्ञीयम्	यज्ञायज्ञीय नामक साम को
अङ्गेषु	अङ्गों में
एवम्	कहे हुए प्रकार
प्रोतम्	अनुगत
वेद	जानता है
सः	वह
अङ्गी	अंगवाला
भवति	होता है
+ च	और
अङ्गेन	अङ्ग करके
न	हीन नहीं
विहूर्च्छति	होता है
सर्वम्	पूर्ण
आयुः	आयु को
एति	प्राप्त होता है
ज्योक्	औरों पर उपकार करता हुआ

जीवति=जीता है
प्रजया=संतानों करके
पशुभिः=पशुओं करके
महान्=श्रेष्ठ
भवति=होता है
कीर्त्या=यश करके
महान्=श्रेष्ठ
+ भवति=होता है
संवत्सरम्=एक साल तक

मज्जाः=मांस
न=न
अश्नीयात्=खाय
इति=ऐसा
तत्=यह
व्रतम्=नियम उस उपासक का है
वा=निश्चय करके

भावार्थ ।

जो उपासक इस यज्ञायज्ञीय नामक साम को अंगों विषे कहे हुए प्रकार अनुगत जानता है वह अच्छा अंगवाला होता है, अर्थात कोई अंग उसका हीन नहीं होता है, वह पूर्ण आयु को प्राप्त होता है, औरों पर उपकार करनेवाला होता है । सन्तानों करके, पशुओं करके, यश करके श्रेष्ठ होता है । उसका नियम यह है कि एक साल तक मांस न भक्षण किया जाय ॥ २ ॥

इत्येकोनविंशः खण्डः ।

अथ द्वितीयाध्यायस्य विंशः खण्डः ।

मूलम् ।

अग्निर्हिंकारो वायुः प्रस्ताव आदित्य उद्गीथो नक्षत्राणि प्रतिहारश्चन्द्रमा निधनमेतद्राजनं देवतासु प्रोतम् ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

अग्निः, हिंकारः, वायुः, प्रस्तावः, आदित्यः, उद्गीथः, नक्षत्राणि, प्रतिहारः, चन्द्रमाः, निधनम्, एतत्, राजनम्, देवतासु, प्रोतम् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अग्निः=अग्नि		चन्द्रमाः=चन्द्रमा	
हिंकारः=हिंकार है		निधनम्=निधन है	
वायुः=वायु		एतत्=यह	
प्रस्तावः=प्रस्ताव है		राजनम्=राजन साम की उपासना	
आदित्यः=आदित्य		देवतासु=देवताओं में	
उद्गीथः=उद्गीथ है		प्रोतम्=अनुगत है	
नक्षत्राणि=नक्षत्र			
प्रतिहारः=प्रतिहार हैं			

भावार्थ ।

राजन साम की उपासना देवताओं विषे इस प्रकार करना चाहिए—अग्नि हिंकार है, वायु प्रस्ताव है, आदित्य उद्गीथ है, नक्षत्र प्रतिहार हैं, चन्द्रमा निधन है ॥ १ ॥

मूलम् ।

स य एवमेतद्राजनं देवतासु प्रोतं वेदैतासामेव देवतानाᳬ सलोकताᳬ सार्ष्टिताᳬ सायुज्यं गच्छति सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति महान्प्रजया पशुभिर्भवति महान्कीर्त्या ब्राह्मणान्न निन्देत् तद्व्रतम् ॥ २ ॥

इति विंशः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

सः, यः, एवम्, एतत्, राजनम्, देवतासु, प्रोतम्, वेद, एतासाम्, एव, देवतानाम्, सलोकताम्, सार्ष्टिताम्, सायुज्यम्, गच्छति, सर्वम्, आयुः, एति, ज्योक्, जीवति, महान्, प्रजया, पशुभिः, भवति, महान्, कीर्त्या, ब्राह्मणान्, न, निन्देत, तत्, व्रतम् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यः=जो		एतत्=इस	
एवम्=इस प्रकार		राजनम्=राजन नामक साम को	

देवतासु=देवताओं में
प्रोतम्=अनुगत
वेद=जानता है
सः=वह
एतासाम्=पहिले मन्त्र में कहे हुए
देवतानाम्=अग्न्यादि देवताओं के
सलोकताम्=लोक को
सार्ष्टिताम्=ऐश्वर्य को
सायुज्यम्=रूप को
गच्छति=प्राप्त होता है
सर्वम्=पूर्ण
आयुः=आयु को
एति=प्राप्त होता है
ज्योक्=उपकार करता हुआ
जीवति=जीता है
प्रजया=सन्तानों करके
पशुभिः=पशुओं करके
महान्=श्रेष्ठ
कीर्त्या=यश करके
महान्=श्रेष्ठ
भवति=होता है
ब्राह्मणान्=ब्राह्मणों की
न=न
निन्देत्=निन्दा करे
तत्=यह
एव=ही
व्रतम्=नियम उस उपासक का है

भावार्थ ।

जो उपासक इस राजन साम को देवताओं विषे अनुगत जानता है वह पहिले मन्त्र में कहे हुए अग्नि आदि देवताओं के लोक को, ऐश्वर्य को, रूप को प्राप्त होता है, पूर्ण आयु को प्राप्त होता है, दूसरे जीवों पर उपकार करने के योग्य होता है । सन्तान करके, नौकर चाकर करके, पशुओं करके, यश करके ऐश्वर्यवान् होता है । ऐसे उपासक का यह नियम है कि ब्राह्मण की निन्दा कोई न करे ॥ २ ॥

इति विंशः खण्डः ।

——:०:——

अथ द्वितीयाध्यायस्यैकविंशः खण्डः ।

मूलम् ।

त्रयी विद्या हिंकारस्त्रय इमे लोकाः स प्रस्तावोऽग्नि-

वायुरादित्यः स उद्गीथो नक्षत्राणि वयांꣳसि मरीचयः स प्रतिहारः सर्पा गन्धर्वाः पितरस्तन्निधनमेतत्साम सर्वस्मिन् प्रोतम् ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

त्रयी, विद्या, हिंकारः, त्रयः, इमे, लोकाः, सः, प्रस्तावः, अग्निः, वायुः, आदित्यः, सः, उद्गीथः, नक्षत्राणि, वयांसि, मरीचयः, सः, प्रतिहारः, सर्पाः, गन्धर्वाः, पितरः, तत्, निधनम्, एतत्, साम, सर्वस्मिन्, प्रोतम् ॥

अन्वयः	पदार्थ
त्रयी	तीनों
विद्या	वेद
हिंकारः	हिंकार हैं
इमे	ये जो
त्रयः	तीनों
लोकाः	लोक हैं
सः	वह
प्रस्तावः	प्रस्ताव है
अग्निः	जो अग्नि
वायुः	वायु
+ च	और
आदित्यः	सूर्य हैं
सः	वह
उद्गीथः	उद्गीथ हैं
नक्षत्राणि	जो नक्षत्र
वयांसि	पक्षी
+ च	और
मरीचयः	किरण हैं
सः	वह
प्रतिहारः	प्रतिहार हैं
सर्पाः	जो सर्प
गन्धर्वाः	गन्धर्व
+ च	और
पितरः	पितर हैं
तत्	वह
निधनम्	निधन हैं
एतत्	यह
साम	साम
सर्वस्मिन्	सब में
प्रोतम्	अनुगत है

भावार्थ ।

यह साम सब में अनुगत है, ऐसा अनुभव करके उपासक साम की उपासना इस प्रकार करे कि जो तीनों वेद हैं वह हिंकार है, जो तीनों लोक हैं वह प्रस्ताव है। जो अग्नि, वायु, सूर्य देवता हैं वह

उद्गीथ है । जो नक्षत्र, पक्षी, किरण हैं वह प्रतिहार है । जो सर्प, गन्धर्व, पितर हैं वह निधन है ॥ १ ॥

मूलम् ।

स य एवमेतत्साम सर्वस्मिन्प्रोतं वेद सर्वꣳ ह भवति ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

सः, यः, एवम्, एतत्, साम, सर्वस्मिन्, प्रोतम्, वेद, सर्वम्, ह, भवति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यः	=जो	वेद	=जानता है
एवम्	=इस प्रकार	सः	=वह
एतत्	=इस	ह	=निश्चय करके
साम	=साम को	सर्वम्	=सर्वेश्वर
सर्वस्मिन्	=सर्वत्र	भवति	=होता है
प्रोतम्	=अनुगत		

भावार्थ ।

जो उपासक इस साम को कहे हुए प्रकार सर्वत्र अनुगत जानता है वह निश्चय करके सर्व का ईश्वर होता है, अर्थात् प्रकृति और प्रकृति के कार्य सब उसके अधीन रहते हैं ॥ २ ॥

मूलम् ।

तदेष श्लोको यानि पञ्चधा त्रीणि त्रीणि तेभ्यो न ज्यायः परमन्यदस्ति ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

तत्, एषः, श्लोकः, यानि, पञ्चधा, त्रीणि, त्रीणि, तेभ्यः, न, ज्यायः, परम्, अन्यत्, अस्ति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यानि	जो	अन्यत्	और पदार्थ
पञ्चधा	इस खण्ड में पांच पांच हिंकार आदि अंगों सहित	न	नहीं
त्रीणि त्रीणि	तीन तीन रूपवाले	अस्ति	है
+ सामानि	साम	तत्	इस विषय में
प्रोक्तानि	कहे गये हैं	एषः	यह
तेभ्यः	उनसे	श्लोकः	मन्त्र
परम् ज्यायः	श्रेष्ठतर	+ प्रमाणम्	प्रमाण
		+ अस्ति	है

भावार्थ।

इस खण्ड में साम के जो पांच पांच अंग कहे गये हैं, उन अंगों के नाम ये हैं—हिंकार, प्रस्ताव, उद्गीथ, प्रतिहार, निधन। हर एक इनमें से तीन तीन रूपवाले हैं अर्थात् हिंकार तीनों वेदरूप है, प्रस्ताव तीनों लोकरूप है, उद्गीथ तीन देवतारूप है, प्रतिहार तारागण आदि रूप है और निधन सर्प गन्धर्वादि रूप है। ऐसे साम से श्रेष्ठतर और कोई उपासना नहीं है। इस विषे यह मन्त्र प्रमाण है॥ ३॥

मूलम्।

यस्तद्वेद स वेद सर्वꣳ सर्वा दिशो बलिमस्मै हरन्ति सर्वमस्मीत्युपासीत तद्व्रतम् तद्व्रतम्॥ ४॥

इत्येकविंशः खण्डः।

पदच्छेदः।

यः, तत्, वेद, सः, वेद, सर्वम्, सर्वाः, दिशः, बलिम्, अस्मै, हरन्ति, सर्वम्, अस्मि, इति, उपासीत, तत्, व्रतम्, तत्, व्रतम्,॥

१-यहां तत् व्रतम्, तत् व्रतम्, दो बार साम उपासना समाप्ति के लिये कहा गया है।

अन्वयः	पदार्थ
यः	जो
तत्	इस सर्वात्मक साम को
वेद	जानता है
सः	वह
सर्वम्	सबको अर्थात् प्रत्येक वस्तु को
वेद	जानता है
सर्वाः	संपूर्ण
दिशः	दिशाएँ
अस्मै	उस उपासक के लिये
बलिम्	भोग्य वस्तु को
हरन्ति	देती हैं
+ अहम्	मैं ही
सर्वम्	सब
अस्मि	हूँ
इति	इस प्रकार
उपासीत	उपासना करे
तत्	यह
व्रतम्	नियम उस उपासक का है

भावार्थ ।

जो इस सर्वात्मक साम को जानता है वह सबको जानता है अर्थात् सबका ज्ञाता होता है और सब दिशाएँ उसको भोग्य वस्तु देती हैं । मैं ही सब हूँ और मुझसे इतर और कुछ वस्तु नहीं है, ऐसी उपासना करे और यही नियम सदा रक्खे ॥ ४ ॥

इत्येकविंशः खण्डः ।

अथ द्वितीयाध्यायस्य द्वाविंशः खण्डः ।

मूलम् ।

विनर्दि साम्नो वृणे पशव्यमित्यग्नेरुद्गीथो निरुक्तः प्रजापतेर्निरुक्तः सोमस्य मृदु श्लक्ष्णं वायोः श्लक्ष्णं बलवदिन्द्रस्य क्रौञ्चं बृहस्पतेरपध्वान्तं वरुणस्य तान्सर्वानेवोपसेवेत वारुणं त्वेव वर्जयेत् ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

विनर्दि, साम्नः, वृणे, पशव्यम्, इति, अग्नेः, उद्गीथः, अनिरुक्तः,

प्रजापतेः निरुक्तः, सोमस्य, मृदु, श्लक्ष्णम्, वायोः, श्लक्ष्णम्, बलवत्, इन्द्रस्य, क्रौञ्चम्, बृहस्पतेः, अपध्वान्तम्, वरुणस्य, तान्, सर्वान्, एव, उपसेवेत, वारुणं, तु, एव, वर्जयेत् ॥

अन्वयः	पदार्थ
यत्	जो गान
अग्नेः	अग्निरूपी
साम्नः	साम का
पशव्यम्	पशु का बढ़ाने-वाला है
तत्	वह
विनर्दि	गौके बछड़े के शब्द के तुल्य है
+ यत्	जो गान
उद्गीथः	उद्गीथरूप
प्रजापतेः	ब्रह्मा का है
सः	वह
अनिरुक्तः	अनिरुक्त शब्द वाला है
+ यत्	जो गान
निरुक्तः	निरुक्त शब्दवाला है
+ तत्	वह
सोमस्य	चन्द्रमा का है
+ यत्	जो गान
मृदु	कोमल
श्लक्ष्णम्	कर्णमनोहर है
+ तत्	वह
वायोः	वायु का है
+ यत्	जो गान
श्लक्ष्णम्	प्रिय और

अन्वयः	पदार्थ
बलवत्	बलवान् अर्थात् उच्च स्वरवाला है
तत्	वह
इन्द्रस्य	इन्द्र का है
यत्	जो गान
क्रौञ्चम्	सारस पक्षी के शब्द के तुल्य है
तत्	वह
बृहस्पतेः	बृहस्पति का है
यत्	जो गान
अपध्वान्तम्	फूटे कांसे के घंटे के शब्द के समान है
तत्	वह
वरुणस्य	वरुण का है
तान् एव	इनहीं
सर्वान्	सब गानों को
उपसेवेत	उपासना करे
तु	परंतु
वारुणम्	अप्रिय शब्द वरुण देवता सम्बन्धी साम को
एव	अवश्य
वर्जयेत्	त्यागे
+ एवम् प्रकारम्	ऊपर कहे हुए प्रकार को
वृणे	मैं चाहता हूँ

+ इति=ऐसा	+ उद्गाता=उद्गाता
+ एकः=एक	+ कथयति=कहता है

भावार्थ ।

यदि कोई उद्गाता पशु की वृद्धि को चाहे तो साम का गान जिसका अधिष्ठाता अग्नि देवता है गौके बछड़े के शब्द के समान स्वर से गावे । जिस साम का अधिष्ठाता देवता ब्रह्मा है, उसका गान अनिरुक्त स्वर से उद्गाता करे अर्थात् ऐसे स्वर से करे जिसके तुल्य न किसी जीव का न किसी वस्तु का शब्द हो । जिस साम का अधिष्ठाता देवता चन्द्रमा है उसका गान उद्गाता निरुक्त स्वर से करे अर्थात् ऐसे स्वर से करे जिसके तुल्य किसी जीव या किसी वस्तु का शब्द न हो । जिस साम का अधिष्ठाता देवता वायु है उसका गान कोमल और कर्ण-मनोहर स्वरों से करे । जिस साम का अधिष्ठाता देवता इन्द्र है उसका गान प्रिय और उच्चस्वर से करे । जिस साम का अधिष्ठाता देवता बृहस्पति है उसका गान सारसपक्षी के शब्द के स्वर से करे । जिस साम का अधिष्ठाता देवता वरुण है और जिसके गान का स्वर काँसे के घंटे के शब्द के समान है ऐसे वरुणसम्बन्धी सामगान का त्याग करे ॥ १ ॥

मूलम् ।

अमृतत्वं देवेभ्य आगायानीत्यागायेत्स्वधां पितृभ्य आशां मनुष्येभ्यस्तृणोदकं पशुभ्यः स्वर्गं लोकं यजमानायान्नमात्मन आगायानीत्येतानि मनसा ध्यायन्नप्रमत्तः स्तुवीत ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

अमृतत्वम्, देवेभ्यः, आगायानि, इति, आगायेत्, स्वधाम्, पितृभ्यः, आशाम्, मनुष्येभ्यः, तृणोदकम्, पशुभ्यः, स्वर्गम्,

लोकम्, यजमानाय, अन्नम्, आत्मनः, आगायानि, इति, एतानि, मनसा, ध्यायन्, अप्रमत्तः, स्तुवीत ॥

अन्वयः	पदार्थ
+ इति	ऐसा
आगायेत्	गान करना चाहिये कि
देवेभ्यः	देवताओं के लिये
अमृतत्वम्	अमृत का
आगायानि	मैं गान करूं
पितृभ्यः	पितरों के लिये
स्वधाम्	स्वधा को
मनुष्येभ्यः	मनुष्यों के लिये
आशाम्	आशा को
पशुभ्यः	पशुओं के लिये
तृणोदकम्	तृण और जल को
यजमानाय	यजमान के लिये
स्वर्गम्	स्वर्ग
लोकम्	लोक को
आत्मने	अपने लिये
अन्नम्	अन्न को
आगायानि	मैं गान करूं
इति	इस प्रकार
एतानि	इन बातों को
मनसा	मन से
ध्यायन्	ध्यान करता हुआ
+ च	और
अप्रमत्तः	स्वर व्यञ्जनादि से सावधान होता हुआ
स्तुवीत	स्तुति करे

भावार्थ ।

एक उद्गाता कहता है कि देवताओं के लिये मैं अमृत सम्बन्धी साम का गान करूं, पितरों के लिये स्वधा सम्बन्धी साम का गान करूं, मनुष्य के लिये आशासम्बन्धी साम का गान करूं, पशुओं के लिये तृण और जलसम्बन्धी साम का गान करूं, यजमान के लिये स्वर्गसम्बन्धी साम का गान करूं, अपने लिये अन्नसम्बन्धी साम का गान करूं, इस प्रकार मन से ध्यान करता हुआ और स्वर व्यञ्जनादि से सावधान होता हुआ साम का गान करे ॥ २ ॥

मूलम् ।

सर्वे स्वरा इन्द्रस्यात्मानः सर्व ऊष्माणः प्रजापतेरात्मानः सर्वे स्पर्शा मृत्योरात्मानस्तं यदि स्वरेषूपालभेतेन्द्रं शरणं प्रपन्नोऽभूवं स त्वा प्रति वक्ष्यतीत्येनं ब्रूयात् ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

सर्वे, स्वराः, इन्द्रस्य, आत्मानः, सर्वे, ऊष्माणः, प्रजापतेः, आत्मानः, सर्वे, स्पर्शाः, मृत्योः, आत्मानः, तम्, यदि, स्वरेषु, उपालभेत, इन्द्रम्, शरणम्, प्रपन्नः, अभूवम्, सः, त्वा, प्रति, वक्ष्यति, इति, एनम्, ब्रूयात् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
सर्वे	संपूर्ण	उद्गातारम्	उद्गाता को
स्वराः	अकारादिक स्वर	उपालभेत	अशुद्ध उच्चारण करता हुआ कोई पावे तो
इन्द्रस्य	इन्द्र के	+ उपालब्धः	वह दोष लगाया हुआ पुरुष
आत्मानः	अंग हैं अर्थात् उससे सम्बन्ध रखनेवाले हैं	एनम्	उससे
सर्वे	सब	इति	ऐसा
ऊष्माणः	ऊष्म अक्षर श, ष, स, ह	ब्रूयात्	कहे कि
प्रजापतेः	कश्यप के	+ अहम्	मैं
आत्मानः	अंग हैं अर्थात् कश्यप से सम्बन्ध रखनेवाले हैं	इन्द्रम्	इन्द्र के
सर्वे	सब	शरणम्	शरण को
स्पर्शाः	व्यञ्जन	प्रपन्नः	प्राप्त
मृत्योः	मृत्यु के	अभूवम्	हुआ हूं
आत्मानः	अंग हैं अर्थात् मृत्यु से सम्बन्ध रखनेवाले हैं	सः	वह
यदि	अगर	इन्द्रः	इन्द्र
तम्	उस	त्वा	तेरे
		प्रति	प्रति
		वक्ष्यति	इसका उत्तर देगा

भावार्थ ।

अकारादि स्वर इन्द्र के अंग हैं अर्थात् इन्द्र देवता से सम्बन्ध रखनेवाले हैं, और ऊष्मवर्ण अर्थात् श, ष, स, ह कश्यपऋषि के अंग हैं, अर्थात् उससे सम्बन्ध रखनेवाले हैं, और ककारादि व्यञ्जन मृत्यु के अंग हैं, अर्थात् मृत्यु से सम्बन्ध रखनेवाले हैं। अगर कोई पुरुष किसी उद्गाता को

साम के स्वर अक्षर अकारादि बिषे अशुद्ध उच्चारण करता हुआ पावे और उससे पूछे क्यों तू अशुद्ध उच्चारण करता है तो दूषित पुरुष उससे कहे कि मैं इन्द्र के शरण को प्राप्त हूं, वह इन्द्र तेरे इस प्रश्न का उत्तर देगा ॥ ३ ॥

मूलम्।

अथ यद्येनमूष्मसूपालभेत प्रजापतिꣳ शरणं प्रपन्नोभूवं स त्वा प्रति पेक्ष्यतीत्येनं ब्रूयादथ यद्येनꣳस्पर्शेषूपालभेत मृत्युꣳशरणं प्रपन्नोभूवं स त्वा प्रतिधक्ष्यतीत्येनं ब्रूयात्॥४॥

पदच्छेदः।

अथ, यदि, एनम्, ऊष्मसु, उपालभेत, प्रजापतिम्, शरणम्, प्रपन्नः, अभूवम्, सः, त्वा, प्रति, पेक्ष्यति, इति, एनम्, ब्रूयात्, अथ, यदि, एनम्, स्पर्शेषु, उपालभेत, मृत्युम्, शरणम्, प्रपन्नः, अभूवम्, सः, त्वा, प्रति, धक्ष्यति, इति, एनम्, ब्रूयात् ॥

अन्वयः	पदार्थ
अथ	इसके पीछे
यदि	अगर कोई
एनम्	उस उद्गाता को
ऊष्मसु	श, ष, स, ह, ऊष्म वर्ण बिषे
उपालभेत	अशुद्ध उच्चारण का दोष लगावे तो
एनम्	उससे
+ सः	वह दूषित पुरुष
इति	ऐसा
ब्रूयात्	कहे कि
प्रजापतिम्	कश्यप के
शरणम्	आश्रय को
प्रपन्नः	प्राप्त
अभूवम्	मैं हुआ हूं
सः	वह कश्यप
त्वा	तेरे
प्रति	को
पेक्ष्यति	चूर्ण करेगा
अथ	फिर
यदि	अगर कोई
एनम्	उस गायक को
स्पर्शेषु	व्यञ्जन अक्षर बिषे
उपालभेत	अशुद्ध उच्चारण करने का दोष लगावे तो

एनम्=उससे	प्रपन्नः=प्राप्त
+ सः=वह दूषित पुरुष	अभूवम्=मैं हुआ हूं
इति=ऐसा	सः=वह मृत्यु
ब्रूयात्=कहे कि	त्वा=तेरे
मृत्युम्=मृत्यु के	प्रति=को
शरणम्=शरण	धक्ष्यति=भस्म करेगा

भावार्थ ।

अगर कोई पुरुष उस उद्गाता को ऊष्मवर्ण श, ष, स, ह बिषे अशुद्ध उच्चारण करता हुआ पावे और दोष लगावे तो वह दूषित पुरुष उत्तर देवे कि मैं कश्यप ऋषि के शरण को प्राप्त हुआ हूं, वह तेरे को चूर्ण करेगा । यदि उद्गाता को व्यञ्जन अक्षरों के उच्चारण करने में दोष लगावे, तो दूषित पुरुष उससे कहे कि मैं मृत्यु के शरण को प्राप्त हुआ हूं, वह तुझको भस्म कर डालेगा ॥ ४ ॥

मूलम् ।

सर्वे स्वरा घोषवन्तो बलवन्तो वक्तव्या इन्द्रे बलं ददानीति सर्व ऊष्माणोग्रस्ता अनिरस्ता विवृता वक्तव्याः प्रजापतेरात्मानं परिददानीति सर्वे स्पर्शा लेशेनानभिनिहिता वक्तव्या मृत्योरात्मानं परिहराणीति ॥ ५ ॥

इति द्वाविंशः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

सर्वे, स्वराः, घोषवन्तः, बलवन्तः, वक्तव्याः, इन्द्रे, बलम्, ददानि, इति, सर्वे, ऊष्माणः, अग्रस्ताः, अनिरस्ताः, विवृताः, वक्तव्याः, प्रजापतेः, आत्मानम्, परिददानि, इति, सर्वे, स्पर्शाः, लेशेन, अनभिनिहिताः, वक्तव्याः, मृत्योः, आत्मानम्, परिहराणि, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
सर्वे	सब
स्वराः	अकारादिक स्वर
बलवन्तः	बल से
+ च	और
घोषवन्तः	उच्चस्वर से
वक्तव्याः	कहने योग्य हैं
इन्द्रे	इन्द्र विषे
बलम्	बल को
ददानि	देता हूं मैं
इति	ऐसा
+ ध्यात्वा	सोच करके
+ प्रयोक्तव्याः	स्वरों का उच्चारण करना योग्य है
प्रजापतेः	प्रजापति के निमित्त
आत्मानम्	अपने को
परिददानि	अर्पण करता हूं मैं
इति	ऐसा
+ ध्यात्वा	ख्याल करके
अग्रस्ताः	नहीं मुख में भक्षण किये हुए
+ च	और
अनिरस्ताः	नहीं मुखसे बाहर फेंके हुए
सर्वे	सब
ऊष्माणः	ऊष्म अक्षर श, ष, स, ह
विवृताः	भली प्रकार निकले हुए
वक्तव्याः	कहने योग्य हैं
मृत्योः	मृत्यु से
आत्मानम्	अपने को
परिहराणि	बचाता हूं मैं
इति	ऐसा
+ ध्यात्वा	ध्यान करके
लेशेन	धीरे धीरे और
अनभिनिहिताः	स्पष्ट उच्चारण करते हुए
स्पर्शाः	ककारादि वर्ण
वक्तव्याः	कहने योग्य हैं

भावार्थ ।

इन्द्र को बल देता हूं मैं ऐसा सोचकर अकारादि स्वर अक्षर को बल से और उच्चस्वर से उच्चारण करना चाहिए । प्रजापति के निमित्त मैं अपने को अर्पण करता हूं ऐसा सोचकर नहीं मुखमें भक्षण किये हुए और नहीं मुखसे बाहर फेंके हुए ऊष्म अक्षर श, ष, स, ह का उच्चारण करना योग्य है । मृत्युसे अपने को बचाता हूं मैं ऐसा सोचकर धीरे धीरे और स्पष्ट उच्चारण करते हुए ककारादि अक्षर कहने योग्य हैं ॥ ५ ॥

इति द्वाविंशः खण्डः ।

अथ द्वितीयाध्यायस्य त्रयोविंशः खण्डः ।

मूलम् ।

त्रयो धर्मस्कन्धा यज्ञोऽध्ययनन्दानमिति प्रथमस्तप एव द्वितीयो ब्रह्मचार्याचार्य कुलवासी तृतीयोऽत्यन्तमात्मानमाचार्यकुलेवसादयन्सर्व एते पुण्यलोका भवन्ति ब्रह्मसꣳस्थोऽमृतत्वमेति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

त्रयः, धर्मस्कन्धाः, यज्ञः, अध्ययनम्, दानम्, इति, प्रथमः, तपः, एव, द्वितीयः, ब्रह्मचारी, आचार्यकुलवासी, तृतीयः, अत्यन्तम्, आत्मानम्, आचार्यकुले, अवसादयन्, सर्वे, एते, पुण्यलोकाः, भवन्ति, ब्रह्मसंस्थः, अमृतत्वम्, एति ॥

अन्वयः	पदार्थ
त्रयः	तीन
धर्मस्कन्धाः	धर्म के भाग हैं
प्रथमः	पहिला
यज्ञः	यज्ञ
अध्ययनम्	वेदाध्ययन
दानम्	दान
द्वितीयः	दूसरा
तपः	कृच्छ्रचान्द्रायणादि तप
तृतीयः	तीसरा
आचार्यकुलवासी	आचार्य के गृह बिषे रहनेवाला
आचार्यकुले	आचार्य के गृह बिषे
आत्मानम्	अपने देह को
अत्यन्तम्	अधिक
अवसादयन्	कष्ट देनेवाला
ब्रह्मचारी	ब्रह्मचारी
एते	ये
सर्वे	सब
पुण्यलोकाः	पुण्यलोकवाले
भवन्ति	होते हैं
परन्तु	परन्तु
ब्रह्मसंस्थः	ब्रह्मज्ञानी प्रणव का उपासक
अमृतत्वम्	मोक्ष को
एति	प्राप्त होता है

भावार्थ ।

धर्म के तीन भाग हैं—पहिला भाग यज्ञ, वेदाध्ययन, और दान है। दूसरा भाग कृच्छ्रचान्द्रायणादि व्रत है। तीसरा भाग आचार्य के गृह बिषे

कष्ट देनेवाले तप करने के लिये ब्रह्मचारी का रहना है । ऊपर कहे हुए तप करनेवाले पुण्यलोक को प्राप्त होते हैं, परन्तु ब्रह्म की उपासना करनेवाला मोक्ष को प्राप्त होता है ॥ १ ॥

मूलम् ।

प्रजापतिर्लोकानभ्यतपत्तेभ्योभितप्तेभ्यस्त्रयी विद्या संप्रास्रवत्तामभ्यतपत्तस्या अभितप्ताया एतान्यक्षराणि संप्रास्रवन्त भूर्भुवः स्वरिति ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

प्रजापतिः, लोकान्, अभ्यतपत्, तेभ्यः, अभितप्तेभ्यः, त्रयी, विद्या, संप्रास्रवत्, ताम्, अभ्यतपत्, तस्याः, अभितप्तायाः, एतानि, अक्षराणि, संप्रास्रवन्त, भूः, भुवः, स्वः, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
प्रजापतिः	कश्यप ऋषि	अभ्यतपत्	विचार करता भया तब
लोकान्	लोकों के निमित्त	अभितप्तायाः	तपे हुए
अभ्यतपत्	विचार करता भया तब	तस्याः	उन तीनों वेदों से
अभितप्तेभ्यः	संतप्त हुए	भूः	भूः
तेभ्यः	उन लोकों से	भुवः	भुवः
त्रयी	तीन	स्वः	स्वः
विद्या	वेद	इति	ऐसे
संप्रास्रवत्	निकलते भये	एतानि	ये
ताम्	उन तीन वेदों के निमित्त	अक्षराणि	अक्षर
		संप्रास्रवन्त	उत्पन्न होते भये

भावार्थ ।

प्रजापति लोकों के निमित्त चिन्तन करता भया, उस चिन्तन करने से तीनलोक उत्पन्न होते भये, उन लोकों से इस प्रकार चिन्तन

किये हुए तीन वेद प्रकट भये, उनके चिन्तन करने से भूः, भुवः, स्वः ये अक्षर निकलते भये ॥ २ ॥

मूलम्।

तान्यभ्यतपत्तेभ्योऽभितप्तेभ्य ॐकारः संप्रास्रवत्तद्यथा शंकुना सर्वाणि पर्णानि संतृण्णान्येवमोंकारेण सर्वा वाक्संतृण्णोंकार एवेदꣳसर्वमोंकार एवेदꣳसर्वम्[1] ॥ ३ ॥

इति त्रयोविंशः खण्डः।

पदच्छेदः।

तानि, अभ्यतपत्, तेभ्यः, अभितप्तेभ्यः, ॐकारः, संप्रास्रवत्, तत्, यथा, शंकुना, सर्वाणि, पर्णानि, संतृण्णानि, एवम्, ॐकारेण, सर्वा, वाक्, संतृण्णा, ॐकारः, एव, इदम्, सर्वम्, ॐकारः, एव, इदम्, सर्वम् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
तानि	उन अक्षरों को	पर्णानि	पत्ते
अभ्यतपत्	अनुभव करता भया	संतृण्णानि	लगे रहते हैं
तब		एवम्	इसी प्रकार
अभितप्तेभ्यः	तपे हुए	ॐकारेण	ॐकार से
तेभ्यः	उन अक्षरों से	सर्वा	सब
ॐकारः	प्रणव	वाक्	वाक्
संप्रास्रवत्	उत्पन्न होता भया	संतृण्णा	व्याप्त है अर्थात् उस के आश्रय है
तत्	सोई	तस्मात्	इसलिये
ब्रह्म	ब्रह्म है	इदम्	यह
यथा	जैसे	सर्वम्	सब जगत्
शंकुना	डंठे से	ॐकारः एव	ॐकाररूप ही है
सर्वाणि	सब		

१—यहां पर "इदम् सर्वम्" "इदम् सर्वम्" इसका दोबार पढ़ना प्रणव के समाप्त्यर्थ और आदरार्थ है।

भावार्थ ।

फिर उन तीन अक्षरों बिषे चिन्तन करता भया, तिन चिन्तन किये अक्षरों से प्रणव उत्पन्न होता भया, सोई ब्रह्म है । जैसे डंठे के आसरे सब पत्ते लगे रहते हैं, इसी प्रकार ॐकार के आसरे सब वाणी व्याप्त हैं अर्थात् उसके आसरे सब वाणी हैं और वाणी के आश्रय विषय हैं, इसलिये यह सब जगत् ॐकाररूप ही है ॥ ३ ॥

इति त्रयोविंशः खण्डः ।

अथ द्वितीयाध्यायस्य चतुर्विंशः खण्डः ।

मूलम् ।

ब्रह्मवादिनो वदन्ति यद्वसूनां प्रातः सवनꣳरुद्राणां माध्यन्दिनꣳ सवनमादित्यानां च विश्वेषां च देवानां तृतीयसवनम् ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

ब्रह्मवादिनः, वदन्ति, यत् , वसूनाम्, प्रातः, सवनम्, रुद्राणाम् माध्यन्दिनम्, सवनम् , आदित्यानाम् , च, विश्वेषाम् , च, देवानाम् तृतीयसवनम् ॥

अन्वयः	पदार्थ
यत्=जो	
प्रातःसवनम्=सुबह का हव्य है	
तत्=वह	
वसूनाम्=वसुओं का है	
+ यत्=जो	
माध्यन्दिनम्=दोपहर का	
सवनम्=हव्य है	
+ तत्=वह	
रुद्राणाम्=रुद्रों का है	
च=और	

अन्वयः	पदार्थ
+ यत्=जो	
आदित्यानाम्=आदित्यों का	
च=और	
विश्वेषांदेवानम्=विश्वेदेवों का है	
+ तत्=वह	
तृतीयसवनम्=तीसरा हव्य है	
ब्रह्मवादिनः=ब्रह्मवादी	
इति=ऐसा	
वदन्ति=कहते हैं	

भावार्थ ।

पहिले साम के संबन्ध में कर्म की प्रतिष्ठा की गई, फिर ॐकार की की गई, अब हवन और मन्त्र की की जाती है । ब्रह्मवादी कहते हैं, प्रातःकाल का हव्य वसुओं के निमित्त है, दोपहर का हव्य रुद्रों के निमित्त है । और तीसरा हव्य सायंकाल का आदित्य और विश्वेदेवों का है अर्थात् भूःलोक वसुओं के आधीन है, और वे वसु प्रातःकाल के हव्यभाग के अधिकारी हैं, भुवःलोक रुद्रों के आधीन है, और वे मध्याह्नकाल के हव्यभाग के अधिकारी हैं, और स्वःलोक आदित्य और विश्वेदेवों के आधीन है, और वे सायंकाल के हव्यभाग के अधिकारी हैं ॥ १ ॥

मूलम् ।

क तर्हि यजमानस्य लोक इति स यस्तं न विद्यात्कथं कुर्यादथ विद्वान्कुर्यात् ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

क, तर्हि, यजमानस्य, लोकः, इति, सः, यः, तम्, न, विद्यात्, कथम्, कुर्यात्, अथ, विद्वान्, कुर्यात् ॥

अन्वयः	पदार्थ
तर्हि	देहपात के पश्चात्
यजमानस्य	यजमान का
लोकः	यज्ञफलरूप लोक
क	कहां है
यः	जो
सः	वह यज्ञकर्ता
तम्	उसको
इति	ऐसा
न	न
विद्यात्	जाने
+ तदा	तब यज्ञ
कथम्	कैसे
कुर्यात्	करे
+ तदा	तब
अथ	आगे कहे हुए उपाय को
विद्वान्	जान करके
कुर्यात्	यज्ञ करे

भावार्थ ।

जब तीनों लोक ऊपर कहे हुए प्रकार देवताओं के होचुके तब देहत्याग के पश्चात् यज्ञकर्त्ता का लोक कहां है, यदि यज्ञकर्त्ता अपने यज्ञ करके उत्पन्न हुए लोक को न जाने तब वह यज्ञ को क्यों करे। इसके उत्तर में कहते हैं कि आगे कहे हुए उपाय को जान करके यज्ञ करे ॥ २ ॥

मूलम् ।

पुरा प्रातरनुवाकस्योपाकरणाज्जघनेन गार्हपत्यस्योदङ्मुख उपविश्य स वासवꣳ सामाभिगायति ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

पुरा, प्रातः, अनुवाकस्य, उपाकरणात्, जघनेन, गार्हपत्यस्य, उदङ्मुखः, उपविश्य, सः, वासवम्, साम, अभिगायति ॥

अन्वयः	पदार्थ
प्रातः	प्रातःकाल
अनुवाकस्य	शस्त्रस्तोत्र के
उपाकरणात्	प्रारंभ से
पुरा	पहिले
+ च	और
गार्हपत्यस्य	गार्हपत्य अग्नि के
जघनेन	पीछे
उदङ्मुखः	उत्तरमुख होता हुआ
सः	वह यजमान
उपविश्य	बैठ करके
वासवम्	वसु देवतावाले
साम	साम का
अभिगायति	गान करे

भावार्थ ।

प्रातःकाल शस्त्रस्तोत्र के आरंभ से पहिले और गार्हपत्य अग्नि के पीछे उत्तरमुख होकर वसुदेवतावाले साम का गान करे ॥ ३ ॥

मूलम् ।

लोकद्वारमपावा ३ र्णू ३३ पश्येम त्वा वयꣳ रा ३३३३३हु ३ म् आ ३३ ज्या ३ यो ३ आ ३२१११ इति॥४॥

पदच्छेदः ।

लोकद्वारम्, अपावृणु, पश्येम, त्वा, वयम्, राज्याय, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
+ हे अग्ने=हे अग्निदेव !		+ तेन=उस द्वार करके	
लोकद्वारम्=पृथ्वी लोक के द्वार को		त्वा=तुझको	
अपावृणु=खोल दे		राज्याय=राज्यप्राप्ति के लिये	
इति=ताकि		वयम्=हम	
		पश्येम=देखें	

भावार्थ ।

हे अग्निदेव ! पृथिवी लोक के द्वार को मेरे लिये खोल दे ताकि मैं तुझको देखूँ और ऐश्वर्य को प्राप्त होऊँ ॥ ४ ॥

मूलम् ।

अथ जुहोति नमोऽग्नये पृथिवीक्षिते लोकक्षिते लोकं मे यजमानाय विन्दैष वै यजमानस्य लोक एतास्मि ॥५॥

पदच्छेदः ।

अथ, जुहोति, नमः, अग्नये, पृथिवीक्षिते, लोकक्षिते, लोकम्, मे, यजमानाय, विन्द, एषः, वै, यजमानस्य, लोकः, एता, अस्मि ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ=इसके उपरांत		लोकम्=लोक	
+ यजमानः=यजमान		विन्द=तू दे	
जुहोति=हव्य अग्नि को दे		मे=मुझ	
+ एवमुक्त्वा=ऐसा कहता हुआ कि		यजमानस्य=यजमान का	
पृथिवीक्षिते=पृथ्वीलोकवासी		वै=निश्चय करके	
अग्नये=अग्नि के लिये		+ यत्=जो	
नमः=मेरा नमस्कार है		एषः=यह	
लोकक्षिते=सर्वलोकवासी अग्नि के लिये		लोकः=लोक है	
नमः=मेरा नमस्कार है		+ तम्=उसको	
यजमानाय मे=मुझ यज्ञकर्ता के लिये		एता=प्राप्त होनेवाला	
		अस्मि=मैं होऊं	

भावार्थ।

ऊपर कहे हुए प्रकार कहकर यजमान अग्नि में हव्य देता है, ऐसा कहता हुआ कि हे पृथ्वीलोकवासी, अग्नि! तेरे लिये मेरा नमस्कार है, मुझ यज्ञकर्त्ता के लिये तू लोक दे, ताकि तुझ करके दिये हुए उस लोक को मैं प्राप्त होऊं॥ ५॥

मूलम्।

अत्र यजमानः परस्तादायुषः स्वाहापजहि परिघमित्युक्त्वोत्तिष्ठति तस्मै वसवः प्रातःसवनꣳ संप्रयच्छन्ति॥ ६॥

पदच्छेदः।

अत्र, यजमानः, परस्तात्, आयुषः, स्वाहा, अपजहि, परिघम्, इति, उक्त्वा, उत्तिष्ठति, तस्मै, वसवः, प्रातःसवनम्, संप्रयच्छन्ति॥

अन्वयः	पदार्थ
अत्र	इस पृथ्वीलोक में
+ अहम्	मैं
यजमानः	यजमान
आयुषः	जीवन के
परस्तात्	बाद
+ एष्यामि	जाऊंगा
+ अग्ने	हे अग्निदेव!
परिघम्	लोक के द्वार की सिकड़ी को
अपजहि	खोल दे
+च	और
स्वाहा	यह हव्य ले
इति	ऐसा
उक्त्वा	कहकर
+सः	वह यजमान
उत्तिष्ठति	खड़ा हो जाता है
+ ततः	उसके पीछे
वसवः	वसुदेवता लोग
तस्मै	उस
+ यजमानाय	यजमान के लिये
प्रातःसवनम्	प्रातःकाल यज्ञ संबंधी फल को
संप्रयच्छन्ति	देते हैं

भावार्थ।

यजमान का ऐसा निश्चय होता है कि शरीर त्यागने के बाद मैं

इस भूलोक को प्राप्त हूंगा, इसलिये वह अग्निदेवता से कहता है कि हे अग्निदेव ! मेरे लिये इस लोक के द्वार की सिकड़ी को खोल दे, इस मेरे दिये हुए हव्य को ले, ऐसा कहकर वह हव्य को देता है और फिर खड़ा होजाता है, जब वह मृत्यु को प्राप्त होजाता है तब वसुदेवता लोग उसको उसके प्रातःकाल के यज्ञ के फल को देते हैं अर्थात् उसको भूलोक प्राप्त करते हैं ॥ ६ ॥

मूलम् ।

पुरा माध्यंदिनस्य सवनस्योपाकरणाज्जघनेनाग्नीध्रीयस्योदङ्मुख उपविश्य स रौद्रꣳसामाभिगायति॥७॥

पदच्छेदः ।

पुरा, माध्यंदिनस्य, सवनस्य, उपाकरणात्, जघनेन, आग्नीध्रीयस्य, उदङ्मुखः, उपविश्य, सः, रौद्रम्, साम, अभिगायति ॥

अन्वयः	पदार्थ
माध्यंदिनस्य	दोपहर के
सवनस्य	यज्ञ के
उपाकरणात्	आरंभ से
पुरा	पहिले
+ च	और
आग्नीध्रीयस्य	दक्षिणाग्नि के
जघनेन	पीछे
उदङ्मुखः	उत्तरमुख होता हुआ
सः	वह यजमान
उपविश्य	बैठकर
रौद्रम्	रुद्र देवता सम्बन्धी
साम	साम को
अभिगायति	गान करता है

भावार्थ ।

दोपहर के यज्ञ के आरंभ से पहिले और दक्षिणाग्नि के पीछे बैठकर उत्तरमुख होता हुआ यजमान रुद्रदेवता संबन्धी साम का गान करता है ॥ ७ ॥

मूलम् ।

लो३ कद्वारमपावा३ र्णू ३३ पश्येम त्वा वयं वैरा ३३३३३ हु३ म् आ ३३ ज्या ३ यो ३ आ ३२१११ इति॥८॥

पदच्छेदः ।

लोकद्वारम्, अपावृणु, पश्येम, त्वा, वयम्, वैराज्याय, इति ।

अन्वयः	पदार्थ
+ अग्ने=हे अग्ने	
लोकद्वारम्=अन्तरिक्षलोक के द्वार को	
अपावृणु=खोल दे	
इति=ताकि	
वयम्=हम	
वैराज्याय=अन्तरिक्षलोक के लिये	
त्वा=तुझको	
पश्येम=देखें	

भावार्थ ।

गान करने के पश्चात् अग्निदेवता से प्रार्थना करता है कि हे अग्निदेव ! अन्तरिक्षलोक के द्वार को मेरे लिये खोल दे, ताकि हम अन्तरिक्षलोक के पाने के लिये आपका दर्शन करें अर्थात् आपके दर्शन से हमको अन्तरिक्ष लोक मिले ॥ ८ ॥

मूलम् ।

अथ जुहोति नमो वायवेऽन्तारिक्षाक्षिते लोकाक्षिते लोकं मे यजमानाय विन्दैष वै यजमानस्य लोक एतास्मि ॥९॥

पदच्छेदः ।

अथ, जुहोति, नमः, वायवे, अन्तरिक्षक्षिते, लोकक्षिते, लोकम्, मे, यजमानाय, विन्द, एषः, वै, यजमानस्य, लोकः, एता, अस्मि ॥

अन्वयः	पदार्थ
अथ=इसके पीछे	
जुहोति=हव्य अग्निदेव को देता है	
अन्तरिक्षक्षिते=अन्तरिक्ष लोक-वासी	
+ च=और	
लोकक्षिते=पृथ्वीलोकवासी	
वायवे=वायुदेव के लिये	
+ मे=मेरा	
नमः=नमस्कार है	
मे=मुझ	
यजमानाय=यजमान के लिये	
लोकम्=अन्तरिक्ष लोक	
विन्द=तू	
वै=निश्चय करके	
मे=मुझ	

यजमानस्य=यजमान का	+ तम्=उसको
एषः=जो यह	एता=प्राप्त
लोकः=अन्तरिक्ष लोक है	अस्मि=होऊं मैं

भावार्थ ।

ऊपर कहे हुए प्रकार कहकर वह यजमान अग्निदेवता को हव्य देता है यह कहता हुआ कि हे अन्तरिक्षलोकवासी, और हे पृथिवी-लोकवासी, वायुदेव ! तेरे लिये मेरा नमस्कार है, तू मुझ यजमान के लिये अन्तरिक्षलोक दे, तुझ करके दिये हुए अंतरिक्षलोक को मैं प्राप्त हूंगा और अग्नि में हव्य डालते हुए "नमो वायवे स्वाहा" इस मंत्र को पढ़ता है ॥ ६ ॥

मूलम् ।

अत्र यजमानः परस्तादायुषः स्वाहापजहि परिघ-मित्युक्त्वोत्तिष्ठति तस्मै रुद्रा माध्यंदिनꣳ सवनꣳ संप्रयच्छन्ति ॥ १० ॥

पदच्छेदः ।

अत्र, यजमान , परस्तात्, आयुषः, स्वाहा, अपजहि, परिघम्, इति, उक्त्वा, उत्तिष्ठति, तस्मै, रुद्राः, माध्यंदिनम्, सवनम्, संप्रयच्छन्ति ॥

अन्वयः पदार्थ	अन्वयः पदार्थ
अत्र=इस अन्तरिक्ष लोक को	परिघम्=अन्तरिक्ष लोक के द्वार की सिकड़ी को
यजमान=यजमान	अपजहि=खोल दे
आयुषः=जीवन के	स्वाहा=इस हव्य को ले
परस्तात्=पश्चात्	इति=ऐसा
+ एति=प्राप्त होता है	उक्त्वा=कहकर
तस्मात्=इसलिये	+ सः=वह यजमान
रुद्राः=हे रुद्रदेवताओ !	

अन्वयः	पदार्थ
उत्तिष्ठति	उठ खड़ा होता है
+ ततः	उसके पीछे
तस्मै	उस यजमान के लिये
रुद्राः	रुद्रदेवता
माध्यंदिनम्	मध्याह्नकाल के
सवनम्	यज्ञ के फल को
संप्रयच्छति	देते हैं

भावार्थ ।

यज्ञकर्ता अन्तरिक्ष लोक को मरने के पश्चात् प्राप्त होता है इसलिये हे रुद्रदेवताओ ! मुझ यज्ञकर्ता के लिये अन्तरिक्षलोक के द्वार की सिकड़ी को खोल दे, और इस मुझ करके दिये हुए हव्य को ले, ऐसा कह करके वह यजमान उठकर खड़ा होजाता है और जब उसका शरीरपात होजाता है, तब वे रुद्रदेवता उस यज्ञकर्त्ता को मध्याह्नकाल के यज्ञ के फल को देते हैं ॥ १० ॥

मूलम् ।

पुरा तृतीयसवनस्योपाकरणाज्जघनेनाहवनीयस्योदङ्मुख उपविश्य स आदित्यꣳ स वैश्वदेवꣳसामाभिगायति ॥ ११ ॥

पदच्छेदः ।

पुरा, तृतीयसवनस्य, उपाकरणात्, जघनेन, आहवनीयस्य, उदङ्मुखः, उपविश्य, सः, आदित्यम्, सः, वैश्वदेवम्, साम, अभिगायति ॥

अन्वयः	पदार्थ
तृतीयसवनस्य	सायंकाल के यज्ञ के
उपाकरणात्	आरंभ से
पुरा	पहिले
+ च	और
आहवनीयस्य	आहवनीय अग्नि के
जघनेन	पीछे
उदङ्मुखः	उत्तराभिमुख होता हुआ
सः	वह यजमान
आदित्यम् साम	आदित्यदेव संबंधी साम को

अभिगायति=गान करता है	वैश्वदेवं+साम=विश्वेदेव संबंधी
च=और	साम को भी
सः=वही यजमान	अभिगायति=गान करता है

भावार्थ ।

सायंकाल के यज्ञ के आरंभ से पहिले और आहवनीय अग्नि के पीछे यज्ञशाला में बैठकर यजमान आदित्यदेवता संबंधी और विश्वेदेव-देवता संबंधी साम का गान करता है ॥ ११ ॥

मूलम् ।

लोकद्वारमपावार्णु पश्येम त्वा वयंꣳ स्वाराहुम् आ-ज्यायो आ इति ॥ १२ ॥

पदच्छेदः ।

लोकद्वारम्, अपावृणु, पश्येम, त्वा, वयम्, स्वाराज्याय, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
+ अग्ने=हे अग्निदेव !		वयम्=हम	
लोकद्वारम्=स्वर्ग के द्वार को		स्वाराज्याय=स्वर्गराज्य की प्राप्ति के लिये	
अपावृणु=खोल दे		त्वा=तुझको	
इति=ताकि		पश्येम=देखें	

भावार्थ ।

यह कहता हुआ कि हे अग्निदेव ! स्वर्ग के द्वार को मेरे लिये खोल दे ताकि हम स्वर्गराज्य की प्राप्ति के लिये तेरा दर्शन करें, अर्थात् तेरे दर्शन से हमको स्वर्गराज्य की प्राप्ति होवे ॥ १२ ॥

मूलम् ।

आदित्यमथ वैश्वदेवं लोकद्वारमपावार्णु पश्येम त्वा वयꣳ साम्राहुम् आज्यायो आ इति ॥ १३ ॥

पदच्छेदः ।

आदित्यम्, अथ, वैश्वदेवम्, लोकद्वारम, अपावृणु, पश्येम, त्वा, वयंम्, साम्राज्याय, इति ॥

अन्वयः **पदार्थ**

आदित्यम्=आदित्य संबन्धी
+ **साम**=साम को
+ **अभिगायति**=गान करता है
अथ=और
वैश्वदेवम्=विश्वेदेवसंबन्धी साम को
+ **अभिगायति**=गान करता है
+ **च**=और
+ **प्रार्थयते**=प्रार्थना भी करता है कि
+ **अग्ने**=हे अग्नि ! तू

अन्वयः **पदार्थ**

लोकद्वारम्=सूर्य और विश्वेदेव के लोक के द्वार को
अपावृणु=खोल दे
इति=ताकि
वयम्=हम
साम्राज्याय=चक्रवर्ती राज्य मिलने के लिये
त्वा=तुझको
पश्येम=देखें

भावार्थ ।

फिर आदित्यदेवसंबन्धी और विश्वेदेवसंबन्धी साम का गान करता है और प्रार्थना करता है कि हे अग्ने ! तू सूर्य और विश्वेदेवलोक के द्वार को खोल दे ताकि हम चक्रवर्ती राज्य पाने के लिये तेरा दर्शन करें ॥ १३ ॥

मूलम् ।

अथ जुहोति नम आदित्येभ्यश्च विश्वेभ्यश्च देवेभ्यो दिविक्षिद्भ्यो लोकक्षिद्भ्यो लोकं मे यजमानाय विन्दत ॥ १४ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, जुहोति, नमः, आदित्येभ्यः, च, विश्वेभ्यः, च, देवेभ्यः, दिविक्षिद्भ्यः, लोकक्षिद्भ्यः, लोकम्, मे, यजमानाय, विन्दत ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ=अब		नमः=नमस्कार है	
आदित्येभ्यः=आदित्यों के लिये		+ इति उक्त्वा=ऐसा कहकर	
च=और		+ सः=वह यजमान	
विश्वेभ्यः देवेभ्यः=विश्वेदेवों के लिये		जुहोति=होम करता है	
च=और		+ च=और	
दिविक्षिद्भ्यः=अन्तरिक्षवासी देवताओं के लिये		+ प्रार्थयते=प्रार्थना करता है कि	
लोकक्षिद्भ्यः=और लोकवासियों के लिये		मे=मुझ	
मे=मेरा		यजमानाय=यजमान के लिये	
		लोकम्=लोकों को	
		विन्दत=देवो तुम सब	

भावार्थ ।

यजमान अग्नि में हव्य देकर कहता है कि आदित्यों के लिये, विश्वेदेवों के लिये, अन्तरिक्षवासी देवताओं के लिये और अन्य लोकवासी देवताओं के लिये मेरा नमस्कार है । ऐसा कहकर वह यजमान होम करके प्रार्थना करता है कि हे तुम सब देवताओ ! मुझ यजमान के इच्छित लोक को देओ ॥ १४ ॥

मूलम् ।

एष वै यजमानस्य लोक एतास्म्यत्र यजमानः परस्तादायुषः स्वाहापहत परिघमित्युक्त्वोत्तिष्ठति ॥ १५ ॥

पदच्छेदः ।

एषः, वै, यजमानस्य, लोकः, एता, अस्मि, अत्र, यजमानः, परस्तात्, आयुषः, स्वाहा, अपहत, परिघम्, इति, उक्त्वा, उत्तिष्ठति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
वै=निश्चय करके		यजमानस्य=यजमान का है	
एषः=यह		+ तम्=उसको	
लोकः=लोक		एता=प्राप्त	

अस्मि=मैं होऊं	परिघम्=लोक द्वार की सिकड़ी को
अत्र=इस लोक को	अपहत=खोल दे
आयुषः=जीवन के	इति=ऐसा
परस्तात्=पीछे	उक्त्वा=कहकर
यजमानः=यज्ञकर्त्ता	स्वाहा=यजमान हवि देता है
+ एति=प्राप्त होता है	+ च=और
+ देवाः=हे अग्निआदि देवताओ !	उत्तिष्ठति=उठ खड़ा होता है

भावार्थ ।

यह भूलोक यज्ञकर्त्ता का है, यज्ञकर्त्ता शरीर त्यागने के पश्चात् इस लोक को प्राप्त होता है इसलिये मैं भी इस लोक को प्राप्त होऊँ। हे अग्नि आदि देवताओ ! इस लोक के द्वार की सिकड़ी को खोल देओ, यह कहकर वह यजमान अग्नि में हव्य देता है और फिर खड़ा होजाता है ॥ १५ ॥

मूलम् ।

तस्मा आदित्याश्च विश्वेदेवास्तृतीयसवनꣳ संप्रयच्छन्त्येष ह वै यज्ञस्य मात्रां वेद य एवं वेद य एवं वेद ॥ १६ ॥

इति द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

तस्मै, आदित्याः, च, विश्वेदेवाः, तृतीयसवनम्, संप्रयच्छन्ति, एषः, ह, वै, यज्ञस्य, मात्राम्, वेद, यः, एवम्, वेद, यः, एवम्, वेद ॥

अन्वयः पदार्थ	अन्वयः पदार्थ
एषः=यह जो यजमान	ह वै=निश्चयपूर्वक
यज्ञस्य=यज्ञ के	वेद=जानता है
मात्राम्=यथार्थस्वरूप को	तस्मै=उस यजमान के लिये

आदित्याः=आदित्यदेवता
च=और
विश्वेदेवाः=विश्वदेवदेवतालोग
तृतीयसवनम्=सायंकाल के यज्ञ-फल को
संप्रयच्छन्ति=देते हैं
यः=जो
एवम्=इस प्रकार
वेद=जानता है

भावार्थ ।

जो यजमान इस यज्ञ के यथार्थस्वरूप को भलीप्रकार जानता है, उस यजमान के लिये आदित्यदेवता और विश्वेदेव देवता सायंकाल के यज्ञ के फल को देते हैं अर्थात् जो लोक सायंकाल के यज्ञ के करने से मिलता है, उस लोक को वे देवता उसको प्राप्त करते हैं ॥ १६ ॥

इति छान्दोग्योपनिषदि द्वितीयोऽध्यायः ।

हरिर्हरति पापानि दुष्टचित्तैरपि स्मृतः ॥
अनिच्छयापि संस्पृष्टो दहत्येव हुताशनः ॥ १ ॥

अथ तृतीयाध्यायस्य प्रथमः खण्डः ।

मूलम् ।

ॐ असौ वा आदित्यो देवमधु तस्य द्यौरेव तिरश्चीनवंशोऽन्तरिक्षमपूपो मरीचयः पुत्राः ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

असौ, वै, आदित्यः, देवमधु, तस्य, द्यौः, एव, तिरश्चीनवंशः, अन्तरिक्षम्, अपूपः, मरीचयः, पुत्राः ।

अन्वयः	पदार्थ
असौ	यह प्रत्यक्ष
आदित्यः	सूर्य
वै	निश्चय करके
देवमधु	देवताओं का मधु है
तस्य	उसकी
द्यौः	स्वर्ग
एव	निश्चय करके
तिरश्चीनवंशः	तिर्छी धन्नी है
+च	और
अन्तरिक्षम्	आकाश

+तस्य=उसका	मरीचयः=किरणें
अपूपः=छत्ता है	पुत्राः=उस मधु के पुत्र हैं

भावार्थ ।

सूर्य निश्चय करके देवताओं का मधु है। जैसे मधु से आनन्द मिलता है वैसे ही सूर्य की उपासना से सब प्रकार का सुख मिलता है, क्योंकि यज्ञ में कर्म करके जो फल होता है वह सब जा करके सूर्य विषे स्थित रहता है। यही कारण है कि वह बड़े प्रकाश से चमकता है और सबको प्रकाश देता है। इस सूर्य के ध्यान करने से ध्यान करनेवाले को सब प्रकार का फल मिलता है। ऐसे मधु का छत्ता आकाश है और स्वर्ग उसकी धन्नी है और छत्ता के छोटे छोटे छिद्र पुत्र की तरह सूर्य की किरण हैं अर्थात् जैसे छोटे छोटे छिद्रों में मधु रहता है, वैसे ही सूर्य की किरणों में आनन्द के देनेवाले यश, तेज आदि रस भरे रहते हैं ॥ १ ॥

मूलम् ।

तस्य ये प्राञ्चो रश्मयस्ता एवास्य प्राच्यो मधुनाडयः। ऋच एव मधुकृत ऋग्वेद एव पुष्पं ता अमृता आपस्ता वा एता ऋचः ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

तस्य, ये, प्राञ्चः, रश्मयः, ताः, एव, अस्य, प्राच्यः, मधुनाडयः, ऋचः, एव, मधुकृतः, ऋग्वेदः, एव, पुष्पम्, ताः, अमृताः, आपः, ताः, वै, एताः, ऋचः ॥

अन्वयः पदार्थ	अन्वयः पदार्थ
तस्य=उस सूर्य की	अस्य=इसकी
प्राञ्चः=पूर्ववाली	प्राच्यः=पूर्ववाली
ये=जो	मधुनाडयः=मधु की नाड़ियां हैं अर्थात् मधु के छत्ते के छिद्र हैं
रश्मयः=किरणें हैं	
ताः एव=वेही	

+ च=और
ऋचः=ऋग्वेद के मन्त्र
एव=ही
मधुकृतः=मधु को पैदा करनेवाली मधुमक्खियाँ हैं
+च=और
ऋग्वेदः=ऋग्वेद के कर्म
एव=ही
पुष्पम्=पुष्प हैं
+च=और
ताः=वे ऋचाएँ जिन करके अग्नि में हव्य दियाजाता है
अमृताः=अमृतरूप
आपः=जल हैं
ताः=वे
ऋचः=ऋग्वेद के मन्त्र
वै=ही
एताः=ऊपर कही हुई मधुमक्खियाँ हैं

भावार्थ ।

सूर्य की पूर्ववाली किरणें मधुछत्ते के छिद्र के समान हैं अर्थात् मधु के उत्पत्ति के स्थान हैं और ऋग्वेद के मन्त्र ही मधुमक्खियाँ हैं, ऋग्वेद के कर्म ही पुष्प हैं । इन ऋग्वेद के कर्मों करके अग्नि में हव्य डालने से जो रस उत्पन्न होता है वह अमृतरूप जल है । जैसे मधुमक्खी पुष्पों से रस लाकर मधु बनाती है वैसे ही ऋग्वेद के मन्त्र कर्म करके अग्नि में हव्य देने से मधु बनाते हैं ॥ २ ॥

मूलम् ।

एतमृग्वेदमभ्यतपꣳस्तस्याभितप्तस्य यशस्तेज इन्द्रियं वीर्यमन्नाद्यꣳरसोऽजायत ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

एतम्, ऋग्वेदम्, अभ्यतपन्, तस्य, अभितप्तस्य, यशः, तेजः, इन्द्रियम्, वीर्यम्, अन्नाद्यम्, रसः, अजायत ॥

अन्वयः	पदार्थ
एतम्	इस
ऋग्वेदम्	ऋग्वेद में कहे हुए यज्ञ कर्मरूपी पुष्प को
+ ऋचः	वेद के मन्त्र
अभ्यतपन्	तपाते भये अर्थात् ध्यान करते भये
तस्य	उस

अभितप्तस्य=ध्यान किये हुए ऋग्वेद यज्ञकर्म-रूपी पुष्प के
रसः=रस अर्थात् सार वस्तु
यशः=नेकनामी
तेजः=कान्ति
इन्द्रियम्=इन्द्रियशक्ति
वीर्यम्=बल
+ च=और
अन्नाद्यम्=अन्नादिक शरीर के पुष्ट करनेवाले पदार्थ
अजायत=उत्पन्न हुए

भावार्थ ।

ऋग्वेद में कहे हुए यज्ञकर्मरूपी पुष्प को वेद के मन्त्र तपाते भये अर्थात् उन कर्मरूपी पुष्पों का ध्यान करते भये । उस ध्यान किये हुए यज्ञकर्मरूपी पुष्प से यश, कान्ति, इन्द्रियशक्ति, बल और अन्नादिक शरीर के पुष्ट करनेवाले पदार्थ उत्पन्न होते भये ॥ ३ ॥

मूलम् ।

तद्व्यक्षरत्तदादित्यमभितोऽश्रयत्तद्वा एतद्यदेतदादित्यस्य रोहितं रूपम् ॥ ४ ॥

इति प्रथमः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

तत्, व्यक्षरत्, तत्, आदित्यम्, अभितः, अश्रयत्, तत्, वै, एतत्, यत्, एतत्, आदित्यस्य, रोहितम्, रूपम् ॥

अन्वयः पदार्थ

तत्=यश आदि
व्यक्षरत्=निकलता भया
तत्=वही निकला हुआ सार पदार्थ
आदित्यम्=सूर्य के
अभितः=पूर्व भाग को
अश्रयत्=आश्रय करता भया अर्थात् उसमें प्रवेश करता भया

अन्वयः पदार्थ

+ च=और
यत्=जो
एतत्=यह
आदित्यस्य=सूर्य का
रोहितम्=लाल
रूपम्=रूप है
तत् वै=वही
एतत्=यह सार पदार्थ यश आदि हैं

भावार्थ ।

यज्ञ में कर्म करने से जो यश आदि निकलते भये वह सूर्य के पूर्व भाग को आश्रय करते भये अर्थात् उसमें प्रवेश करके स्थित होगये और इसी कारण जो सूर्य का लाल रूप दिखलाई देता है वह यज्ञ विषे कर्मों के फल, यश और कान्ति आदि हैं ॥ ४ ॥

इति प्रथमः खण्डः ।

अथ तृतीयाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः ।

मूलम् ।

अथ येऽस्य दक्षिणा रश्मयस्ता एवाऽस्य दक्षिणा मधुनाड्यो यजूꣳष्येव मधुकृतो यजुर्वेद एव पुष्पं ता अमृता आपः ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, ये, अस्य, दक्षिणाः, रश्मयः, ताः, एव, अस्य, दक्षिणाः, मधुनाड्यः, यजूंषि, एव, मधुकृतः, यजुर्वेदः, एव, पुष्पम्, ताः, अमृताः, आपः ॥

अन्वयः	पदार्थ
अथ	अब
अस्य	इस
+ देवमधुनः	देवमधु अर्थात् सूर्य की
दक्षिणाः	दक्षिणवाली
ये	जो
रश्मयः	किरणें हैं
ताः एव	वे
अस्य	इसके
दक्षिणाः	दक्षिण ओर के
मधुनाड्यः	मधुछिद्र हैं
यजूंषि एव	यजुर्वेद के मन्त्र ही
मधुकृतः	मधुमक्खिकाएँ हैं
यजुर्वेदः एव	यजुर्वेद ही
पुष्पम्	रस का देनेवाला पुष्प है
ताः	जो हवन ऋचा करके यज्ञकर्म मैं दिया जाता है
अमृताः	अति स्वादिष्ट
आपः	जल हैं

भावार्थ ।

सूर्य की दक्षिणवाली जो किरणें हैं वेही सूर्य के दक्षिण ओर के मधु निकलनेवाले छिद्र हैं और यजुर्वेद के जो मन्त्र हैं वे मधुमक्षिकाएँ हैं और संपूर्ण यजुर्वेद रस का देनेवाला पुष्प है और जो हव्य यजुर्वेद के मन्त्रों करके यज्ञकर्म में दिये जाते हैं वे स्वादिष्ट अमृतरूप जल हैं। अभिप्राय इस मन्त्र का यह है कि यजुर्वेद के मन्त्रों करके यज्ञकर्म में जो हव्य दिया जाता है उसका रस धूम होकर सूर्य के विषे पहुँचकर मधुरूप से जमा होता है। जो सूर्य की उपासना करता है सूर्य उसको वह मधु देता है ॥ १ ॥

मूलम् ।

तानि वा एतानि यजूꣳष्येतं यजुर्वेदमभ्यतपꣳस्तस्याभितप्तस्य यशस्तेज इन्द्रियं वीर्यमन्नाद्यं रसोऽजायत ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

तानि, वै, एतानि, यजूंषि, एतम्, यजुर्वेदम्, अभ्यतपन्, तस्य, अभितप्तस्य, यशः, तेजः, इन्द्रियम्, वीर्यम्, अन्नाद्यम्, रसः, अजायत ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
तानि	वे	अभितप्तस्य	तपाये हुए यजुर्वेदरूपी पुष्प का
वै	ही	यशः	शुभ कीर्ति
एतानि	ये	तेजः	प्रताप
यजूंषि	यजुर्वेद की ऋचाएँ	इन्द्रियम्	बल
एतम्	इस रस देनेवाले पुष्परूपी	वीर्यम्	तेज
यजुर्वेदम्	यजुर्वेद को	अन्नाद्यम्	महत्त्वरूप
अभ्यतपन्	ध्यान करके तपाते भये	रसः	रस
तस्य	उस	अजायत	प्रत्यक्ष होता भया

भावार्थ ।

यजुर्वेद की ऋचाएँ यजुर्वेदरूपी पुष्प को तपाती भई, उस तपे हुए पुष्प से शुभकीर्त्ति, प्रताप, बल, तेज और महत्त्वरूप रस निकलता भया । यही रस सूर्य द्वारा उपासक को उपासना के प्रभाव से प्राप्त होता है ॥ २ ॥

मूलम् ।

तद्व्यक्षरत्तदादित्यमभितोऽश्रयत्तद्वा एतद्यदेतदादित्यस्य शुक्लं रूपम् ॥ ३ ॥

इति द्वितीयः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

तत्, व्यक्षरत्, तत्, आदित्यम्, अभितः, अश्रयत्, तत्, वै, एतत्, यत्, एतत्, आदित्यस्य, शुक्लम्, रूपम् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
तत्=	वह यश आदिक रस	यत्=	जो
व्यक्षरत्=	बहता भया	एतत्=	यह
तत्=	सो वह बहा हुआ रस	आदित्यस्य=	सूर्य का
आदित्यम्=	आदित्य के	शुक्लम्=	श्वेत
अभितः=	चारों ओर	रूपम्=	रूप है
अश्रयत्=	आश्रय करता भया	तत् वै=	सोई
+ तस्मात्=	इसलिये	एतत्=	यह यश आदिक
		+ रसः=	रस हैं

भावार्थ ।

यह यश आदिकरूपी रस जो सूर्य में जमा था वह सूर्य से निकलकर सूर्य के चारों ओर आश्रय करता भया । इसलिये जो सूर्य का श्वेतरूप है सोई यश आदिक रस हैं ॥ ३ ॥

इति द्वितीयः खण्डः ।

अथ तृतीयाध्यायस्य तृतीयः खण्डः ।

मूलम् ।

अथ येऽस्य प्रत्यञ्चो रश्मयस्ता एवाऽस्य प्रतीच्यो मधुनाड्यः सामान्येव मधुकृतः सामवेद एव पुष्पम् ता अमृता आपः ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, ये, अस्य, प्रत्यञ्चः, रश्मयः, ताः, एव, अस्य, प्रतीच्यः, मधुनाड्यः, सामानि, एव, मधुकृतः, सामवेदः, एव, पुष्पम्, ताः, अमृताः, आपः ॥

अन्वयः	पदार्थ
अथ	अब
अस्य	इस सूर्य की
ये	जो
प्रत्यञ्चः	पश्चिम ओर की
रश्मयः	किरणें हैं
ताः	वे
एव	ही
अस्य	इस देवमधु अर्थात् सूर्य के
प्रतीच्यः	पश्चिम ओर के
मधुनाड्यः	मधु निकलने के छिद्र हैं
सामानि	साम की ऋचाएँ
एव	ही
मधुकृतः	मधुमक्षिकाएँ हैं
+ च	और
सामवेदः	सामवेद में कहा हुआ कर्म
एव	ही
पुष्पम्	रस के देनेवाले पुष्प हैं
ताः	जो हव्य मन्त्रों करके अग्नि में दिये जाने से रस होते हैं वे ही
अमृताः	अतिउत्तम स्वादिष्ठ
आपः	जल हैं

भावार्थ ।

सूर्य की पश्चिम ओर की जो किरणें हैं, वे सूर्य के पश्चिम ओर के मधु निकलने के छिद्र हैं और सामवेद की जो ऋचाएँ हैं वे मधु-

मक्षिकाएँ हैं और जो सामवेद में कहे हुए कर्म हैं वे रस के देनेवाले पुष्प हैं । मन्त्र करके अग्नि में जो हव्य दिये जाते हैं वेही अतिउत्तम स्वादिष्ठ अमृतरूपी जल हैं ॥ १ ॥

मूलम् ।

तानि वा एतानि सामान्येतꣳसामवेदमभ्यतपꣳस्तस्याभितप्तस्य यशस्तेज इन्द्रियं वीर्यमन्नाद्यꣳरसोऽजायत ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

तानि, वै, एतानि, सामानि, एतम्, सामवेदम्, अभ्यतपन्, तस्य, अभितप्तस्य, यशः, तेजः, इन्द्रियम्, वीर्यम्, अन्नाद्यम्, रसः, अजायत ॥

अन्वयः	पदार्थ
तानि वै	वे ही
एतानि	ये
सामानि	सामवेद की ऋचाएँ
एतम्	इस
सामवेदम्	सामवेद को
अभ्यतपन्	ध्यान करके तपाती भई
तस्य	उस
अभितप्तस्य	ध्यान किये हुए सामवेद का
रसः	रसरूप
यशः	शुभकीर्त्ति
तेजः	प्रताप
इन्द्रियम्	बल
वीर्यम्	तेज
अन्नाद्यम्	महत्त्व
अजायत	होता भया

भावार्थ ।

वे सामवेद की ऋचाएँ सामवेद में कहे हुए कर्मरूपी पुष्प को ध्यान करके तपाती भई, उस तपे हुए पुष्प से रसरूप शुभ कीर्त्ति, प्रताप, बल, तेज और महत्त्व उत्पन्न होता भया । वही सूर्यद्वारा उपासक को प्राप्त होता है ॥ २ ॥

मूलम् ।

तद्व्यक्षरत्तदादित्यमभितोऽश्रयत्तद्वा एतद्यदेतदादित्यस्य कृष्णꣳ रूपम् ॥ ३ ॥

इति तृतीयः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

तत्, व्यक्षरत्, तत्, आदित्यम्, अभितः, अश्रयत्, तत्, वै, एतत्, यत्, एतत्, आदित्यस्य, कृष्णम्, रूपम् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
तत्	वह यश आदिक रूप रस	यत्	जो
व्यक्षरत्	बहता भया	एतत्	यह
तत्	सोई बहा हुआ रस	आदित्यस्य	सूर्य का
आदित्यम्	सूर्य के	कृष्णम्	कृष्णवर्ण
अभितः	चारों ओर	रूपम्	रूप है
अश्रयत्	आश्रय करता भया	तत् वै	सोई यश आदिक
+ तस्मात्	इसलिये	एतत्	यह
		+ रसः	रस है

भावार्थ ।

वह यश आदिक रस जो सूर्य में जमा थे वे सूर्य से बह निकले, वेही सूर्य के चारों ओर स्थित होते भये इसलिये जो यह सूर्य की कृष्णवर्ण प्रभा है, सोई ऊपर कहे हुए प्रकार यश आदिक रस हैं ॥ ३ ॥

इति तृतीयः खण्डः ।

अथ तृतीयाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः ।

मूलम् ।

अथ येऽस्योदञ्चो रश्मयस्ता एवास्योदीच्यो मधुनाड्योऽथर्वाङ्गिरस एव मधुकृत इतिहासपुराणं पुष्पं ता अमृता आपः ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, ये, अस्य, उदञ्चः, रश्मयः, ताः, एव, अस्य, उदीच्यः, मधुनाड्यः, अथर्वाङ्गिरसः, एव, मधुकृतः, इतिहासपुराणम्, पुष्पम्, ता, अमृताः, आपः ॥

अन्वयः	पदार्थ
अथ=	तृतीय मधु कथन के पीछे चतुर्थ मधु का वर्णन करते हैं
अस्य=	इस सूर्य की
ये=	जो
उदञ्चः=	उत्तर ओर की
रश्मयः=	किरणें हैं
ताः=	वे
एव=	ही
अस्य=	इस सूर्य के
उदीच्यः=	उत्तर ओर के
मधुनाड्यः=	मधु निकलने के छिद्र हैं अर्थात् उन किरणों में यज्ञकर्म के फलरूपी पुष्प रस भरे रहते हैं

अन्वयः	पदार्थ
अथर्वाङ्गिरसः एव	=अथर्वण वेद के मन्त्र ही
मधुकृतः=	मधुमक्षिकाएँ हैं
इतिहासपुराणम्	=इतिहास और पुराण
पुष्पम्=	रस के देनेवाले पुष्प हैं
ताः=	अथर्वण वेद के मन्त्रों करके यज्ञकर्म में जो हव्य दिया जाता है वे
अमृताः=	अति उत्तम स्वादिष्ठ अमृत रूपी
आपः=	जल हैं

भावार्थ ।

अब चतुर्थ मधु का वर्णन किया जाता है । सूर्य की उत्तर ओर की जो किरणें हैं वेही सूर्य के उत्तर ओर के मधु निकलने के स्थान हैं अर्थात् यज्ञकर्म में जो हव्य दिये जाते हैं उनके रस धूम होकर सूर्य बिषे स्थित होजाते हैं । इसके संबंध में अथर्वणवेद के मन्त्र ही मधुमक्षिकाएँ हैं और इतिहासपुराण पुष्प हैं और जो अथर्वणवेद के मन्त्रों करके यज्ञ में हव्य दिये जाते हैं वेही अति उत्तम स्वादिष्ठ जल हैं ॥ १ ॥

मूलम् ।

ते वा एतेऽथर्वाङ्गिरस एतदितिहासपुराणमभ्यतपꣳस्तस्याभितप्तस्य यशस्तेज इन्द्रियं वीर्यमन्नाद्यꣳ रसोऽजायत ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

ते, वै, एते, अथर्वाङ्गिरसः, एतत्, इतिहासपुराणम्, अभ्यतपन्, तस्य, अभितप्तस्य, यशः, तेजः, इन्द्रियम्, वीर्यम्, अन्नाद्यम्, रसः, अजायत ॥

अन्वयः	पदार्थ
ते	वे
वै	ही
एते	ये
अथर्वाङ्गिरसः	अथर्वण वेद के मन्त्र
एतत्	इस
इतिहासपुराणम्	इतिहास और पुराण को
अभ्यतपन्	ध्यान करते भये
तस्य	उस
अभितप्तस्य	ध्यान किये हुए पुराण का
यशः	शुभ कीर्ति
तेजः	प्रताप
इन्द्रियम्	बल
वीर्यम्	तेज
अन्नाद्यम्	महत्त्वरूप
रसः	रस
अजायत	उत्पन्न होता भया

भावार्थ ।

वे अथर्वणवेद के मन्त्र, इतिहास और पुराण को ध्यान करते भये । उस ध्यान किये हुए इतिहास और पुराण से शुभकीर्त्ति, प्रताप, बल, तेज, महत्त्व अथवा तन्दुरुस्तीरूप रस उत्पन्न होते भये ॥ २ ॥

मूलम् ।

तद्व्यक्षरत्तदादित्यमभितोऽश्रयत्तद्वा एतद्यदेतदादित्यस्य परं कृष्णꣳरूपम् ॥ ३ ॥

इति चतुर्थः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

तत्, व्यक्षरत्, तत्, आदित्यम्, अभितः, अश्रयत्, तत्, वै, एतत्, यत्, एतत्, आदित्यस्य, परम्, कृष्णम, रूपम् ॥

अन्वयः	पदार्थ
तत्=वह यश आदिक रस	
व्यक्षरत्=बहता भया	
+ च=और	
तत्=बहा हुआ यश आदिक रस	
आदित्यम्=सूर्य के	
अभितः=चारों ओर	
अश्रयत्=आश्रय करता भया	
यत्=जो	
एतत्=यह	
आदित्यस्य=सूर्य का	
परम्=अति	
कृष्णम्=कृष्ण	
रूपम्=रूप है	
तत्=सोई	
वै=निश्चय करके	
एतत्=यह ऊपर कहा हुआ रस है	

भावार्थ ।

ये यश आदिक रस सूर्य से निकल कर सूर्य के चारों ओर स्थित होते भये । जो सूर्य का अतिकृष्णरूप है सोई सूर्य के ऊपर के कहे हुए यश आदिक रस हैं ॥ ३ ॥

इति चतुर्थः खण्डः ।
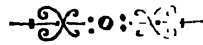
अथ तृतीयाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः ।

मूलम् ।

अथ येऽस्योऽर्ध्वा रश्मयस्ता एवास्योर्ध्वा मधुनाड्यो गुह्या एवादेशा मधुकृतो ब्रह्मैव पुष्पं ता अमृता आपः ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, ये, अस्य, ऊर्ध्वाः, रश्मयः, ताः, एव, अस्य, ऊर्ध्वाः

मधुनाडयः, गुह्याः, एव, आदेशाः, मधुकृतः, ब्रह्म, एव, पुष्पम्, ताः, अमृताः, आपः ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ	इसके पीछे	एव	ही
अस्य	इस सूर्य की	मधुकृतः	मधुमक्खियां हैं
ये	जो	ब्रह्म	ब्रह्म
ऊर्ध्वाः	ऊपर की	एव	ही
रश्मयः	किरणें हैं	पुष्पम्	रस का देनेवाला पुष्प है
ताः	वे	ताः	जो घृत दुग्धादिक हव्य ऋचाओं करके यज्ञ की अग्नि में दिये जाते हैं वेही
एव	ही	अमृताः	अतिमधुर अमृतरूपी
अस्य	इसके	आपः	जल हैं
ऊर्ध्वाः	ऊपरवाले		
मधुनाडयः	मधुस्राव के स्थान हैं		
+ ये	जो		
गुह्याः	गोप्य		
आदेशाः	उपदेश हैं		
+ ताः	वे		

भावार्थ ।

जो सूर्य की ऊपर की किरणें हैं वेही मधु निकलने के स्थान हैं और जो गुप्त उपदेश हैं वही मधुमक्षिकाएँ हैं और ब्रह्मही रस का देनेवाला पुष्प है । जो घृत दुग्धादिक हव्य यज्ञ की अग्नि विषे दिये जाते हैं वेही अतिमधुर अमृतरूपी जल हैं ॥ १ ॥

मूलम् ।

ते वा एते गुह्या आदेशा एतद्ब्रह्माभ्यतपꣳस्तस्याभितप्तस्य यशस्तेज इन्द्रियं वीर्यमन्नाद्यꣳरसोऽजायत ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

ते, वै, एते, गुह्याः, आदेशाः, एतत्, ब्रह्म, अभ्यतपन्, तस्य, अभितप्तस्य, यशः, तेजः, इन्द्रियम्, वीर्यम्, अन्नाद्यम्, रसः, अजायत ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
ते	=वे	अभितप्तस्य	=ध्यान किये हुए ब्रह्म का
वै	=ही	यशः	=शुभ कीर्त्ति
एते	=ये	तेजः	=प्रताप
गुह्याः	=गोप्य	इन्द्रियम्	=बल
आदेशाः	=उपदेश	वीर्यम्	=तेज
एतत्	=उस	अन्नाद्यम्	=महत्स्वरूप
ब्रह्म	=ब्रह्म का	रसः	=रस
अभ्यतपन्	=ध्यान करते भये	अजायत	=उत्पन्न होता भया
तस्य	=उस		

भावार्थ ।

वे गुप्त उपदेश उस ब्रह्म को ध्यान करते भये जिस ध्यान किये हुए ब्रह्म से शुभ कीर्त्ति, प्रताप, बल, तेज और अन्न करके पुष्ट तन्दुरुस्तीरूप रस उत्पन्न होता भया ॥ २ ॥

मूलम् ।

तद्व्यक्षरत्तदादित्यमभितोऽश्रयत्तद्वा एतद्यदेतदादित्यस्य मध्ये क्षोभत इव ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

तत्, व्यक्षरत्, तत्, आदित्यम्, अभितः, अश्रयत्, तत्, वै, एतत्, यत्, एतत् , आदित्यस्य, मध्ये, क्षोभते, इव ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
तत्	=वह यश आदिक रस	अश्रयत्	=आश्रय करता भया
व्यक्षरत्	=बहता भया	एतत्	=यह
+च	=और	यत्	=जो
तत्	=बहा हुआ वह यश आदिक रस	आदित्यस्य	=सूर्य के
आदित्यम्	=सूर्य के	मध्ये	=बीच में
अभितः	=चारों ओर	क्षोभते इव	=झलझलसा
		+दृश्यते	=उपासकों को दीखता है

तत्=सोई	एतत्=ऊपर कहा हुआ
वै=निश्चय करके	यह रस है

भावार्थ ।

वे यश आदिक रस सूर्य के किरणरूपी छिद्र से निकलकर सूर्य के चारों ओर स्थित होते भये और जो मधु सूर्य के मध्य में झलझल होता हुआ उपासकों को दिखाई देता है वही ऊपर कहे हुए प्रकार यश आदिक रस हैं ॥ ३ ॥

मूलम् ।

ते वा एते रसानाꣳ रसा वेदा हि रसास्तेषामेते रसास्तानि वा एतान्यमृतानाममृतानि वेदा ह्यमृतास्तेषामेतान्यमृतानि ॥ ४ ॥

इति पञ्चमः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

ते, वै, एते, रसानाम्, रसाः, वेदाः, हि, रसाः, तेषाम्, एते, रसाः, तानि, वै, एतानि, अमृतानाम्, अमृतानि, वेदाः, हि, अमृताः, तेषाम्, एतानि, अमृतानि ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
ते	वे	तेषाम्	उन वेदों के
एते	ये अर्थात् लाल श्वेतादिक सूर्य की प्रभा	एते	लाल श्वेतादिक सूर्य के रूप
वै	निश्चय करके	रसाः	सार हैं
रसानाम्	सार वस्तुओं के	तानि	वे
रसाः	सार हैं	एतानि	ये लाल श्वेतादिक सूर्य की प्रभाएँ
हि	क्योंकि	वै	निश्चय करके
वेदाः	वेद	अमृतानाम्	अमृतों के
रसाः	सब वस्तुओं का सार हैं	अमृतानि	अमृत हैं
+ च	और	हि	क्योंकि

वेदाः=वेद
अमृताः=अमृतरूप हैं
तेषाम्=उनके
एतानि=ये लाल श्वेतादिक सूर्य के रूप
अमृतानि=अमृत हैं

भावार्थ ।

वेद सब वस्तुओं के सार हैं उन वेदों का सार लाल और श्वेतादिक सूर्य की प्रभा सब सार वस्तुओं का सार है और वेही अमृतों के अमृत हैं, क्योंकि वेद अमृतरूप हैं उनका अमृत वे लाल और श्वेतादिक सूर्य की प्रभाएँ हैं ॥ ४ ॥

इति पञ्चमः खण्डः ।

अथ तृतीयाध्यायस्य षष्ठः खण्डः ।

मूलम् ।

तद्यत्प्रथमममृतम् तद्वसव उपजीवन्त्यग्निना मुखेन न वै देवा अश्नन्ति न पिबन्त्येतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यन्ति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

तत्, यत्, प्रथमम्, अमृतम्, तत्, वसवः, उपजीवन्ति, अग्निना, मुखेन, न, वै, देवाः, अश्नन्ति, न, पिबन्ति, एतत्, एव, अमृतम्, दृष्ट्वा, तृप्यन्ति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
वै=वास्तव से		पिबन्ति=पीते हैं	
देवाः=देवता		+ परन्तु=पर	
न=न		एतत्=इस	
अश्नन्ति=खाते हैं		अमृतम्=अमृत को	
न=न		दृष्ट्वा=देख करके	

एव=अवश्य
तृप्यन्ति=तृप्त होजाते हैं
+ इति=इस तरह
यत्=जो
प्रथमम्=पहिली
तत्=वह लालरूप सूर्य की प्रभा है

अमृतम्=उसी अमृतरूप प्रभा पर
वसवः=आठों वसुदेवता
मुखेन=अपने मुखरूप
अग्निना=अग्नि देवता के सहित
उपजीवन्ति=जीवन निर्वाह करते हैं

भावार्थ !

जो पहिली लाल प्रभा सूर्य की है उस पर वसुलोग अपने मुख अग्नि देवता के साहित जीवन करते हैं वास्तव से वे देवता न खाते हैं और न पीते हैं परन्तु उस अमृतरूपी रस को देखकर तृप्त होजाते हैं ॥१॥

मूलम् ।

त एतदेव रूपमभिसंविशन्त्येतस्माद्रूपादुद्यन्ति ॥२॥

पदच्छेदः ।

ते, एतत्, एव, रूपम्, अभिसंविशन्ति, एतस्मात्, रूपात्, उद्यन्ति ॥

अन्वयः पदार्थ

ते=वे वसुदेवता
एतत्=इसी
एव=ही
रूपम्=सूर्य की लाल प्रभा को
अभिसंविशन्ति=देख करके अर्थात् भोग करके उदासीन होजाते हैं अर्थात् उसी में लीन होजाते हैं

अन्वयः पदार्थ

+च=और फिर
एतस्मात्=इसी
रूपात्=लाल प्रभा से
उद्यन्ति=निकल आते हैं (जब भोग का समय आता है)

भावार्थ ।

वे वसुदेवता सूर्य की लाल प्रभा को देख कर जब तृप्त होजाते हैं तब उदासीन होते हुए उसी में पड़े रहते हैं और फिर जब भोग का

समय आता है तब उसमें से निकल आते हैं अर्थात् जब भोगकर चुकते हैं तब आनंद से उसी रस में मग्न पड़े रहते हैं और जब फिर भोग का समय आता है तब फिर उद्योग करने को तैयार होजाते हैं। जैसे लोक बिषे जब पुरुष भोग कर चुकता है तब आनंद से उद्योग-रहित होकर पड़ा रहता है और जब फिर भोग का समय आता है तब उद्योग करता है ॥ २ ॥

मूलम् ।

स य एतदेवममृतं वेद वसूनामेवैको भूत्वाऽग्निनैव मुखेनैतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यति स एतदेव रूपमभिसंविशत्येतस्माद्रूपादुदेति ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

सः, यः, एतत्, एवम्, अमृतम्, वेद, वसूनाम्, एव, एकः, भूत्वा, अग्निना, एव, मुखेन, एतत्, एव, अमृतम्, दृष्ट्वा, तृप्यति, सः, एतत्, एव, रूपम्, अभिसंविशति, एतस्मात्, रूपात्, उदेति ॥

अन्वयः	पदार्थ
यः	जो
एतत्	इसी
अमृतम्	अमृत को
एवम्	कहे हुए प्रकार
वेद	जानता है
सः	वह
वसूनाम् एव	वसुओं में से
एकः	एक वसु
भूत्वा	होकर
अग्निना	अग्निदेवता को
मुखेन	अग्रसर करके
एतत्	इस
एव	ही
अमृतम्	अमृत को
दृष्ट्वा	देखकर
तृप्यति	तृप्त होता है
+ च	और
सः	वह
एव	ही
एतत्	इस
रूपम्	सूर्य के लालरूपको
अभिसंविशति	प्राप्त होता है अर्थात् उसमें प्रवेश कर जाता है
+ च	और फिर

एतस्मात्=इसी लाल रूपात् एव=रूप से ही	उदेति=बाहर निकल आता है

भावार्थ ।

जो इस अमृत को कहे हुए प्रकार उपासना करता है वह भी वसुदेवताओं में से एक वसु होजाता है और वही अग्नि देवता को अग्रेसर करके अमृत को देखकर तृप्त होजाता है और वही इस सूर्य के लालरूप रस को भोग करके उसी में मग्न पड़ा रहता है और जब फिर भोग का समय आता है तब फिर भोगने की अभिलाषा करके उत्थान करता है ॥ ३ ॥

मूलम् ।

स यावदादित्यः पुरस्तादुदेता पश्चादस्तमेता वसूनामेव तावदाधिपत्यꣳ स्वाराज्यं पर्येता ॥ ४ ॥

इति षष्ठः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

सः, यावत्, आदित्यः, पुरस्तात्, उदेता, पश्चात्, अस्तम्, एता, वसूनाम्, एव, तावत्, आधिपत्यम्, स्वाराज्यम्, पर्येता ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यावत्=जबतक		तावत्=तबतक	
आदित्यः=सूर्य		एव=अवश्य	
पुरस्तात्=पूर्वदिशा में		वसूनाम्=वसुओं के	
उदेता=उदय हुआ करेगा		आधिपत्यम्=स्वामित्व को	
+ च=और		+ च=और	
+ यावत्=जबतक		स्वाराज्यम्=स्वर्ग के राज्य को	
पश्चात्=पश्चिमदिशा में		सः=वह उपासक	
अस्तम्=अस्त		पर्येता=प्राप्त होता रहेगा	
एता=हुआ करेगा			

भावार्थ ।

ऐसा उपासक वसुओं के स्वामित्व को और स्वर्ग के राज्य को तबतक प्राप्त होता रहेगा जबतक सूर्य पूर्वदिशा में उदय और पश्चिम दिशा में अस्त हुआ करेगा ॥ ४ ॥

इति षष्ठः खण्डः ।

अथ तृतीयाध्यायस्य सप्तमः खण्डः ।

मूलम् ।

अथ यद्द्वितीयममृतं तद्रुद्रा उपजीवन्तीन्द्रेण मुखेन वै देवा अश्नन्ति न पिबन्त्येतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यन्ति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यत्, द्वितीयम्, अमृतम्, तत्, रुद्राः, उपजीवन्ति, इन्द्रेण, मुखेन, वै, देवाः, अश्नन्ति, न, पिबन्ति, एतत्, एव, अमृतम्, दृष्ट्वा, तृप्यन्ति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ	इसके पीछे	देवाः	देवता
यत्	जो	न	न
द्वितीयम्	दूसरा	अश्नन्ति	खाते हैं
अमृतम्	सूर्य का शुक्ल रूप है	न	न
तत्	उस शुक्ल रूप का	पिबन्ति	पीते हैं
रुद्राः	देवता रुद्र	+ परंतु	पर
इन्द्रेण	इन्द्र देवता को	एतत्	इस
मुखेन	अग्रेसर करके	एव	ही
उपजीवन्ति	उस अमृतरूपी श्वेत प्रभा को पान करते हैं	अमृतम्	अमृत को
		दृष्ट्वा	देखकर
वै	वास्तव से	तृप्यन्ति	तृप्त हो जाते हैं

भावार्थ ।

सूर्य का दूसरा रूप जो शुक्ल है, उस शुक्लरूप के देवता ग्यारहों

रुद्र हैं । वे इन्द्र देवता को अग्रेसर करके उस अमृतरूपी श्वेत प्रभा को पान करते हैं वास्तव से वे देवता खाते पीते नहीं हैं परंतु उस अमृतरूपी प्रभा को देखकर तृप्त होजाते हैं ॥ १ ॥

मूलम् ।

त एतदेव रूपमभिसंविशन्त्येतस्माद्रूपादुद्यन्ति ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

ते, एतत्, एव, रूपम्, अभिसंविशन्ति, एतस्मात्, रूपात्, उद्यन्ति ॥

अन्वयः	पदार्थ
ते	वे रुद्रदेवता
एतत्	इस
एव	ही
रूपम्	सूर्य के शुक्ल रूप को
अभिसंविशन्ति	देखकर उदासीन रहते हैं अर्थात् भोगने के पश्चात् आनन्द में मगन रहते हैं
+ पुनः	फिर
एतस्मात्	इसी
रूपात्	सूर्य के शुक्ल रूप से
उद्यन्ति	समय आने पर भोग प्राप्ति के लिये उत्साहित होते हैं अर्थात् उठ खड़े होते हैं

भावार्थ ।

जब वे रुद्रदेवता इस सूर्य के शुक्लरूप को देखकर तृप्त होजाते हैं तब उसीमें आनंद के साथ मग्न रहते हैं और जब फिर सूर्य की शुक्ल प्रभारूपी रस के पान करने की इच्छा होती है तब उसी प्रभा से बाहर निकल आते हैं ॥ २ ॥

मूलम् ।

स य एतदेवममृतं वेद रुद्राणामेवैको भूत्वेन्द्रेणैव मुखेनैतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यति स एतदेव रूपमभिसंविशत्येतस्माद्रूपादुदेति ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

सः, यः, एतत्, एवम्, अमृतम्, वेद, रुद्राणाम्, एव, एकः, भूत्वा, इन्द्रेण, एव, मुखेन, एतत्, एव, अमृतम्, दृष्ट्वा, तृप्यति, सः, एतत्, एव, रूपम्, अभिसंविशति, एतस्मात्, रूपात्, उदेति ॥

अन्वयः	पदार्थ
यः	जो
एतत्	इस श्वेतरूप
अमृतम्	अमृत को
एवम्	कहे हुए प्रकार
वेद	जानता है
सः	वह
रुद्राणाम्	रुद्रों में से
एकः	एक रुद्र
एव	अवश्य
भूत्वा	होकर
इन्द्रेण	इन्द्र देवता को
मुखेन	अग्रेसर करके
एतत्	इस
एव	ही
अमृतम्	श्वेत प्रभारूपी अमृत को
दृष्ट्वा	देखकर
तृप्यति	तृप्त होता है
+पुनः	फिर
सः	वह
एव	ही
एतत्	इस
एव	ही
रूपम्	सूर्य के शुक्लरूप को
अभिसंविशति	देखकर उसी में मग्न होजाता है
+च	और
एतस्मात्	सूर्य के इस
रूपात्	शुक्लरूप से
उदेति	भोगने का समय आने पर उठखड़ा होजाता है

भावार्थ ।

जो उपासक सूर्य की श्वेत अमृतरूप प्रभा को जानता है वह रुद्रों में से एक रुद्र अवश्य होजाता है और वही इन्द्र देवता को अग्रेसर करके श्वेत प्रभारूपी अमृत को देखकर तृप्त होता है और फिर वही सूर्य की शुक्लरूप प्रभा में मग्न होकर उदासीन पड़ा रहता है और फिर जब भोगने का समय आता है तो उसी प्रभा से बाहर निकल आता है ॥ ३ ॥

मूलम् ।

स यावदादित्यः पुरस्तादुदेता पश्चादस्तमेता द्विस्तावद्दक्षिणत उदेतोत्तरतोऽस्तमेता रुद्राणामेव तावदाधिपत्यꣳ स्वाराज्यं पर्येता ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

सः, यावत्, आदित्यः, पुरस्तात्, उदेता, पश्चात्, अस्तम्, एता, द्विः, तावत्, दक्षिणतः, उदेता, उत्तरतः, अस्तम्, एता, रुद्राणाम्, एव, तावत्, आधिपत्यम्, स्वाराज्यम्, पर्येता ॥

अन्वयः	पदार्थ
यावत्	जितने कालतक
सः	वह
आदित्यः	आदित्य
पुरस्तात्	पूर्वदिशा में
उदेता	उदय को प्राप्त होता रहेगा
+ च	और
पश्चात्	पश्चिम दिशा में
अस्तम्	अस्त को
एता	प्राप्त होता रहेगा
	उसके
द्विः	दुगने
तावत्	कालतक
दक्षिणतः	दक्षिण दिशा में
उदेता	उदय को प्राप्त होता रहेगा
+ च	और
उत्तरतः	उत्तर दिशा में
अस्तम्	अस्त को
एता	प्राप्त होता रहेगा
तावत्	तब तक
रुद्राणाम्	रुद्रों के
आधिपत्यम्	स्वामित्व को
+ च	और
स्वाराज्यम्	स्वर्गराज्य को
+ सः	वह उपासक
एव	अवश्य
पर्येता	प्राप्त होता रहेगा

भावार्थ ।

जितने काल तक सूर्य पूर्व दिशा में उदय होकर पश्चिम दिशा में अस्त को प्राप्त होता रहेगा और उसके दुगने काल तक सूर्य दक्षिण दिशा में उदय होकर उत्तर दिशा में अस्त को प्राप्त होता रहेगा,

उतने काल तक रुद्रों के स्वामित्व को और स्वर्ग के राज्य को उपासक प्राप्त होता रहेगा ॥ ४ ॥

इति सप्तमः खण्डः ।

अथ तृतीयाध्यायस्याष्टमः खण्डः ।

मूलम् ।

अथ यत्तृतीयममृतं तदादित्या उपजीवन्ति वरुणेन मुखेन न वै देवा अश्नन्ति न पिबन्त्येतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यन्ति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यत्, तृतीयम्, अमृतम्, तत्, आदित्याः, उपजीवन्ति, वरुणेन, मुखेन, न, वै, देवाः, अश्नन्ति, न, पिबन्ति, एतत्, एव, अमृतम्, दृष्ट्वा, तृप्यन्ति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ	अब	न	न
यत्	जो	अश्नन्ति	खाते हैं
तृतीयम्	तीसरा	न	न
अमृतम्	आदित्य का कृष्णरूप है	पिबन्ति	पीते हैं
तत्	उस कृष्णरूप को	+ परन्तु	पर
आदित्याः	आदित्य देवता	+ ते	वे
वरुणेन	वरुण देवता को	+ वै	निश्चय करके
मुखेन	अग्रेसर करके	एतत्	इस
उपजीवन्ति	प्राप्त करते हैं	एव	ही
वै	वास्तव से	अमृतम्	अमृतरूप कृष्ण प्रभा को
देवाः	देवता लोग	दृष्ट्वा	देखकर
		तृप्यन्ति	तृप्त होते हैं

भावार्थ ।

जो तीसरी आदित्य की कृष्णरूप प्रभा है उसको आदित्य देवता वरुणदेवता को अग्रेसर करके पान करते हैं । वास्तव से देवता न खाते हैं और न पीते हैं परन्तु वे उस अमृतरूपी प्रभा को देखकर तृप्त होते हैं ॥ १ ॥

मूलम् ।

त एतदेव रूपमभिसंविशन्त्येतस्माद्रूपादुद्यन्ति ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

ते, एतत्, एव, रूपम्, अभिसंविशन्ति, एतस्मात्, रूपात्, उद्यन्ति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
ते	=वे देवता	+ च	=और
एतत्	=सूर्य के इस	एतस्मात्	=इस ही
एव	=ही	रूपात्	=कृष्णरूपप्रभा से
रूपम्	=कृष्णरूप को	उद्यन्ति	=भोग काल आने पर उठ खड़े हो जाते हैं
अभिसंविशन्ति	=देखकर उसी में मग्न रहते हैं		

भावार्थ ।

वे देवता सूर्य के कृष्णप्रभारूपी अमृत को पान करके उसी में तृप्त पड़े रहते हैं और फिर जब उस प्रभारूपी अमृत के पान करने की इच्छा करते हैं तब उसीसे बाहर निकल आते हैं ॥ २ ॥

मूलम् ।

स य एतदेवममृतं वेदादित्यानामेवैको भूत्वा वरुणेनैव मुखेनैतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यति स एतदेव रूपमभिसंविशत्येतस्माद्रूपादुदेति ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

सः, यः, एतत्, एवम्, अमृतम्, वेद, आदित्यानाम्, एव, एकः,

भूत्वा, वरुणेन, एव, मुखेन, एतत्, एव, अमृतम्, दृष्ट्वा, तृप्यति, सः, एतत्, एव, रूपम्, अभिसंविशति, एतस्मात्, रूपात्, उदेति ।

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यः	जो पुरुष	दृष्ट्वा	देखकर
एतत्	सूर्य के इस	तृप्यति	तृप्त होता है
अमृतम्	कृष्णरूप को	+च	और
एवम्	कहे हुए प्रकार	सः	वही पुरुष
वेद	जानता है	एतत् एव	इस ही
सः	वह	रूपम्	सूर्य की कृष्णप्रभा को
आदित्यानाम्	आदित्य देवताओं में से	अभिसंविशति	देखकर मग्न हो जाता है
एकः	एक आदित्य	+च	और
भूत्वा	होकर	+पुनः	फिर
एव	अवश्य	एतस्मात्	इस
वरुणेन	वरुण देवता को	रूपात्	कृष्णरूप प्रभा से
मुखेन	अग्रेसर करके	उदेति	फल भोगने का काल आने पर उठ खड़ा होता है
एतत्	इस		
एव	ही		
अमृतम्	कृष्णरूप प्रभा को		

भावार्थ ।

जो उपासक सूर्य की इस कृष्णरूप प्रभा को कहे हुए प्रकार जानता है वह आदित्यदेवताओं में से एक आदित्य होकर और वरुण देवता को अग्रेसर करके, उस कृष्णरूप प्रभा को देखकर तृप्त होता है और फिर वही पुरुष तृप्त होकर उसी सूर्य के कृष्णप्रभारूपी अमृत में मग्न होकर पड़ा रहता है और फिर जब उस प्रभारूपी अमृत के पान की इच्छा होती है तब उसी प्रभा में से निकल आता है ॥ ३ ॥

मूलम् ।

स यावदादित्यो दक्षिणत उदेतोत्तरतोऽस्तमेता

द्विस्तावत्पश्चादुदेता पुरस्तादस्तमेताऽऽदित्यानामेव तावदाधिपत्यꣳ स्वाराज्यं पर्येता ॥ ४ ॥

इत्यष्टमः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

सः, यावत्, आदित्यः, दक्षिणतः, उदेता, उत्तरतः, अस्तम्, एता, द्विः, तावत्, पश्चात्, उदेता, पुरस्तात्, अस्तम्, एता, आदित्यानाम्, एव, तावत्, आधिपत्यम्, स्वाराज्यम्, पर्येता ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यावत्	जबतक	+ च	और
आदित्यः	सूर्य	पुरस्तात्	पूर्व की ओर
दक्षिणतः	दक्षिण की ओर से	अस्तम्	अस्त
उदेता	उदय होता है	एता	होता रहे
+ च	और	तावत्	तबतक
उत्तरतः	उत्तर दिशा में	सः एव	वही उपासक
अस्तम्	अस्त को	आदित्यानाम्	आदित्यों के
एता	प्राप्त होता है	आधिपत्यम्	स्वामित्व को
तावत्	तब तक उसके	+ च	और
द्विः	दूने काल तक	स्वाराज्यम्	स्वर्गराज्य को
पश्चात्	पश्चिम की ओर	पर्येता	प्राप्त होता रहेगा
उदेता	उदय को प्राप्त होता रहे		

भावार्थ ।

जब तक सूर्य दक्षिण दिशा में उदय होकर उत्तर दिशा में अस्त होता रहेगा और उसके दूने कालतक पश्चिम की ओर से उदय होकर पूर्व की ओर अस्त होता रहेगा तबतक वह उपासक आदित्यों के स्वामित्व को और स्वर्गराज्य को प्राप्त होता रहेगा ॥ ४ ॥

इत्यष्टमः खण्डः ।

अथ तृतीयाध्यायस्य नवमः खण्डः ।

मूलम् ।

अथ यच्चतुर्थममृतं तन्मरुत उपजीवन्ति सोमेन मुखेन न वै देवा अश्नन्ति न पिबन्त्येतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यन्ति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यत्, चतुर्थम्, अमृतम्, तत्, मरुतः, उपजीवन्ति, सोमेन, मुखेन, न, वै, देवाः, अश्नन्ति, न, पिबन्ति, एतत्, एव, अमृतम्, दृष्ट्वा, तृप्यन्ति ॥

अन्वयः	पदार्थ
अथ	अब
यत्	जो
चतुर्थम्	चौथा
अमृतम्	अमृत अर्थात् सूर्य की अति कृष्ण प्रभा है
तत्	उसको
मरुतः	मरुद्गण देवता
सोमेन	चन्द्रमा को
मुखेन	अग्रेसर करके
उपजीवन्ति	पान करते हैं
वै	वास्तव से
देवाः	देवता लोग
न	न
अश्नन्ति	खाते हैं
न	न
पिबन्ति	पीते हैं
+ परन्तु	किन्तु
एतत्	इस
एव	ही
अमृतम्	सूर्य की अति कृष्ण प्रभा को
दृष्ट्वा	देखकर
तृप्यन्ति	तृप्त होते हैं

भावार्थ ।

सूर्य की अमृतरूप चौथी प्रभा जो अतिकृष्णरूप से है, उसको मरुद्गण देवता चन्द्रमा को अग्रेसर करके पान करते हैं । वास्तव से देवता न खाते हैं और न पीते हैं, परंतु सूर्य की अति कृष्णरूप प्रभा को केवल देखकर तृप्त होजाते हैं ॥ १ ॥

मूलम् ।

त एतदेव रूपमभिसंविशन्त्येतस्मादूरूपादुद्यन्ति ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

ते, एतत्, एव, रूपम्, अभिसंविशन्ति, एतस्मात्, रूपात्, उद्यन्ति ॥

अन्वयः	पदार्थ
ते	वे देवता
एतत्	इस
एव	ही
रूपम्	अति कृष्णरूप प्रभा को
अभिसंविशन्ति	देखकर तृप्त होकर आनन्द से उसी में मग्न हुए पड़े रहते हैं
+ च	और
एतस्मात्	इस
रूपात्	अति कृष्णरूप प्रभा को जब
उद्यन्ति	भोगने की इच्छा होती है तब फिर उससे बाहर निकल आते हैं

भावार्थ ।

वे देवता इस अतिकृष्णरूप प्रभा को, जो अमृत के तुल्य है, देखकर उसमें तृप्त होकर, आनन्द से मगन पड़े रहते हैं और फिर जब अमृतरूप अतिकृष्णप्रभा के भोगने का समय आता है तब उसी में से बाहर निकल आते हैं ॥ २ ॥

मूलम् ।

स य एतदेवममृतं वेद मरुतामेवैको भूत्वा सोमेनैव मुखेनैतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यति स एतदेव रूपमभिसंविशत्येतस्माद्रूपादुदेति ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

सः, यः, एतत्, एवम्, अमृतम्, वेद, मरुताम्, एव, एकः, भूत्वा, सोमेन, एव, मुखेन, एतत्, एव, अमृतम्, दृष्ट्वा, तृप्यति, सः, एतत्, एव, रूपम्, अभिसंविशति, एतस्मात, रूपात्, उदेति ॥

अन्वयः	पदार्थ
यः	जो
एतत्	इस
अमृतम्	सूर्य की अतिकृष्ण-रूप प्रभा को
एवम्	कहे हुए प्रकार
वेद	जानता है
सः	वह
मरुताम्	मरुद्गणों में
एकः	एक मरुत्
एव	अवश्य
भूत्वा	होकर
सोमेन	चन्द्रमा को
मुखेन	अग्रेसर करके
एतत्	इस
एव	ही
अमृतम्	सूर्य की अतिकृष्ण-रूप प्रभा को
दृष्ट्वा	देखकर
तृप्यति	तृप्त होता है
+ च	और
सः	वह पुरुष
एतत्	इस
एव	ही
रूपम्	अतिकृष्णरूप प्रभा को
अभिसंविशति	देख करके अर्थात् पान करके उसी में आनन्द के साथ मग्न पड़ा रहता है
+ च	और
एतस्मात्	इस
रूपात्	अतिकृष्णरूप प्रभा से
उदेति	भोगने के समय बाहर निकल आता है

भावार्थ ।

जो उपासक सूर्य की अतिकृष्ण प्रभा को कहे हुए प्रकार भली भांति जानता है वह मरुद्गणों में से एक मरुद्देवता होकर चन्द्रमा को आगे करके उस सूर्य की अति कृष्णरूप प्रभा को देखकर तृप्त हो जाता है और फिर वही पुरुष उसी अति कृष्णरूप प्रभा के अमृत रूपी समुद्र में, आनन्द के साथ उस प्रभा को भोगता हुआ मग्न पड़ा रहता है और फिर जब अतिकृष्ण अमृतरूप प्रभा के भोगने का समय आता है तब उसीमें से बाहर निकल आता है ॥ ३ ॥

मूलम् ।

स यावदादित्यः पश्चादुदेता पुरस्तादस्तमेत

द्विस्तावदुत्तरत उदेता दक्षिणतोऽस्तमेता मरुतामेव तावदाधिपत्यꣳ स्वाराज्यं पर्येता ॥ ४ ॥

इति नवमः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

सः, यावत्, आदित्यः, पश्चात्, उदेता, पुरस्तात्, अस्तम्, एता, द्विः, तावत्, उत्तरतः, उदेता, दक्षिणतः, अस्तम्, एता, मरुताम्, एव, तावत्, आधिपत्यम्, स्वाराज्यम्, पर्येता ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यावत्	जबतक	+ च	और
आदित्यः	सूर्य	दक्षिणतः	दक्षिण की ओर
पश्चात्	पश्चिम की ओर	अस्तम्	अस्त
उदेता	उदय होता है	एता	होता है
+ च	और	तावत् एव	तबतक ही
पुरस्तात्	पूर्व की ओर	सः	वह पुरुष
अस्तम्	अस्त	मरुताम्	मरुद्देवताओं के
एता	होता है	आधिपत्यम्	स्वामित्व को
द्विः तावत्	उसके दूने कालतक	+ च	और
उत्तरतः	उत्तर की ओर	स्वाराज्यम्	स्वर्ग के राज्य को
उदेता	उदय होता है	पर्येता	प्राप्त होता रहेगा

भावार्थ ।

जितने काल तक सूर्य पश्चिम की ओर उदय होता है और पूर्व की ओर अस्त होता है उसके दूने काल तक उत्तर की ओर उदय होता है और दक्षिण की ओर अस्त होता है उतने कालतक वह उपासक मरुद्देवतों के स्वामित्व को और स्वर्ग के राज्य को प्राप्त होता रहेगा ॥ ४ ॥

इति नवमः खण्डः ।

अथ तृतीयाध्यायस्य दशमः खण्डः ।

मूलम् ।

अथ यत्पञ्चमममृतं तत्साध्या उपजीवन्ति ब्रह्मणा मुखेन न वै देवा अश्नन्ति न पिबन्त्येतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यन्ति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यत्, पञ्चमम्, अमृतम्, तत्, साध्याः, उपजीवन्ति, ब्रह्मणा, मुखेन, न, वै, देवाः, अश्नन्ति, न, पिबन्ति, एतत्, एव, अमृतम्, दृष्ट्वा, तृप्यन्ति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ	अब	देवाः	देवता
यत्	जो	न वै	न निश्चय करके
पञ्चमम्	पाँचवाँ	अश्नन्ति	खाते हैं
अमृतम्	आदित्य मंडल मध्यवर्ती मधु है	न	न
तत्	उसको	पिबन्ति	पीते हैं
साध्याः	साध्य जाति के देवता	+ परंतु	पर
ब्रह्मणा	ब्रह्मा को	एतत्	इस
मुखेन	अग्रेसर करके	एव	ही
उपजीवन्ति	पान करते हैं	अमृतम्	अमृत को
+ वै	वास्तव से	दृष्ट्वा	देखकर
		तृप्यन्ति	तृप्त होते हैं

भावार्थ ।

आदित्यमण्डल मध्यवर्त्ती जो पाँचवाँ मधु है उसको साध्य जाति के देवता ब्रह्मा को अग्रेसर करके पान करते हैं । वास्तव से देवता न खाते हैं और न पीते हैं पर उस अमृत को देखकर तृप्त हो जाते हैं ॥ १ ॥

मूलम् ।

त एतदेव रूपमभिसंविशन्त्येतस्माद्रूपादुद्यन्ति ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

ते, एतत्, एव, रूपम्, अभिसंविशन्ति, एतस्मात्, रूपात्, उद्यन्ति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
ते	वे देवता	+ च	और
एव	ही	पुनः	फिर
एतत्	आदित्यमंडलमध्यवर्त्ती	एतस्मात्	इस
रूपम्	अमृतरूप मधु को	रूपात्	अमृतरूपी मधु से
अभिसंविशन्ति	देखकर उसी में तृप्त हो जाते हैं	उद्यन्ति	भोगकाल के आने पर उठ खड़े होजाते हैं

भावार्थ ।

वे देवता आदित्यमण्डलमध्यवर्त्ती अमृतरूपी मधु को पान करके उसी में आनन्द के साथ तृप्त पड़े रहते हैं और फिर जब अमृतरूपी मधु के भोगने का समय आता है तब उसी में से बाहर निकल आते हैं ॥ २ ॥

मूलम् ।

स य एतदेवममृतं वेद साध्यानामेवैको भूत्वा ब्रह्मणैव मुखेनैतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यति स एतदेव रूपमभिसंविशत्येतस्माद्रूपादुदेति ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

सः, यः, एतत्, एवम्, अमृतम्, वेद साध्यानाम्, एव, एकः, भूत्वा, ब्रह्मणा, एव, मुखेन, एतत्, एव, अमृतम्, दृष्ट्वा, तृप्यति, सः, एतत्, एव, रूपम्, अभिसंविशति, एतस्मात्, रूपात्, उदेति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यः	जो पुरुष	तृप्यति	तृप्त होजाता है
एवम्	इस प्रकार	+ च	और
एतत्	इस	+ पुनः	फिर
अमृतम्	आदित्यमंडल मध्यवर्त्ती अमृत को	सः	वह
एव	भली प्रकार	एव	ही
वेद	जानता है	एतत्	इस
सः	वह	एव	ही
साध्यानाम्	साध्यों में	रूपम्	अमृतरूप मधु को
एकः	एक साध्य देवता	अभिसंविशति	देखकर उसी में आनन्द से तृप्त होकर पड़ा रहता है
भूत्वा	होकर	+ च	और
ब्रह्मणा	ब्रह्मा को	एतस्मात्	इसी
मुखेन	अग्रेसर करके	रूपात्	मधुरूप अमृत से
एतत्	इस	उदेति	काल आने पर बाहर निकल आता है
एव	ही		
अमृतम्	अमृत को		
दृष्ट्वा	देखकर		

भावार्थ ।

जो उपासक इस आदित्यमण्डलमध्यवर्त्ती अमृत को भली प्रकार जानता है वह साध्यों में एक साध्य देवता होकर, ब्रह्मा को अग्रेसर करके, इसही अमृत को देखकर तृप्त होजाता है और फिर वही इस अमृत-रूप मधु को पान करके उसी में आनन्द से तृप्त पड़ा रहता है और फिर जब उस अमृतरूप मधु के भोगने का समय आता है तब उठ खड़ा होता है ॥ ३ ॥

मूलम् ।

स यावदादित्य उत्तरत उदेता दक्षिणतोऽस्तमेता

द्विस्तावदूर्ध्वमुदेताऽर्वाङ्क्स्तमेता साध्यानामेव तावदाधिपत्यꣳ स्वाराज्यं पर्येता ॥ ४ ॥

इति दशमः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

सः, यावत्, आदित्यः, उत्तरतः, उदेता, दक्षिणतः, अस्तम्, एता, द्विः, तावत्, ऊर्ध्वम्, उदेता, अर्वाङ्, अस्तम्, एता, साध्यानाम्, एव, तावत्, आधिपत्यम्, स्वाराज्यम्, पर्येता ॥

अन्वयः	पदार्थ
यावत्	जबतक
आदित्यः	सूर्य
उत्तरतः	उत्तर की ओर
उदेता	उदय होता है
+च	और
दक्षिणतः	दक्षिण की ओर
अस्तम्	अस्त
एता	होता है
+ च	और
तावत्	उतने काल के
द्विः	दूने काल तक
ऊर्ध्वम्	ऊपर की ओर
उदेता	उदय होता है
+ च	और
अर्वाङ्	नीचे की ओर
अस्तम्	अस्त
एता	होता है
तावत् एव	तब तक ही
सः	वह उपासक
साध्यानाम्	साध्य जाति के देवतों के
स्वामित्वम्	स्वामित्व को
+ च	और
स्वाराज्यम्	स्वर्ग राज्य को
पर्येता	प्राप्त होता रहेगा

भावार्थ ।

जब तक सूर्य उत्तर की ओर से उदय होकर दक्षिण की ओर अस्त होता है और उसके दूने काल तक ऊपर से उदय होकर नीचे को अस्त होता है तब तक वह उपासक साध्यजाति के स्वामित्व को और स्वर्गराज्य को प्राप्त होता रहेगा ॥ ४ ॥

इति दशमः खण्डः ।

अथ तृतीयाध्यायस्यैकादशः खण्डः ।

मूलम् ।

अथ तत उर्ध्व उदेत्य नैवोदेता नास्तमेतैकल एव मध्ये स्थाता तदेष श्लोकः ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, ततः, ऊर्ध्वे, उदेत्य, न, एव, उदेता, न, अस्तम्, एता, एकलः, एव, मध्ये, स्थाता, तत्, एषः, श्लोकः ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
ततः	=ऊपर कहे हुए प्रकार के पश्चात्	न	=न
अथ	=अब	अस्तम्	=अस्त को
+ आदित्यः	=सूर्य	एता	=प्राप्त होता है
ऊर्ध्वे	=ऊपर को	एकलः	=केवल
उदेत्य	=प्रकाश करके	मध्ये	=अपने में
+ पुनः	=फिर	एव	=ही
न एव	=नहीं	स्थाता	=स्थित रहता है
उदेता	=उदय को प्राप्त होता है	तत्	=इस विषय में
+ च	=और	एषः	=यह आगेवाला
		श्लोकः	=मन्त्र
		+ प्रमाणम्	=प्रमाण है

भावार्थ ।

छहों दिशाओं में सूर्य के उदयास्त के बाद फिर सूर्य का उदयास्त नहीं होता है, केवल स्वयं प्रकाश में स्थित रहता है और अपने विषे सब जीवों को लीन कर लेता है, क्योंकि उदयास्त जीवों के कर्मफल भोगार्थ होता है और जब जीवों के कर्मफल की समाप्ति होजाती है तब सूर्य के उदयास्त की जरूरत नहीं रहती है । एक सूर्य का उपासक, जो वसु पदवी को पहुँच चुका था और सूर्य के लाल श्वेतादिक प्रभारूपी अमृत को पान कर चुका था, उसने एक ज्ञानी के

पूछने पर कहा कि ब्रह्मलोक में, जहां से मैं आया हूं वहां, सूर्य का उदयास्त नहीं होता है इस कारण वहां दिन रात्रि नहीं है केवल प्रकाश ही प्रकाश है, इसलिये जो जीव वहां वास करते हैं वे अमर रहते हैं। इस बारे में आगेवाला मन्त्र प्रमाण है ॥ १ ॥

मूलम् ।

न वै तत्र न निम्लोच नोदियाय कदाचन देवास्तेनाहꣳ सत्येन मा विराधिषि ब्रह्मणेति ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

न, वै, तत्र, न, निम्लोच, न, उदियाय, कदाचन, देवाः, तेन, अहम्, सत्येन, मा, विराधिषि, ब्रह्मणा, इति ।

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
तत्र	उस ब्रह्मलोक में	+ हे	हे
न वै	निश्चय करके ऐसा नहीं है	देवाः	देवताओ !
न	न	इति	ऐसे
+ तत्र	वहां	+ शृणुत	मेरे सत्य वचन को सुनो
+ सविता	सूर्य	तेन	इस
निम्लोच	अस्त को प्राप्त होता है	सत्येन	सत्य
+ च	और	ब्रह्मणा	ब्रह्म करके
न	न	अहम्	मैं
कदाचन	कभी	मा	कभी नहीं
उदियाय	उदय को प्राप्त होता भया	विराधिषि	मोक्षधर्म से पतित होऊंगा

भावार्थ ।

ब्रह्मलोक में सूर्य का उदयास्त नहीं होता है, देवता को संमुख करके वह वसुपदवी को प्राप्त हुआ पुरुष शपथ करता है कि यदि मैं सत्य न कहता हूँ तो मैं मोक्षधर्म से पतित होजाऊँ ॥ २ ॥

मूलम् ।

न ह वा अस्मा उदेति न निम्लोचति सकृद्दिवा हैवास्मै भवति य एतामेवं ब्रह्मोपनिषदं वेद ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

न, ह, वै, अस्मै, उदेति, न, निम्लोचति, सकृत्, दिवा, ह, एव, अस्मै, भवति, यः, एताम्, एवम्, ब्रह्मोपनिषदम्, वेद ॥

अन्वयः	पदार्थ
यः	जो
एताम्	इस
ब्रह्मोपनिषदम्	ब्रह्मविद्या को
एवम्	कहे हुए प्रकार
वेद	जानता है
अस्मै	उस ब्रह्मवेत्ता के लिये
ह वै	निश्चय करके
न	न
उदेति	सूर्य उदय होता है
+ च	और
न	न
निम्लोचति	अस्त होता है
+ किन्तु	किन्तु
सकृत्	निरन्तर
ह	ही
अस्मै	उस ब्रह्मज्ञानी के लिये
दिवा	दिन
एव	ही
भवति	रहता है अर्थात् सदा उसके लिये प्रकाश है अथवा वह प्रकाशस्वरूप होजाता है

भावार्थ ।

जो उपासक ब्रह्म को जानता है उसके लिये सूर्य का उदय और अस्त नहीं होता है किन्तु उस ब्रह्मज्ञानी के लिये वह सूर्य सदा एकरस प्रकाशमान रहता है, यहां तक कि वह स्वयं प्रकाशमान हो जाता है अर्थात् उपास्य और उपासक एक हो जाते हैं ॥ ३ ॥

मूलम् ।

तद्धैतद्ब्रह्मा प्रजापतय उवाच प्रजापतिर्मनवे मनुः

प्रजाभ्यस्तद्धैतदुद्दालकायारुणये ज्येष्ठाय पुत्राय पिता ब्रह्म प्रोवाच ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

तत्, ह, एतत्, ब्रह्मा, प्रजापतये, उवाच, प्रजापतिः, मनवे, मनुः, प्रजाभ्यः, तत्, ह, एतत्, उद्दालकाय, आरुणये, ज्येष्ठाय, पुत्राय, पिता, ब्रह्म, प्रोवाच ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
तत्	उस	+ उवाच	कहता भया
ह	ही	तत्	उस
एतत्	इस ब्रह्मविद्या को	ह	ही
ब्रह्मा	ब्रह्मा	एतत्	इस
प्रजापतये	प्रजापति से	ब्रह्म	ब्रह्मविद्या को
उवाच	कथन करता भया	पिता	अरुण ऋषि
प्रजापतिः	प्रजापति	आरुणये	अपने आरुणि
मनवे	मनु से	ज्येष्ठाय	बड़े
+ उवाच	कहता भया	पुत्राय	पुत्र
मनुः	मनु	उद्दालकाय	उद्दालक से
प्रजाभ्यः	इक्ष्वाकु आदि से	उवाच	कहता भया

भावार्थ ।

इस ब्रह्मविद्या को ब्रह्मा ने प्रजापति से कहा और प्रजापति ने मनु से कहा और मनु ने इक्ष्वाकु आदि से कहा इसी ब्रह्मविद्या को अरुणऋषि ने अपने ज्येष्ठ पुत्र उद्दालक आरुणि से कहा ॥ ४ ॥

मूलम् ।

इदं वाव तज्ज्येष्ठाय पुत्राय पिता ब्रह्म प्रब्रूयात्प्रणाय्याय वान्तेवासिने ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ।

इदम्, वाव, तत्, ज्येष्ठाय, पुत्राय, पिता, ब्रह्म, प्रब्रूयात्, प्रणाय्याय, वा, अन्तेवासिने ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
तत्=पूर्वोक्त		प्रब्रूयात्=कहे	
इदम्=इस		वा=अथवा	
ब्रह्म वाव=ब्रह्मविद्या को		प्रणाय्याय=प्रिय	
पिता=बाप		अन्तेवासिने=शिष्य से	
ज्येष्ठाय=अपने ज्येष्ठ		+प्रब्रूयात्=कहे	
पुत्राय=पुत्र से			

भावार्थ ।

इसलिये इस ब्रह्मविद्या को पिता अपने पुत्र से कहे अथवा अपने प्रिय शिष्य से कहे ॥ ५ ॥

मूलम् ।

नान्यस्मै कस्मैचन यद्यप्यस्मा इमामद्भिः परिगृहीतां धनस्य पूर्णां दद्यादेतदेव ततो भूय इत्येतदेव ततो भूय इति ॥ ६ ॥

इत्येकादशः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

न, अन्यस्मै, कस्मैचन, यद्यपि, अस्मै, इमाम्, अद्भिः, परिगृहीताम्, धनस्य, पूर्णाम्, दद्यात्, एतत्, एव, ततः, भूयः, इति, एतत्, एव, ततः, भूयः, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
एतत्=यह ब्रह्मविद्या		+प्रब्रूयात्=कहे	
अन्यस्मै=और		यद्यपि=चाहे	
कस्मैचन=किसी के लिये		सः=वह	
न=न		धनस्य=धन करके	

अन्वयः	पदार्थ
पूर्णाम्	पूर्ण
+ च	और
अद्भिः	समुद्र से
परिगृहीताम्	घिरी हुई
इमाम्	इस पृथ्वी को
अस्मै	इसके लिये अर्थात् ब्रह्मविद्या की प्राप्ति के लिये
दद्यात्	देवे
+ हि	निश्चय करके
एतत्	यह ब्रह्मविद्या
ततः	इस पृथ्वी से
एव	बहुत ही
भूयः	श्रेष्ठ है
इति	अवश्य श्रेष्ठ है

भावार्थ ।

इस ब्रह्मविद्या को किसी दूसरे से न कहे, चाहे वह धन करके पूर्ण हो और समुद्र तक फैले हुए राज्य को ब्रह्मविद्या की प्राप्ति के लिये देवे। निश्चय करके यह ब्रह्मविद्या राज्य से अति श्रेष्ठ है, अवश्य श्रेष्ठ है ॥६॥

इत्येकादशः खण्डः ।

अथ तृतीयाध्यायस्य द्वादशः खण्डः ।

मूलम् ।

गायत्री वा इदꣳ सर्वं भूतं यदिदं किंच वाग्वै गायत्री वाग्वा इदꣳ सर्वं भूतं गायति च त्रायते च ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

गायत्री, वा, इदम्, सर्वम्, भूतम्, यत्, इदम्, किंच, वाक्, वै, गायत्री, वाक्, वा, इदम्, सर्वम्, भूतम्, गायति, च, त्रायते, च ॥

अन्वयः	पदार्थ
इदम्	यह
सर्वम्	सब
यत्	जो
किंच	कुछ
भूतम्	स्थावरजंगमात्मक जगत् है
+ तत्	वह सब
गायत्री	गायत्रीरूप
वा	ही है
वाक्	शब्दमात्र
वै	निश्चय करके
गायत्री	गायत्री है

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
च=और		+ वाक्=शब्द ही	
इदम्=यह		गायति=सब जीवों को बताता है	
सर्वम्=सब		च=और	
भूतम्=स्थावर जंगमात्मक जगत्		त्रायते=रक्षा करता है	
वाक्=शब्द ही है			

भावार्थ ।

जो चराचर जगत् है वह गायत्रीरूप है, शब्दमात्र गायत्री है। सब जगत् शब्द ही है। गायत्री शब्द गान और त्राण इन दो पदों से बना है। गान का अर्थ गाना है और त्राण का अर्थ रक्षा है (गायन्तं त्रायते इति गायत्री)। जो पुरुष गायत्री जपता है उसकी रक्षा गायत्री करती है, और जैसे पृथ्वी प्राणीमात्र की रक्षा करती है और पालन पोषण करती है ऐसेही गायत्री भी सब जीवों की रक्षा और पालन पोषण करती है, क्योंकि गायत्री वाणी भी है, विना वाणी के किसी वस्तु की सिद्धि नहीं होती है और न किसी जीव की रक्षा हो सकती है। यह अमुक जीव है, इसको अन्न पान दिया जाय; तब उसको अन्न दिया जाता है, उस अन्न पान से उसका जीवन होता है। यदि वाणी न होती तो अन्न पान कैसे दिया जाता और कैसे उसका जीवन हो सकता था ? इसी तरह अगर वाणी न होती तो निषेध की आज्ञा कि 'कोई जीव मारे जावें' कैसे की जाती ॥ १ ॥

मूलम् ।

या वै सा गायत्रीयं वाव सा येयं पृथिव्यस्याᳪं हीदᳪं सर्वं भूतं प्रतिष्ठितमेतामेव नातिशीयते ॥ २ ॥

पदच्छेदः।

या, वै, सा, गायत्री, इयम्, वाव, सा, या, इयम्, पृथिवी, अस्याम्, हि, इदम्, सर्वम्, भूतम् प्रतिष्ठितम्, एताम्, एव, न, अतिशीयते ॥

अन्वयः	पदार्थ
या	जो
वै	निश्चय करके
इयम्	यह
+ पृथ्वी	पृथिवी है
सा	वही
गायत्री	गायत्री है
या	जो
इयम्	यह गायत्री है
सा	वही
वाव	निश्चय करके
पृथिवी	पृथ्वी है
हि	क्योंकि
अस्याम्	इस पृथ्वी में
इदम्	यह
सर्वम्	सब
भूतम्	स्थावर जंगमात्मक जगत्
प्रतिष्ठितम्	स्थित है
+ इदम्	यह जगत्
एताम्	इस गायत्रीरूप पृथ्वी को
एव	कभी
न	नहीं
अतिशयिते	अतिक्रमण करता है अर्थात् उसी में रहता है उससे पृथक् सत्ता नहीं रखता है

भावार्थ।

गायत्री पृथ्वीरूप है और पृथ्वी गायत्रीरूप है। जैसे पृथ्वी बिषे सब स्थावर जंगम भूत रहते हैं, उसी प्रकार गायत्री बिषे भी सब जगत् स्थित है। यह जगत् गायत्रीरूप पृथ्वी से पृथक् सत्ता नहीं रखता है ॥ २ ॥

मूलम्।

या वै सा पृथिवीयं वाव सा यदिदमस्मिन्पुरुषे शरीरमस्मिन्हीमे प्राणाः प्रतिष्ठिता एतदेव नातिशीयन्ते ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

या, वै, सा, पृथिवी, इयम्, वाव, सा, यत्, इदम्, अस्मिन्, पुरुषे, शरीरम्, अस्मिन्, हि, इमे, प्राणाः, प्रतिष्ठिताः, एतत्, एव, न, अतिशीयन्ते ॥

अन्वयः	पदार्थ
या	जो
वै	निश्चय करके
सा	वह
पृथिवी	पृथ्वीरूप गायत्री है
सा	वह
वाव	ही
इयम्	यह गायत्री
इदम्	यह
शरीरम्	शरीर है
यत्	जो
अस्मिन्	इस
पुरुषे	पुरुष विषे
+ जीवति	रहता है
हि	क्योंकि
अस्मिन्	इसी शरीर में
इमे	ये पाँचों
प्राणाः	प्राण
प्रतिष्ठिताः	स्थित हैं
एतत्	इस शरीर को
+ प्राणाः	प्राण
एव	निश्चय करके
न	नहीं
अतिशीयन्ते	उल्लंघन करते हैं

भावार्थ ।

पुरुष का शरीर गायत्रीरूप है और जो उसके अन्दर हृदयकमल है वह भी गायत्रीरूप है, क्योंकि हृदयकमल में प्राण स्थित हैं और वे प्राण हृदयकमल को उल्लंघन नहीं कर सकते हैं। तात्पर्य यह है कि जैसे पृथ्वी में पञ्चतत्त्व स्थित हैं, उसी प्रकार पुरुष के शरीर विषे भी पञ्चतत्त्व स्थित हैं और जैसे पृथ्वी गायत्री रूप है, उसी तरह यह शरीर भी गायत्रीरूप है और जैसे गायत्री विषे सब जीव रहते हैं, उसी प्रकार इस शरीर के हृदयकमल में पाँचों प्राणों से संयुक्त जीव रहता है ॥ ३ ॥

मूलम् ।

यद्वैतत्पुरुषे शरीरमिदं वाव तद्यदिदमस्मिन्नन्तः पुरुषे हृदयमस्मिन्हीमे प्राणाः प्रतिष्ठिता एतदेव नातिशीयन्ते ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

यत्, वा, एतत्, पुरुषे, शरीरम्, इदम्, वाव, तत्, यत, इदम्, अस्मिन्, अन्तः, पुरुषे, हृदयम, अस्मिन्, हि, इमे, प्राणाः, प्रतिष्ठिताः, एतत्, एव, न, अतिशीयन्ते ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
पुरुषे	पुरुष बिषे	पुरुषे	पुरुष बिषे है
यत्	जो	+ तत्	वह
एतत्	यह	एव	भी
शरीरम्	शरीर है	+ गायत्री	गायत्री है
इदम्	वही	हि	क्योंकि
वाव	निश्चय करके	अस्मिन्	इसी हृदयकमल में
तत्	यह गायत्री है	इमे	वे
वा	और	प्राणाः	प्राण
यत्	जो	प्रतिष्ठिताः	स्थित हैं
इदम्	यह	+ प्राणाः	वे प्राण
अन्तः	अन्दरवाला	एतत्	इस हृदयकमल को
+ हृदये	हृदयकमल	न	नहीं
अस्मिन्	इस	अतिशीयन्ते	अतिक्रमण करसक्ते हैं

भावार्थ ।

पुरुष का जो शरीर है वह गायत्री है और जो अन्दरवाला पुरुष बिषे हृदयकमल है वह भी गायत्री है, क्योंकि इस हृदयकमल में प्राण स्थित हैं। वे प्राण ही माता हैं, प्राण ही पिता हैं, प्राण ही

की दया से सब इन्द्रियां जीती हैं और शरीर विषे प्राण ही मुख्य देवता हैं, वे ही गायत्रीरूप हैं ॥ ४ ॥

मूलम् ।

सैषा चतुष्पदा षड्विधा गायत्री तदेतदृचाभ्यनूक्तम् ॥५॥

पदच्छेदः ।

सा, एषा, चतुष्पदा, षड्विधा, गायत्री, तत्, एतत्, ऋचा, अभ्यनूक्तम् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
सा	वह	+ कथिता	कही गई है
एषा	यह	तत्	सोई
गायत्री	गायत्री	एतत्	वह गायत्री
चतुष्पदा	चार चरणवाली	ऋचा	मंत्र करके
+ च	और	अभ्यनूक्तम्	प्रकाशित की गई है
षड्विधा	छः प्रकारवाली		

भावार्थ ।

जो गायत्री कही गई है वह चार पादवाली है और छः प्रकारवाली है, अर्थात् वह एक मन्त्र है जिसमें छः प्रकार हैं और चार पाद हैं। वे छः प्रकार ये हैं-वाणी, प्राणी, पृथिवी, शरीर, हृदय और प्राण ये गायत्री ब्रह्मरूप हैं, इसको ऐसा मन्त्र कहता है ॥ ५ ॥

मूलम् ।

तावानस्य महिमा ततो ज्यायाꣳश्च पूरुषः पादोऽस्य सर्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवीति ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ।

तावान्, अस्य, महिमा, ततः, ज्यायान्, च, पूरुषः, पादः, अस्य, सर्वा, भूतानि, त्रिपात्, अस्य, अमृतम्, दिवि, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
+ यावान्	जितना	सर्वा	सम्पूर्ण
अस्य	इस ब्रह्म का	भूतानि	स्थावर जंगम जगत है
पादः	एकचरणरूप		

तावान्=उतना	+ ब्रह्म=ब्रह्मरूप पुरुष
अस्य=इस ब्रह्मरूप गायत्री का	दिवि=प्रकाशित बुद्धि में
महिमा=विस्तार है	+ अस्ति=स्थित है
च=और	+ एतस्मात्=इसलिये
अस्य=इस ब्रह्म का	ततः=उस गायत्री से
त्रिपात्=तीन चरणवाला	पूरुषः=पुरुष
अमृतम्=अविनाशी	ज्यायान्=श्रेष्ठतर है

भावार्थ ।

जो कुछ स्थावर जंगम जगत् इस ब्रह्म का एक चरण है वह सब गायत्रीरूप है परन्तु तीन चरण जो इस ब्रह्म के बाक़ी रहे हैं वह अविनाशी ब्रह्मरूप पुरुष प्रकाशवान् बुद्धि विषे स्थित है, इसलिये यह बुद्धिस्थ पुरुष गायत्री से अतिश्रेष्ठ है ॥ ६ ॥

मूलम् ।

यद्वैतद्ब्रह्मेतीदं वाव तद्योऽयं बहिर्धा पुरुषादाकाशो यो वै स बहिर्धा पुरुषादाकाशः ॥ ७ ॥

पदच्छेदः ।

यत्, वा, एतत्, ब्रह्म, इति, इदम्, वाव, तत्, यः, अयम्, बहिर्धा, पुरुषात्, आकाशः, यः, वै, सः, बहिर्धा, पुरुषात्, आकाशः ॥

अन्वयः पदार्थ	अन्वयः पदार्थ
यत्=जो	आकाशः=आकाश है
एतत्=यह तीन पादवाला	वा=और
ब्रह्म=ब्रह्मरूप पुरुष है	यः=जो
इति=वही	अयम्=यह
इदम्=यह	पुरुषात्=पुरुष से
वाव=निश्चय करके	बहिर्धा=बाहर

आकाशः=आकाश है	आकाशः=आकाश है
+ च=और	तत्=सोई
यः=जो	सः=वह ब्रह्म
पुरुषात्=पुरुष से	वै=निश्चय
बहिर्धा=बाहर	उक्तः=कहा गया है

भावार्थ ।

जो आकाश पुरुष से बाहर है वह ब्रह्मरूपी तीन पादवाला पुरुष ही है अर्थात् जो पुरुष है वह आकाश है और जो आकाश है वह पुरुष है ॥ ७ ॥

मूलम् ।

अयं वाव स योऽयमन्तः पुरुष आकाशो यो वै सोऽन्तः पुरुष आकाशः ॥ ८ ॥

पदच्छेदः ।

अयम्, वाव, सः, यः, अयम्, अन्तः, पुरुषे, आकाशः, यः, वै, सः, अन्तः, पुरुषे, आकाशः ॥

अन्वयः पदार्थ	अन्वयः पदार्थ
यः=जो	अयम्=यह बाहर का आकाश है
अयम्=यह	यः=जो
वाव=निश्चय करके	पुरुष=पुरुष विषे
पुरुषे=शरीर विषे	अन्तः=भीतर
अन्तः=अंदर	आकाशः=आकाश है
आकाशः=आकाश है	सः=वही
सः=वह	+ बाह्यः=बाहरवाला
वै=ही	+ आकाशः=आकाश है

भावार्थ ।

जो पुरुष के बाहर आकाश है वही पुरुष के भीतर आकाश है और जो भीतर आकाश है वही बाहर आकाश है ॥ ८ ॥

मूलम् ।

अयं वाव स योऽयमन्तर्हृदय आकाशस्तदेतत्पूर्णमप्रवर्त्ति पूर्णामप्रवर्त्तिनीᳫं श्रियं लभते य एवं वेद ॥ ९ ॥

इति द्वादशः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

अयम्, वाव, सः, यः, अयम्, अन्तः, हृदये, आकाशः, तत्, एतत्, पूर्णम्, अप्रवर्त्ति, पूर्णाम्, अप्रवर्त्तिनीम्, श्रियम्, लभते, यः, एवम्, वेद ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अयम् वाव	यही	यः	जो पुरुष
सः	वह	एवम्	ऊपर कहे हुए प्रकार
यः	जो	वेद	आकाश को जानता है
अन्तः	भीतर	+ सः	वह
हृदये	हृदय में	अप्रवर्त्तिनीम्	नाशरहित
आकाशः	आकाश है	पूर्णाम्	पूर्ण
अयम्	यही आकाश	श्रियम्	श्री को
तत्	वह	लभते	प्राप्त होता है
एतत्	यह		
अप्रवर्त्ति	अविनाशी		
पूर्णम्	ब्रह्म है		

भावार्थ ।

जो आकाश पुरुष के भीतर है वही पुरुष के हृदय में है इसलिये आकाश व्यापक है, सब छोटी और बड़ी वस्तु में आकाश एकरस स्थित है, कोई स्थान या वस्तु अथवा प्राणी नहीं है जिसमें आकाश

व्यापक न हो । जो कोई इस आकाश को व्यापक और अविनाशी समझता है वह अतिश्रेष्ठ है । आकाश त्रिविध है; पहिला बाह्याकाश, दूसरा शरीराकाश और तीसरा हृदयाकाश है । जाग्रत् अवस्था में बाहर का आकाश जीव को मदद देता है, विना इस आकाश के इन्द्रियां काम नहीं देती हैं अर्थात् पदार्थ के ज्ञान में समर्थ नहीं होती हैं, यह अवस्था दुःखरूप है । स्वप्नावस्था में शरीराकाश जीव को मदद देता है अर्थात् इसी आकाश के द्वारा पुरुष अनेक सृष्टि को रच करके विलास करता है, यह अवस्था भी दुःखद है । सुषुप्ति अवस्था में हृदयाकाश करके पुरुष आनन्द को प्राप्त होता है, यह अवस्था आनन्ददायिनी है क्योंकि इसमें अन्तःकरण, मन, बुद्धि और अहंकार लय रहता है ॥ ६ ॥

इति द्वादशः खण्डः ।

अथ तृतीयाध्यायस्य त्रयोदशः खण्डः ।

मूलम् ।

तस्य ह वा एतस्य हृदयस्य पञ्च देवसुषयः स यो-ऽस्य प्राङ्सुषिः स प्राणस्तच्चक्षुः स आदित्यस्तदेतत्ते-जोऽन्नाद्यमित्युपासीत तेजस्व्यन्नादो भवति य एवं वेद॥१॥

पदच्छेदः ।

तस्य, ह, वै, एतस्य, हृदयस्य, पञ्च, देवसुषयः, सः, यः, अस्य, प्राङ्सुषिः, सः, प्राणः, तत्, चक्षुः, सः, आदित्यः, तत्, एतत्, तेजः, अन्नाद्यम्, इति, उपासीत, तेजस्वी, अन्नादः, भवति, यः, एवम्, वेद ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
तस्य=उस		एतस्य=इस	
ह वा=ही		हृदयस्य=हृदय कमल के	

पञ्च=पांच
देवसुषयः=देवद्वार हैं
अस्य=इस हृदय कमल का
यः=जो
सः=वह
प्राङ्सुषिः=पूर्व द्वार का अधिष्ठाता देवता है
सः=वह
प्राणः=प्राणदेव है
तत्=वही
चक्षुः=चक्षु है
+ च=और
सः=वही
आदित्यः=सूर्य है
तत्=वही
एतत्=यह
तेजः=तेज
+ च=और
अन्नाद्यम्=बल का देनेवाला है
इति=इस प्रकार
उपासीत=उपासना करे
यः=जो
एवम्=इस प्रकार
वेद=जानता है अर्थात् उपासना करता है
+ सः=वह
तेजस्वी=तेजस्वी
+ च=और
अन्नादः=शक्तिवाला
भवति=होता है

भावार्थ ।

इस हृदय कमल के पांच द्वार हैं । जो पूर्व की ओर का अधिष्ठाता देवता है वह प्राण है, वही चक्षु और सूर्य है, वही तेज और बल का देनेवाला है, ऐसा समझकर उपासना करे और जो इस प्रकार जानता हुआ उपासना करता है वह तेजस्वी और शक्तिवाला होता है ॥ १ ॥

मूलम् ।

अथ योऽस्य दक्षिणः सुषिः स व्यानस्तच्छ्रोत्रꣳस चन्द्रमास्तदेतच्छ्रीश्च यशश्चेत्युपासीत श्रीमान् यशस्वी भवति य एवं वेद ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यः, अस्य, दक्षिणः, सुषिः, सः, व्यानः, तत्, श्रोत्रम्, सः,

चन्द्रमाः, तत्, एतत्, श्रीः, च, यशः, च, इति, उपासीत, श्रीमान्, यशस्वी, भवति, यः, एवम्, वेद ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ	अब	श्रीः	श्री है
अस्य	इस हृदयकमल का	च	और
यः	जो	यशः	यश है
दक्षिणः	दक्षिण ओर का	इतिच	इस प्रकार
सुषिः	देवद्वार है	उपासीत	उपासना करे
सः	वह	यः	जो
व्यानः	व्यान वायु अधिष्ठाता देवता है	एवम्	इस प्रकार
तत्	वही	वेद	जानता है अर्थात् उपासना करता है
श्रोत्रम्	कर्ण है	+ सः	वह
सः	वही	श्रीमान्	श्रीमंत
चन्द्रमाः	चन्द्रमा है	+ च	और
तत्	वही	यशस्वी	यशस्वी
एतत्	यह	भवति	होता है

भावार्थ ।

इस हृदयकमल की दक्षिण ओर का जो द्वार है उसका अधिष्ठाता देवता व्यान वायु है, वही कर्ण है, वही चंद्रमा है, वही श्री है और यश भी है । ऐसा समझकर उपासना करे और जो इस प्रकार जानता हुआ उपासना करता है वह तेजस्वी और शक्तिवाला होता है ॥ २ ॥

मूलम् ।

अथ योऽस्य प्रत्यङ्सुषिः सोऽपानः सा वाक्सोऽग्निस्तदेतद्ब्रह्मवर्चसमन्नाद्यमित्युपासीत ब्रह्मवर्चस्यन्नादो भवति य एवं वेद ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यः, अस्य, प्रत्यङ्सुषिः, सः, अपानः, सा, वाक्, सः, अग्निः,

तत्, एतत्, ब्रह्मवर्चसम्, अन्नाद्यम्, इति, उपासीत, ब्रह्मवर्चसी, अन्नादः, भवति, यः, एवम्, वेद ॥

अन्वयः	पदार्थ
अथ	अब
अस्य	इस हृदयकमल का
यः	जो
प्रत्यङ्सुषिः	पश्चिम ओर का द्वार है
सः	वह
अपानः	अपान वायु अधिष्ठाता देवता है
सा	वही
वाक्	वाणी है
सः	वही
अग्निः	अग्नि है
तत्	वही
एतत्	यह
ब्रह्मवर्चसम्	ब्रह्मतेज है
अन्नाद्यम्	बल है
इति	इसप्रकार
उपासीत	उपासना करे
यः	जो
एवम्	कहे हुए प्रकार
वेद	जानता है अर्थात् उपासना करता है
+ सः	वही
ब्रह्मवर्चसी	ब्रह्मतेजवाला
+ च	और
अन्नादः	भोजन शक्तिवाला
भवति	होता है

भावार्थ ।

हृदयकमल की पश्चिम ओर का जो द्वार है उसका अधिष्ठाता देवता अपान वायु है, वही वाणी है, वही अग्नि है, वही ब्रह्मतेज है और बल है । इस प्रकार जानकर उपासना करे और जो इस प्रकार जानता हुआ उपासना करता है वह ब्रह्म तेजवाला और भोजनशक्तिवाला होता है ॥ ३ ॥

मूलम् ।

अथ योऽस्योदङ्सुषिः स समानस्तन्मनः स पर्जन्यस्तदेतत्कीर्तिश्च व्युष्टिश्चेत्युपासीत कीर्तिमान् व्युष्टिमान् भवति य एवं वेद ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यः, अस्य, उदङ्सुषिः, सः, समानः, तत्, मनः, सः, पर्जन्यः, तत्, एतत्, कीर्त्तिः, च, व्युष्टिः, च, इति, उपासीत, कीर्त्तिमान्, व्युष्टिमान्, भवति, यः, एवम्, वेद ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ	अब	च	और
अस्य	इस हृदयकमल का	व्युष्टिः	लावण्य
यः	जो	च	भी
उदङ्सुषिः	उत्तर ओर का द्वार है	+ अस्ति	है
सः	वह	इति	इस प्रकार
समानः	समान वायु अधिष्ठाता देवता है	उपासीत	उपासना करे
तत्	वही	यः	जो
मनः	मन है	एवम्	कहे हुए प्रकार
सः	वही	वेद	जानता है
पर्जन्यः	वृष्टि है	+ सः	वही
तत्	वही	कीर्त्तिमान्	यशस्वी
एतत्	यह ब्रह्म	+ च	और
कीर्त्तिः	यश है	व्युष्टिमान्	कान्तिमान्
		भवति	होता है

भावार्थ ।

इस हृदयकमल की उत्तर ओर का जो द्वार है उसका अधिष्ठाता देवता समान वायु है, वही मन है, वही वृष्टि है, वही ब्रह्म है, वही यश और लावण्य है, इस प्रकार जानकर उपासना करे और जो इस प्रकार जानता हुआ उपासना करता है वह यशस्वी और कान्तिवाला होता है ॥ ४ ॥

मूलम् ।

अथ योऽस्योर्ध्वः सुषिः स उदानः स वायुः स

आकाशस्तदेतदोजश्च महश्चेत्युपासीतौजस्वी महस्वान् भवति य एवं वेद ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यः, अस्य, ऊर्ध्वः, सुषिः, सः, उदानः, सः, वायुः, सः, आकाशः, तत्, एतत्, ओजः, च, महः, च, इति, उपासीत, ओजस्वी, महस्वान्, भवति, यः, एवम्, वेद ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ	इसके बाद	ओजः	बल है
अस्य	इस हृदयकमल का	च	और
यः	जो	महः	तेज है
ऊर्ध्वः	ऊपर का	इति	इस प्रकार
सुषिः	द्वार है	उपासीत	उपासना करे
सः	वह	यः	जो
उदानः	उदान वायु है	एवम्	कहे हुए प्रकार
सः	वही	वेद	जानता है
वायुः	मुख्य प्राण है	+ सः	वह पुरुष
सः	वही	ओजस्वी	बलवान्
आकाशः	आकाश है	च	और
तत्	वही	महस्वान्	तेजस्वी
एतत्	यह	भवति	होता है

भावार्थ ।

इस हृदयकमल के ऊपर का जो द्वार है उसका अधिष्ठाता देवता उदानवायु है, वही मुख्य प्राण है, वही आकाश है, वही बल और तेज है, ऐसा समझकर उपासना करे, और जो कहे हुए प्रकार जानकर उपासना करता है वह बलवान् और तेजस्वी होता है ॥ ५ ॥

मूलम् ।

ते वा एते पञ्च ब्रह्मपुरुषाः स्वर्गस्य लोकस्य द्वारपाः स य एतानेवं पञ्च ब्रह्मपुरुषान्स्वर्गस्य लोकस्य द्वारपा-

न्वेदाऽस्य कुले वीरो जायते प्रतिपद्यते स्वर्गं लोकं य एतानेवं पञ्च ब्रह्मपुरुषान्स्वर्गस्य लोकस्य द्वारपान्वेद ॥६॥

पदच्छेदः ।

ते, वै, एते, पञ्च, ब्रह्मपुरुषाः, स्वर्गस्य, लोकस्य, द्वारपाः, सः, यः, एतान्, एवम्, पञ्च, ब्रह्मपुरुषान्, स्वर्गस्य, लोकस्य, द्वारपान्, वेद, अस्य, कुले, वीरः, जायते, प्रतिपद्यते, स्वर्गम्, लोकम्, यः, एतान्, एवम्, पञ्च, ब्रह्मपुरुषान्, स्वर्गस्य, लोकस्य, द्वारपान्, वेद ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
ते	वे	ब्रह्मपुरुषान्	हृदयसम्बन्धी ब्रह्मपुरुष
एते	ये	एवम्	ऊपर कहे हुए प्रकार
पञ्च	पांचों	वेद	जानता है
वै	निश्चय करके	अस्य	उसके
ब्रह्मपुरुषाः	ब्रह्मरूपी पुरुष	कुले	कुल में
स्वर्गस्य	स्वर्ग	वीरः	वीर पुरुष
लोकस्य	लोक के	जायते	उत्पन्न होता है
द्वारपाः	द्वारपाल हैं	+ च	और
यः	जो	सः	वह स्वयं
स्वर्गस्य	स्वर्ग	स्वर्गम्	स्वर्ग
लोकस्य	लोक के	लोकम्	लोक को
एतान्	इन्हीं	प्रतिपद्यते	प्राप्त होता है
पञ्च	पांचों		
द्वारपान्	द्वारपालों को		

भावार्थ ।

ये पांचों ब्रह्मरूपी प्राणादि पुरुष स्वर्गलोक के द्वारपाल हैं । जो स्वर्गलोक के इन्हीं पांचों द्वारपालों को ऊपर कहे हुए प्रकार हृदयसम्बन्धी ब्रह्मपुरुष जानता है, उसके वंश में वीरपुरुष उत्पन्न होते हैं और वह स्वयं देहत्याग के पीछे स्वर्गलोक को प्राप्त होता है ॥ ६ ॥

मूलम् ।

अथ यदतः परो दिवो ज्योतिर्दीप्यते विश्वतः पृष्ठेषु सर्वतः पृष्ठेष्वनुत्तमेषूत्तमेषु लोकेष्विदं वाव तद्यदिद-मस्मिन्नन्तःपुरुषे ज्योतिस्तस्यैषा दृष्टिर्यत्रैतदस्मिञ्छरीरे सꣳस्पर्शेनोष्णिमानं विजानाति तस्यैषा श्रुतिर्यत्रै-तत्कर्णावपिगृह्य निनदमिव नदथुरिवाग्नेरिव ज्वलत उपशृणोति तदेतद्दृष्टं च श्रुतं चेत्युपासीत चक्षुष्यः श्रुतो भवति य एवं वेद य एवं वेद ॥ ७ ॥

इति त्रयोदशः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

अथ, यत्, अतः, परः, दिवः, ज्योतिः, दीप्यते, विश्वतः, पृष्ठेषु, सर्वतः, पृष्ठेषु, अनुत्तमेषु, उत्तमेषु, लोकेषु, इदम्, वाव, तत्, यत्, इदम्, अस्मिन्, अन्तः, पुरुषे, ज्योतिः, तस्य, एषा, दृष्टिः, यत्र, एतत्, अस्मिन्, शरीरे, संस्पर्शेन, उष्णिमानम्, विजानाति, तस्य, एषा, श्रुतिः, यत्र, एतत्, कर्णौ, अपिगृह्य, निनदम्, इव, नदथुः, इव, अग्नेः, इव, ज्वलतः, उपशृणोति, तत्, एतत्, दृष्टम्, च, श्रुतम्, च, इति, उपासीत, चक्षुष्यः, श्रुतः, भवति, यः, एवम्, वेद, यः, एवम्, वेद ॥

अन्वयः	पदार्थ
अथ	इसके बाद
यत्	जो
इदम्	यह
अन्तः	अन्तर
ज्योतिः	ज्योति
दीप्यते	चमकती है
अतः	इसलिये
+ तत्	वह
दिवः	स्वर्ग से
परः	आगे
विश्वतः	संसार से
पृष्ठेषु	ऊपर
सर्वतः	सबके
पृष्ठेषु	ऊपर
अनुत्तमेषु	अति उत्तम
उत्तमेषु	श्रेष्ठ से श्रेष्ठ
लोकेषु	सत्य लोकादिकों में है

तत्=सोऽहं
इदम्=यह
अस्मिन्=इस
पुरुषे=पुरुष विषे
+ अन्तः=हृदयकमल में
+ स्थितः=स्थित है
वाव=और
यत्=जो
ज्योतिः=ज्योतिस्वरूप है
तस्य=उसी का
+ लिङ्गम्=चिह्न
एषा=यह
दृष्टिः=नेत्र है
एतत्=यही नेत्र विषे पुरुष
यत्र=जिस समय
अस्मिन्=इस
शरीरे=शरीर से
संस्पर्शेन=स्पर्श करके
उष्णिमानम्=उष्णता को
विजानाति=जानता है
तस्य=उसी को
एषा=यह
श्रुतिः=ज्ञान होता है
च=और
यत्र=जब
+ शुश्रूषति=पुरुष सुनने की इच्छा करता है

+ तदा=तब
एतत्=यह
कर्णौ=दोनों कानों को
अपिगृह्य=हाथ से दाबकर
निनदम् इव=रथ का सा शब्द
+ शृणोति=सुनता है और
नदथुः इव=बैल का सा शब्द
ज्वलतः=जलती हुई
अग्नेः=आग के शब्द की
इव=तरह
उपशृणोति=सुनता है
तत्=उसी
एतत्=इस
दृष्टम्=देखे
श्रुतम्=सुने हुए पुरुष की
इति=इस प्रकार
उपासीत=उपासना करे
यः=जो
एवम्=इस तरह
वेद=जानता है
+ सः=वह
चक्षुष्यः=दर्शनीय
+ च=और
विश्रुतः=प्रसिद्ध
भवति=होता है

भावार्थ।

जो ज्योति स्वर्ग से ऊपर चमकती है और जो सबसे ऊपर है

और जो अति उत्तम और श्रेष्ठ से श्रेष्ठ सत्यलोकादिकों में है, वही इस पुरुष के हृदय कमल में स्थित है और वही नेत्र बिषे है। जो पुरुष नेत्र बिषे है, वही इस शरीर की उष्णता को स्पर्श करके जानता है, उसी करके उष्णता का ज्ञान होता है और जबतक उष्णता रहती है, तबतक जीवत्व रहता है जब इस शरीर बिषे स्थित पुरुष सुनने की इच्छा करता है, तब दोनों कानों को हाथों से दबाकर रथशब्द, बैलशब्द और अग्निशब्द की तरह सुनता है; ऐसे सुननेवाले तथा देखनेवाले पुरुष की उपासना करे। जो इस प्रकार जानता हुआ उपासना करता है वह दर्शनीय और प्रसिद्ध होता है ॥ ७ ॥

इति त्रयोदशः खण्डः ।

अथ तृतीयाध्यायस्य चतुर्दशः खण्डः ।

मूलम् ।

सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीत अथ खलु क्रतुमयः पुरुषो यथाक्रतुरस्मिँल्लोके पुरुषो भवति तथेतः प्रेत्य भवति स क्रतुं कुर्वीत ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

सर्वम्, खलु, इदम्, ब्रह्म, तज्जलान्, इति, शान्तः, उपासीत, अथ, खलु, क्रतुमयः, पुरुषः, यथाक्रतुः, अस्मिन्, लोके, पुरुषः, भवति, तथा, इतः, प्रेत्य, भवति, सः, क्रतुम्, कुर्वीत ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
तज्जलानिति=	जिसमे जगत् उत्पन्न होता है, जिसमें यह जगत् लीन होता है, जिससे इस जगत् का पालन-पोषण होता है, सोई	इदम्=	यह
		सर्वम्=	सर्व नाम रूपात्मक जगत्
		खलु=	निश्चय करके
		ब्रह्म=	ब्रह्म है
		+ इति=	इस प्रकार

शान्तः=रागद्वेष रहित होता हुआ पुरुष
उपासीत=उपासना करे
खलु=क्योंकि
क्रतुमयः=बुद्धिविशिष्ट
पुरुषः=पुरुष
यथाक्रतुः=अपनी वासना के अनुसार
अस्मिन्=इस
लोके=लोक में
भवति=जीता है और
तथा=वैसे ही अपनी इच्छा के अनुसार

पुरुषः=पुरुष
इतः=इससे
प्रेत्य=मर करके
+ अपि=भी
भवति=उत्पन्न होता है
+ अतः=इसलिये
अथ=अब
सः=वह उपासक
क्रतुम्=आगे कहे हुए विश्वास को
कुर्वीत=करे

भावार्थ ।

जिससे जगत् उत्पन्न होता है, जिसमें यह जगत् लीन होता है और जिस करके जगत् का पालन पोषण होता है, ऐसा यह सब नामरूपात्मक जगत् ब्रह्म है । ऐसा समझकर रागद्वेषरहित होता हुआ पुरुष ब्रह्म की उपासना करे; क्योंकि बुद्धिविशिष्ट पुरुष जैसी वासना करता है, उसी वासना के अनुसार लोक में पैदा होता है; ऐसा विश्वास उपासक रक्खे । प्राण से मतलब यहां लिंगशरीर से है । यह प्रकाशस्वरूप है, ज्ञानस्वरूप है, यह सत्य संकल्पवाला है, जिस इच्छा को यह चाहता है उसको प्राप्त होता है, यह आकाशवत् व्यापक है और यह सब कामनाओं का कर्त्ता है; क्योंकि यह लिंगशरीर चैतन्य के आश्रय है ॥ १ ॥

मूलम् ।

मनोमयः प्राणशरीरो भारूपः सत्यसंकल्प आका-

शात्मा सर्वकर्मा सर्वकामः सर्वगन्धः सर्वरसः सर्वमिदमभ्यात्तोऽवाक्यनादरः ॥ २ ॥ *

पदच्छेदः ।

मनोमयः, प्राणशरीरः, भारूपः, सत्यसंकल्पः, आकाशात्मा, सर्वकर्मा, सर्वकामः, सर्वगन्धः, सर्वरसः, सर्वम्, इदम्, अभ्यात्तः, अवाकी, अनादरः ॥

अन्वयः	पदार्थ
मनोमयः	बुद्धि से भरा है अर्थात् सर्वज्ञ है जो
प्राणशरीरः	जिसका शरीर शक्ति से भरा हुआ है अर्थात् सर्वशक्तिमान् है जो
भारूपः	स्वरूप है प्रकाश जिसका
सत्यसंकल्पः	सत्य है संकल्प जिसका
आकाशात्मा	आकाश की तरह व्यापक है जो
सर्वकर्मा	सब कर्मों का करता है जो
सर्वकामः	सम्पूर्ण कामनाओं से भरा है जो
सर्वगन्धः	संपूर्ण गन्ध भरे हैं जिसमें
सर्वरसः	संपूर्ण रस भरे हैं जिसमें
सर्वम्	संपूर्ण
इदम्	यह जगत्
अभ्यात्तः	जिस करके व्याप्त है
अवाकी	वागादि इन्द्रिय नहीं हैं जिसमें अर्थात् बे इन्द्रिय के देखता सुनता है जो
अनादरः	पक्षपातरहित है जो

भावार्थ ।

जो बुद्धि से भरा है अर्थात् सर्वज्ञ है, सर्वशक्तिमान् है, प्रकाशितरूप है, सत्य संकल्पवाला है, आकाश की तरह व्यापक है, सब कर्मों का कर्त्ता है, सब कामनाओं से भरा है, पक्षपातरहित है, अथवा नित्यतृप्त होने के कारण जिसको किसी विषय की इच्छा नहीं है ॥ २ ॥

---

* नोट—इसका अन्वयसंबन्ध अगले मंत्र से है ।

मूलम् ।

एष म आत्माऽन्तर्हृदयेऽणीयान्व्रीहेर्वा यवाद्वा सर्षपाद्वा श्यामाकाद्वा श्यामाकतण्डुलाद्वा, एष म आत्माऽन्तर्हृदये ज्यायान्पृथिव्या ज्यायानन्तरिक्षाज्ज्यायान्दिवो ज्यायानेभ्यो लोकेभ्यः ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

एषः, मे, आत्मा, अन्तः, हृदये, अणीयान्, व्रीहेः, वा, यवात्, वा, सर्षपात्, वा, श्यामाकात्, वा, श्यामाकतण्डुलात्, वा, एषः, मे, आत्मा, अन्तः, हृदये, ज्यायान्, पृथिव्याः, ज्यायान्, अन्तरिक्षात्, ज्यायान्, दिवः, ज्यायान्, एभ्यः, लोकेभ्यः ॥

अन्वयः	पदार्थ
एषः	यह पूर्वोक्त गुणवाला
यः	जो
आत्मा	ब्रह्म
मे	मेरे
अन्तः	भीतर
हृदये	हृदय बिषे
+ अस्ति	स्थित है
+ सः	वह
व्रीहेः	धान से
वा	अथवा
यवात्	जौ से
वा	अथवा
सर्षपात्	सरसों से
वा	अथवा
श्यामाकात्	सांवां से
वा	अथवा
श्यामाकतण्डुलात्	सांवां के चावल से
वा	भी
अणीयान्	छोटा है
+ च	और
+ यः	जो
एषः	यह
आत्मा	आत्मा
मे	मेरे
अन्तः	भीतर
हृदये	हृदय बिषे
+ स्थितः	स्थित है
+ सः	वह
पृथिव्याः	पृथ्वी से
ज्यायान्	बड़ा है

अन्तरिक्षात्=आकाश से	लोकेभ्यः=लोकों से
ज्यायान्=बड़ा है	ज्यायान्=बड़ा है
दिवः=स्वर्ग से	+ एवम्=ऊपर कहे हुए प्रकार
ज्यायान्=बड़ा है	+ उपासीत=उपासना करे
एभ्यः=इन	

भावार्थ ।

जो पूर्वोक्त गुणवाला ब्रह्म मेरे हृदय बिषे स्थित है वह चैतन्य ब्रह्म धान से, जौ से, सरसों से, सांवां से और सांवां के चावल से भी छोटा है और जो मेरे हृदयकमल में स्थित है वह पृथ्वी, आकाश और स्वर्गादिक से बड़ा है । ऐसे ब्रह्म की उपासना करे ॥ ३ ॥

मूलम् ।

सर्वकर्मा सर्वकामः सर्वगन्धः सर्वरसः सर्वमिदमभ्यात्तोऽवाक्यनादर एष म आत्माऽन्तर्हृदय एतद्ब्रह्मैतमितः प्रेत्याभिसंभवितास्मीति यस्य स्यादद्धा न विचिकित्सास्तीति ह स्माह शाण्डिल्यः शाण्डिल्यः ॥ ४ ॥

इति चतुर्दशः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

सर्वकर्मा, सर्वकामः, सर्वगन्धः, सर्वरसः, सर्वम, इदम्, अभ्यात्तः, अवाकी, अनादरः, एषः, मे, आत्मा, अन्तः, हृदये, एतत्, ब्रह्म, एतम्, इतः, प्रेत्य, अभिसंभवितास्मि, इति, यस्य, स्यात्, अद्धा, न, विचिकित्सा, अस्ति, ह, स्म, आस, शाण्डिल्यः, शाण्डिल्यः ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
सर्वकर्मा	=सब कर्मों का करनेवाला है जो	सर्वकामः	=सब कामनाओं से भरा है जो

सर्वगन्धः=सब गंधों से पूर्ण है जो
सर्वरसः=संपूर्ण रसों से भरा हुआ है जो
सर्वम्= संपूर्ण
इदम्=यह जगत्
अभ्यात्तः=व्याप्त है जिस करके
अवाकी=वागादीन्द्रिय से रहित है जो
अनादरः=पक्षपात से रहित है जो
एपः=यही
मे=मेरा
आत्मा=आत्मा
अन्तः=मेरे भीतर
हृदये=हृदय बिषे
+ अस्ति=स्थित है
एतत्=सोऽहं
ब्रह्म=ब्रह्म है

इतः=इस शरीर से
प्रेत्य=परलोक में जाकर
एतम्=उसी आत्मा को
अभिसंभ-वितास्मि=साक्षात् करूंगा मैं
इति=इस प्रकार
ह=निश्चय करके
यस्य=जिसको
श्रद्धा=विश्वास
स्यात्=हो
+ तस्य=उसको
विचिकित्सा=संशय
न=नहीं
अस्ति=है
+ इति=इस प्रकार
शांडिल्यः=शांडिल्य ऋषि
आहस्म=कहता भया

भावार्थ ।

सब कर्मों का करनेवाला है जो, सब कामनाओं से भरा है जो, सब गंधों से पूर्ण है जो, सब रसों से भरा हुआ है जो, जिस करके सारा जगत् व्याप्त हो रहा है, इन्द्रियादिकों से रहित है जो, ऐसा ब्रह्म मेरे हृदयबिषे स्थित है, उसी ब्रह्म को मैं शरीर त्यागने के पश्चात् साक्षात् करूंगा । जिस उपासक का ऐसा विश्वास है, उसको किसी प्रकार का संशय देह रखते हुए भी नहीं है, शांडिल्यऋषि का ऐसा मत है ॥ ४ ॥

इति चतुर्दशः खण्डः ।

अथ तृतीयाध्यायस्य पञ्चदशः खण्डः।

मूलम्।

अन्तरिक्षोदरः कोशो भूमिबुध्नो न जीर्यति दिशो ह्यस्य स्रक्तयो द्यौरस्योत्तरं बिलᳪस एष कोशो वसुधानस्तस्मिन्विश्वमिदᳪ श्रितम् ॥ १ ॥

पदच्छेदः।

अन्तरिक्षोदरः, कोशः, भूमिबुध्नः, न, जीर्यति, दिशः, हि, अस्य, स्रक्तयः, द्यौः, अस्य, उत्तरम्, बिलम्, सः, एषः, कोशः, वसुधानः, तस्मिन्, विश्वम्, इदम्, श्रितम् ॥

अन्वयः	पदार्थ
अन्तरिक्षोदरः	आकाश है उदर जिसका
+ च	और
भूमिबुध्नः	पृथ्वी है पैंदा या पाद जिसका ऐसे
अस्य	इस कोश के
स्रक्तयः	चारों कोने
दिशः	दिशा हैं अर्थात् हाथ हैं
+ च	और
अस्य	इसके
उत्तरम्	ऊपर का
बिलम्	छिद्र या ब्रह्मरंध्र
द्यौः	स्वर्ग है
सः	वही
एषः	यह
कोशः	कोशरूपी
वसुधानः	भंडार है
+ च	और
तस्मिन्	इसी कोश में
इदम्	यह
विश्वम्	जगत्
श्रितम्	स्थित है
इति	ऐसा
+ अयम्	यह
कोशः	कोश
हि	निश्चय करके
न	नहीं
जीर्यति	नष्ट होता है

भावार्थ।

इस विराट् पुरुष का उदर आकाश है, पृथ्वी पाद हैं, चारों कोने इसके दिशा हैं अर्थात् हाथ हैं, इसके ऊपर का छिद्र अर्थात् ब्रह्मरंध्र

स्वर्ग है, ऐसा यह कोशभंडार है जिसमें संपूर्ण जगत् स्थित है, इस कोश का नाश कभी नहीं है ॥ १ ॥

मूलम् ।

तस्य प्राची दिग्जुहूर्नाम सहमानानामदक्षिणा राज्ञी नाम प्रतीची सुभूतानामोदीची तासां वायुर्वत्सः स य एतमेवं वायुं दिशां वत्सं वेदनपुत्ररोदꣳ रोदिति सोऽह-मेतमेवं वायुं दिशां वत्सं वेद मा पुत्ररोदꣳरुदम् ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

तस्य, प्राची, दिक्, जुहूः, नाम, सहमाना, नाम, दक्षिणा, राज्ञी, नाम, प्रतीची, सुभूता, नाम, उदीची, तासाम्, वायुः, वत्सः, सः, यः, एतम्, एवम्, वायुम्, दिशाम्, वत्सम्, वेद, न, पुत्ररोदम्, रोदिति, सः, अहम्, एतम्, एवम्, वायुम्, दिशाम्, वत्सम्, वेद, मा, पुत्ररोदम्, रुदम् ॥

अन्वयः	पदार्थ
तस्य	उस विराट् पुरुष का
प्राची	पूर्व
दिक्	दिशा
नाम	प्रसिद्ध
जुहूः	जुहू है अर्थात् जिस तरफ़ यजमान मुख करके यज्ञ करता है
दक्षिणानाम	दक्षिणवाली दिशा
सहमाना	यमपुरी है
प्रतीचीनाम	पश्चिम नामवाली दिशा
राज्ञी	राजनी है
उदीचीनाम	उत्तर नामवाली दिशा

अन्वयः	पदार्थ
सुभूता	सुभूता है अर्थात कुबेरादिकों करके आश्रित है
तासाम्	उन दिशाओं का
वायुः	पवन
वत्सः	लड़का है
यः	जो
एतम्	इस
वायुम्	वायु को
एवम्	ऊपर कहे हुए प्रकार
दिशाम्	दिशाओं का
वत्सम्	लड़का
वेद	जानता है
सः	वह
पुत्ररोदम्	पुत्रमरणनिमित्त

न=नहीं	वायुम्=वायु को
रोदिति=रुदन करता है	दिशाम्=दिशाओं का
सः=वह पुत्रजीवितार्थी	वत्सम्=लड़का
अहम्=मैं	वेद=जानता हूं
एतम्=इस	पुत्ररोदम्=पुत्रमरणनिमित्त
एवम्=ऊपर कहे हुए प्रकार	मा रुदम्=मैं न रुदन करूं

भावार्थ ।

इस विराट् पुरुष का पूर्व दिशा जुहू है, इस दिशा के तरफ यजमान मुख करके यज्ञ करता है, दक्षिण दिशा यमपुरी है, जिसमें कर्म-फल का भोग होता है, पश्चिम दिशा राजनी है, जिसमें वरुण देवता वास करता है, उत्तर दिशा सुभूता है, जिसमें धनेश कुबेर देवता रहता है, इन चारों दिशाओं का पुत्र वायु है, क्योंकि इन चारों दिशाओं से वायु उत्पन्न होता है, इसलिये जो उपासक इस वायु को दिशाओं का पुत्र जानता है, वह पुत्रमरणनिमित्त रुदन नहीं करता है अर्थात् उसका पुत्र दीर्घायुवाला होता है और उसको पुत्रशोक नहीं होता है। मैं ऊपर कहे हुए प्रकार वायु को दिशाओं का पुत्र जानता हूं, मुझको पुत्रशोक कभी नहीं होगा ॥ २ ॥

मूलम् ।

अरिष्टं कोशं प्रपद्येऽमुनाऽमुनाऽमुना प्राणं प्रपद्येऽमुनाऽमुनाऽमुना भूः प्रपद्येऽमुनाऽमुनाऽमुना भुवः प्रपद्येऽमुनाऽमुनाऽमुना स्वः प्रपद्येऽमुनाऽमुनाऽमुना ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

अरिष्टम्, कोशम्, प्रपद्ये, अमुना, अमुना, अमुना, प्राणम्, प्रपद्ये, अमुना, अमुना, अमुना, भूः, प्रपद्ये, अमुना, अमुना, अमुना, भुवः, प्रपद्ये, अमुना, अमुना, अमुना, स्वः, प्रपद्ये, अमुना, अमुना, अमुना ॥

अन्वयः	पदार्थ
+ अहं=मैं	
अरिष्टम्=अविनाशी	
कोशम्=त्रैलोक्यात्मक कोश के	
अमुना=इसही	
अमुना=इसही	
अमुना=इसही	
+ पुत्रेण=पुत्र के निमित्त	
प्रपद्ये=शरण हूं	
अमुना=इसही	
अमुना=इसही	
अमुना=इसही पुत्र के निमित्त	
प्राणम्=मुख्यप्राण के	
प्रपद्ये=शरण होता हूं	
अमुना=इसही	
अमुना=इसही	
अमुना=इसही पुत्र के निमित्त	

अन्वयः	पदार्थ
भूः=भूर्लोक के अधिष्ठात्री देवता के	
प्रपद्ये=शरण होता हूं	
अमुना=इसही	
अमुना=इसही	
अमुना=इसही पुत्र के निमित्त	
भुवः=भुवर्लोक के अधिष्ठात्री देवता के	
प्रपद्ये=शरण होता हूं	
अमुना=इसही	
अमुना=इसही	
अमुना=इसही पुत्र के निमित्त	
स्वः=स्वर्लोकाधिष्ठात्री देवता के	
प्रपद्ये=शरण होता हूं	

भावार्थ ।

इसी अपने पुत्रनिमित्त मैं अविनाशी त्रैलोक्यात्मक कोश के शरण हूं, इसही अपने पुत्र के निमित्त मुख्य प्राण के शरण हूं, इसही अपने पुत्र के निमित्त मैं भूर्लोकाधिष्ठात्री देवता के शरण हूं, इसही अपने पुत्र के निमित्त भुवर्लोकाधिष्ठात्री देवता के शरण हूं, इसी अपने पुत्र के निमित्त स्वर्लोक की अधिष्ठात्री देवता के शरण हूं ॥ ३ ॥

मूलम् ।

स यदवोचं प्राणं प्रपद्य इति प्राणो वा इदꣳ सर्वं भूतं यदिदं किंच तमेव तत्प्रापत्सि ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

सः, यत्, अवोचम्, प्राणम्, प्रपद्ये, इति, प्राणः, वै, इदम्, सर्वम्, भूतम्, यत्, इदम्, किंच, तम्, एव, तत्, प्रापत्सि ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
प्राणम्=मुख्य प्राण के		सर्वम्=सब	
प्रपद्ये=मैं शरण हूं		भूतम्=स्थावर जंगमात्मक जगत् है	
इति=ऐसा		सः=वही	
यत्=जो		प्राणः=प्राण है	
अहम्=मैं		तत्=उसी	
अवोचम्=कहता भया		तम् एव=उसी सर्वात्मक प्राण के	
वै=निश्चय करके		+ अहम्=मैं	
इदम् इदम्=यह		प्रापत्सि=शरण हूं	
यत्=जो			
किंच=कुछ			

भावार्थ ।

मुख्य प्राण के मैं शरण हूं, ऐसा जो मैंने कहा उससे प्रयोजन यह है कि जो कुछ स्थावर जंगम जगत् है, वही प्राण है, उसी सर्वात्मक प्राण के मैं शरण हूं ॥ ४ ॥

मूलम् ।

अथ यदवोचं भूः प्रपद्य इति पृथिवीं प्रपद्येऽन्तरिक्षं प्रपद्ये दिवं प्रपद्य इत्येव तदवोचम् ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यत्, अवोचम्, भूः, प्रपद्ये, इति, पृथिवीम्, प्रपद्ये, अन्तरिक्षम्, प्रपद्ये, दिवम्, प्रपद्ये, इति, एव, तत्, अवोचम् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ=अब		इति=इस प्रकार	
भूः=भूर्लोक के		यत्=जो	
प्रपद्ये=शरण होता हूं मैं		+ अहम्=मैं	

अवोचम्=कहता भया	पृथिवीम्=पृथ्वी के
तत्=उस	प्रपद्ये=शरण होता हूं
अवोचम्=कहे हुए से	अन्तरिक्षम्=आकाश के
+ मम=मेरा	प्रपद्ये=शरण होता हूं
+अर्थः=प्रयोजन है कि	दिवम्=स्वर्ग के
अहं=मैं	प्रपद्ये=शरण होता हूं

भावार्थ ।

"अब मैं भूर्लोक के शरण हूं" जो इस प्रकार मैंने कहा है उससे मेरा प्रयोजन यह है कि मैं पृथ्वी के शरण हूं, आकाश के शरण हूं और स्वर्ग के शरण हूं ॥ ५ ॥

मूलम् ।

अथ यदवोचं भुवः प्रपद्य इत्यग्निं प्रपद्ये वायुं प्रपद्य आदित्यं प्रपद्य इत्येव तदवोचम् ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यत्, अवोचम्, भुवः, प्रपद्ये, इति, अग्निम्, प्रपद्ये, वायुम्, प्रपद्ये, आदित्यम्, प्रपद्ये, इति, एव, तत्, अवोचम् ॥

अन्वयः पदार्थ	अन्वयः पदार्थ
अथ=अब	+मम=मेरा
भुवः=भुवर्लोक के	+ अर्थः=प्रयोजन है कि
प्रपद्ये=शरण होता हूं मैं	अग्निम्=अग्नि के
इति=इस प्रकार	प्रपद्ये=शरण होता हूं मैं
यत्=जो	वायुम्=वायु के
अहम्=मैं	प्रपद्ये=शरण होता हूं मैं
अवोचम्=कहता भया	आदित्यम्=सूर्य के
तत्=उस	प्रपद्ये=शरण होता हूं मैं
अवोचम्=कहे हुए से	

भावार्थ ।

जो मैंने कहा कि मैं भुवर्लोक के शरण हूं उससे मेरा प्रयोजन यह है कि मैं अग्नि की, वायु देवता की, सूर्य देवता की शरण हूं ॥ ६ ॥

मूलम् ।

अथ यदवोचꣳ स्वः प्रपद्य इत्यृग्वेदं प्रपद्ये यजुर्वेदं प्रपद्ये सामवेदं प्रपद्य इत्येव तदवोचं तदवोचम् ॥ ७ ॥

इति पञ्चदशः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

अथ, यत्, अवोचम्, स्वः, प्रपद्ये, इति, ऋग्वेदम्, प्रपद्ये, यजुर्वेदम्, प्रपद्ये, सामवेदम्, प्रपद्ये, इति, एव, तत्, अवोचम्, तत्, अवोचम् ॥

अन्वयः	पदार्थ
अथ	अब
स्वः	स्वर्लोक के
प्रपद्ये	शरण को होता हूं मैं
इति एव	इसी प्रकार
यत्	जो
अवोचम्	कहता भया मैं
तत्	उस
अवोचम्	कहे हुए से
+ मम	मेरा
+ अर्थः	प्रयोजन है कि
ऋग्वेदम्	ऋग्वेद के
प्रपद्ये	शरण होता हूं मैं
यजुर्वेदम्	यजुर्वेद के
प्रपद्ये	शरण होता हूं मैं
सामवेदम्	सामवेद के
प्रपद्ये	शरण होता हूं मैं

भावार्थ ।

जो मैंने कहा कि मैं स्वर्गलोक की शरण हूं, उससे मेरा प्रयोजन यह है कि मैं ऋग्वेद की शरण हूं, यजुर्वेद की शरण हूं, सामवेद की शरण हूं ॥ ७ ॥

इति पञ्चदशः खण्डः ।

अथ तृतीयाध्यायस्य षोडशः खण्डः ।

मूलम् ।

पुरुषो वाव यज्ञस्तस्य यानि चतुर्विंᳫशतिवर्षाणि तत्प्रातःसवनं चतुर्विंᳫशत्यक्षरा गायत्री गायत्रं प्रातः-सवनं तदस्य वसवोऽन्वायत्ताः प्राणा वाव वसव एते हीदᳫं सर्वं वासयन्ति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

पुरुषः, वाव, यज्ञः, तस्य, यानि, चतुर्विंशतिवर्षाणि, तत्, प्रातःसवनम्, चतुर्विंशत्यक्षरा, गायत्री, गायत्रम्, प्रातःसवनम्, तत्, अस्य, वसवः, अन्वायत्ताः, प्राणाः, वाव, वसवः, एते, हि, इदम्, सर्वम्, वासयन्ति ॥

अन्वयः	पदार्थ
पुरुषः	पुरुष
वाव	निश्चय करके
यज्ञः	यज्ञरूप है
तस्य	उस यज्ञ पुरुष के
यानि	जो
चतुर्विंशति वर्षाणि	आयु के पहिले चौबीस वर्ष हैं
तत्	वह
प्रातःसवनम्	प्रातःसवन हैं
चतुर्विंशत्यक्षरा	चौबीस अक्षरवाला
गायत्री	गायत्रीछन्द
प्रातःसवनम्	प्रातःसवन है
गायत्रम्	क्योंकि प्रातःसवन के मंत्र गायत्री छंदवाले होते हैं

अन्वयः	पदार्थ
अस्य	इसी यज्ञपुरुष के
तत्	उस प्रातःसवन में
वसवः	वसुदेवता
अन्वायत्ताः	स्थित हैं
एते	वे
वसवः	वसु
वाव	निश्चय करके
प्राणाः	प्राण हैं
+ ते	वे प्राण
इदम्	इस
सर्वम्	संपूर्ण जगत् को
वासयन्ति	अपने बिषे स्थित रखते हैं

भावार्थ ।

अब मंत्र उपासक की आयु बढ़ाने का यत्न बताता है, क्योंकि यदि वह जीवित न रहा तो पुत्र से कुछ लाभ नहीं है, पुरुष ही यज्ञ है, और उसकी आयु चौबीस वर्षतक की यज्ञपुरुष का प्रातःसवन है, जिसका सम्बन्ध चौबीस अक्षरवाले गायत्रीछन्द से है, क्योंकि प्रातः-सवन कर्म में गायत्रीछन्दवाले मंत्र पढ़े जाते हैं, (यह गायत्रीछन्दवाले मंत्र ब्रह्मगायत्रीमंत्र से भिन्न हैं) प्रातःसवन कर्म में वसुदेवता रहते हैं और वे वसु प्राणरूप हैं, उस प्राण में संपूर्ण जगत् स्थित है, चौबीस अक्षरवाला गायत्रीछन्द और पुरुष की चौबीस वर्ष की आयु में एकता है और यही कारण है कि पुरुष चौबीस वर्ष की आयु तक प्रातः-सवन करता है और यज्ञरूप होजाता है । प्रातःसवन की अधिष्ठात्री देवता वसु हैं और वसु ही प्राण हैं, जिसके आश्रय सब जीव जीते हैं ॥ १॥

मूलम् ।

तं चेदेतस्मिन्वयसि किञ्चिदुपतपेत्स ब्रूयात्प्राणा वसव इदं मे प्रातःसवनं माध्यंदिनꣳ सवनमनुसंतनुतेति माहं प्राणानां वसूनां मध्ये यज्ञो विलोप्सीयेत्युद्धैव तत एत्यगदो ह भवति ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

तम्, चेत्, एतस्मिन्, वयसि, किञ्चित्, उपतपेत्, सः, ब्रूयात्, प्राणाः, वसवः, इदम्, मे, प्रातःसवनम्, माध्यंदिनम्, सवनम्, अनु-संतनुत, इति, मा, अहम्, प्राणानाम्, वसूनाम्, मध्ये, यज्ञः, विलो-प्सीय, इति, उत्, ह, एव, ततः, एति, अगदः, ह, भवति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
एतस्मिन्	**=इस**	**चेत्**	**=यदि**
वयसि	**=चौबीस वर्ष की अवस्था में**	**तम्**	**=उस यज्ञकर्त्ता को**
		किञ्चित्	**=रोगादिक**

उपतपेत्=दुःख देवे तो
स:=वह यज्ञकर्त्ता
ब्रूयात्=कहे कि
+ हे=हे
प्राणाः=प्राण
वसवः=हे वसु
मे=मेरे
इदम्=इस
प्रातःसवनम्=प्रातर्यज्ञ की आयु को
माध्यंदिनम सवनम=मध्याह्न यज्ञ की आयु तक
अनुसंतनुत=विस्तृत करो
इति=ताकि
प्राणानाम=प्राणरूपी
वसूनाम्=वसुदेवताओं के
मध्ये=सामने
अहम्=मैं
यज्ञः=यज्ञरूप
विलोप्सीय मा=नष्ट न होऊं
इति=इस प्रकार प्रार्थना करने से
स:=वह
ततः=उस रोगादिक से
उत्=रहित
एति=होजाता है
+ च=और
अगदः=नीरोग
ह+एव=अवश्य
भवति=होजाता है

भावार्थ ।

इस चौबीस वर्ष की अवस्था में यदि यज्ञकर्त्ता को कोई रोगादिक उत्पन्न होवे तो वह कहे कि हे प्राण ! हे वसु ! मेरे इस प्रातःकाल की यज्ञसम्बन्धी आयु को मध्याह्नकाल के यज्ञ की आयु तक जो चवालीस वर्ष तक रहती है, बढ़ा दो ताकि यज्ञरूप मैं प्राणरूपी वसुदेवताओं के सम्मुख नष्ट न होऊं। इस प्रकार प्रार्थना करने से वह यज्ञकर्त्ता रोगरहित होजाता है, अर्थात उसकी तन्दुरुस्ती बनी रहती है ॥ २ ॥

मूलम् ।

अथ यानि चतुश्चत्वारिंशद्वर्षाणि तन्माध्यंदिनं सवनं चतुश्चत्वारिंशदक्षरा त्रिष्टुप्त्रैष्टुभं माध्यंदिनं सवनं तदस्य रुद्रा अन्वायत्ताः प्राणा वाव रुद्रा एते हीदं सर्वं रोदयन्ति ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यानि, चतुश्चत्वारिंशत्वर्षाणि, तत्, माध्यंदिनम्, सवनम्, चतुश्चत्वारिंशदक्षरा, त्रिष्टुप्, त्रैष्टुभम्, माध्यंदिनम्, सवनम्, तत्, अस्य, रुद्राः, अन्वायत्ताः, प्राणाः, वाव, रुद्राः, एते, हि, इदम्, सर्वम्, रोदयन्ति ॥

अन्वयः	पदार्थ
अथ	अब
यानि	जो
चतुश्चत्वारिंशत् वर्षाणि	उस पुरुष की आयु के चवालीस वर्ष अर्थात् पच्चीस से अड़सठ तक हैं
तत्	वह
माध्यंदिनम्	मध्याह्नकाल का
सवनम्	यज्ञ है
चतुश्चत्वारिंशदक्षरा	चवालीस हैं अक्षर जिसमें ऐसा
त्रिष्टुप्	त्रिष्टुप्छन्द
माध्यंदिनम्	मध्याह्न सम्बन्धी
त्रैष्टुभम्	त्रिष्टुप्छन्द के मंत्रवाला
सवनम्	यज्ञ है
रुद्राः	रुद्रदेवता
अस्य	इसी यज्ञपुरुष के
तत्	उस माध्यंदिन सवन में
अन्वायत्ताः	प्रविष्ट हैं अर्थात् उसमें वास करते हैं
प्राणाः	प्राण
वाव	ही
रुद्राः	रुद्र हैं
हि	क्योंकि
एते	ये रुद्र
इदम्	इस
सर्वम्	सब जगत् को
रोदयन्ति	रुलाते हैं

भावार्थ ।

यज्ञकर्त्ता के मध्याह्नकालिक यज्ञ की आयु पच्चीस वर्ष से चवालीस वर्ष तक है, इस आयु की एकता चवालीस अक्षरवाले त्रिष्टुप्छन्द के मंत्रों से है जिस करके मध्याह्नकाल का यज्ञ किया जाता है, इस माध्याह्निक यज्ञ बिषे रुद्रदेवता रहते हैं और वे प्राणरूप हैं, क्योंकि वे

रुद्रदेवता इस संपूर्ण आधेयरूप जगत् का आधार हैं, और वही सब जीवों के दुःख के कारण हैं ॥ ३ ॥

मूलम् ।

तं चेदेतस्मिन्वयसि किञ्चिदुपतपेत्स ब्रूयात्प्राणा रुद्रा इदं मे माध्यंदिनꣳसवनं तृतीयसवनमनुसंतनुतेति माहं प्राणानाꣳ रुद्राणां मध्ये यज्ञो विलोप्सीयेत्युद्धैव तत एत्यगदो ह भवति ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

तम्, चेत, एतस्मिन्, वयसि, किञ्चित्, उपतपेत, सः, ब्रूयात्, प्राणाः, रुद्राः, इदम् मे, माध्यंदिनम्, सवनम्, तृतीयसवनम्, अनु-संतनुत, इति, मा, अहम्, प्राणानाम्, रुद्राणाम्, मध्ये, यज्ञः, विलोप्सीय, इति, उत्, ह, एव, ततः, एति, अगदः, ह, भवति ॥

अन्वयः	पदार्थ
एतस्मिन्	इस
वयसि	चवालीस वर्ष में
चेत्	जो
तम्	उस यज्ञकर्त्ता को
किञ्चित्	रोगादिक
उपतपेत्	सतावें तो
+ सः	वह यज्ञकर्त्ता
ब्रूयात्	कहे कि
+ हे	हे
प्राणाः	प्राण
+ हं	हे
रुद्राः	रुद्र देवताओ !
मे	मेरे
इदम्	इस
माध्यंदिनम्	मध्याह्न के
सवनम्	यज्ञ को
तृतीय-सवनम्	सायंकाल के यज्ञ तक
अनुसंतनुत	विस्तृत करो
इति	ताकि
प्राणानाम्	प्राणरूप
रुद्राणाम्	रुद्र देवताओं के
मध्ये	समक्ष
यज्ञः	यज्ञरूप
अहम्	मैं
न	न

विलोप्सीय=नष्ट होऊं	उदेति=निवृत्त होजाता है
इति=इस प्रकार प्रार्थना करने से	ह=और
+ सः=वह	अगदः=नीरोग
ततः=उस रोगादिक से	हैव=अवश्य
	भवति=होता है

भावार्थ ।

यदि यज्ञकर्त्ता इस चवालीस वर्ष की आयु में रोगग्रस्त होजावे तो कहे कि हे प्राणदेवताओ ! हे रुद्रदेवताओ ! मेरे इस मध्याह्नकाल के यज्ञ को सायंकाल के यज्ञ तक बढ़ाओ, अर्थात् मध्याह्नकाल के यज्ञ की जो आयु चवालीस वर्ष की है वह सायंकाल के यज्ञ की आयु तक जो ११६ वर्ष तक की है विस्तृत करो, ताकि यज्ञरूप मैं प्राणरूप रुद्रदेवताओं के समक्ष नष्ट न होऊं, जब वह यज्ञकर्त्ता इस प्रकार प्रार्थना करता है, तब वह रोगादिकों से निवृत्त होजाता है ॥ ४ ॥

मूलम् ।

अथ यान्यष्टाचत्वारिंशद्वर्षाणि तत्तृतीयसवनमष्टाचत्वारिंशदक्षरा जगती जागतं तृतीयसवनं तदस्यादित्या अन्वायत्ताः प्राणा वावाऽऽदित्या एते हीदꣳ सर्वमाददते ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यानि, अष्टाचत्वारिंशत्, वर्षाणि, तत्, तृतीयसवनम्, अष्टाचत्वारिंशदक्षरा, जगती, जागतम्, तृतीयसवनम्, तत्, अस्य, आदित्याः, अन्वायत्ताः, प्राणाः, वाव, आदित्याः, एते, हि, इदम्, सर्वम्, आददते ॥

अन्वयः	पदार्थ
अथ	अब
यानि	जो
अष्टाचत्वारिंशत्	यज्ञ पुरुष के आयु के अड़तालीस
वर्षाणि	वर्ष हैं
तत्	वह
तृतीयसवनम्	सायंकालिक यज्ञ है
अष्टाचत्वारिंशदक्षरा	अड़तालीस हैं अक्षर जिसमें ऐसा
जगती	जगतीछन्द
जागतम् तृतीयसवनम्	जिसमें जगती छन्दवाले मंत्र हैं वह तृतीय सवन है अर्थात् उस तृतीय सवन में जगती छन्दवाले मंत्र पढ़े जाते हैं

अन्वयः	पदार्थ
अस्य	इस यज्ञ पुरुष के
तत्	उस तृतीय सवन में
आदित्याः	आदित्य देवता
अन्वायत्ताः	वास करते हैं
+ च	और
+ ते	वे
प्राणाः	प्राण
वाव	अवश्य
आदित्याः	आदित्य हैं
हि	क्योंकि
एते	प्राणरूपी यह आदित्य
इदम्	इस
सर्वम्	सब विषयों को
आददते	ग्रहण करते हैं

भावार्थ ।

जो यज्ञकर्त्ता पुरुष की आयु के अड़तालीस वर्ष हैं, वह सायंकाल का यज्ञ है, अर्थात् अड़तालीस वर्ष तक वह सायंकाल का यज्ञ है, उसको बराबर करता रहता है, इसकी एकता जगतीछन्द से है, क्योंकि जगतीछन्द में भी अड़तालीस अक्षर हैं, और सायंकालिक तृतीयसवन में जगतीछन्द के मंत्र पढ़े जाते हैं, यज्ञकर्त्ता पुरुष के तृतीय सवन में आदित्यदेवता वास करते हैं और वे आदित्य प्राण हैं क्योंकि प्राणरूपी आदित्य बिषे सब जगत् स्थित रहता है ॥ ५ ॥

मूलम् ।

तं चेदेतस्मिन्वयसि किञ्चिदुपतपेत्स ब्रूयात्प्राणा

आदित्या इदं मे तृतीयसवनमायुरनुसन्तनुतेति माहं प्राणानामादित्यानां मध्ये यज्ञो विलोप्सीयेत्युद्धैव तत एत्यगदो ह भवति ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ।

तम्, चेत्, एतस्मिन्, वयसि, किञ्चित्, उपतपेत्, सः, ब्रूयात्, प्राणाः, आदित्याः, इदम्, मे, तृतीयसवनम्, आयुः, अनुसन्तनुत, इति, मा, अहम्, प्राणानाम्, आदित्यानाम्, मध्ये, यज्ञः, विलोप्सीय, इति, उत्, ह, एव, ततः, एति, अगदः, ह, एव, भवति ॥

अन्वयः पदार्थ

एतस्मिन्=इस
वयसि=अड़तालीस वर्ष में
चेत्=अगर
तम्=उस यज्ञकर्ता को
किञ्चित्=कुछ रोगादिक
उपतपेत्=दुःख देवे तो
सः=वह यज्ञकर्त्ता
ब्रूयात्=कहे कि
+ **हे**=हे
प्राणाः=प्राण
+**हे**=हे
आदित्याः=आदित्य देवताओ !
मे=मेरे
इदम्=इस
तृतीयसवनम् आयुः=तृतीयसवन सम्बन्धी आयु को
अनुसन्तनुत=विस्तृत करो अर्थात् पूर्ण आयु देवो

अन्वयः पदार्थ

इति=ताकि
प्राणानाम्=प्राणरूप
आदित्यानाम्=आदित्यों के
मध्ये=समक्ष
यज्ञः=यज्ञरूप
अहम्=मैं
मा=न
विलोप्सीय=नष्ट होऊं
इति=इस प्रार्थना से
सः=वह
ततः=उस रोगादिक से
उदेति=ऊपर हो जाता है अर्थात् रहित हो जाता है
+ **च**=और
अगदः=नीरोग
हैव=अवश्य
भवति=होजाता है

भावार्थ ।

इस अड़तालीस वर्ष में यदि यज्ञकर्ता को रोगादिक दुःख देवें, तो कहे कि हे प्राणो ! हे आदित्य देवताओ ! मेरे इस तृतीय सवनसम्बन्धी आयु को तुम बढ़ा दो अर्थात् पूर्ण कर दो, ताकि मैं यज्ञकर्त्ता तुम्हारे सामने न नष्ट होऊं जब वह इस प्रकार प्रार्थना करता है, तब वह रोगादिक से अवश्य नीरोग होजाता है ॥ ६ ॥

मूलम् ।

एतद्ध स्म वै तद्विद्वानाह महिदास ऐतरेयः स किं म एतदुपतपसि योऽहमनेन न प्रेष्यामीति सह षोडशं वर्षशतमजीवत्प्र ह षोडशं वर्षशतं जीवति य एवं वेद ॥७॥

इति षोडशः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

एतत्, ह, स्म, वै, तत्, विद्वान्, आह, महिदासः, ऐतरेयः, सः, किम्, मे, एतत, उपतपसि, यः, अहम्, अनेन, न, प्रेष्यामि, इति, सः, षोडशम्, वर्षशतम्, अजीवत्, प्र, ह, षोडशम्, वर्षशतम्, जीवति, यः, एवम्, वेद ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
ऐतरेयः	इतरा ऋषिपत्नी का पुत्र	किम्	क्यों
विद्वान्	विद्वान्	मे	मेरे
महिदासः	महिदास	एतत्	इस
ह वै	निश्चय करके	उपतपनम्	शरीर को
तत्	उस	उपतपसि	दुःख देता है तू
एतत्	इस यज्ञशास्त्र को	अहम्	मैं
आहस्म	कहता भया	अनेन	इस रोगादिक करके
+ हे रोग	हे रोग !	न	नहीं
		प्रेष्यामि	मरूंगा

इति=इस प्रकार
सः=वह यज्ञकर्त्ता
षोडशम्=सोलह हैं अधिक जिसमें ऐसे
वर्षशतम्=सौ वर्ष तक
ह=निश्चय करके
अजीवत्=जीता भया
+ अन्योऽपि=और अन्य उपासक भी
षोडशम्=सोलह हैं अधिक जिसमें ऐसे
वर्षशतम्=सौ वर्ष तक
प्रजीवति=जीता है
यः=जो
एवम्=उक्त प्रकार से
वेद=जानता है

भावार्थ ।

यज्ञकर्त्ता कहता है कि हे रोग ! तू मेरे इस शरीर को क्यों दुःख देता है, मैं तुझ करके नहीं मरूंगा, मैं एकसौ सोलह वर्ष तक अवश्य जीऊंगा, और वह एकसौ सोलह वर्ष तक जीता भया, और अन्य उपासक भी जो कहे हुए प्रकार जानता है, वह भी एकसौ सोलह वर्ष तक जीता है, इस प्रकार के यज्ञशास्त्रविधान को ऋषि-पत्नी इतरा के पुत्र महिदास ने कहा है ॥ ७ ॥

इति षोडशः खण्डः ।

अथ तृतीयाध्यायस्य सप्तदशः खण्डः ।

मूलम् ।

स यदशिशिषति यत्पिपासति यन्न रमते ता अस्य दीक्षाः ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

सः, यत्, अशिशिषति, यत्, पिपासति, यत्, न, रमते, ताः, अस्य, दीक्षाः ॥

अन्वयः पदार्थ | अन्वयः पदार्थ

यत्=जो
सः=वह यज्ञपुरुष
अशिशिषति=भोजन की इच्छा करता है

यत्=जो	न रमते=उस प्रिय वस्तु में आसक्त नहीं रहता है
+ सः=वह पुरुष	+ तस्मात्=इसलिये
पिपासति=पानी की इच्छा करता है	ताः=ये सब
यत्=पर	अस्य=इस यज्ञकर्त्ता के
सः=वह	दीक्षाः=व्रत हैं

भावार्थ ।

यज्ञ के प्रारम्भ में यज्ञकर्त्ता या उपासक न इच्छानुसार भोजन करता है, न पानी पीता है और इसी कारण ये उसकी दीक्षाएँ हैं यह अवस्था यज्ञकर्त्ता का प्रथम यज्ञव्रत है, अर्थात् वह इस यज्ञव्रत को करता है, पीछे यज्ञ का अनुष्ठान करता है ॥ १ ॥

मूलम् ।

अथ यदश्नाति यत्पिबति यद्रमते तदुपसदैरेति ॥२॥

पदच्छेदः ।

अथ, यत्, अश्नाति, यत्, पिबति, यत्, रमते, तत्, उपसदैः, एति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ=और		रमते=रमण करता है	
यत्=जो		तत्=वह	
+ सः=वह		उपसदैः=यज्ञकर्त्ताको पयोव्रतवालेऋत्विजों के समान	
अश्नाति=खाता है		एति=बना देता है	
यत्=जो			
पिबति=पीता है			
यत्=जो			

भावार्थ ।

जब यज्ञकर्त्ता या उपासक अल्प खाता है, अल्प पीता है, अल्प भोग करता है, तब वह मानो उपसदव्रत को करता है, उपसद वह

व्रत है जिसमें ऋत्विज् आदिक केवल दुग्धपान करके आनन्द से रहते हैं इसलिये यज्ञकर्त्ता में और उपसदव्रत करनेवालों में समानता है अर्थात् जैसे उपसदव्रत करनेवाले अल्पाहार करके तृप्त और आनन्द से रहते हैं वैसे ही यज्ञकर्त्ता या उपासक भी अल्पाहार करके आनन्द से रहता है यह उपासक का द्वितीय स्वात्मसम्बन्धि-व्रत है ॥ २ ॥

मूलम् ।

अथ यद्धसति यज्जक्षति यन्मैथुनं चरति स्तुतशस्त्रैरेव तदेति ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यत्, हसति, यत्, जक्षति, यत्, मैथुनम्, चरति, स्तुत-शस्त्रैः, एव, तत्, एति ॥

अन्वयः	पदार्थ
अथ	और
यत्	जब
हसति	हँसता है
यत्	जब
जक्षति	भोजन करता है
यत्	जब
मैथुनम्	मैथुन
चरति	करता है
तत्	तब
स्तुतशस्त्रैः	स्तुतशस्त्र की समानता को
एव	अवश्य
एति	प्राप्त होता है

भावार्थ ।

और जब यज्ञकर्त्ता या उपासक हास्य करता है, दूसरे के साथ या दूसरे को खिलाता है और उसके संग में आनन्द करता है, तब वह मानो स्तुतशस्त्रों के तुल्य हो जाता है, क्योंकि इन दोनों में शब्द करके समानता है, अर्थात् जैसे खाने, पीने और हास्य और भोग करते समय शब्द होता है, वैसे ही शस्त्रग्रंथ के पाठ के समय में

जो सामवेद का एक हिस्सा है, शब्द होता है, यह तीसरा व्रत दूसरे के आत्मा के सुख देने के निमित्त है ॥ ३ ॥

मूलम् ।

अथ यत्तपो दानमार्जवमहिंसा सत्यवचनमिति ता अस्य दक्षिणाः ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यत्, तपः, दानम्, आर्जवम्, अहिंसा, सत्यवचनम्, इति, ताः, अस्य, दक्षिणाः ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ=और		इति=इस प्रकार जो कहे गये हैं	
यत्=जो		ताः=वे	
तपः=तप है		अस्य=इस यज्ञकर्ता पुरुष की	
दानम्=दान है		दक्षिणाः=दक्षिणा हैं	
आर्जवम्=आर्जव है			
अहिंसा=अहिंसा है			
सत्यवचनम्=सत्य बोलना है			

भावार्थ ।

यज्ञकर्त्ता का चौथा व्रत तप करना, कोमल होना, दान देना, सत्य बोलना है और हिंसा न करना ऊपर के तीनों व्रतों से श्रेष्ठ है ॥ ४ ॥

मूलम् ।

तस्मादाहुः सोष्यत्यसोष्टेति पुनरुत्पादनमेवास्य तन्मरणमेवास्यावभृथः ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ।

तस्मात्, आहुः, सोष्यति, असोष्ट, इति, पुनः, उत्पादनम्, एव, अस्य, तन्मरणम्, एव, अस्य, अवभृथः ॥

अन्वयः	पदार्थ
+ मातरि गर्भव्रत्याम्	= माता गर्भवती होने पर
आहुः	=लोग कहते हैं
सोष्यति	=यह पुत्र उत्पन्न करेगी
इति	=ऐसा देखकर
+ पुत्रोत्पत्ति-पश्चात्	= पुत्र उत्पत्ति के पीछे
आहुः	=कहते हैं कि
असोष्ट	=हाँ उत्पन्न किया है
तस्मात्	=इसलिये
अस्य	=इस यज्ञकर्त्ता पुरुष का
उत्पादनम्	=उत्पन्न करना
+ च	=और
+ पुनः	=फिर
तन्मरणम्	=उस पुत्र का मरना
एव	=निश्चय करके
अवभृथः	=अवभृथ कर्म के समान है

भावार्थ ।

सोष्यति और सवन ये दोनों शब्द पूङ्धातु से निकले हैं, जिसके अर्थ यज्ञ और लड़का उत्पन्न करने के हैं, इसलिये जब लड़का उत्पन्न होता है तब वह यज्ञरूप है, क्योंकि दोनों में पूङ्धातु करके समानता है । जब माता गर्भवती होती है तब लोग कहते हैं कि "सोष्यति" यह स्त्री लड़का उत्पन्न करेगी और जब लड़का उत्पन्न होता है तब लोग कहते हैं कि इसने लड़का उत्पन्न किया । सोष्यति और असोष्ट इन दोनों शब्दों का धातुपूङ् है, इस कारण भी यज्ञ और यज्ञकर्त्ता में एकता है, क्योंकि जैसे यज्ञ में सोमलता के रस की आहुति दीजाती है, वैसेही पति स्वभार्या में सोमलतारूपी वीर्य की आहुति देता है, यज्ञसमाप्ति होने पर अवभृथ स्नान किया जाता है, उसी तरह यज्ञकर्त्ता के मरने पर उसके मृतक शरीर का स्नान कराया जाता है, इस कारण भी दोनों में समानता है ॥ ५ ॥

मूलम् ।

तद्धैतद् घोर आङ्गिरसः कृष्णाय देवकीपुत्रायोक्त्वो-

वाचापिपास एव स बभूव सोऽन्तवेलायामेतत्त्रयं प्रतिपद्येताक्षितमस्यच्युतमसि प्राणसंशितमसीति तत्रैते द्वे ऋचौ भवतः ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ।

तत्, ह, एतत्, घोरः, आङ्गिरसः, कृष्णाय, देवकीपुत्राय, उक्त्वा, उवाच, अपिपासः, एव, सः, बभूव, सः, अन्तवेलायाम्, एतत्, त्रयम्, प्रतिपद्येत, अक्षितम्, असि, अच्युतम्, असि, प्राणसंशितम्, असि, इति, तत्र, एते, द्वे, ऋचौ, भवतः ।

अन्वयः	पदार्थ
आङ्गिरसः	अङ्गिरा का पुत्र
घोरः	घोर ऋषि
देवकीपुत्राय	देवकी के पुत्र
कृष्णाय	कृष्ण से
तत्	पूर्वोक्त प्रकार
एतत्	इस यज्ञशास्त्र को
उक्त्वा	कह कर
एतत्	इन
त्रयम्	तीन अगले मन्त्रों को
उवाच	कहता भया कि
सः	वह यज्ञपुरुष
अन्तवेलायाम्	मरण समय में
+ एतत्	इन
+ त्रयम्	तीन मन्त्रों को
प्रतिपद्येत	जपे अर्थात् स्मरण करे
अक्षितम् असि	तू नाश रहित है
अच्युतम् असि	तू एकरस है
प्राणसंशितम्	तू मुख्यप्राण
असि	है
तत्र	उस विषय में
एते	ये
द्वे	दो
ऋचौ	ऋचा
भवतः	प्रमाण हैं
+ तदा	तब
सः	वह कृष्ण
+ एतत्	इसको
+ श्रुत्वा	सुनकर
अपिपासः	अन्य विद्याओं से तृष्णा रहित
एव	अवश्य
बभूव	होता भया

भावार्थ ।

देवकीपुत्र कृष्ण से अङ्गिरा के पुत्र घोरऋषि ने यज्ञशास्त्र के विधान

को पूर्वोक्त प्रकार से बयान किया और यह भी कहा कि यज्ञकर्त्ता मरते समय इन तीन मन्त्रों को अर्थात् **अक्षितमसि, अच्युतमसि प्राणसंशितमसि** स्मरण करे यह विचारता हुआ कि हे जीवात्मा ! तू नाशरहित है, एकरस है और मुख्य प्राण अर्थात् ब्रह्मरूप है । इस विषय में आगेवाले दो मन्त्र प्रमाण हैं, तब कृष्ण ऐसा सुनकर अन्य विद्याओं से तृष्णारहित होता भया ॥ ६ ॥

मूलम् ।

आदित्प्रत्नस्य रेतसः उद्वयन्तमसस्परिज्योतिः पश्यन्त उत्तरꣳस्वः पश्यन्त उत्तरं देवं देवत्रासूर्यमगन्मज्योतिरुत्तममिति ज्योतिरुत्तममिति ॥ ७ ॥

इति सप्तदशः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

आत्, इत्, प्रत्नस्य, रेतसः, उत्, वयम्, तमसः, परि, ज्योतिः, पश्यन्तः, उत्तरम्, स्वः, पश्यन्तः, उत्तरम्, देवम्, देवत्रा, सूर्यम्, अगन्म, ज्योतिः, उत्तमम्, इति, ज्योतिः, उत्तमम्, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
+ ब्रह्मविदः	ब्रह्मवेत्ता
प्रत्नस्य	आदि
रेतसः	जगत् के कारण को
आत्	चारों तरफ़
+ पश्यन्ति	देखते हैं
तमसः	अन्धकार से
परि	पृथक्
उत्तरम्	सूर्यस्थ
ज्योतिः	ज्योतिस्स्वरूप को
वयम्	हम ब्रह्मवेत्ता
पश्यन्तः	देखनेवाले

अन्वयः	पदार्थ
उद्गन्म	उर्ध्व गति को प्राप्त हुए हैं
तत्	वही ज्योति
स्वः	अपने हृदय में है अर्थात् ये दोनों ज्योति एक ही हैं
तत्	उसी
देवम्	प्रकाशमान
उत्तरम्	अत्यन्त ऊपर
देवत्रा	संपूर्ण देवों से

उत्तमम्=श्रेष्ठतर	+ वयम्=हम ब्रह्मवेत्ता
ज्योतिः=ज्योतीरूप	पश्यन्तः=देखनेवाले
सूर्यम्=सूर्य को	उद्गन्म=प्राप्त हुए हैं

भावार्थ ।

ज्योति तीन प्रकार की है, और उसके रहने के स्थान भी तीन हैं, एक ज्योति जो यज्ञकर्त्ता के हृदय बिषे है, दूसरी ज्योति सूर्य बिषे है और तीसरी ज्योति ब्रह्मरूप है । जो ज्योति हृदय बिषे है वही सूर्य बिषे है, और जो सूर्य बिषे है, वही ब्रह्म बिषे है, इसलिये तीनों ज्योति में समानता है और ऐसा ध्यान यज्ञकर्त्ता करे ॥ ७ ॥

इति सप्तदशः खण्डः ।

अथ तृतीयाध्यायस्याष्टादशः खण्डः ।

मूलम् ।

मनो ब्रह्मेत्युपासीतेत्यध्यात्ममथाधिदैवतमाकाशो ब्रह्मेत्युभयमादिष्टं भवत्यध्यात्मं चाधिदैवतं च ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

मनः, ब्रह्म, इति, उपासीत, इति, अध्यात्मम्, अथ, अधिदैवतम्, आकाशः, ब्रह्म, इति, उभयम्, आदिष्टम्, भवति, अध्यात्मम्, च, अधिदैवतम्, च ॥

अन्वयः — पदार्थ	अन्वयः — पदार्थ
मनः=मन	अथ=और
ब्रह्म=ब्रह्म है	आकाशः=आकाश
इति=इस प्रकार	ब्रह्म=ब्रह्म है
उपासीत=उपासना करे	इति=ऐसी उपासना
इति=ऐसा	अधिदैवतम्=देवताविषयक है
अध्यात्मम्=आध्यात्मिक उपासना है	+ एवम्=इस प्रकार
	उभयम्=दोनों अर्थात्

अध्यात्मम्=आध्यात्मिकउपासना	च=भी
च=और	आदिष्टम् भवति=कथित होती है
अधिदैवतम्=देवता विषयक उपासना	अर्थात् कही गई है

भावार्थ ।

मन ब्रह्म है, इस प्रकार उपासना करे, यह उपासना आध्यात्मिक उपासना है जो शरीर से सम्बन्ध रखती है । आकाश ब्रह्म है, ऐसी उपासना करे, यह उपासना देवताविषयक है, अर्थात् इसका सम्बन्ध देवता से है ॥ १ ॥

मूलम् ।

तदेतच्चतुष्पाद्ब्रह्मवाक्पादः प्राणः पादश्चक्षुः पादः श्रोत्रं पाद इत्यध्यात्ममथाधिदैवतमग्निः पादो वायुः पाद आदित्यः पादो दिशः पाद इत्युभयमेवादिष्टं भवत्यध्यात्मं चैवाधिदैवतं च ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

तत्, एतत्, चतुष्पात्, ब्रह्म, वाक्, पादः, प्राणः, पादः, चक्षुः, पादः, श्रोत्रम्, पादः, इति, अध्यात्मम्, अथ, अधिदैवतम्, अग्निः, पादः, वायुः, पादः, आदित्यः, पादः, दिशः, पादः, इति, उभयम्, एव, आदिष्टम्, भवति, अध्यात्मम्, च, एव, अधिदैवतम्, च ॥

अन्वयः पदार्थ	अन्वयः पदार्थ
तत्=वही मनोरूप	चक्षुः=नेत्र
एतत्=यह	पादः=एक चरण है
ब्रह्म=ब्रह्म	श्रोत्रम्=कर्ण
चतुष्पात्=चार चरण का है	पादः=एक चरण है
वाक्=वाणी	इति=इस प्रकार यह
पादः=एक चरण है	अध्यात्मम्=आत्मविषयक उपासना है
प्राणः=प्राण	अथ=अब
पादः=एक चरण है	

अधिदैवतम्=देवता विषयक उपासना
उच्यते=कही जाती है
अग्निः=अग्नि
पादः=एक चरण है
वायुः=वायु
पादः=एक चरण है
आदित्यः=सूर्य
पादः=एक चरण है
दिशः=दिशा
पादः=एक चरण है
इति=इस प्रकार ये
उभयम्=दोनों
एव=निश्चय करके
अध्यात्मम्=आत्मविषयक उपासना
च=और
अधिदैवतम्=देवता सम्बन्धी उपासना
च=भी
आदिष्टम् भवति=कथित होती है अर्थात् कही गई

भावार्थ ।

मनरूपी ब्रह्म चार चरणवाला है। इसका एक चरण वाणी है, एक चरण प्राण है, एक चरण नेत्र है और एक चरण कर्ण है। इस प्रकार यह आत्मविषयक उपासना है। दूसरी उपासना देवताविषयक है, वह इस प्रकार है—अग्नि एक चरण है, वायु एक चरण है, सूर्य एक चरण है और दिशा एक चरण है। इस प्रकार ये दोनों आत्मविषयक और देवताविषयक उपासना कही गई हैं ॥ २ ॥

मूलम् ।

वागेव ब्रह्मणश्चतुर्थः पादः सोऽग्निना ज्योतिषा भाति च तपति च भाति च तपति च कीर्त्या यशसा ब्रह्मवर्चसेन य एवं वेद ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

वाक्, एव, ब्रह्मणः, चतुर्थः, पादः, सः, अग्निना, ज्योतिषा, भाति, च, तपति, च, भाति, च, तपति, च, कीर्त्या, यशसा, ब्रह्मवर्चसेन, यः, एवम्, वेद ॥

अन्वयः	पदार्थ
वाक्	वाणी
एव	अवश्य
ब्रह्मणः	मनोरूपी ब्रह्म का
चतुर्थः	चौथा
पादः	पाद है
सः	वह वाणीरूप पाद
अग्निना ज्योतिषा	अग्नि से उत्पन्न हुए प्रकाश करके
भाति	भासता है
च	और
तपति	उसमें तेज घृतादिक के खाने से आता है
यः	जो उपासक
एवम्	कहे हुए प्रकार
वेद	जानता है
+ सः	वह
कीर्त्या	प्रत्यक्ष कीर्त्ति करके
च	और
यशसा	परोक्ष कीर्त्ति करके
च	और
ब्रह्मवर्चसेन	ब्रह्मतेज करके
भाति	शोभित
च	और
तपति	प्रकाशित होता है

भावार्थ ।

मनरूपी ब्रह्म का चौथा पाद वाणी है । यह वाणी अग्नि के प्रकाश करके प्रकाशमान होती है और घृतादिक के खाने से उसमें तेजी आती है । जो उपासक कहे हुए प्रकार उपासना करता है वह परोक्ष और अपरोक्ष कीर्त्ति को प्राप्त होता है और ब्रह्मतेज करके शोभित और प्रकाशित होता है ॥ ३ ॥

मूलम् ।

प्राण एव ब्रह्मणश्चतुर्थः पादः स वायुना ज्योतिषा भाति च तपति च भाति च तपति च कीर्त्या यशसा ब्रह्मवर्चसेन य एवं वेद ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

प्राणः, एव, ब्रह्मणः, चतुर्थः, पादः, सः, वायुना, ज्योतिषा, भाति, च, तपति, च, भाति, च, तपति, च, कीर्त्या, यशसा, ब्रह्म-वर्चसेन, यः, एवम्, वेद ॥

अन्वयः	पदार्थ
प्राणः	प्राण
एव	ही
ब्रह्मणः	ब्रह्म का
चतुर्थः	चौथा
पादः	पाद है
सः	वह पाद अर्थात् प्राण
वायुना	वायु के
ज्योतिषा	तेज करके
भाति	प्रकाशित है
च	और
तपति	गर्म रहता है
यः	जो उपासक
एवम्	कहे हुए प्रकार
वेद	जानता है
+ सः	वह
कीर्त्या	समक्ष कीर्त्ति करके
च	और
यशसा	परोक्ष कीर्त्ति करके
च	और
ब्रह्मवर्चसेन	ब्रह्मतेज करके
भाति	शोभित
च	और
तपति	प्रकाशित होता है

भावार्थ ।

प्राण मनरूपी ब्रह्म का चौथा पाद है । वह प्राण बाह्य वायु के तेज करके प्रकाशित है और गर्म रहता है । जो उपासक इस प्रकार जानता है वह समक्ष कीर्त्ति करके तथा परोक्ष कीर्त्ति करके और ब्रह्म तेज करके शोभित और प्रकाशित होता है ॥ ४ ॥

मूलम् ।

चक्षुरेव ब्रह्मणश्चतुर्थः पादः स आदित्येन ज्योतिषा भाति च तपति च भाति च तपति च कीर्त्या यशसा ब्रह्मवर्चसेन य एवं वेद ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ।

चक्षुः, एव, ब्रह्मणः, चतुर्थः, पादः, सः, आदित्येन, ज्योतिषा, भाति, च, तपति, च, भाति, च, तपति, च, कीर्त्या, यशसा, ब्रह्मवर्च-सेन, यः, एवम्, वेद ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
चक्षुः	=चक्षु	एवम्	=कहे हुए प्रकार
एव	=ही	वेद	=जानता है
ब्रह्मणः	=ब्रह्म का	+ सः	=वह
चतुर्थः	=चौथा	कीर्त्या	=समक्ष कीर्त्ति करके
पादः	=पाद है	च	=और
सः	=वह चक्षुरूपी पाद	यशसा	=परोक्ष कीर्त्ति करके
आदित्येन	=सूर्य से उत्पन्न हुए	च	=और
ज्योतिषा	=तेज करके	ब्रह्मवर्चसेन	=ब्रह्मतेज करके
भाति	=प्रकाशित है	भाति	=शोभित
च	=और	च	=और
तपति च	=गर्म रहता है	तपति	=प्रकाशित होता है
यः	=जो उपासक		

भावार्थ ।

मनरूपी ब्रह्म का चौथा पाद चक्षु है, वह चक्षु सूर्य से उत्पन्न हुये तेज करके प्रकाशता है और गर्म रहता है । जो उपासक इस प्रकार जानता है वह समक्ष कीर्त्ति करके तथा परोक्ष कीर्त्ति करके और ब्रह्म तेज करके शोभित और प्रकाशित होता है ॥ ५ ॥

मूलम् ।

श्रोत्रमेव ब्रह्मणश्चतुर्थः पादः स दिग्भिर्ज्योतिषा भाति च तपति च भाति च तपति च कीर्त्या यशसा ब्रह्मवर्चसेन य एवं वेद य एवं वेद ॥ ६ ॥

इत्यष्टादशः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

श्रोत्रम्, एव, ब्रह्मणः, चतुर्थः, पादः, सः, दिग्भिः, ज्योतिषा, भाति, च, तपति, च, भाति, च, तपति, च, कीर्त्या, यशसा, ब्रह्मवर्चसेन, यः, एवम्, वेद, यः, एवम्, वेद ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
श्रोत्रम्=श्रोत्र		यः=जो उपासक	
एव=ही		एवम्=कहे हुए प्रकार	
ब्रह्मणः=ब्रह्म का		वेद=जानता है	
चतुर्थः=चौथा		सः=वह	
पादः=पाद है		कीर्त्या=समस्त कीर्त्ति	
सः=वह श्रोत्ररूपी पाद		च=और	
दिग्भिः=दिशारूप		यशसा=परोक्ष कीर्त्ति करके	
ज्योतिषा=तेज करके		च=और	
भाति=प्रकाशित है		ब्रह्मवर्चसेन=ब्रह्म तेज करके	
च=और		भाति=शोभित	
तपति=गर्म रहता है		च=और	
		तपति=प्रकाशित होता है	

भावार्थ ।

मनरूपी ब्रह्म का चौथा पाद श्रोत्र है । यह श्रोत्र दिशा के प्रकाश से प्रकाशित है और गर्म रहता है । जो उपासक इस प्रकार जानता है वह समस्त कीर्त्ति करके तथा परोक्ष कीर्त्ति करके और ब्रह्म तेज करके युक्त होता है ॥ ६ ॥

इत्यष्टादशः खण्डः ।

अथ तृतीयाध्यायस्यैकोनविंशः खण्डः ।

मूलम् ।

आदित्यो ब्रह्मेत्यादेशस्तस्योपव्याख्यानमसदेवेदमग्र आसीत् । तत्सदासीत्तत्समभवत्तदाण्डं निरवर्त्तत तत्संवत्सरस्य मात्रामशयत तन्निरभिद्यत ते आण्डकपाले रजतं च सुवर्णं चाभवताम् ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

आदित्यः, ब्रह्म, इति, आदेशः, तस्य, उपव्याख्यानम्, असत्, एव, इदम्, अग्रे, आसीत्, तत्, सत्, आसीत्, तत्, समभवत्, तत्, आण्डम्, निरवर्त्तत, तत् संवत्सरस्य, मात्राम्, अशयत, तत्, निरभिद्यत, ते, आण्डकपाले, रजतम्, च, सुवर्णम्, च, अभवताम् ॥

अन्वयः	पदार्थ
आदित्यः	सूर्य
ब्रह्म	ब्रह्म है
इति	इस प्रकार का
आदेशः	उपदेश है
तस्य	उसी उपदेश का
उपव्याख्यानम्	व्याख्यान
+ क्रियते	किया जाता है
इदम्	यह
असत्एव	नामरूपात्मक जगत् ही
अग्रे	अपनी उत्पत्ति से पहिले
आसीत्	ऐसा था ? अर्थात् ऐसा नहीं था
तत्	यह असत् जगत्
सत्	सत्तावाला
आसीत्	भया
+ ततः	फिर
तत्	वह
+ लब्धपरिमाणं	परिमाणवाला
समभवत्	होता भया
+ पुनः	फिर
तत्	स्थूल हुआ
+ पुनः	फिर
आण्डम्	अण्डाकार
निरवर्त्तत	होता भया
+ पुनः	फिर
तत्	वह अण्डा
संवत्सरस्य	एक वर्ष
मात्राम्	पर्यन्त
अशयत	जैसा का तैसा पड़ा रहा
तत्	एक साल के पीछे
निरभिद्यत	पक्षियों के अण्डा की तरह फूटता भया
ते	उस
आण्डकपाले	फूटे हुए अण्डे के दो भाग
रजतम्	एक चांदी
च	और
सुवर्णम् च	दूसरा सोना
अभवताम्	होते भये

भावार्थ ।

सूर्य ब्रह्म है, इस उपदेश का व्याख्यान करते हैं । यह नाम रूप-

वाला जगत् अपनी उत्पत्ति से पहिले ऐसा आकारवाला न था। यह पहिले निराकार था, फिर परिमाणवाला हुआ, फिर स्थूल हुआ। फिर अण्डाकार हुआ, फिर वह अण्डा एक वर्ष तक जैसा का तैसा पड़ा रहा, बाद एक वर्ष के फूट गया, उसके दो भाग होगये, एक चांदीरूप और दूसरा सोनारूप ॥ १ ॥

मूलम् ।

तद्यद्रजतं सेयं पृथिवी यत्सुवर्णꣳ सा द्यौर्यज्जरायु ते पर्वता यदुल्बꣳ समेघो नीहारो या धमनयस्ता नद्यो यद्वास्तेयमुदकꣳ स समुद्रः ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

तत्, यत्, रजतम्, सा, इयम्, पृथिवी, यत्, सुवर्णम्, सा, द्यौः, यत्, जरायु, ते, पर्वताः, यत्, उल्बम्, समेघः, नीहारः, याः, धमनयः, ताः, नद्यः, यत्, वास्तेयम्, उदकम्, सः, समुद्रः ॥

अन्वयः	पदार्थ
तत्	उन दोनों भागों में
यत्	जो
रजतम्	रजत भाग था
सा	वह
इयम्	यह
पृथिवी	पृथिवी है
+ च	और
यत्	जो
सुवर्णम्	सोने का भाग था
सा	वह
द्यौः	आकाश है
यत्	जो
जरायु	गर्भाशय है
ते	वे
पर्वताः	पर्वत हैं
यत्	जो
उल्बम्	गर्भ परिवेष्टन है
+ तत्	वह
समेघः	मेघों के साथ
नीहारः	कुहिरा है
याः	जो
धमनयः	नसें हैं
ताः	वह
नद्यः	नदियां हैं
यत्	जो

वास्तेयम्=नाभि के नीचे	सः=वही
उदकम्=जल है	समुद्रः=समुद्र है

भावार्थ ।

इन दोनों भागों में से जो चांदी का भाग है वह यह पृथ्वी है और जो सोने का भाग है वह यह आकाश है, जो अण्डे का गर्भाशय है वह पर्वत हैं, जो गर्भपरिवेष्टन है वह मेघों के साथ कुहिरा है, जो उसमें नसें हैं वह नदियां है, और जो नाभि के नीचे उदर में जल है वह समुद्र है ॥ २ ॥

मूलम् ।

अथ यत्तदजायत सोऽसावादित्यस्तं जायमानं घोषा उलूलवोऽनूदतिष्ठन्सर्वाणि च भूतानि सर्वे च कामास्तस्मात्तस्योदयं प्रति प्रत्यायनं प्रति घोषा उलूलवोऽनूदतिष्ठन्ति सर्वाणि च भूतानि सर्वे च कामाः ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यत्, तत्, अजायत, सः, असौ, आदित्यः, तम्, जायमानम्, घोषाः, उलूलवः, अनु, उदतिष्ठन्, सर्वाणि, च, भूतानि, सर्वे, च, कामाः, तस्मात्, तस्य, उदयम्, प्रति, प्रत्यायनम्, प्रति, घोषाः, उलूलवः, अनु, उदतिष्ठन्ति, सर्वाणि, च, भूतानि, सर्वे, च, कामाः ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ	अब	तम्	उस सूर्य के
यत्	जो	अनु	साथ
तत्	वह अण्डा से	उलूलवः	उत्साहवाले
अजायत	उत्पन्न भया	घोषाः	शब्द
सः	वह	उदतिष्ठन्	होते भये
असौ	यह प्रत्यक्ष	च	और
आदित्यः	सूर्य है	+ पुनः	फिर
जायमानम्	उत्पन्न हुए	सर्वाणि	सब

भूतानि=स्थावर जंगम जीव	प्रत्यानयनम्प्रति=अस्त होने पर
+ अजायन्त=उत्पन्न होते भये	उलूलवः=उत्सव के
च=और	घोषाः=शब्द
+ पुनः=फिर	+ अजायन्त=उत्पन्न होते भये
सर्वे=सब	च=और
कामाः=भोग्यपदार्थ	सर्वाणि=सब
+ अजायन्त=उत्पन्न होते भये	भूतानि=स्थावर जंगम भूत
तस्मात्=इसलिये	च=और
तस्य=उस सूर्य के	सर्वे=सब
उदयम्=उदय	कामाः=भोग्यपदार्थ
प्रति=होने पर	अनु=उसके पीछे पीछे
+ च=और	उद्तिष्ठन्ति=उत्पन्न होते भये

भावार्थ ।

उस अण्डे से सूर्य उत्पन्न हुआ, जब वह उत्पन्न भया तब उत्साह और आह्लाद के शब्द होते भये और तत् पश्चात् स्थावर, जंगम जीव और भोगसामग्री उत्पन्न भई यही कारण है कि जब सूर्योदय और सूर्यास्त होता है तो उत्साह और हर्ष के शब्द होने लगते हैं तथा सब जीव और भोग सामग्री उत्पन्न होती हैं ॥ ३ ॥

मूलम् ।

स य एतमेवं विद्वानादित्यं ब्रह्मेत्युपास्तेऽभ्याशो ह यदेनꣳ साधवो घोषा आ च गच्छेयुरुप च निम्रे डेरन्निम्रे डेरन् ॥ ४ ॥

इति तृतीयोऽध्यायः ।

पदच्छेदः ।

सः, यः, एतम्, एवम्, विद्वान्, आदित्यम्, ब्रह्म, इति, उपास्ते, अभ्याशः, ह, यत्, एनम्, साधवः, घोषाः, आ, च, गच्छेयुः, उप, च, निम्रे डेरन्, निम्रे डेरन् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यः	जो	अभ्याशः	शीघ्र
एवम्	पूर्वोक्त प्रकार	+ प्रतिपद्यते	सूर्यस्वरूप हो जाता है
विद्वान्	जानता	ह	और
+ सन्	हुआ	एनम्	उस उपासक को
एतम्	इस	साधवः	आनंद देनेवाले
आदित्यम्	सूर्य को	घोषाः	शब्द
ब्रह्मेति	ब्रह्मबुद्धि करके	आगच्छेयुः	प्राप्त होते हैं
उपास्ते	उपासना करता है तो	च	और
सः	वह	उपनिम्रेडेरन्	प्राप्त होते रहेंगे

भावार्थ ।

जो पूर्व कहे हुए प्रकार को जानता हुआ सूर्य की उपासना ब्रह्म-बुद्धि से करता है वह सूर्यरूप हो जाता है और आनन्द के शब्द उसको प्राप्त होते हैं और होते रहेंगे ॥ ४ ॥

इति तृतीयोऽध्यायः ।

अथ चतुर्थाध्यायस्य प्रथमः खण्डः ।

मूलम् ।

ॐ । जानश्रुतिर्ह पौत्रायणः श्रद्धादेयो बहुदायी बहुपाक्य आस स ह सर्वत आवसथान्मापयाञ्चक्रे सर्वत एव मेऽत्स्यन्तीति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

जानश्रुतिः, ह, पौत्रायणः, श्रद्धादेयः, बहुदायी, बहुपाक्यः, आस, सः, ह, सर्वतः, आवसथान्, मापयाञ्चक्रे, सर्वतः, एव, मे, अत्स्यन्ति, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
ह	पूर्वकाल में	सः	वह परपोता
जानश्रुतिः	जनश्रुत का	सर्वतः	सब दिशाओं में
पौत्रायणः	(एक) परपोता	आवसथान्	धर्मशालाओं को
आस	था	मापयाञ्चक्रे	बनवाता भया
+ सः	वह	इति	इस ध्यान से
श्रद्धादेयः	श्रद्धापूर्वक द्रव्य का देनेवाला	मे	मेरे
+ च	और	+ अन्नम्	अन्न को
बहुदायी	देने में बड़ाशूरवीरथा	सर्वतः	चारों ओर के
+ तस्य	उसके	+ वसंतः	रहनेवाले लोग
बहुपाक्यः	घर में भोजनार्थियों के वास्ते बहुत अन्न पकता था	एव	ही
		अत्स्यन्ति	खायँगे

भावार्थ ।

ब्रह्मपद को वर्णन करके अब एक आख्यायिका कहते हैं जिससे समझ में आजाय कि श्रद्धा और अन्नदान ब्रह्म की प्राप्ति के कारण हैं। पूर्वकाल में एक जनश्रुत राजा था उसका एक परपोता बड़ा दानी था। वह ब्राह्मणों को श्रद्धापूर्वक दान देता था, उसके घर में बहुत भोजन बनता था और वह दीन दुखियों को दिया जाता था। उसने संसार के चारों ओर गांवों और नगरों में बहुत सी धर्मशालायें बनवा दीं, जिससे लोग उनमें रहकर भोजन करें ॥ १ ॥

मूलम् ।

अथ ह हꣳसा निशायामतिपेतुस्तद्धैवꣳ हꣳसो हꣳसमभ्युवाद हो होऽयि भल्लाक्ष भल्लाक्ष जानश्रुतेः पौत्रायणस्य समं दिवा ज्योतिराततं तन्मा स्प्राक्षीस्तत्त्वा मा प्रधाक्षीरिति ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, ह, हंसाः, निशायाम्, अतिपेतुः, तत्, ह, एवम्, हंसः, हंसम्, अभ्युवाद, हो, हो, अयि, भल्लाक्ष, भल्लाक्ष, जानश्रुतेः, पौत्रायणस्य, समम्, दिवा, ज्योतिः, आततम्, तत्, मा, प्रसाङ्क्षीः, तत्, त्वा, मा, प्रधाक्षीः, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
अथ ह	अब अन्नदान के फल को कहते हैं
हंसाः	कई ऋषि हंस के रूप में
निशायाम्	रात्रि विषे
अतिपेतुः	पौत्रायण राजा के सामने से उड़ते भये
तद्ध	उस समय
हंसः	एक हंस ने
हंसम्	दूसरे हंस से
एवम्	इस प्रकार
अभ्युवाद	कहा कि
हो होऽयि भल्लाक्ष भल्लाक्ष	हे भल्लाक्ष, हे भल्लाक्ष! अर्थात् हे अज्ञानी मित्र!
जानश्रुतेः पौत्रायणस्य	जनश्रुत के पुत्र के पुत्र का
ज्योतिः	तेज
दिवा	स्वर्ग
समम्	सदृश
आततम्	व्याप्त है
तत्	उस तेज को
मा स्प्राक्षीः मा	मत छू नहीं तो
तत्	वह तेज
त्वा	तुझको
प्रधाक्षीः	जला देगा

भावार्थ ।

अब अन्नदान की महिमा को कहते हैं । एक समय कई ऋषि हंस के रूप में एक रात्रि को पौत्रायण राजा के सामने से उड़ते भये । अगले हंस से पिछलेवाले हंस ने कहा कि हे भल्लाक्ष ! हे अज्ञानी मित्र ! जनश्रुत के परपोते पौत्रायण का तेज स्वर्ग के सदृश उज्ज्वल व्याप्त है, उस तेज को मत उल्लङ्घन कर, नहीं तो तू जल जायगा ॥ २ ॥

मूलम् ।

तमुह परः प्रत्युवाच कंवर एनमेतत्सन्तꣳसयुग्वानमिव रैक्कमात्थेति यो नु कथꣳ सयुग्वा रैक्क इति ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

तम्, उ, ह, परः, प्रत्युवाच, कम्, उ, वरः, एनम्, एतत्, सन्तम्, सयुग्वानम्, इव, रैक्कम्, आत्थ, इति, यः, नु, कथम्, सयुग्वा, रैक्कः, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
वरः	श्रेष्ठ	एतत्	इस बात को सुन करके
परः	अग्रगामी हंस ने	+ सः	उसने
तम् उह	पीछे बोलनेवाले हंस से	+ आह	कहा कि
प्रत्युवाच	कहा	यः	जो
कम्	क्या	नु	अब
एनम्	इसकी	सयुग्वा	गाड़ीवाला
उ	प्रसिद्ध	रैक्कः	रैक्क
सन्तम्	सज्जन	इति	इस प्रकार
सयुग्वानम्	गाड़ीवाले	+ त्वया	तुझ करके
रैक्कम्	रैक्क से	+ उच्यते	कहा गया है
इव	उपमा	+ सः	वह
आत्थ	तू देता है	कथम्	कैसा है

भावार्थ ।

अगलेवाले हंस ने पिछलेवाले हंस से कहा कि क्या तू इस राजा की उपमा प्रशंसा किये हुए रैक्क से देता है ? इस बात को सुनकर पिछले हंस ने कहा कि जिसके घर में रथादिक बहुत हैं वह रैक्क कैसा है ? ॥३॥

मूलम् ।

यथा कृताय विजितायाधरेयाः संयन्त्येवमेनꣳ सर्वं तदभिसमेति यत्किञ्च प्रजाः साधु कुर्वन्ति यस्तद्वेद यत्स वेद स मयैतदुक्त इति ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

यथा, कृताय, विजिताय, अधरेयाः, संयन्ति, एवम्, एनम्, सर्वम्, तत्, अभिसमेति, यत्, किञ्च, प्रजाः, साधु, कुर्वन्ति, यः, तत्, वेद, यत्, सः, वेद, सः, मया, एतत्, उक्तः, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
यथा	जैसे लोक में
कृताय विजिताय	कृतनामक (सत्ययुग) चार के अंक वाले पासे से
अधरेयाः	एक दो तीन के अंकवाले पासे अर्थात् कलियुग द्वापर त्रेता
संयन्ति	संबंध रखते हैं अर्थात् जो कृत नामक पासे को जीत लेता है, वह उस करके और तीनों पासों का जीतने-वाला समझा जाता है
एवम्	इस प्रकार
सर्वम्	सब
एनम्	रैक्क के सत्ययुग रूपी राज्य में
अभिसमेति	अन्तर्भूत रहते हैं
यत्किञ्च	जो कुछ
प्रजाः	प्रजा
साधु	सुकार्य अर्थात् धर्म को
कुर्वन्ति	करती है
तत्	वह
+ सर्वम्	सब
+ रैक्कधर्मे	रैक्क राजा के धर्म में
+ अन्तर्भवति	अंतर्भूत होजाते हैं
यः	जो
+ कश्चित्	कोई
तत्	उस विधान या कर्म को
वेद	जानता है
यत्	जिसको
सः	वह रैक्क
वेद	जानता है तो
सः	वह भी
+ एतत्	उसी रैक्कवाले फल को
+ प्राप्नोति	प्राप्त होता है
एतत्	यह बात
इति	इस प्रकार
मया	मुझ करके
उक्तः	कही गई है

भावार्थ ।

इस पर राजा ने वह वृत्तान्त वर्णन किया जो एक हंस ने दूसरे हंस से कहा था । राजा ने कहा सुन, हे मित्र ! जैसे द्यूत खेलने में कृत नामक पासा चार अंकवाले पासे की जीत से एक दो तीन अंकवाले पासे, जो कलियुग द्वापर त्रेता को बताते हैं, जीत लिये जाते हैं, इसी प्रकार सब धर्म रैक्क के धर्म में जीते हुए पड़े हैं, अर्थात् अंतर्भूत हैं और जो कुछ प्रजा सुकार्य करती है अर्थात् धर्म करती है वह सब रैक्क के धर्म में चली जाती है और जो कोई उस कर्म को करता है जिसको रैक्क करता है वह भी उसी फल को प्राप्त होता है जिसको रैक्क प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

मूलम् ।

तदु ह जानश्रुतिः पौत्रायण उपशुश्राव स ह संजिहान एव क्षत्तारमुवाचाङ्गारे ह सयुग्वानमिव रैक्कमात्थेति यो नु कथꣳ सयुग्वा रैक्क इति ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ।

तत्, उ, ह, जानश्रुतिः, पौत्रायणः, उपशुश्राव, सः, ह, संजिहानः, एव, क्षत्तारम्, उवाच, अङ्ग, अरे, ह, सयुग्वानम्, इव, रैक्कम्, आत्थ, इति, यः, नु, कथम्, सयुग्वा, रैक्कः, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
जानश्रुतिः पौत्रायणः	=जनश्रुत का परपोता पौत्रायण
तदु ह	=उस हंस के वाक्य को
उपशुश्राव	=सुनता भया
+ च	=और
सः	=वह
+ शयनम्	=पलँग को
संजिहानः	=छोड़ता हुआ
क्षत्तारम्	=प्रातःकाल की स्तुति करनेवाले बंदीजन से
हएव	=निश्चय करके
उवाच	=कहता भया कि
अरे	=हे
अङ्ग	=मित्र !

+ त्वम्=तू
सयुग्वानम्=गाड़ीवाले
रैक्वम्=रैक्व के
इव=ऐसा
+ माम्=मुझको अर्थात् मेरी प्रशंसा
इति=इस प्रकार
आत्थ=कहता है

+ तदा=तब उस बंदीजन ने
ह नु=प्रश्न किया कि
यः=जो
सयुग्वा=गाड़ीवाला
रैक्वः=रैक्व है
सः=वह
कथम् इति=कैसा है

भावार्थ ।

जब सोकर पलँग से उठ रहा था तब उस हंस के वाक्य को जनश्रुत का परपोता पौत्रायण राजा सुनता भया और प्रातःकाल में स्तुति करनेवाले बंदीजन को बुलाकर कहा कि तू मेरी प्रशंसा रैक्व के तुल्य क्यों करता है ? तब उसने प्रश्न किया कि हे महाराज ! वह गाड़ीवाला रैक्व कौन है ? ॥ ५ ॥

मूलम् ।

यथा कृताय विजिताया धरेयाः संयन्त्येवमेनꣳ सर्वं तदभिसमेति यत्किञ्च प्रजाः साधु कुर्वन्ति यस्तद्वेद यत्स वेद स मयैतदुक्त इति ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ।

यथा, कृताय, विजिताय, अधरेयाः, संयन्ति, एवम्, एनम्, सर्वम्, तत्, अभिसमेति, यत्, किञ्च, प्रजाः, साधु, कुर्वन्ति, यः, तत्, वेद, यत्, सः, वेद, सः, मया, एतत्, उक्तः, इति ॥

अन्वयः पदार्थ अन्वयः पदार्थ

यथा=लोक में जैसे
कृतायविजिताय=कृत नामक सत्ययुग के चार के अंकवाले पासे से
अधरेयाः=एक दो तीन के अंकवाले पासे अर्थात् कलियुग, द्वापर, त्रेता

संयन्ति = संबंध रखते हैं अर्थात् जो कृत नामक पासे को जीत लेता है वह उस करके और तीनों पासों का जीतनेवाला समझा जाता है

एवम् = इसी प्रकार

सर्वम् = सब

तत् = त्रेतादि युगधर्म

एनम् = रैक के सत्ययुगरूपी राज्य में

अभिसमेति = अंतर्भूत रहते हैं

यत्किञ्च = जो कुछ

प्रजाः = प्रजा

साधु = सुकार्य अर्थात् धर्म को

कुर्वन्ति = करती हैं

+ तत् = वह

+ सर्वम् = सब धर्म

+ रैकधर्मे = रैक के धर्म में

+ अन्तर्भवति = अंतर्भूत हो जाते हैं

यः = जो

+ कश्चित् = कोई भी

तत् = उस विधान या कर्म को

वेद = जानता है

यत् = जिसको

सः = वह रैक

वेद = जानता है तो

सः = वह भी

एतत् = उसी रैकवाले फल को

आप्नोति = प्राप्त होता है

+ एतत् = यह बात

इति = इस प्रकार

मया = मुझ करके

उक्तः = कही गई है

भावार्थ ।

इस पर राजा ने वह सब वृत्तान्त वर्णन किया जो एक हंस ने दूसरे हंस से उड़ते जाते हुए कहा था और कहा हे मित्र ! जैसे द्यूत के खेलने में कृत नामक पासा चार अंकवाले की जीत से एक दो तीन अंकवाले पासे, जो कलियुग, द्वापर, त्रेता को बताते हैं, जीत लिये जाते हैं, इसी प्रकार सब धर्म रैक के धर्म में जीते हुए पड़े हैं अर्थात् अंतर्भूत हैं और जो कुछ प्रजा सुकार्य अर्थात् धर्म को करती है वह सब रैक के धर्म में चली जाती है और जो कोई रैक सदृश कर्म करता है वह भी उसी फल को प्राप्त होता है, जिसको रैक प्राप्त होता है ॥ ६ ॥

मूलम् ।

स ह क्षत्तान्विष्य नाविदमिति प्रत्येयाय तꣳ होवाच यत्रारे ब्राह्मणस्यान्वेषणा तदेनमृच्छेति ॥ ७ ॥

पदच्छेदः ।

सः, ह, क्षत्ता, अन्विष्य, न, अविदम्, इति, प्रत्येयाय, तम्, ह, उवाच, यत्र, अरे, ब्राह्मणस्य, अन्वेषणा, तत्, एनम्, ऋच्छ, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
+ यदा	जब
सः	वह
क्षत्ता	बंदीजन
+ नगरम्	शहर में
अन्विष्य	तलाश करके
+ आगत्य	वापस आकर
उवाच	कहता भया कि
तम्	उस रैक्व को
न	नहीं
अविदम्	पाया
च	और
प्रत्येयाय	लौट आया तब
+ जानश्रुतिः पौत्रायणः	जनश्रुत का परपोता पौत्रायण राजा
+ तम् ह	उससे
+ उवाच	कहता भया कि
अरे	हे मित्र !
यत्र	एकांत स्थल में नदी के किनारे या वन में
ह इति	निश्चय करके
ब्राह्मणस्य	ब्रह्मवेत्ता की
अन्वेषणा	खोज
+ भवति	होती है
तत्	वहां पर जाकर
एनम्	रैक्व को
ऋच्छ	तलाश करो
इति	इस प्रकार जानश्रुति ने कहा

भावार्थ ।

उस बंदीजन ने रैक्व को कई नगरों में तलाश किया, पर वह नहीं मिला, तब राजा के पास वापस आकर कहा कि वह नहीं मिला । इस पर राजा पौत्रायण ने कहा, हे मित्र ! तू क्या कहता है ? ब्रह्मवेत्ता की खोज एकांत स्थल बिषे नदी के किनारे पर या वन में होती है, शहर में नहीं; तू जाकर रैक्व को इस प्रकार तलाश कर ॥ ७ ॥

मूलम्।

सोऽधस्ताच्छकटस्य पामानं कषमाणमुपोपविवेश तꣳ हाभ्युवाद त्वं नु भगवः सयुग्वा रैक्व इत्यहꣳ ह्यरा३ इति ह प्रतिजज्ञे स ह क्षत्ताऽविदमिति प्रत्येयाय॥ ८॥

इति प्रथमः खण्डः।

पदच्छेदः।

सः, अधस्तात्, शकटस्य, पामानम्, कषमाणम्, उपोपविवेश, तम्, ह, अभ्युवाद, त्वम्, नु, भगवः, सयुग्वा, रैक्वः, इति, अहम्, हि, अरा, इति, ह, प्रतिजज्ञे, सः, ह, क्षत्ता, अविदम्, इति, प्रत्येयाय॥

अन्वयः	पदार्थ
सः	वह बंदीजन
शकटस्य अधस्तात्	एक गाड़ी के नीचे
पामानम्	खुजली को
कषमाणम्	खुजलाते हुए एक पुरुष को
+ दृष्ट्वा	देखकर
उप	उसके समीप
उपविवेश	विनयपूर्वक बैठ गया
+ च	और
ह	निश्चय के साथ
तम्	उससे
अभ्युवाद	कहा
भगवः	हे भगवन्!
नु	मैं पूछता हूँ
+ किम्	क्या
त्वम्	तू
सयुग्वा	गाड़ीवाला
रैक्वः	रैक्व ऋषि
+ असि	है
इति	ऐसा कहने पर
सः	उसने
ह	निश्चय के साथ
प्रतिजज्ञे	जवाब दिया
अरा ३ इतिह	हां हां हां वही रैक्व
अहम् हि	मैं ही हूँ
क्षत्ता	बंदीजन
इति	इस प्रकार
अविदम्	रैक्व को जानता भया
+ च	और (जान करके)
प्रत्येयाय	लौट आया

भावार्थ ।

वह बंदीजन राजा की आज्ञा पाकर रैक ऋषि की तलाश में फिर चला और एक पुरुष को गाड़ी के नीचे अपने शरीर विषे खुजली को खुजलाते हुए बैठा हुआ देखा और उसके समीप विनयपूर्वक वह भी बैठ गया और उससे कहा—हे भगवन् ! क्या गाड़ीवाला रैक तू ही है ? ऐसा सुनने पर उसने जवाब दिया 'हां हां हां, मैं वही रैक हूं,' बंदीजन ऐसा जानकर राजा के पास लौट आया ॥ ८ ॥

इति प्रथमः खण्डः ।

अथ चतुर्थाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः ।

मूलम् ।

तदु ह जानश्रुतिः पौत्रायणः षट् शतानि गवां निष्क-मश्वतरीरथं तदादाय प्रतिचक्रमे तꣳहाभ्युवाद ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

तत्, उ, ह, जानश्रुतिः, पौत्रायणः, षट्, शतानि, गवाम्, निष्कम्, अश्वतरीरथम्, तत्, आदाय, प्रतिचक्रमे, तम्, ह, अभ्युवाद ॥

अन्वयः	पदार्थ
तत् उह	तब अर्थात् बंदीजन के वाक्य के सुनने पर
+ ऋषेः	रैक ऋषि के
+ अभिप्रायम्	धन की इच्छा और गृहस्थाश्रमी होने की इच्छा को
+ ज्ञात्वा	जानकर
तत्	तत्पश्चात्
जानश्रुतिः	जनश्रुत का
पौत्रायणः	परपोता पौत्रायण राजा
षट्शतानिगवाम्	छःसौ गौओं को
निष्कम्	एक कंठहार को
अश्वतरीरथम्	दो खच्चरवाली गाड़ी को
आदाय	साथ में लेकर
+ रैकम्	रैक के पास
प्रतिचक्रमे	जाता भया
ह	और स्पष्ट
तम्	उस रैक से
अभ्युवाद	कहता भया

भावार्थ ।

बंदीजन के वाक्य को सुनकर पौत्रायण राजा ने रैक्क ऋषि के धन की इच्छा को और गृहस्थाश्रमी होने की इच्छा को जान लिया और छः सौ गौओं को, एक कंठहार को, दो खच्चरों को एक गाड़ी को साथ में लेकर रैक्कऋषि के पास गया और कहा ॥ १ ॥

मूलम् ।

रैक्केमानि षट् शतानि गवामयं निष्कोऽयमश्वतरीरथो नु म एतां भगवो देवताꣳ शाधि यां देवतामुपास्स इति ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

रैक्क, इमानि, षट्, शतानि, गवाम्, अयम्, निष्कः, अयम्, अश्वतरीरथः, नु, मे, एताम्, भगवः, देवताम, शाधि, याम्, देवताम्, उपास्से, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
+ हे	हे
रैक्क	रैक्कऋषि
इमानि	ये
षट्	छः
शतानि	सौ
गवाम्	गौवों को
अयम्	इस
निष्कः	कंठहार को
अयम्	इस
अश्वतरीरथः	दो खच्चरवालीगाड़ी को
+ आदत्स्व	ले
+ च	और
नु	निश्चय करके
भगवः	हे भगवन् !
एताम्	उस
देवताम्	देवता को
मे	मेरे लिये
शाधि	बता
याम्	जिस
देवताम्	देवता को
उपास्से इति	उपासनाकरता है तू

भावार्थ ।

हे रैक्क ऋषि ! इन छःसौ गौओं को, इस कंठहार को और इस

दो खच्चरवाली गाड़ी को ले और मुझको उस देवता को बता, जिसकी तू उपासना करता है ॥ २ ॥

मूलम् ।

तमु ह परः प्रत्युवाचाह हारेत्वा शूद्र तवैव सह गोभिरस्त्विति तदु ह पुनरेव जानश्रुतिः पौत्रायणः सहस्रं गवां निष्कमश्वतरीरथं दुहितरं तदादाय प्रतिचक्रमे ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

तम्, उ, ह, परः, प्रत्युवाच, अह, हारेत्वा, शूद्र, तव, एव, सह, गभिः, अस्तु, इति, तत्, उ, ह, पुनः, एव, जानश्रुतिः, पौत्रायणः, सहस्रम्, गवाम्, निष्कम्, अश्वतरीरथम, दुहितरम्, तत्, आदाय, प्रतिचक्रमे ॥

अन्वयः — पदार्थ

परः=रैक्क ऋषि
तमुह=उस जानश्रुति पौत्रायण को
अह=खेद के साथ
प्रत्युवाच=जवाब देता भया कि
शूद्र=हे शूद्र!
गोभिः=गायों के
सह=सहित
हारेत्वा=यह गाड़ी
तव=तुम्हारी
एव=ही
अस्तु इति=होवे अर्थात् तुम्हारे पास रहै मैं इनकी इच्छा नहीं रखता हूँ
तत्=तत्पश्चात्
+ ऋषेः=रैक्कऋषि के
तत्=इस अभिप्राय को
+ ज्ञात्वा=जानकर
जानश्रुतिः पौत्रायणः=जनश्रुत का परपोता राजा पौत्रायण
उह=निश्चय करके
सहस्रम् गवाम्=एक हजार गौओं को
निष्कम्=एक कण्ठहार को
अश्वतरीरथम्=दो खच्चरवाली गाड़ी को
दुहितरम्=अपनी कन्या को
आदाय=साथ लेकर
पुनः एव=फिर भी
प्रतिचक्रमे=रैक्क ऋषि के पास जाता भया

भावार्थ ।

इस पर रैक्वऋषि ने राजा से कहा कि हे शूद्र ! ये गौवें और यह गाड़ी तेरे ही पास रहें, मैं इनकी इच्छा नहीं रखता हूँ । तत्पश्चात् रैक्वऋषि के अभिप्राय को जानकर एक हजार गौओं को, एक कंठहार को, दो खच्चरवाली गाड़ी को और अपनी कन्या को साथ लेकर दूसरी बार रैक्वऋषि के पास जाता भया ॥ ३ ॥

मूलम् ।

तꣳ हाभ्युवाद रैक्वेदꣳसहस्रं गवामयं निष्कोऽयम-श्वतरीरथ इयं जायाऽयं ग्रामो यस्मिन्नास्सेऽन्वेव मा भगवः शाधीति ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

तम्, ह, अभ्युवाद, रैक्व, इदम्, सहस्रम्, गवाम्, अयम्, निष्कः, अयम्, अश्वतरीरथः, इयम्, जाया, अयम्, ग्रामः, यस्मिन्, आस्से, अनु, एव, मा, भगवः, शाधि, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
तम्	उस रैक्वऋषि से
ह	स्पष्ट
+ जानश्रुतिः पौत्रायणः	जानश्रुति पौत्रायण राजा
अभ्युवाद	कहता भया कि
रैक्व	हे रैक्व !
इदम्	यह जो
सहस्रम् गवाम्	एक सहस्र गायें हैं
अयम्	यह जो
निष्कः	कंठहार है
अयम्	यह जो
अश्वतरीरथः	दो खच्चरवाली गाड़ी है
इयम्	यह जो
जाया	कन्या है
यस्मिन्	जिस ग्राम में
आस्से	तू बैठा है
अयम्	यह जो
ग्रामः	ग्राम है
+ एतत् + सर्वम्	इन सबको
+ आदाय	लेकर
भगवः	हे भगवन् !
मा	मुझको
एव	अवश्य
अनुशाधि	उपदेश कर

भावार्थ ।

रैक्वऋषि से जानश्रुति पौत्रायण राजा ने कहा कि यह एक हजार गौ, यह कंठहार, यह दो खच्चरवाली गाड़ी, यह कन्या और जिसमें तू बैठा यह ग्राम है, इन सबको लेकर हे भगवन् ! तू मुझको उपदेश कर ॥ ४ ॥

मूलम् ।

तस्या ह मुखमुपोद्गृह्णन्नुवाचाऽऽजहारेमाः शूद्रानेनैव मुखेनालापयिष्यथा इति ते हैते रैक्वपर्णा नाम महावृषेषु यत्रास्मा उवास तस्मै होवाच ॥ ५ ॥

इति द्वितीयः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

तस्याः, ह, मुखम्, उपोद्गृह्णन्, उवाच, आजहार, इमाः, शूद्र, अनेन, एव, मुखेन, आलापयिष्यथाः, इति, ते, ह, एते, रैक्वपर्णाः, नाम, महावृषेषु, यत्र, अस्मै, उवास, तस्मै, ह, उवाच ॥

अन्वयः	पदार्थ
तस्याः	उस राजकन्या के
मुखम्	मुख की ओर
उपोद्गृह्णन्	देखते हुए
+ सः	वह रैक्वऋषि
उवाच	बोलता भया
शूद्र	हे शूद्र !
+ भवान्	तू
इमाः	इन गायों को
आजहार	वापिस लेजा
अनेन एव	इसके
मुखेन	जरिये से
आलापयिष्यथाः	तू मुझसे विद्या सीखना चाहता है
इति	इस पर
महावृषेषु	अति पवित्र
+ देशेषु	देशों बिषे
यत्र	जिन ग्रामों में
+ रैक्वः	रैक्व ऋषि
उवास	वास करता भया
+ तान्	उन गावों को
+ जानश्रुतिः	जानश्रुतिपौत्रायण राजा
अस्मै	रैक्वऋषि के लिये

+ अदात्=देता भया
+ तदा=तब
तस्मै=उस जानश्रुति से
+ विद्याम्=विद्या को
ह=भली प्रकार
उवाच=रैक्वऋषि कहता भया।

तेह=वेही
एते=ये गांव
रैक्वपर्णाः नाम = रैक्वऋषि के नाम से प्रसिद्ध होते भये

भावार्थ ।

उस राजकन्या के मुख की ओर देखकर वह रैक्वऋषि कहता भया कि हे राजन् ! तू इन गौओं को वापिस लेजा, क्या तू इनके द्वारा विद्या सीखना चाहता है ? यह सुनकर वह राजा पवित्र देशों के बिषे जिन-जिन ग्रामों में रैक्व ऋषि वास करता भया उन-उन सब ग्रामों को रैक्वऋषि के प्रति देता भया । तब रैक्वऋषि भली प्रकार राजा को विद्या का उपदेश करता भया ॥

इति द्वितीयः खण्डः ।

अथ चतुर्थाध्यायस्य तृतीयः खण्डः ।

मूलम् ।

वायुर्वाव संवर्गो यदा वा अग्निरुद्वायति वायुमेवाप्येति यदा सूर्योऽस्तमेति वायुमेवाप्येति यदा चन्द्रोऽस्तमेति वायुमेवाप्येति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

वायुः, वाव, संवर्गः, यदा, वा, अग्निः, उद्वायति, वायुम, एव, अप्येति, यदा, सूर्यः अस्तम्, एति, वायुम्, एव, अप्येति, यदा, चन्द्रः, अस्तम्, एति, वायुम्, एव, अप्येति ॥

अन्वयः पदार्थ
+ बाह्यः=बाहर का
वायुः=वायु
वाव=ही

अन्वयः पदार्थ
संवर्गः=सबका संग्रहण करनेवाला
+ अस्ति=है

यदा वा=जब
अग्निः=अग्नि
उद्वायति=शान्त होता है अर्थात् बुझता है
+ तदा=तब
वायुम्=वायु में
एव=ही
अप्येति=लीन होता है
यदा=जब
सूर्यः=सूर्य
अस्तम्=अस्त को
एति=प्राप्त होता है
+ तदा=तब
वायुम्=वायु में
एव=ही
अप्येति=लीन होता है
यदा=जब
चन्द्रः=चन्द्रमा
अस्तम्=अस्त को
एति=प्राप्त होता है
+ तदा=तब
वायुम्=वायु में
एव=ही
अप्येति=लीन होता है

भावार्थ ।

वायु ही सबका संग्रहण करनेवाला है। जब अग्नि बुझ जाता है तब वह वायु में ही लीन हो जाता है, जब सूर्य अस्त को प्राप्त हो जाता है तब वायु में ही लीन हो जाता है और जब चन्द्रमा अस्त को प्राप्त हो जाता है, तब वायु में ही लीन हो जाता है ॥ १ ॥

मूलम् ।

यदाऽऽप उच्छुष्यन्ति वायुमेवापियन्ति वायुर्ह्येवैता-न्सर्वान्संवृङ्क्त इत्यधिदैवतम् ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

यदा, आपः, उच्छुष्यन्ति, वायुम्, एव, अपियन्ति, वायुः, हि, एव, एतान्, सर्वान्, संवृङ्क्ते, इति, अधिदैवतम् ॥

अन्वयः पदार्थ

यदा=जब
आपः=जल
उच्छुष्यन्ति=प्रलयकाल में सूख जाते हैं
+ तदा=तब
वायुम्=वायु में
एव=ही
अपियन्ति=लीन होता है

हि=क्योंकि
वायुः=वायु
एव=ही
एतान्=इन
सर्वान्=सब अग्न्यादिकों को
संवृङ्क्ते=अपने में रखता है
इति=इस प्रकार
अधिदैवतम्=देवता सम्बन्धी
+ संवर्गदर्शनम्=संवर्गदर्शन
+ उक्तम्=कहा गया है

भावार्थ ।

जब जल प्रलयकाल में सूख जाता है तब वायु में ही लीन होता है, क्योंकि वायु ही सब अग्नि आदिकों का आधार है । इस प्रकार यह देवतासबन्धी संवर्ग कहा गया है ॥ २ ॥

मूलम् ।

अथाध्यात्मं प्राणो वाव संवर्गः स यदा स्वपिति प्राणमेव वागप्येति प्राणं चक्षुः प्राणꣳ श्रोत्रं प्राणं मनः प्राणो ह्येवैतान्सर्वान्संवृङ्क्त इति ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, अध्यात्मम्, प्राणः, वाव, संवर्गः, सः, यदा, स्वपिति, प्राणम्, एव, वाक्, अप्येति, प्राणम्, चक्षुः, प्राणम्, श्रोत्रम्, प्राणम्, मनः, प्राणः, हि, एव, एतान्, सर्वान्, संवृङ्क्ते, इति ॥

अन्वयः पदार्थ

अथ=अब
अध्यात्मम्=शरीर सम्बन्धी
+ संवर्गदर्शनम्=संवर्गदर्शन
+ उच्यते=कहा जाता है
प्राणः=प्राण
वाव=ही
संवर्गः=सबको अपने में रखनेवाला है
सः=पुरुष
यदा=जब

अन्वयः पदार्थ

स्वपिति=सोता है
+ तदा=तब
वाक्=वाणी
प्राणम्=प्राण में
एव=ही
अप्येति=लय होती है
चक्षुः=नेत्र
प्राणम्=प्राण में ही
+ अप्येति=लय होता है
श्रोत्रम्=करण

प्राणम्=प्राण में ही
+ अप्येति=लय होता है
मनः=मन
प्राणम्=प्राण में ही
+ अप्येति=लय होता है
हि=क्योंकि
प्राणः=प्राण
एव=ही
एतान्=इन
सर्वान्=सब वागादिकों को
इति=कहे हुए प्रकार
संवृङ्क्ते=अपने में लय कर लेता है

भावार्थ ।

अथाध्यात्मम् । अब शरीरसम्बन्धी संवर्गविद्या को कहते हैं । प्राण ही निश्चय करके संवर्ग है अर्थात् लय करनेवाला है, क्योंकि जिस काल में कोई पुरुष शयन करता है उस काल में वागिन्द्रिय, चक्षुः, इन्द्रिय, श्रोत्र इन्द्रिय और मन प्राण में ही लयभाव को प्राप्त होते हैं, इसी कारण प्राण ही सब इन्द्रियों का लय करनेवाला है । यही आध्यात्म उपदेश है ॥ ३ ॥

मूलम् ।

तौ वा एतौ द्वौ संवर्गौ वायुरेव देवेषु प्राणः प्राणेषु ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

तौ, वा, एतौ, द्वौ, संवर्गौ, वायुः, एव, देवेषु, प्राणः, प्राणेषु ॥

अन्वयः	पदार्थ
वायुः	वायु
एव	ही
देवेषु	अधिदैवत में
+ च	और
प्राणः	प्राण ही
प्राणेषु	अध्यात्म में
तौ	येही
एतौ द्वौ	ये दो
वा	निश्चय करके
संवर्गौ	संवर्ग
+ उक्तौ	कहे गये हैं

भावार्थ ।

देवताओं में वायु संवर्गगुणवाला है और इन्द्रियों में प्राण संवर्ग गुणवाला है, इसलिये अधिदैव और अध्यात्मभेद करके दो संवर्ग कहे गये हैं अर्थात् देवताओं में वायु और इन्द्रियों में प्राण ॥ ४ ॥

मूलम् ।

अथ ह शौनकं च कापेयमभिप्रतारिणं च काक्षसेनिं परिवेष्यमाणौ ब्रह्मचारी बिभिक्षे तस्मा उ ह न ददतुः ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, ह, शौनकम्, च, कापेयम्, अभिप्रतारिणम्, च, काक्षसे- निम्, परिवेष्यमाणौ, ब्रह्मचारी, बिभिक्षे, तस्मै, उ, ह, न, ददतुः ॥

अन्वयः	पदार्थ
अथ	अब
ह	पूर्व काल की
+ आख्यायिका	कथा को
+ आरभ्यते	आरंभ करते हैं
ब्रह्मचारी	एक श्रेष्ठ ब्रह्मचारी ने
कापेयम्	कपिगोत्रवाले
शौनकम्	शौनकऋषि
च	और
अभिप्रतारिणम्	अभिप्रतारी
काक्षसेनिम्	कक्षसेन के पुत्र से
+ यौ	जो कि
+ सूपकारैः	रसोई पकाने-वालों करके
परिवेष्यमाणौ	सेवा सत्कार पारहे थे
बिभिक्षे	भिक्षा मांगी
उह	तब उन दोनों ने
तस्मै	उस ब्रह्मचारी के निमित्त
+ भिक्षाम्	भिक्षा
न	नहीं
ददतुः	दिया

भावार्थ ।

अब इन दोनों देवताओं अर्थात् वायु और प्राण की स्तुति करने के लिये कथा का आरंभ करते हैं। एक समय कपि गोत्रवाला शौनक और कक्षसेन का पुत्र अभिप्रतारक, जो कि भोजन करने के वास्ते बैठे थे और जिनके सामने भोजन परोसा जा रहा था, उनके

समीप आकर एक ब्रह्मचारी ने भिक्षा मांगी । उस ब्रह्मचारी को उन्हों-ने भिक्षा नहीं दी । उनका उसके प्रति भिक्षा न देने का यह तात्पर्य था कि जब वह भिक्षा नहीं पावेगा तब हमको वह अपनी आत्मज्ञान कथा सुनावेगा ॥ ५ ॥

मूलम् ।

स होवाच महात्मनश्चतुरो देव एकः कः स जगार भुवनस्य गोपास्तं कापेय नाभिपश्यन्ति मर्त्या अभि-प्रतारिन् बहुधा वसन्तं यस्मै वा एतदन्नं तस्मा एतन्न दत्तमिति ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ।

सः, ह, उवाच, महात्मनः, चतुरः, देवः, एकः, कः, सः, जगार, भुवनस्य, गोपाः, तम्, कापेय, न, अभिपश्यन्ति, मर्त्याः, अभिप्रतारिन्, बहुधा, वसन्तम्, यस्मै, वा, एतत्, अन्नम्, तस्मै, एतत्, न, दत्तम्, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
सः	वह ब्रह्मचारी
ह	निश्चय करके
उवाच	प्रश्न करता भया कि
+ सः	वह
एकः	एक कौन
देवः	देवता है
+ यः	जो
चतुरः	चारों
महात्मनः	महात्माओं को
जगार	ग्रास कर जाता है
+ च	और
सः	वह
कः	कौन है
+ यः	जो
भुवनस्य	भूरादि लोकों की
गोपाः	रक्षा करनेवाला है
कापेय	हे कापेयगोत्र-वाले ऋषि !
+ यम्	जिसको
मर्त्याः	मरण धर्मसम्बन्धी मनुष्य
इति	इस प्रकार
न	नहीं
+ अभि-पश्यन्त	जानते हैं

अभि-प्रतारिन् = हे अभिप्रतारिन् !
बहुधा = बहुत जगह
वसन्तम् = वास करनेवाले
तम् = उस रक्षक को
नाभिपश्यन्ति = अविवेकी जन नहीं जानते हैं
यस्मै = जिसके वास्ते
वा = निश्चय करके
एतत् = यह
अन्नम् = अन्न है
तस्मै = उसी के लिये
एतत् = यह अन्न
न = नहीं
दत्तम् = दिया गया है

भावार्थ ।

ब्रह्मचारी ने उनसे प्रश्न किया कि वह कौन एक देवता है जो अग्नि आदिकों का और वागादिकों का भक्षण करनेवाला है और भुवनों की रक्षा करनेवाला है ? जिसको हे कापेय ! मरण धर्मवाले अज्ञानी जीव अनेक प्रकार से उसी में बसते हुए भी नहीं जानते हैं । जिस प्रजापति के लिये प्रतिदिन यह भोजन संस्कार किया जाता है उसी प्रजापति के प्रति तुमने अन्न को नहीं दिया है, इसमें क्या कारण है ? क्या तुम उस प्रजापति की उपासना को नहीं करते हो ? ॥ ६ ॥

मूलम् ।

तदु ह शौनकः कापेयः प्रतिमन्वानः प्रत्येयायात्मा देवानां जनिता प्रजानाᳫं हिरण्यदंष्ट्रो बभसोऽनसूरिर्महान्तमस्य महिमानमाहुरनद्यमानो यदनन्नमत्तीति वै वयं ब्रह्मचारिन्नेदमुपास्महे दत्तास्मै भिक्षामिति ॥ ७ ॥

पदच्छेदः ।

तत्, उ, ह, शौनकः, कापेयः, प्रतिमन्वानः, प्रत्येयाय, आत्मा, देवानाम्, जनिता, प्रजानाम्, हिरण्यदंष्ट्रः, बभसः, अनसूरिः, महान्तम्, अस्य, महिमानम्, आहुः, अनद्यमानः, यत्, अनन्नम्, अत्ति, इति, वै, वयम्, ब्रह्मचारिन्, आ, इदम्, उपास्महे, दत्त, अस्मै, भिक्षाम्, इति ॥

अन्वयः पदार्थ	अन्वयः पदार्थ
कापेयः=कपि गोत्रोत्पन्न	महान्तम्=अतिमहान्
शौनकः=शौनक ऋषि	आहुः=कहते हैं
तत् उह=ब्रह्मचारी के वचन का	यत्=क्योंकि वह
प्रतिमन्वानः=मन से विचार करता हुआ	+ अन्यैः=औरों करके
प्रत्येयाय=ब्रह्मचारी के पास आकर	अनद्यमानः=खाया नहीं जाता है पर
+ आह च=कहता भया कि	अनन्नम्=अग्नि वाणी आदि जो अन्न नहीं हैं
+ तम्=उस प्रजापति को	अत्ति=उनको भी वह खा जाता है
+ वयम्=हम	इति=इसलिये
+ पश्यामः=देखते हैं	ब्रह्मचारिन्=हे ब्रह्मचारिन् !
देवानाम्=वह अग्नि आदिक देवताओं का	वयम्=हम
आत्मा=आत्मा	इदम्=इस
प्रजानाम्=स्थावर जंगम प्रजा का	आ=चारों तरफवाले अर्थात् ब्रह्म की
जनिता=उत्पन्न करनेवाला है	वै=निश्चय करके
हिरण्यदंष्ट्रः=सुवर्ण दाँतवाला है	उपास्महे=उपासना करते हैं
बभसः=भक्षण करनेवाला है	अस्मै=इस ब्रह्मचारी के लिये
अनसूरिः=विद्वान् है	भिक्षाम्=भिक्षा
+ ब्रह्मविदः=ब्रह्मवेत्ता	दत्त=देवो
अस्य=इस प्रजापति के	इति=इस प्रकार
महिमानम्=ऐश्वर्य को	+ सः=शौनकऋषि
	भृत्यान्=नौकरों को
	अवाचत=कहता भया

भावार्थ ।

ब्रह्मचारी के वाक्य को सुनकर और मन में विचार करके, शौनक कापेय ब्रह्मचारी के पास आ करके, इस प्रकार कहता भया कि हे ब्रह्मचारिन् ! जिसको तू ने कहा है कि अज्ञानी मनुष्य नहीं जानते हैं,

अर्थात् नहीं देखते हैं, उसीको हम देखते हैं । वही संपूर्ण स्थावर जंगमरूप प्रजा का आत्मा है, वही संपूर्ण अग्नि आदिक देवताओं का उत्पन्न करनेवाला है, वही फिर अपने में ही लय करनेवाला भी है, वही वायुरूप करके अग्नि आदिकों का अधिदैवत है और प्राणरूप करके वागादिकों का अध्यात्मक भी है और संपूर्ण प्रजाओं का उत्पन्न करनेवाला है और सुवर्ण की तरह दाढ़ रखनेवाला है अर्थात् अनादिकाल का भक्षण करनेवाला है । वही बड़ा बुद्धिमान् है और सबसे महान् भी है, जो किसी करके नहीं खाया जाता है उसका भी वह खानेवाला है । हे ब्रह्मचारिन् ! हमलोग उसी की उपासना को करते हैं । ऐसे कहकर उस ब्रह्मचारी के प्रति अन्न देने की आज्ञा दिया ॥ ७ ॥

मूलम् ।

तस्मा उ ह ददुस्ते वा एते पञ्चान्ये पञ्चान्ये दशसन्तस्तत्कृतं तस्मात्सर्वासु दिक्ष्वन्नमेव दशकृतं सैषा विराडन्नादी तयेदꣳ सर्वं दृष्टꣳ सर्वमस्येदं दृष्टं भवति य एवं वेद य एवं वेद ॥ ८ ॥

इति तृतीयः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

तस्मै, उ, ह, ददुः, ते, वै, एते, पञ्च, अन्ये, पञ्च, अन्ये, दश, सन्तः, तत्, कृतम्, तस्मात्, सर्वासु, दिक्षु, अन्नम्, एव, दश, कृतम्, सा, एषा, विराट्, अन्नादी, तया, इदम्, सर्वम्, दृष्टम्, सर्वम्, अस्य, इदम्, दृष्टम्, भवति, यः, एवम्, वेद, यः, एवम्, वेद ॥

अन्वयः	पदार्थ
ते उ, ह	=वे नौकर निश्चय करके
तस्मै	=उस ब्रह्मचारी के लिये
+भिक्षाम्	=भिक्षा को
ददुः	=देते भये
वै	=निश्चय करके
एते	=ये

पञ्च=पांच प्राण, वाणी, मन, चक्षु और श्रोत्र देवता
अन्ये=पृथक् हैं
+च=और
+एते=ये
पञ्च=पांच वायु, अग्नि, सूर्य, चन्द्र, और जल देवता
अन्ये=पृथक् हैं
+इति=इस प्रकार
दश=दश देवता
सन्तः=मिलकर
तत्=वह
कृतम्=कृतयुग
+भवति=होता है
तस्मात्=इसलिये
सर्वासु=सब
दिक्षु=दिशाओं में
अन्नम्=अन्न अर्थात् भोग्य वस्तु
एव=ही
दश=दश देवता
कृतम्=कृत अर्थात् सत्ययुग नाम से प्रसिद्ध हैं
सा=वही
एषा=यह
विराट्=दश देवता
अन्नादी=अन्नादिक हैं
तया=उन दश देवताओं करके
इदम्=यह
सर्वम्=सब जगत्
दृष्टम्=देखा गया है अर्थात् रचा गया है
यः=जो
एवम्=कहे हुए प्रकार से
वेद=जानता है
अस्य=उस जाननेवाले को
इदम्=यह
सर्वम्=सब जगत्
दृष्टम्=देखा हुआ
भवति=होता है

भावार्थ ।

शौनक ऋषि कहते हैं हे ब्रह्मचारिन्! इस शरीर के बाहर जो वायु है वह भोक्ता है और अग्नि, सूर्य, चन्द्र और जल उसके भोग्य हैं; क्योंकि अग्नि वायु में लय रहती है, विना वायु के अग्नि की स्थिति नहीं; वायु आधार है और अग्नि आधेय है; आधार आधेय को लिये हुए ऐसा दिखाई पड़ता है कि मानों वह उसको अपने में पकड़े है। यदि घट में अग्नि या दीपक रख दिया जाय और उसका मुँह ऐसा बंद

कर दिया जाय कि उसमें वायु न जा सके तो अग्नि या दीपक बुझ जायगा अर्थात् उसको वह (वायु) भक्षण कर जायगा । सूर्य चन्द्र की गति भी वायु करके ही होती है अर्थात् वे वायु करके चारों ओर ग्रसित हैं । महाप्रलय में जब वायु प्रचंड होता है तब अग्नि, सूर्य, चन्द्र और जल का कहीं पता नहीं लगता है, वायु उन सबोंको भक्षण कर जाता है और सृष्टि की उत्पत्ति के समय इन सबोंको वह अपने में से बाहर निकाल देता है; इसी कारण यह वायु आधिदैविक संवर्ग कहा जाता है अर्थात् अपने में सबको खींचकर रखता है । इसी प्रकार इस शरीर के अन्तर प्राण भी भोक्ता है और वाणी, चक्षु, मन और श्रोत्र इसके भोग्य हैं; क्योंकि ये प्राण के ही वश रहते हैं । यह प्राण इस कारण आध्यात्मिक संवर्ग कहा जाता है अर्थात् अपने में इन चारों को खींचकर रखता है । प्राण के निकलने पर ये चारों अपने अपने स्थानों में नहीं रह सकते हैं; उसके साथ खिंचे चले जाते हैं । सुषुप्ति अवस्था में अथवा मरणकाल में ये चारों प्राण में ही लय हो जाते हैं और फिर जाग्रत् अवस्था अथवा उत्पत्ति समय उसी प्राण से निकल आते हैं और अपने अपने स्थानों में स्थित होजाते हैं ।

ऊपर कहे हुए जो दो भोक्ता—अर्थात् वायु और प्राण—और आठ भोग्य—अर्थात् अग्नि, सूर्य, चन्द्र, जल, वाणी, नेत्र, मन और श्रोत्र—हैं, इन सबोंका भोक्ता आत्मा है । वही अध्यात्म, अधिदैव और अधि-भूतरूप से दशो दिशाओं में व्याप्त है । यावत् दशो दिशाओं में व्याप्त है वही अन्न है, वही भोग्य है, वही विराट् है । इस विराट् की उपमा उस विराट् छन्द से है जो वेदों में दश अक्षरों करके संयुक्त है । इसी की उपमा द्यूत में कृतनामवाले पासे से भी देते हैं जो अपने चार अंकों से युक्त है और जिसमें तीन (=त्रेता), दो (=द्वापर) और एक (=कलि) अंकवाले पासे अन्तर्भूत हैं । जैसे कृत नामक पासे

का जात लेने से बाकी के तीनों पासे जीते समझे जाते हैं वैसे ही कृतयुग के जीत लेने से बाकी के तीनों युग भी—अर्थात् त्रेता, द्वापर और कलि—जीते हुए समझे जाते हैं। इसी प्रकार अन्न के दान देने से सर्व वस्तुओं का दान दिया हुआ जाना जाता है और आत्मा के भोग लेने से सबका भोग किया हुआ होजाता है। विराट् का अर्थ भोग्य और भोक्ता दोनों हैं, इसलिये जो भोग्यरूप से स्थित है और जो भोक्तारूप से स्थित है वे भी दोनों आत्माही हैं, अर्थात् वही भोग्य है और वही भोक्ता है। ऐसा जो देखनेवाला है, वही तत्त्वदर्शी और अन्न का भोक्ता समझा जाता है॥ ८ ॥

इति तृतीयः खण्डः ।

अथ चतुर्थाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः ।

मूलम् ।

सत्यकामो ह जाबालो जबालां मातरमामन्त्रयाञ्चक्रे ब्रह्मचर्यं भवति विवत्स्यामि किंगोत्रो न्वहमस्मीति॥१॥

पदच्छेदः ।

सत्यकामः, ह, जाबालः, जबालां, मातरम्, आमन्त्रयाञ्चक्रे, ब्रह्मचर्य्यम्, भवति, विवत्स्यामि, किंगोत्रः, नु, अहम्, अस्मि, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
जाबालः	जबाला का पुत्र
सत्यकामः	सत्यकाम
जबालाम्	जबाला नामक
मातरम्	अपनी माता से
ह	श्रद्धापूर्वक
आमन्त्रयाञ्चक्रे	पूछता भया कि
+ हे	हे
भवति	पूजनीय मातः !
ब्रह्मचर्य्यम्	वेद ग्रहण के वास्ते
आचार्य्यकुले	आचार्यकुल में
विवत्स्यामि	मैं वास करूंगा
अहम्	मैं
किंगोत्रः	किस वंश में उत्पन्न हुआ
अस्मि	हूं
इति	यह मेरा
नु	प्रश्न है

भावार्थ ।

सत्यकाम जबाला का पुत्र जब कि वह बारह वर्ष का होगया एक दिन उसने अपनी माता से जाकरके कहा, हे मातः ! मेरी इच्छा गुरु के घर जाकर, ब्रह्मचर्य को धारण करके, वेदों के पढ़ने की है । जब मैं गुरु के पास जाऊंगा तो उनको मैं अपना कौन गोत्र बताऊंगा; मैं अपने गोत्र को नहीं जानता हूं, आप मेरे गोत्र को बता दीजिये ॥ १ ॥

मूलम् ।

सा हैनमुवाच नाऽहमेतद्वेद तात यद्गोत्रस्त्वमसि बह्वहं चरन्ती परिचारिणी यौवने त्वामलभे साहमेतन्न वेद यद्गोत्रस्त्वमसि जबाला तु नामाहमस्मि सत्यकामो नाम त्वमसि स सत्यकाम एव जाबालो ब्रवीथा इति ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

सा, ह, एनम्, उवाच, न, अहम्, एतत्, वेद, तात, यद्गोत्रः, त्वम्, असि, बहु, अहम्, चरन्ती, परिचारिणी, यौवने, त्वाम्, अलभे, सा, अहम्, एतत्, न, वेद, यद्गोत्रः, त्वम्, असि, जबाला, तु, नाम, अहम्, अस्मि, सत्यकामः, नाम, त्वम्, असि, सः, सत्यकामः, एव, जाबालः, ब्रवीथाः, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
सा ह=वह जबाला		त्वम्=तू	
एनम्=उस सत्यकाम से		यद्गोत्रः=किस वंश का	
उवाच=कहती भई कि		असि=है	
तात=हे बेटा !		अहम्=मैं	
अहम्=मैं		+ भर्तृगृहे=अपने पति के घर में	
एतत्=यह		बहु=अतिथि अभ्यागतों की सेवा	
न=नहीं			
वेद=जानती हूं कि			

चरन्ती=करती हुई
परिचारिणी=सेवा स्वभाववाली
+ अभूवम्=होती भई
+ च=और
यौवने=युवा अवस्था में
त्वाम्=तुझको
अलभे=मैंने पाया
सा=सोई
अहम्=मैं
एतत्=इसको
न=नहीं
वेद=जानती हूं कि
त्वम्=तू
यद्गोत्रः=किस गोत्रवाला
असि=है
अहं तु=मैं तो
जवाला=जवाला
नाम=इस तरह प्रसिद्ध
अस्मि=हूं
+ च=और
त्वम्=तू
सत्यकामः=सत्यकाम
नाम=इस तरह प्रसिद्ध
असि=है
सः, एव=वही
सत्यकामः=सत्यकाम
जावालः=जवाला का पुत्र
+ अहम्=मैं
+ अस्मि=हूं
+ इति=ऐसा गुरु से
ब्रवीथाः=कह तू

भावार्थ।

पुत्र की वार्ता को सुन करके माता ने कहा, हे तात ! किस गोत्र का तू है इस बात को मैं भी नहीं जानती हूं। गोत्र के न जानने में कारण यह है कि जब से मैं अपने पति के घर आई तब से मैं पति की सेवा में रही और आये गये अतिथियों की सेवा सत्कार करती रही। कभी मैंने अपने पति से नहीं पूछा कि आपका क्या गोत्र है, क्योंकि पतिव्रता स्त्री का धर्म केवल पति की सेवा और पति की आज्ञा का पालन करना है। यौवन अवस्था में तू मेरे को प्राप्त हुआ, उसके थोड़े काल के पीछे तेरे पिता का देहान्त होगया, इस वास्ते मैं इतना ही जानती हूं कि जवाला मेरा नाम है और सत्यकाम तेरा नाम है। जब गुरु तुम्हारे से गोत्र पूछें तब तुम उनसे कह देना कि सत्यकाम मेरा नाम है और जबाला मेरी माता का नाम है। केवल इतनाही मेरी माता जानती है ॥ २ ॥

मूलम् ।

स ह हारिद्रुमतं गौतममेत्योवाच ब्रह्मचर्य्यं भगवति वत्स्याम्युपेयां भगवन्तामिति ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

सः, ह, हारिद्रुमतम्, गौतमम्, एत्य, उवाच, ब्रह्मचर्य्यम्, भगवति, वत्स्यामि, उपेयाम्, भगवन्तम्, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
सः	वही सत्यकाम	ब्रह्मचर्य्यम्	वेद ग्रहण के लिये
गौतमम्	गौतम गोत्रवाले	भगवति	आपके पास
हारिद्रुमतम्	हरिद्रुमान् के पुत्र हारिद्रुमत ऋषि के पास	वत्स्यामि	मैं वास करना चाहता हूं
एत्य	जाकर	इति	इसलिए
उवाच	कहता भया कि	भगवन्तम्	आप पूज्य के पास
		उपेयाम्	प्राप्त होऊं

भावार्थ ।

माता के वचन को सुन करके सत्यकाम हारिद्रुमत ऋषि के समीप जाकर कहता भया । मैं आपके पास शिष्य बन करके और ब्रह्मचर्य को धारण करके रहने के लिये आया हूं । आप हमारे पूज्य हैं ॥ ३ ॥

मूलम् ।

तꣳ होवाच किं गोत्रो नु सौम्यासीति स होवाच नाहमेतद्वेद भो यद्गोत्रोऽहमस्म्यपृच्छं मातरꣳ सा मा प्रत्यब्रवीद्बह्वहं चरन्ती परिचारिणी यौवने त्वामलभे साहमेतन्न वेद यद्गोत्रस्त्वमसि जबाला तु नामाहमस्मि सत्यकामो नाम त्वमसीति सोऽहꣳसत्यकामो जाबालोऽस्मि भो इति ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

तम्, ह, उवाच, किम्, गोत्रः, नु, सौम्य, असि, इति, सः, ह,

उवाच, न, अहम्, एतत्, वेद, भोः, यद्गोत्रः, अहम्, अस्मि, अपृच्छम्, मातरम्, सा, मा, प्रत्यब्रवीत्, बहु, अहम्, चरन्ती, परिचारिणी, यौवने, त्वाम्, अलभे, सा, अहम्, एतत्, न, वेद, यद्गोत्रः, त्वम्, असि, जवाला, तु, नाम, अहम्, अस्मि, सत्यकामः, नाम, त्वम्, असि, इति, सः, अहम्, सत्यकामः, जावालः, अस्मि, भोः, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
+गौतमः	=तब गौतम
तम् ह	=उस सत्यकाम से
उवाच	=कहता भया कि
+ हे	=हे
सौम्य	=प्रियदर्शन !
किं गोत्रः	=किस वंश का तू
असि	=है
नु	=मेरा यह प्रश्न है
इति	=इस प्रकार
+पृष्टः	=जब पूछा गया तब
सः ह	=वह सत्यकाम
उवाच	=कहता भया कि
यद्गोत्रः	=जिस गोत्र का
अहम्	=मैं
अस्मि	=हूं
एतत्	=उसको
न	=नहीं
वेद	=जानता हूं
भोः	=हे भगवन् !
अहम्	=मैंने
यदा	=जब
मातरम्	=अपनी माता से

अन्वयः	पदार्थ
अपृच्छम्	=पूछा तब
सा	=वह
मा	=मुझसे
प्रत्यब्रवीत्	=कहती भई कि
अहम्	=मैं
बहु	=अतिथि अभ्यागतों की बहुतसी सेवा
चरन्ती	=करती रही
परिचारिणी	=सेवा स्वभाववाली
+अभूवम्	=होती हुई
यौवने	=यौवन अवस्था में
त्वाम्	=तुझको
अलभे	=मैंने प्राप्त किया
सा	=वह
अहम्	=मैं
एतत्	=यह
न	=नहीं
वेद	=जानती हूं कि
त्वम्	=तू
यद्गोत्रः	=किस गोत्र का
असि	=है

अहम् तु=मैं तो	असि=है
जवालानाम=जवाला नाम से प्रसिद्ध	भोः=हे भगवन् !
अस्मि=हूं	सः=वही
+ च=और	अहम्=मैं
त्वम्=तू	सत्यकामः=सत्यकाम
सत्यकामः नाम=सत्यकाम नाम से प्रसिद्ध	जावालः=जवाला का पुत्र
	अस्मि=हूं
	इति=ऐसा गुरु से कहा

भावार्थ ।

शास्त्र की यह आज्ञा है कि विना कुल गोत्र के जाने किसी को शिष्य न बनावे, इस कारण हारिद्रुम ने सत्यकाम से पूछा, तुम्हारा कौन गोत्र है ? सत्यकाम ने कहा, जब आपके पास आकर ब्रह्मचर्य धारण करके निवास करने की इच्छा मेरे मन में उत्पन्न भई तब मैंने अपनी माता से पूछा कि मेरा कौन गोत्र है, क्योंकि गुरु के प्रति गोत्र हमको बताना होगा । मेरी माता ने कहा मैं नहीं जानती हूं कि तुम्हारा कौन गोत्र है; क्योंकि मैं तो पातिव्रतधर्म को धारण करके पति की सेवा में ही रही, कभी मैंने तुम्हारे पिता से नहीं पूछा था कि आपका कौन गोत्र है । यौवन अवस्था में तू मुझको प्राप्त हुआ, तत्पश्चात् तुम्हारे पिता का शरीर छूट गया । सो तू अपने गुरु से कहना, जवाला मेरी माता का नाम है और सत्यकाम जावाल मेरा नाम है । इतना ही मैं जानता हूं ॥ ४ ॥

मूलम् ।

तं होवाच नैतदब्राह्मणो विवक्तुमर्हति समिधं सौम्याऽऽहरोपत्वा नेष्ये न सत्यादगा इति तमुपनीय कृशानामबलानां चतुःशता गा निराकृत्योवाचेमा सौम्या-

नुव्रजेति ता अभिप्रस्थापयन्नुवाच नासहस्रेणावर्त्तेयमिति स ह वर्षगणं प्रोवास ता यदा सहस्रं संपेदुः॥५॥

इति चतुर्थः खण्डः।

पदच्छेदः।

तम्, ह, उवाच, न, एतत्, अब्राह्मणः विवक्तुम्, अर्हति, समिधम्, सौम्य, आहर, उप, त्वा, नेष्ये, न, सत्यात्, अगाः, इति, तम्, उपनीय कृशानाम्, अबलानाम्, चतुःशताः, गाः, निराकृत्य, उवाच, इमाः, सौम्य, अनुव्रज, इति, ताः, अभिप्रस्थापयन्, उवाच, न, असहस्रेण, आवर्त्तेयम्, इति, सः, ह, वर्षगणम्, प्रोवास, ताः, यदा, सहस्रम्, संपेदुः॥

अन्वयः	पदार्थ
+ गौतमः	गौतम
तम् ह	सत्यकाम से
उवाच	कहता भया कि
एतत्	यह
+ वचः	सत्य वचन
अब्राह्मणः	ब्राह्मण के सिवाय और कोई
विवक्तुम्	कहने को
न	नहीं
अर्हति	योग्य है
सौम्य	हे सौम्य !
समिधम्	लकड़ियों को संस्कार के लिये
आहर	ले आ
+ अहम्	मैं
त्वा	तेरा
उपनेष्ये	उपनयन करूंगा
+ यतः	क्योंकि
सत्यात्	सत्यरूप ब्राह्मणधर्म से
न	नहीं
अगाः	रहित है तू
इति	ऐसा कहकर
+ सः	वह गौतम
तम्	उस सत्यकाम का
उपनीय	उपनयन करके
कृशानाम्	दुबली
अबलानाम्	शक्तिहीन
+ गवाम्	गौवों के
+ समूहात्	समूहों में से
चतुःशताः	चारसौ
गाः	गौवों को
निराकृत्य	पृथक् करके
उवाच	कहता भया कि

सः ह=वह सत्यकाम
वर्षगणम्=बहुत बरसों तक
+ गाः=गौवों को
+ तृणोदक-बहुलम्=तृण और जल करके भरे हुए
+ अरण्यम्=वन में
+ प्रवेश्य=प्रवेश करके
+ सह=उनके साथ
प्रोवास=वास करता भया
यदा=जबतक
ताः=वे गौवें
सहस्रम्=एक हज़ार
+ न=नहीं
संपेदुः=होती भई

सौम्य=हे सत्यकाम !
इमाः=इन गौवों के
अनुव्रज=पीछे पीछे जा
इति=ऐसा
+ श्रुत्वा=सुन करके
+ सः=वह सत्यकाम
ताः=उन गौवों को
+ वनम्=वन की ओर
अभिप्रस्थापयन्=लेजाते हुए
उवाच=गुरु से कहता भया कि
असहस्रेण=जबतक एक हज़ार न हो जायँगी
न=नहीं
आवर्तयम्=लौटूंगा मैं
इति=इसलिये

भावार्थ ।

उस सत्यकाम से गौतम ने कहा, जो ब्राह्मण नहीं है वह इस प्रकार कदापि सत्य कथन नहीं कर सक्ता है । जो ब्राह्मण होता है वही सत्य को कहता है । तुमने सत्य सत्य कहा है इस वास्ते मुझको विश्वास है कि तुम ब्राह्मण हो । हे सौम्य ! लकड़ियों को वन से बीन करके लावो, होम को करके मैं तुम्हारा यज्ञोपवीत करूंगा; क्योंकि तुम सत्यभाषण से चलायमान नहीं हुए हो । सत्यकाम का उपनयन कराकर और ब्रह्मचर्य धारण कराकर, गुरु ने गौवों के यूथ में से दुर्बल चार सौ गौवों को पृथक् करके, सत्यकाम से कहा, हे सौम्य ! इनको तुम वन में ले जावो । जब उन गौवों को सत्यकाम ले करके वन को चला, तब ऋषि से कहा कि जबतक यह गौवें एक हज़ार पूरी न हो जायँगी तबतक वन से मैं नहीं लौटकर आऊंगा । इस तरह कह-कर वह सत्यकाम, सुख दुःख को सम जानकर, बरसों तक वन में

रहकर, उन गौवों की सेवा करता रहा और उस वन में गौवों को लेगया जिसमें सुन्दर-सुन्दर घास और जल बहुत थे। जबतक गौवें एक सहस्र पूर्ण नहीं हुई थीं तब तक वह उनकी सेवा करता रहा ॥ ५ ॥

इति चतुर्थः खण्डः ।

अथ चतुर्थाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः ।

मूलम् ।

अथ हैनमृषभोऽभ्युवाद सत्यकाम इति भगव इति ह प्रतिशुश्राव प्राप्ताः सौम्य सहस्रं स्मः प्रापय न आचार्य्यकुलम् ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, ह, एनम्, ऋषभः, अभ्युवाद, सत्यकाम, इति, भगवः, इति, ह, प्रतिशुश्राव, प्राप्ताः, सौम्य, सहस्रम्, स्मः, प्रापय, नः, आचार्य्यकुलम् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ	इसके बाद	+ संबोध्य	संबोधन करके
ह	निश्चय करके	(ऋषभः) प्रतिशुश्राव	बैल ने जवाब दिया
ऋषभः	बैल	सौम्य	हे सौम्य !
एनम्	सत्यकाम से	सहस्रम्	एक हज़ार
अभ्युवाद	कहता भया कि	प्राप्ताः	हम सब प्राप्त होगये
सत्यकाम	हे सत्यकाम !	स्मः	हैं
इति	इस पर	नः	हम सबको
+ सत्यकामः	सत्यकाम ने कहा	+ अधुना	अब
भगवः	हे पूज्य !	आचार्य्यकुलम्	आचार्य के घर
+ वद	कहिये	प्रापय	ले चलो
इति	तब		

भावार्थ ।

तब वायुदेवता बैल का रूप धारण करके कहता भया, हे सत्य-काम! तब सत्यकाम ने कहा, हे भगवन्! क्या आज्ञा है कहिये? तब ऋषभ ने कहा, हे सौम्य! हम एक हजार पूर्ण होगये हैं, तुम हमको आचार्य के घर ले चलो ॥ १ ॥

मूलम् ।

ब्रह्मणश्च ते पादं ब्रवाणीति ब्रवीतु मे भगवानिति तस्मै होवाच प्राची दिक्कला प्रतीची दिक्कला दक्षिणा दिक्कलोदीची दिक्कलैष वै सौम्य चतुष्कलः पादो ब्रह्मणः प्रकाशवान्नाम ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

ब्रह्मणः, च, ते, पादम्, ब्रवाणि, इति, ब्रवीतु, मे, भगवान्, इति, तस्मै, ह, उवाच, प्राची, दिक्, कला, प्रतीची, दिक्, कला, दक्षिणा, दिक्, कला, उदीची, दिक्, कला, एषः, वै, सौम्य, चतुष्कलः, पादः, ब्रह्मणः, प्रकाशवान्, नाम ॥

अन्वयः	पदार्थ
च	और
+ अहम्	मैं
ते	तेरे लिये
ब्रह्मणः	ब्रह्म का
पादम्	पाद
ब्रवाणि	कहूंगा
इति	इस प्रकार
+ उक्तः	कहे हुए सत्यकाम ने
+ प्रत्युवाच	जवाब दिया
भगवान्	हे पूज्य आप
मे	मेरे लिये
ब्रवीतु	कहें
इति	तब
+ सः	वह बैल
तस्मै	सत्यकाम से
उवाच ह	कहता भया कि
प्राची	पूर्व
दिक्	दिशा
कला	एक पाद है
प्रतीची	पश्चिम
दिक्कला	दिशा
+ एकपादः	एकपाद है
दक्षिणा	दक्षिण

दिक्कला=दिशा
+ एकपादः=एकपाद है
उदीची=उत्तर
दिक्कला=दिशा
+ एकपादः=एकपाद है
सौम्य=हे सत्यकाम !

ब्रह्मणः=परब्रह्म के
प्रकाशवान्=प्रकाशस्वरूप
चतुष्कलः=चार अंगोंवाले
नाम=प्रसिद्ध
एषः वै=यह ही
पादः=चार पाद हैं

भावार्थ ।

मैं तुम्हारे प्रति ब्रह्म के पाद को कहूंगा। सत्यकाम ने कहा, हे भगवन्! कहिये ऐसा सुनकर ऋषभ ने सत्यकाम से कहा—पूर्व दिशा एक पाद है, पश्चिम दिशा एक पाद है, दक्षिण दिशा एक पाद है और उत्तर दिशा एक पाद है। कलाशब्द का अर्थ अवयव है अर्थात् इन चारों अवयवोंवाला ब्रह्म का एक पाद है और वह प्रकाश गुण-वाला भी है और यही उसका नाम भी है। इसी प्रकार बाकी के तीन पाद भी चार २ अवयवोंवाले हैं ॥ २ ॥

मूलम् ।

स य एतमेवं विद्वांश्चतुष्कलं पादं ब्रह्मणः प्रकाशवानित्युपास्ते प्रकाशवानस्मिँल्लोके भवति प्रकाशवतो ह लोकाञ्जयति य एतमेवं विद्वांश्चतुष्कलं पादं ब्रह्मणः प्रकाशवानित्युपास्ते ॥ ३ ॥

इति पञ्चमः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

सः, यः, एतम्, एवम्, विद्वान्, चतुष्कलम, पादम्, ब्रह्मणः, प्रकाशवान्, इति, उपास्ते, प्रकाशवान्, अस्मिन्, लोके, भवति, प्रकाशवतः, ह, लोकान्, जयति, यः, एतम्, एवम्, विद्वान्, चतुष्कलम्, पादम्, ब्रह्मणः, प्रकाशवान्, इति, उपास्ते ॥

अन्वयः पदार्थ

यः=जो
विद्वान्=विद्वान्
ब्रह्मणः=ब्रह्म के
चतुष्कलम्=चारभागवाले
एतम् एवम्=इसी
पादम्=पाद को
प्रकाशवान्=प्रकाशवान्
इति=ऐसा
+ विदित्वा=जानकर
उपास्ते=उपासना करता है
सः=वह
अस्मिन्=इस
लोके=लोक में
प्रकाशवान्=विख्यात
भवति=होता है (यह दृष्ट फल है)
+ च=और

अन्वयः पदार्थ

यः=जो
विद्वान्=विद्वान्
ब्रह्मणः=ब्रह्म के
चतुष्कलम्=चारअङ्गवाले
एतम् एवमेव=इसी
पादम्=पाद को
प्रकाशवान्=प्रकाशवान्
इति=ऐसा
+ ज्ञात्वा=जान करके
उपास्ते=उपासना करता है
+ सः=वह
ह=निश्चय करके
। शवतः=प्रकाशवाले
लोकान्=देवता आदिकों के लोकों को
जयति=प्राप्त होता है (यह अदृष्ट फल है)

भावार्थ ।

जो विद्वान् इस प्रकार चार अवयवोंवाले प्रकाशवान् ब्रह्म के पाद की उपासना करता है वह इस लोक में प्रकाशवाला होता है अर्थात् प्रसिद्ध होता है और प्रकाशवाले लोक को भी वह देह त्याग के अनन्तर प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

इति पञ्चमः खण्डः ।

अथ चतुर्थाध्यायस्य षष्ठः खण्डः ।

मूलम् ।

अग्निष्टे पादं वक्तेति स ह श्वोभूते गा अभिप्रस्थापयाञ्चकार ता यत्राभिसायं बभूवुस्तत्राग्निमुपसमा-

धाय गा उपरुध्य समिधमाधाय पश्चादग्नेः प्राङुपोपविवेश ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

अग्निः, ते, पादम्, वक्ता, इति, सः, ह, श्वोभूते, गाः, अभिप्रस्थापयाञ्चकार, ताः, यत्र, अभि, सायम्, बभूवुः, तत्र, अग्निम्, उपसमाधाय, गाः, उपरुध्य, समिधम्, आधाय, पश्चात्, अग्नेः, प्राङ्, उप, उपविवेश ॥

अन्वयः	पदार्थ
+ सः	वह
अग्निः	अग्नि
ते	तेरे लिये
+ ब्रह्मणः	ब्रह्म के
पादम्	दूसरे पाद को
वक्ता	कहेगा
इति	इस प्रकार
+ उपरराम	कहकर बैल चुप हो गया
सः ह	वह सत्यकाम
श्वोभूते	दूसरे दिन
+ नित्यकर्म	नित्यकर्म
+ कृत्वा	करके
गाः	गौवों को
+ आचार्यकुलम् प्रति	आचार्य के घर की ओर
अभिप्रस्थापयाञ्चकार	ले चलता भया
ताः	वह गौवें
यत्र	जिस स्थान में
सायम्	रात्रि के बिषे
अभिबभूवुः	इकट्ठी होती भई
तत्र	वहीं
अग्निम्	अग्नि को
उपसमाधाय	संस्कारपूर्वक स्थापन करके
+ च	और
गाः	गौओं को
उपरुध्य	रोक करके
समिधम्	लकड़ी
आधाय	होम के लिये रखकर
अग्नेः	अग्नि के
पश्चात्	पीछे
उपप्राङ्	पूर्वाभिमुख होकर
उपविवेश	बैठता भया

भावार्थ ।

फिर ऋषभ ने सत्यकाम से कहा, अग्निदेवता तुम्हारे प्रति ब्रह्म के

दूसरे पाद को कहेगा, ऐसे कहकर ऋषभ तूष्णीम् होता भया । दूसरे दिन सत्यकाम सवेरे नित्यकर्म करके गौवों को आचार्य के घर को लेजाने के वास्ते हांकता भया अर्थात् ले करके चला । चलते-चलते जहां सन्ध्या का समय आया वहीं पर सब गौवों को रोक दिया और गौवें भी सब वहां पर बैठ गईं; तब लकड़ियों को लाकर, अग्नि को जलाकर, सत्यकाम अग्नि के पीछे पूर्वमुख होकर बैठ गया और ऋषभ के वाक्य को स्मरण करने लगा ॥ १ ॥

मूलम् ।

तमग्निरभ्युवाद सत्यकाम इति भगव इति ह प्रतिशुश्राव ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

तम्, अग्निः, अभ्युवाद, सत्यकाम, इति, भगव, इति, ह, प्रतिशुश्राव ॥

अन्वयः	पदार्थ
सत्यकाम	हे सत्यकाम !
इति	इस प्रकार
+ संबोध्य	संबोधन करके
अग्निः	अग्नि ने
तम्	सत्यकाम से
अभ्युवाद	कहा
+ इति	ऐसा
+ उक्तः	कहा हुआ सत्यकाम
+ तम्	उस अग्नि को
इति ह	इस प्रकार
प्रतिशुश्राव	जवाब देता भया
भगवः	हे पूज्य !

भावार्थ ।

तब अग्नि ने कहा, हे सत्यकाम ! सत्यकाम ने उत्तर दिया, हे भगवन् ! क्या आज्ञा है ॥ २ ॥

मूलम् ।

ब्रह्मणः सौम्य ते पादं ब्रवाणीति ब्रवीतु मे भगवानिति तस्मै होवाच पृथिवी कलाऽन्तरिक्षं कला द्यौः

कला समुद्रः कलैष वै सौम्य चतुष्कलः पादो ब्रह्मणो-ऽनन्तवान्नाम ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

ब्रह्मणः, सौम्य, ते, पादम्, ब्रवाणि, इति, ब्रवीतु, मे, भगवान्, इति, तस्मै, ह, उवाच, पृथिवी, कला, अन्तरिक्षम्, कला, द्यौः, कला, समुद्रः, कला, एषः, वै, सौम्य, चतुष्कलः, पादः, ब्रह्मणः, अनन्तवान्, नाम ॥

अन्वयः	पदार्थ
सौम्य	हे सत्यकाम !
ते	तेरे लिये
ब्रह्मणः	ब्रह्म के
पादम्	पाद को
ब्रवाणि	कहूंगा मैं
इति	इस प्रकार
+ उक्तः	कहे गये सत्यकाम ने
+ बभूव	जवाब दिया
भगवान्	हे पूज्य आप
मे	मेरे लिये
ब्रवीतु	कहें
इति	तब
+ सः	वह अग्नि
तस्मै	उस सत्यकामकेलिये
ह	निश्चय करके
उवाच	कहता भया कि
पृथिवी	पृथिवी
कला	एक पाद है
अन्तरिक्षम्	आकाश
कला	एक पाद है
द्यौः	स्वर्ग
कला	एक पाद है
समुद्रः	समुद्र
कला	एक पाद है
सौम्य	हे सत्यकाम !
एषः	यह
चतुष्कलः	ये चार पाद
वै	निश्चय करके
अनन्तवान्	अविनाशी
नाम	प्रसिद्ध
ब्रह्मणः	ब्रह्म के
पादः	पाद हैं

भावार्थ ।

अग्नि ने कहा हे सौम्य ! ब्रह्म के पाद को मैं तुम्हारे प्रति कहूंगा। सत्यकाम ने कहा हे भगवन्! कहिये ? तब उस सत्यकाम के प्रति अग्नि कहता है—पृथिवी एक पाद है, अन्तरिक्ष एक पाद है, द्युलोक एक पाद

है और समुद्र एक पाद है। हे सौम्य! इन्हीं चार अवयवोंवाला ब्रह्म का एक पाद अनन्त नामवाला है ॥ ३ ॥

मूलम् ।

स य एतमेवं विद्वाꣳश्चतुष्कलं पादं ब्रह्मणोऽनन्तवानित्युपास्तेऽनन्तवानस्मिँल्लोके भवत्यनन्तवतो ह लोकाञ्जयति य एतमेवं विद्वाँश्चतुष्कलं पादं ब्रह्मणोऽनन्तवानित्युपास्ते ॥ ४ ॥

इति षष्ठः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

सः, यः, एतम्, एवम्, विद्वान्, चतुष्कलम्, पादम्, ब्रह्मणः, अनन्तवान्, इति, उपास्ते, अनन्तवान्, अस्मिन्, लोके, भवति, अनन्तवतः, ह, लोकान्, जयति, यः, एतम्, एवम्, विद्वान्, चतुष्कलम्, पादम्, ब्रह्मणः,अनन्तवान्, इति, उपास्ते ॥

अन्वयः	पदार्थ
यः	जो
विद्वान्	विद्वान्
एतमेवम्	इस ही
चतुष्कलम्	चार भागवाले
ब्रह्मणः	ब्रह्म के
पादम्	पाद को
अनन्तवान्	अविनाशी
+ ज्ञात्वा	जान करके
इति	ऊपर कहे हुए प्रकार
उपास्ते	उपासना करता है
सः	वह
अस्मिन्	इस
लोके	लोक में
अनन्तवान्	अनन्त गुणवाला
भवति	होता है (दृष्टफल)
ह	और
यः	जो
विद्वान्	विद्वान्
एतमेवम्	इस ही
चतुष्कलम्	चार अंगवाले
ब्रह्मणः	ब्रह्म के
पादम्	पाद को
अनन्तवान्	अविनाशी
+ विदित्वा	जान करके
इति	ऊपर कहे हुए प्रकार
उपास्ते	उपासना करता है
+ सः	वह

अनन्तवतः=अविनाशी	जयति=प्राप्त होता है (यह
लोकान्=लोकों को	अदृष्ट फल है)

भावार्थ ।

जो विद्वान् इस अनन्त नामवाले चार पाद से ब्रह्म की उपासना करता है, वह इस लोक में अनन्त नामवाला होता है अर्थात् नाश से रहित हो जाता है और फिर शरीर त्याग के पीछे नाशरहित लोकों को भी प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

इति षष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥

अथ चतुर्थाध्यायस्य सप्तमः खण्डः ।

मूलम्

हꣳसस्ते पादं वक्तेति स ह श्वोभूते गा अभिप्रस्थापयाञ्चकार ता यत्राभिसायं बभूवुस्तत्राग्निमुपसमाधाय गा उपरुध्य समिधमाधाय पश्चादग्नेः प्राङुपोपविवेश ॥ १ ॥

पदच्छेदः

हंसः, ते, पादम्, वक्ता, इति, सः, ह, श्वोभूते, गाः, अभिप्रस्थापयाञ्चकार, ताः, यत्र, अभि, सायम्, बभूवुः, तत्र, अग्निम्, उपसमाधाय, गाः, उपरुध्य, समिधम्, आधाय, पश्चात्, अग्नेः, प्राङ्, उप, उपविवेश ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
+ सः	वह	+ अग्निः	अग्नि
हंसः	हंस	+ उपरराम	चुप होगया
ते	तेरे लिये	सः ह	तब वह सत्यकाम
पादम्	दूसरे पाद को	श्वोभूते	दूसरे दिन
वक्ता	कहेगा	+ नित्यकर्म	नित्यकर्म
इति	इस प्रकार	+ कृत्वा	करके
+ उक्त्वा	कहकर	गाः	गौओं को

+ आचार्य-कुलम् प्रति = आचार्य के घर को	आधाय=होम के वास्ते पास रखकर
अभिप्रस्थापयाञ्चकार = ले जाता भया	+ च=और
ताः=वे गौवें	अग्निम्=अग्नि को
यत्र=जहां	उपसमाधाय=संस्कारपूर्वक स्थापन करके
सायम्=रात्रि विषे	अग्नेः=अग्नि के
अभिसंबभूवुः=इकट्ठी होकर रहती भईं	पश्चात्=पीछे
तत्र=वहीं	प्राङ्=पूर्वाभिमुख होकर सत्यकाम
गाः=गौओं को	उप=अग्नि के समीप
उपरुध्य=रोककर	उपविवेश=बैठता भया
समिधम्=लकड़ी को	

भावार्थ ।

फिर अग्नि ने कहा, हंस तुम्हारे प्रति दूसरे पाद को कहेगा । वह सत्यकाम दूसरे दिन होते ही सब गौओं को आचार्य के घर की ओर लेकर चला । चलते-चलते जहांपर सायंकाल का समय हो गया वहां पर गौओं को बैठाकर, लकड़ियों को लाकर और अग्नि को जलाकर उसके पीछे पूर्वमुख हो करके आप बैठ गया ॥ १ ॥

मूलम् ।

तꣳ हꣳस उपनिपत्याभ्युवाद सत्यकाम इति भगव इति ह प्रतिशुश्राव ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

तम्, हंसः, उपनिपत्य, अभ्युवाद, सत्यकाम, इति, भगवः, इति, ह, प्रतिशुश्राव ॥

अन्वयः पदार्थ	अन्वयः पदार्थ
+ तदा=तब	उपनिपत्य=समीप आकर
हंसः=हंस	सत्यकाम=हे सत्यकाम !

इति=इस प्रकार	+ उक्तः=कहा हुआ सत्यकाम
+ संबोध्य=संबोधन करके	इति ह=इस प्रकार
तम्=उस सत्यकाम से	प्रतिशुश्राव=जवाब देता भया
अभ्युवाद=कहा	भगवः=हे भगवन् !
+ तदा=तब वह	+ वद=कहिये

भावार्थ ।

सत्यकाम से हंस ने आ करके कहा, हे सत्यकाम ! सत्यकाम ने भी कहा, हे भगवन् ! क्या आज्ञा है । इस प्रकार उत्तर देता भया ॥ २ ॥

मूलम् ।

ब्रह्मणः सौम्य ते पादं ब्रवाणीति ब्रवीतु मे भगवानिति तस्मै होवाचाग्निः कला सूर्य्यः कला चन्द्रः कला विद्युत् कलैष वै सौम्य चतुष्कलः पादो ब्रह्मणो ज्योतिष्मान्नाम॥३॥

पदच्छेदः ।

ब्रह्मणः, सौम्य, ते, पादम्, ब्रवाणि, इति, ब्रवीतु, मे, भगवान्, इति, तस्मै, ह, उवाच, अग्निः, कला, सूर्य्यः, कला, चन्द्रः, कला, विद्युत्, कला, एषः, वै, सौम्य, चतुष्कलः, पादः, ब्रह्मणः, ज्योतिष्मान्, नाम ॥

अन्वयः पदार्थ	अन्वयः पदार्थ
सौम्य=हे सौम्य !	इति=तब उस हंस ने
ते=तेरे लिये	तस्मै=सत्यकाम के लिये
ब्रह्मणः=परब्रह्म के	उवाच ह=कहता भया कि
पादम्=पाद को	अग्निः=अग्नि
ब्रवाणि=कहूंगा मैं	कला=एक पाद है
इति=इस प्रकार	सूर्य्यः=सूर्य
+ उक्तः बभूव=कहे गये सत्यकाम ने कहा	कला=एक पाद है
	चन्द्रः=चन्द्रमा
मे=मेरे लिये	कला=एक पाद है
भगवान्=हे पूज्य आप	विद्युत्=बिजुली
ब्रवीतु=कहें	कला=एक पाद है

सौम्य=हे सौम्य !	नाम=प्रसिद्ध
एषः=ये	ब्रह्मणः=ब्रह्म के
चतुष्कलः=चार कलावाले	वै=निश्चय करके
ज्योतिष्मान्=प्रकाशमान	पादः=पाद हैं

भावार्थ ।

हंस ने कहा हे सौम्य ! ब्रह्म के पाद को तुम्हारे प्रति मैं कहूंगा । तब सत्यकाम ने कहा कहिये । उस सत्यकाम को हंस कहता भया—अग्नि एक पाद है, सूर्य एक पाद है, चन्द्रमा एक पाद है और विद्युत् एक पाद है । हे सौम्य ! यह चार अवयवोंवाला ब्रह्म का ज्योतिष्मान् पाद है ॥ ३ ॥

मूलम् ।

स य एतमेवं विद्वांश्चतुष्कलं पादं ब्रह्मणो ज्योतिष्मानित्युपास्ते ज्योतिष्मानस्मिँल्लोके भवति ज्योतिष्मतो ह लोकाञ्जयति य एतमेवं विद्वांश्चतुष्कलं पादं ब्रह्मणो ज्योतिष्मानित्युपास्ते ॥ ४ ॥

इति सप्तमः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

सः, यः, एतम्, एवम्, विद्वान्, चतुष्कलम, पादम्, ब्रह्मणः, ज्योतिष्मान्, इति, उपास्ते, ज्योतिष्मान्, अस्मिन्, लोके, भवति, ज्योतिष्मतः, ह, लोकान्, जयति, यः, एतम्, एवम्, विद्वान्, चतुष्कलम, पादम्, ब्रह्मणः, ज्योतिष्मान्, इति, उपास्ते ॥

अन्वयः पदार्थ	अन्वयः पदार्थ
यः=जो	ज्योतिष्मान्=प्रकाशमान्
एतम्=इस	पादम्=पाद की
एवम्=ही	इति=इस प्रकार
चतुष्कलम्=चार कलावाले	उपास्ते=उपासना करता है
ब्रह्मणः=ब्रह्म के	सः=वह

अस्मिन्=इस
लोके=लोक में
ह=निश्चय करके
ज्योतिष्मान्=दीप्तिमान्
भवति=होता है (यह दृष्टफल है)
+च=और
यः=जो
विद्वान्=विद्वान्
एतम्=इसी
एवम्=ही
चतुष्कलम्=चार अंगवाले
ब्रह्मणः=ब्रह्म के
ज्योतिष्मान्=प्रकाशमान्
पादम्=पाद की
इति=इस प्रकार
उपास्ते=उपासना को करता है
+सः=वह पुरुष
ज्योतिष्मतः=चन्द्रादिकों के दीप्तिमान्
लोकान्=लोकों को
जयति=प्राप्त होता है (यह अदृष्ट फल है)

भावार्थ ।

जो इस प्रकार चार अवयवोंवाले ज्योतिष्मान् नामक ब्रह्म के पाद की उपासना को करता है, वह ज्योतिष्मान् होता है अर्थात् प्रतापी होता है, और मरने के पश्चात् वह सूर्यादि लोकों का जीतनेवाला होता है ॥ ४ ॥

इति सप्तमः खण्डः ।

अथ चतुर्थाध्यायस्याष्टमः खण्डः ।

मूलम् ।

मद्गुष्टे पादं वक्तेति स ह श्वोभूते गा अभिप्रस्थापयाञ्चकार ता यत्राभिसायं बभूवुस्तत्राग्निमुपसमाधाय गा उपरुध्य समिधमाधाय पश्चादग्नेः प्राङुपोपविवेश॥१॥

पदच्छेदः ।

मद्गुः, ते, पादम्, वक्ता, इति, सः, ह, श्वोभूते, गाः, अभिप्रस्थापयाञ्चकार, ताः, यत्र, अभिसायम्, बभूवुः, तत्र, अग्निम्, उपसमा-

धाय, गाः, उपरुध्य, समिधम्, आधाय, पश्चात्, अग्नेः, प्राङ्, उप, उपविवेश ॥

अन्वयः	पदार्थ
मद्गुः	जलचर पक्षी
ते	तेरे लिये
पादम्	दूसरे पाद को
वक्ता	कहेगा
इति	इस प्रकार
सः	वह हंस
+ उक्त्वा	कहकर
+ उपरराम	चुप होता भया तब
+ सः	वह सत्यकाम
श्वोभूते	दूसरे दिन
+ नित्यकर्म	नित्य कर्म को
+ कृत्वा	करके
गाः	गौओं को
अभिप्रस्थापयाञ्चकार	ले चलता भया
यत्र	जहां
ताः	वे गौवें
सायम्	रात्रि विषे
अभिबभूवुः	ठहरती भई
तत्र	वहीं
गाः	गौओं को
उपरुध्य	रोक करके
समिधम्	होमार्थ लकड़ी को
आधाय	रखकर
च	और
अग्निम्	अग्नि को
उपसमाधाय	संस्कारपूर्वक स्थापन करके
अग्नेः	अग्नि के
उप	समीप
पश्चात्	पीछे
प्राङ्	पूर्वाभिमुख होकर सत्यकाम
उपविवेश	बैठता भया

भावार्थ ।

फिर हंस ने सत्यकाम से कहा, मद्गु नामवाला जलचर पक्षी तुम्हारे प्रति ब्रह्म के दूसरे पाद को कहेगा; ऐसे कह करके वह चुप होगया । दूसरे दिन सबेरे नित्यकर्म करके सत्यकाम गौओं को ले चला । संध्यासमय एक स्थान में सबको एकत्र करके और बैठा करके पूर्वमुख होकर बैठ गया ॥ १ ॥

मूलम् ।

तं मद्गुरुपनिपत्याभ्युवाद सत्यकाम इति भगव इति ह प्रतिशुश्राव ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

तम्, मद्गुः, उपनिपत्य, अभ्युवाद, सत्यकाम, इति, भगवः, इति, ह, प्रतिशुश्राव ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
मद्गुः	जलचर पक्षी	+ तदा	तब
उपनिपत्य	पास आकर	+ सः	वह
सत्यकाम	हे सत्यकाम !	इति ह	इस प्रकार
इति	इस प्रकार	प्रतिशुश्राव	जवाब देता भया कि
+ संबोध्य	संबोधन करके	भगवः	हे पूज्य आप !
तम्	उस सत्यकाम से	+ वद	कहें क्या कहते हैं
अभ्युवाद	कहता भया		

भावार्थ ।

तब मद्गु ने उस सत्यकाम के समीप आ करके कहा, हे सत्यकाम ! सत्यकाम ने जवाब दिया, हे भगवन् ! कहिये क्या आज्ञा है ॥२॥

मूलम् ।

ब्रह्मणः सौम्य ते पादं ब्रवाणीति ब्रवीतु मे भगवानिति तस्मै होवाच प्राणः कला चक्षुः कला श्रोत्रं कला मनः कलैष वै सौम्य चतुष्कलः पादो ब्रह्मण आयतनवान्नाम ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

ब्रह्मणः, सौम्य, ते, पादम्, ब्रवाणि, इति, ब्रवीतु, मे, भगवान्, इति, तस्मै, ह, उवाच, प्राणः, कला, चक्षुः, कला, श्रोत्रम्, कला, मनः, कला, एषः, वै, सौम्य, चतुष्कलः, पादः, ब्रह्मणः, आयतनवान्, नाम ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
सौम्य	हे सत्यकाम !	ब्रह्मणः	ब्रह्म के
ते	तेरे लिये	पादम्	पाद को

प्रवाणि=कहूंगा मैं
इति=तब
+ सः उवाच=उसने कहा
मे=मेरे लिये
भगवान्=हे पूज्य आप
ब्रवीतु=कहें
इति=इस प्रकार
+ उक्तः=कहा गया जलचर पक्षी
तस्मै=उस सत्यकाम के लिये
उवाच=कहता भया
प्राणः=प्राण
कला=एक पाद है
चक्षुः=नेत्र
कला=एक पाद है
श्रोत्रम्=कर्ण
कला=एक पाद है
मनः=मन
कला=एक पाद है
सौम्य=हे सत्यकाम !
वै=निश्चय करके
चतुष्कलः=चार अंगवाला
आयतनवान्=आयतनवान्
नाम=प्रसिद्ध
एषः=यह
ब्रह्मणः=ब्रह्म का
पादः=पाद है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! तुम्हारे प्रति मैं ब्रह्म के पाद को कहूंगा । सत्यकाम ने कहा, हे भगवन् ! कहिये । उस सत्यकाम के प्रति मद्गु कहता भया । प्राण एक पाद है ,चक्षु एक पाद है, श्रोत्र एक पाद है और मन एक पाद है । हे सौम्य ! यह चार अवयवोंवाला ब्रह्म का नाम आयतनवान् है ॥ ३ ॥

मूलम् ।

स य एतमेवं विद्वांश्चतुष्कलं पादं ब्रह्मण आयतनवानित्युपास्ते आयतनवानस्मिँल्लोके भवत्यायतनवतो ह लोकाञ्जयति य एतमेवं विद्वांश्चतुष्कलं पादं ब्रह्मण आयतनवानित्युपास्ते ॥ ४ ॥

इत्यष्टमः खण्डः ।

पदच्छेदः।

सः, यः, एतम्, एवम्, विद्वान्, चतुष्कलम्, पादम्, ब्रह्मणः, आयतनवान्, इति, उपास्ते, आयतनवान्, अस्मिन्, लोके, भवति, आयतनवतः, ह, लोकान्, जयति, यः, एतम्, एवम्, विद्वान्, चतुष्कलम्, पादम्, ब्रह्मणः, आयतनवान्, इति, उपास्ते॥

अन्वयः	पदार्थ
यः	जो
विद्वान्	विद्वान्
ब्रह्मणः	ब्रह्म के
चतुष्कलम्	चार अंगवाले
एतमेवम्	इस ही
पादम्	पाद की
आयतनवान्	सबका आश्रय
+ ज्ञात्वा	जानकर
इति	इस प्रकार
उपास्ते	उपासना करता है
सः	वह
अस्मिन्	इस
लोके	लोक में
आयतनवान्	आश्रयवाला
भवति	होता है
+ च	और
ह	निश्चय करके
यः	जो
विद्वान्	विद्वान्
चतुष्कलम्	चार अंगोंवाले
ब्रह्मणः	ब्रह्म के
एतमेवम्	इसही
पादम्	पाद को जो
आयतनवान्	सबका आश्रय है
इति	ऐसा
+ विदित्वा	जान करके
उपास्ते	उपासना करता है
+ सः	वह उपासक
आयतनवतः	विस्तृत
लोकान्	लोकों को
जयति	प्राप्त होता है

भावार्थ।

जो विद्वान् इस चार कलावाले ब्रह्म के आयतन नामवाले पाद की उपासना करता है, वह इस लोक में घरवाला होता है और मरने के पीछे बहुत घर सहित लोकों को प्राप्त होता है॥ ४॥

इत्यष्टमः खण्डः।

अथ चतुर्थाध्यायस्य नवमः खण्डः ।

मूलम् ।

प्राप हाचार्य्यकुलं तमाचार्य्योऽभ्युवाद सत्यकाम इति भगव इति ह प्रतिशुश्राव ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

प्राप, ह, आचार्य्यकुलम्, तम्, आचार्य्यः, अभ्युवाद, सत्यकाम, इति, भगवः, इति, ह, प्रतिशुश्राव ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
+ सः	वह सत्यकाम	आचार्य्यः	गुरु
+ ब्रह्मवित्	ब्रह्मवेत्ता	तम्	उस सत्यकाम से
+ सन्	होता हुआ	अभ्युवाद	कहता भया
आचार्य्यकुलम्	आचार्य्य के घर को	इति	इस प्रकार
प्रापह	प्राप्त होता भया	+ उक्तः	कहा गया सत्यकाम
+ हि	तब	भगवः	हे भगवन् !
सत्यकाम	हे सत्यकाम !	+ वद	कहिये
इति	इस प्रकार	ह	ऐसा
+ संबोध्य	संबोधन करके	प्रतिशुश्राव	जवाब देता भया

भावार्थ ।

सत्यकाम इसप्रकार ब्रह्मवित् होकर आचार्य के घर की एक हजार गौओं को साथ लेकर आता भया । उसके मुख को देख करके आचार्य ने संबोधन करके कहा, हे सत्यकाम! उसने कहा, हे भगवन्! क्या आज्ञा है ॥ १ ॥

मूलम् ।

ब्रह्मविदिव वै सौम्य भासि को नु त्वानु शशासेत्यन्ये मनुष्येभ्य इति ह प्रतिजज्ञे भगवांस्त्वेव मे कामे ब्रूयात् ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

ब्रह्मवित्, इव, वै, सौम्य, भासि, कः, नु, त्वा, अनुशशास, इति, अन्ये, मनुष्येभ्यः, इति, ह, प्रतिजज्ञे, भगवान्, तु, एव, मे, कामे, ब्रूयात् ॥

अन्वयः	पदार्थ
सौम्य	हे सत्यकाम !
ब्रह्मवित्	ब्रह्मवेत्ता की
इव	तरह
वै	निश्चय करके
भासि	शोभित होता है तू
नु	प्रश्न है कि
कः	कौन
त्वा	तुझको
अनुशशास	शिक्षा देता भया
इति	इस प्रकार
+ पृष्टः + उवाच	पूछे गये सत्यकाम ने जवाब दिया कि
मनुष्येभ्यः	मनुष्यों से
अन्ये	भिन्न अर्थात् देवता
+ माम्	मुझको
+ अनुशासितवन्तः	अनुशासन करते भये
इति ह	इस प्रकार
प्रतिजज्ञे	प्रतिज्ञा करता भया कि
भगवान् तु	हे भगवन् ! आपही
एव	निश्चय करके
मे	मेरी
कामे	इच्छा के विषय में
ब्रूयात्	कहें

भावार्थ ।

सत्यकाम को प्रसन्नमुख देख करके आचार्य ने कहा, हे सौम्य ! तुम ब्रह्मवित् की तरह भान होते हो, हे सौम्य ! तुमको किसने ब्रह्मज्ञान का उपदेश किया है ? सत्यकाम ने कहा, मनुष्य से भिन्न कौन देवता आपके शिष्य को ब्रह्मज्ञान का उपदेश कर सक्ता है । अब आप मेरी इच्छा को पूर्ण करने के वास्ते मुझको उपदेश करें, मैं आपके उपदेश के सिवाय औरों के उपदेश को अधिक फलदायक नहीं समझता हूं ॥ २ ॥

मूलम् ।

श्रुतꣳ ह्येव मे भगवद्दृशेभ्य आचार्याद्धैव विद्या

विदिता साधिष्ठं प्रापयतीति तस्मै हैतदेवोवाचात्र ह न किञ्चन वीयायेति वीयायेति ॥ ३ ॥

इति नवमः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

श्रुतम्, हि, एव, मे, भगवद्दृशेभ्यः, आचार्य्यात्, ह, एव, विद्या, विदिता, साधिष्ठम्, प्रापयति, इति, तस्मै, ह, एतत्, एव, उवाच, अत्र, ह, न, किञ्चन, वीयाय, इति, वीयाय इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
हि	क्योंकि
भगवद्दृशेभ्यः	आप ऐसे पूज्य
+ ऋषिभ्यः एव	ऋषियों से ही
मे (मया)	मैंने
श्रुतम्	सुना है कि
विद्या	विद्या
आचार्य्यात् ह एव	गुरु ही से
विदिता	जानी गई
साधिष्ठम्	अति उत्तमता को
प्रापयति	प्राप्त होती है
इति	इस लिये
+ भगवानेव ब्रूयादित्युक्त आचार्य्यः	आप ही उपदेश करें इस तरह कहा गया आचार्य
तस्मै	उस सत्यकाम के लिये
एतत् एव	उसी विद्या को
उवाच	कहता भया
इति	इस प्रकार
अत्र ह	गुरु से प्राप्त भई विद्या में
किञ्चन	कुछ भी
न वीयाय	न छूटा अर्थात् भली प्रकार उपदेश किया गया

भावार्थ ।

क्योंकि मैंने आप ऐसे महर्षियों से सुना है कि आचार्य से ही विद्या जानी हुई उत्तमता को पहुँचाती है, इस वास्ते आप ही मुझको विद्या का प्रदान करें । इस पर आचार्य ने उन देवताओं करके कही हुई विद्या को कहा और ऐसा उपदेश किया कि किंचित्मात्र भी बाक़ी न रहा अर्थात् समग्ररूप से शिक्षा दिया ॥ ३ ॥

इति नवमः खण्डः ।

अथ चतुर्थाध्यायस्य दशमः खण्डः ।

मूलम् ।

उपकोसलो ह वै कामलायनः सत्यकामे जाबाले ब्रह्मचर्य्यमुवास तस्य ह द्वादश वर्षाण्यग्नीन्परिचचार स ह स्मान्यानन्तेवासिनः समावर्तयꣳस्तं ह स्मैव न समावर्तयति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

उपकोसलः, ह, वै, कामलायनः, सत्यकामे, जाबाले, ब्रह्मचर्य्यम्, उवास, तस्य, ह, द्वादश, वर्षाणि, अग्नीन्, परिचचार, सः, ह, स्म, अन्यान्, अन्तेवासिनः, समावर्तयन्, तम्, ह, स्म, एव, न, समावर्तयति ॥

अन्वयः	पदार्थ
कामलायनः	कमल का पुत्र
उपकोसलः	उपकोसल नामक ऋषि
ह वै	निश्चय करके
जाबाले	जबाला के पुत्र
सत्यकामं	सत्य काम के समीप
ब्रह्मचर्य्यम्	ब्रह्मविद्या के लिये
उवास	वास करता भया
ह	और
तस्य	उस आचार्य के
अग्नीन्	अग्नियों को
द्वादश	बारह
वर्षाणि	वर्ष पर्यंत
परिचचार	सेवन करता भया
सः ह	वह आचार्य
अन्यान्	और
अन्तेवासिनः	शिष्यों को
समावर्तयन्स्म	विद्या ग्रहण कराकर गृहस्थाश्रम करने के लिये वापस कर दिये
+ परन्तु	पर
तम् ह एव	उस उपकोसल को
न	नहीं
समावर्तयतिस्म	वापस करता भया

भावार्थ ।

अब इस खण्ड में दूसरी रीति से ब्रह्मविद्या को कहते हैं । ब्रह्मविद्या के साधन श्रद्धा और तप हैं, इनको इतिहास द्वारा कहते हैं । उपकोसल

नामवाला कमल का पुत्र कामलायन सत्यकाम जाबाल ऋषि के समीप जाकरके, ब्रह्मचर्य को धारण करके निवास करता भया और बारह वर्षतक आचार्य की अग्नि की सेवा करता रहा। जब सब विद्यार्थी विद्या पढ़ चुके तो गुरु ने उनको उपदेश देकर घर जाने की आज्ञा देदी, परन्तु उपकोसल को उपदेश देकर बिदा नहीं किया ॥ १ ॥

मूलम् ।

तं जायोवाच तप्तो ब्रह्मचारी कुशलमग्नीन्परिचचारीन्मा त्वाग्नयः परिप्रवोचन्प्रब्रूह्यस्मा इति तस्मै हाप्रोच्यैव प्रवासाञ्चक्रे ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

तम्, जाया, उवाच, तप्तः, ब्रह्मचारी, कुशलम्, अग्नीन्, परिचचारीत्, मा, त्वा, अग्नयः, परिप्रवोचन्, प्रब्रूहि, अस्मै, इति, तस्मै, ह, अप्रोच्य, एव, प्रवासाञ्चक्रे ॥

अन्वयः	पदार्थ
जाया	गुरुपत्नी
तम्	आचार्य से
उवाच	कहती भई कि
+ एषः	यह
तप्तः	तप कर चुकनेवाला
ब्रह्मचारी	ब्रह्मचारी
कुशलम्	अच्छी तरह
अग्नीन्	अग्नियों को
परिचचारीत्	सेवन करता भया
अग्नयः	अग्नि
त्वा	आपको
मा परिप्रवोचन्	निन्दा न करें अर्थात् आपको बुरा न समझें
+ अतः	इसलिये
अस्मै	इस उपकोशल के लिये
+ इष्टविद्याम्	अभीष्ट विद्या
प्रब्रूहि	आप उपदेश करें
इति	इस प्रकार
+ जायया	स्त्री करके
+ उक्तः	कहा गया आचार्य
तस्मै ह	उस उपकोसल के लिये
अप्रोच्य	कुछ उपदेश न करके
एव	निश्चय करके
प्रवासाञ्चक्रे	बाहर जाता भया अर्थात् विदेश को चला गया

भावार्थ ।

आचार्य की स्त्री ने अपने पति से कहा, हे भगवन् ! यह ब्रह्मचारी बड़ा तप्त होरहा है अर्थात् दुःखित होरहा है और बहुत दुःख को उठाकर आपकी अग्नि की सेवा भी कर रहा है, आप इसको उपदेश करके घर वापस जाने की आज्ञा दें ताकि अग्नि आपकी निन्दा न करें। स्त्री के कथन को सुन करके भी आचार्य उपकोसल को विसर्जन न करके बाहर चला गया ॥ २ ॥

मूलम् ।

स ह व्याधिनाऽनशितुं दध्रे तमाचार्य्यजायोवाच ब्रह्मचारिन्नशान किंनु नाश्नासीति सहोवाच बहव इमेऽस्मिन्पुरुषे कामा नानात्यया व्याधिभिः प्रतिपूर्णोऽस्मि नाशिष्यामीति ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

सः, ह, व्याधिना, अनशितुम्, दध्रे, तम्, आचार्यजाया, उवाच, ब्रह्मचारिन्, अशान, किम्, नु, न, अश्नासि, इति, सः, ह, उवाच, बहवः, इमे, अस्मिन्, पुरुषे, कामाः, नानात्ययाः, व्याधिभिः, प्रतिपूर्णः, अस्मि, न, अशिष्यामि, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
सः	वह उपकोसल
ह	अति
व्याधिना	मानस दुःख करके
अनशितुम्	लंघन
दध्रे	धारण करता भया
	तब
आचार्य्यजाया	गुरुपत्नी
तम्	उस उपकोसल से
उवाच	कहती भई कि
ब्रह्मचारिन्	हे ब्रह्मचारिन् !
अशान	खा तू
किम्	क्यों
न	नहीं
अश्नासि	खाता है
+ इति	ऐसा
नु	प्रश्न करती है
इति	तब
सः	उपकोसल

उवाच=कहता भया कि हे
मातः !
अस्मिन्=इस
पुरुषे=पुरुष विषे
इमे=ये
बह्वः=बहुत सी
कामाः=इच्छायें
नानात्ययाः=नानाप्रकार की
+ भवन्ति=होती हैं
व्याधिभिः= { उनके न प्राप्त होने से दुःखों करके
प्रतिपूर्णः=परिपूर्ण
अस्मि=मैं हूं
इति=इसलिये
न=नहीं
अशिष्यामि=खाऊंगा

भावार्थ ।

उपकोसल नामवाला ब्रह्मचारी मानसी दुःख करके पीड़ित होकर अनशनव्रत को धारण करके, अग्नि के मन्दिर में चुपचाप हो करके बैठ गया । उस उपकोसल को दुःखी और विना भोजन के चुपचाप बैठे हुए देखकर आचार्य की स्त्री ने उससे कहा—हे ब्रह्मचारिन् ! तुम भोजन क्यों नहीं करते हो ? ब्रह्मचारी ने कहा—मेरे मन में अनेक प्रकार की कामनायें भरी हैं, उनमें से एक भी अभी तक पूर्ण नहीं हुई है । जो उनकी चिन्ता है वही एक व्याधि है, उसी करके मेरा चित्त बड़ा दुःखी होरहा है, इसीसे मैं नहीं भोजन करूंगा । ऐसा कह करके ब्रह्मचारी चुप होगया ॥ ३ ॥

मूलम् ।

अथ हाग्नयः समूदिरे तप्तो ब्रह्मचारी कुशलं नः पर्यचारीद्धन्तास्मै प्रब्रवामेति तस्मै होचुः प्राणो ब्रह्म कं ब्रह्म खं ब्रह्मेति ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, ह, अग्नयः, समूदिरे, तप्तः, ब्रह्मचारी, कुशलम्, नः, पर्यचारीत्, हन्त, अस्मै, प्रब्रवाम, इति, तस्मै, ह, ऊचुः, प्राणः, ब्रह्म, कम्, ब्रह्म, खम्, ब्रह्म, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
अथ ह	इसके बाद
अग्नयः	तीनों अग्नि
समूदिरे	मिलकर कहते भये कि
तप्तः	तप किया है जिसने ऐसा
ब्रह्मचारी	उपकोसल ब्रह्मचारी
कुशलम्	अच्छी तरह से
नः	हम तीनों की
पर्यचारीत्	सेवा करता भया
हन्त	इस हमारे भक्त को छोड़कर आचार्य चला गया
+ अधुना	अब
+ वयम्	हम तीनों अग्नि
अस्मै	इस ब्रह्मचारी के लिये
+ ब्रह्मविद्याम्	ब्रह्मविद्या का
प्रब्रवाम	उपदेश करें
इति	इस प्रकार
+ संप्रधार्य	निश्चय करके
+ ते	वह तीनों अग्नि
तस्मै ह	उस ब्रह्मचारी के लिये
इति	इस प्रकार
ऊचुः	ब्रह्मविद्या को कहते भये
प्राणः	प्राण
ब्रह्म	ब्रह्म है
कम्	क (सुख)
ब्रह्म	ब्रह्म है
खम्	ख (आकाश)
ब्रह्म	ब्रह्म है

भावार्थ ।

तीनों अग्नि चुपचाप बैठे हुये ब्रह्मचारी पर दया करके कहने लगे। यह ब्रह्मचारी बड़ा तपस्वी है और श्रद्धालु भी है, हमारा भक्त है; आवो हम सब मिल करके इसको ब्रह्मविद्या का उपदेश करें । ऐसी सलाह करके उपदेश करना आरम्भ किया कि हे उपकोसल ! प्राण ही ब्रह्म है, (क) अर्थात् आनन्द ब्रह्म है और (ख) अर्थात् आकाश भी ब्रह्म है ॥ ४ ॥

मूलम् ।

स होवाच विजानाम्यहं यत्प्राणो ब्रह्म कं च तु खं च न विजानामीति ते होचुर्यद्वाव कं तदेव खं यदेव खं तदेव-कमिति प्राणं च हास्मै तदाकाशं चोचुः ॥ ५ ॥

इति दशमः खण्डः।

पदच्छेदः ।

सः, ह, उवाच, विजानामि, अहम्, यत्, प्राणः, ब्रह्म, कम्, च, तु, खम्, च, न, विजानामि, इति, ते, ह, ऊचुः, यत्, वाव, कम्, तत्, एव, खम्, यत्, एव, खम्, तत्, एव, कम्, इति, प्राणम्, च, ह, अस्मै, तत्, आकाशम्, च, ऊचुः ॥

अन्वयः **पदार्थ**

सः=वह उपकोसल
ह=निश्चयपूर्वक
उवाच=कहता भया कि
अहम्=मैं
विजानामि=जानता हूं
यत्=जो
प्राणः=प्राण है
+ तत्=वही
+ ब्रह्म=ब्रह्म है
तु=पर
कम्=क
च=और
खम्=ख
ब्रह्म=ब्रह्म है
न=नहीं
विजानामि=जानता हूं
इति=तब
ते ह=वे तीनों अग्नि

अन्वयः **पदार्थ**

ऊचुः=कहते भये
यत् वाव=जो
कम्=सुख है
तत् एव=वही
खम्=आकाश है
च=और
यत्=जो
एव=निश्चय करके
खम्=आकाश है
तत् एव=वही
कम्=सुख है
इति ह=इस प्रकार
प्राणम्=प्राण को
च=और
तत्=उस
आकाशम्=आकाश को
अस्मै=उपकोसल के लिये
ऊचुः=कहते भये

भावार्थ ।

अग्नियों के उपदेश को सुन करके ब्रह्मचारी ने कहा जो अपने प्राण को ब्रह्म कहा है सो तो मैं जानता हूं, क्योंकि प्राण प्रसिद्ध हैं और शरीर में उनके रहने से ही पुरुष का जीवन होता है और शरीर

से निकल जाने पर पुरुष का जीवन समाप्त होजाता है, इसी से प्राणों को ब्रह्मपना युक्त है, परंतु क और ख ब्रह्म वाचक कैसे हो सक्ते हैं ? क शब्द का वाच्य जो सुख अथवा आनन्द है सो तो क्षणध्वंसी है और ख शब्द का वाच्य जो आकाश है सो अचेतन है, इन दोनों को कैसे ब्रह्मता हो सक्ती है ? तब वे अग्नि ब्रह्मचारी के प्रति कहते भये । जो क है सोई ख है अर्थात् जिसको हम क कहते हैं उसीको ख भी हम कहते हैं ख का अर्थ व्यापक है और क का अर्थ सुख अर्थात् आनन्द है । जो व्यापक हो और सुखरूप भी हो वही ब्रह्म है । यहां भूताकाश अचेतन का ग्रहण नहीं हो सक्ता है, क्योंकि वह व्यापक तो है परन्तु सुखरूप नहीं है किन्तु जड़ है और न विषयसुख का ग्रहण होसक्ता है, क्योंकि वह परिच्छिन्न है इसलिये क से मतलब हृदयानन्द से है और ख शब्द से मतलब व्यापक से है अर्थात् हृदयाकाश ब्रह्मानन्दरूप है और तुमसे भिन्न नहीं है किन्तु तुम्हारा स्वरूप ही है ॥ ५ ॥

इति दशमः खण्डः ।

अथ चतुर्थाध्यायस्यैकादशः खण्डः ।

मूलम् ।

अथ हैनं गार्हपत्योऽनुशशास पृथिव्यग्निरन्नमादित्य इति य एष आदित्ये पुरुषो दृश्यते सोऽहमस्मि स एवाहमस्मीति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, ह, एनम्, गार्हपत्यः, अनुशशास, पृथिवी, अग्निः, अन्नम्, आदित्यः, इति, यः, एषः, आदित्ये, पुरुषः, दृश्यते, सः, अहम्, अस्मि, सः, एव, अहम्, अस्मि, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ ह	इसके पीछे	+ तत्र	उस बिषे
गार्हपत्यः	गार्हपत्य अग्नि	एषः	यह
एनम्	इस ब्रह्मचारी को	यः	जो
इति	इस प्रकार	आदित्ये	सूर्य में
अनुशशास	अनुशासन करता भया कि	पुरुषः	पुरुष
पृथिवी	पृथिवी	दृश्यते	दीख पड़ता है
अग्निः	अग्नि	सः	वही
अन्नम्	अन्न	अहम्	मैं
आदित्यः	सूर्य	अस्मि	हूं
+एताः	ये	सः एव	वही
+ मम	मेरे	अहम्	मैं
+ तनवः	शरीर हैं	अस्मि	हूं

भावार्थ ।

प्रथम तो सब अग्नियों ने मिल करके ब्रह्मचारी को उपदेश किया। अब वह तीनों अग्नियां भिन्न भिन्न होकर अपने भिन्न भिन्न उपदेश को करते हैं। उन तीनों अग्नियों में से पहले गार्हपत्य अग्नि उस ब्रह्मचारी को उपदेश करता है—पृथिवी, अग्नि, अन्न और आदित्य यह चार मेरे शरीर हैं और आदित्य बिषे जो पुरुष दिखाई देता है, वह मैं हूं अर्थात् वही मैं गार्हपत्य अग्नि हूं और जो गार्हपत्य अग्नि है वही मैं आदित्य में पुरुष हूं अर्थात् गार्हपत्य अग्नि ही आदित्य है ॥ १ ॥

मूलम् ।

स य एतमेवं विद्वानुपास्तेऽपहते पापकृत्यां लोकी भवति सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति नास्यावरपुरुषाः क्षीयन्त उपवयं तं भुञ्जामोऽस्मिꣳश्च लोकेऽमुष्मिꣳश्च य एतमेवं विद्वानुपास्ते ॥ २ ॥

इत्येकादशः खण्डः ।

पदच्छेदः।

सः, यः, एतम्, एवम् विद्वान्, उपास्ते, अपहते, पापकृत्याम्, लोकी, भवति, सर्वम्, आयुः, एति, ज्योक्, जीवति, न, अस्य, अवरपुरुषाः, क्षीयन्ते, उपवयम्, तम्, भुञ्जामः, अस्मिन्, च, लोके, अमुष्मिन्, च, यः, एतम्, एवम्, विद्वान्, उपास्ते ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यः	जो	अवरपुरुषाः	वंश के लोग
विद्वान्	विद्वान्	न	नहीं
एतम्	इस गार्हपत्य अग्नि की	क्षीयन्ते	नष्ट होते हैं
एवम्	कहे हुए प्रकार से	+ किंच	और
उपास्ते	उपासना करता है	वयम्	हम तीनों अग्नि
सः	वह	तम्	उस उपासक को
पापकृत्याम्	पापकर्म को	अस्मिन्	इस
अपहते	नष्ट करता है	+ लोके	लोक में
लोकी	लोकों का मालिक	च	और
भवति	होता है	अमुष्मिन् लोके	परलोक में
सर्वम्	संपूर्ण	च	भी
आयुः	आयु को	उपभुञ्जामः	पालन करते हैं
एति	प्राप्त होता है	यः	जो
ज्योक्	सुयश के साथ	विद्वान्	विद्वान्
जीवति	जीता है	एतम्	गार्हपत्य अग्नि की
अस्य	इस उपासक के	एवम्	कहे हुए प्रकार
		उपास्ते	उपासना करता है

भावार्थ।

जो पुरुष इस गार्हपत्य अग्नि की अन्न और अन्नादरूप से उपासना करता है वह संपूर्ण पापकर्मों को नाश करता है और अपनी पूर्ण आयु अर्थात् सौ बरस तक जीता है, और शुद्ध जीवनवाला होता है अर्थात् उसके जीवन में कोई कलंक नहीं लगता तथा इसके कुल

में कोई पुरुष कम आयुवाला नहीं होता है । हम उसकी इस लोक और परलोक में पालना करते हैं ॥ २ ॥

इत्येकादशः खण्डः ।

अथ चतुर्थाध्यायस्य द्वादशः खण्डः ।

मूलम् ।

अथ हैनमन्वाहार्य्यपचनोऽनुशशासापो दिशो नक्षत्राणि चन्द्रमा इति य एष चन्द्रमसि पुरुषो दृश्यते सोऽहमस्मि स एवाहमस्मीति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, ह, एनम्, अन्वाहार्य्यपचनः, अनुशशास, आपः, दिशः, नक्षत्राणि, चन्द्रमाः, इति, यः, एषः, चन्द्रमसि, पुरुषः, दृश्यते, सः, अहम्, अस्मि, सः, एव, अहम्, अस्मि, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ ह	इसके पीछे	इति	इस प्रकार
अन्वाहार्य्यपचनः	दक्षिणाग्नि	यः	जो
एनम्	इस ब्रह्मचारी को	एषः	यह
अनुशशास	अनुशासन करता भया	चन्द्रमसि	चन्द्रमा विषे
आपः	जल	पुरुषः	पुरुष
दिशः	दिशा	दृश्यते	दीख पड़ता है
नक्षत्राणि	नक्षत्र	सः	वह
चन्द्रमाः	चन्द्रमा	अहम्	मैं
+ एताः	ये	अस्मि	हूं
+ मम	मेरे	इति	इस प्रकार
+ तनवः	शरीर हैं	सः एव	वही
		अहम्	मैं
		अस्मि	हूं

भावार्थ ।

अब इसके अनन्तर उस उपकोसल ब्रह्मचारी को दक्षिणाग्नि इस प्रकार उपदेश करता भया । जल, दिशा, नक्षत्र और चन्द्रमा ये चार मेरे शरीर हैं और मैं अन्वाहार्य नामवाला अग्नि अपने को चार विभाग करके स्थित हूं । जो यह चन्द्रमा में पुरुष दिखाई देता है वह पुरुष मैं ही हूं ॥ १ ॥

मूलम् ।

स य एतमेवं विद्वानुपास्तेऽपहते पापकृत्यां लोकी भवति सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति नास्यावरपुरुषाः क्षीयन्ते उपवयं तं भुञ्जामोऽस्मिꣳश्च लोकेऽमुष्मिꣳश्च य एतमेवं विद्वानुपास्ते ॥ २ ॥

इति द्वादशः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

सः, यः, एतम्, एवम्, विद्वान्, उपास्ते, अपहते, पापकृत्याम्, लोकी, भवति, सर्वम्, आयुः, एति, ज्योक्, जीवति, न, अस्य, अवर-पुरुषाः, क्षीयन्ते, उपवयम्, तम्, भुञ्जामः, अस्मिन्, च, लोके, अमुष्मिन्, च, यः, एतम्, एवम्, विद्वान्, उपास्ते ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यः	=जो	लोकी	=लोकों का स्वामी
विद्वान्	=विद्वान्	भवति	=होता है
एवम्	=इस प्रकार	सर्वम्	=पूर्ण
एतम्	=दक्षिणाग्नि की	आयुः	=आयु को
उपास्ते	=उपासना करता है	एति	=प्राप्त होता है
सः	=वह	ज्योक्	=सुयश के साथ
पापकृत्याम्	=पापकर्म को	जीवति	=जीता है
अपहते	=नष्ट करता है	अस्य	=इस उपासक के

अवरपुरुषाः=वंश के लोग
न=नहीं
क्षीयन्ते=नष्ट होते हैं
वयम्=हम तीनों अग्नि
अस्मिन्=इस
लोके=लोक में
च=और
अमुष्मिन्लोके च=उस लोक में भी
+ तम्=इस उपासक को
उपभुञ्जामः=पालन करते हैं
यः=जो
विद्वान्=विद्वान्
एवम्=कहे हुए प्रकार से
एतम्=इस दक्षिणाग्नि की
उपास्ते=उपासना करता है

भावार्थ ।

जो विद्वान् इस प्रकार मेरी उपासना करता है वह पापकर्मों से रहित होजाता है, सौ बरस तक जीता है, उज्ज्वल कीर्ति को प्राप्त होता है, कुल में किसी सन्तान का क्षय नहीं होता है और न कुल में कोई नीच पुरुष उत्पन्न होता है तथा हम उसकी दोनों लोकों में पालना करते हैं ॥ २ ॥

इति द्वादशः खण्डः ।

अथ चतुर्थाध्यायस्य त्रयोदशः खण्डः ।

मूलम् ।

अथ हैनमाहवनीयोऽनुशशास प्राण आकाशो द्यौर्विद्युदिति य एष विद्युति पुरुषो दृश्यते सोऽहमस्मि स एवाहमस्मीति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, ह, एनम्, आहवनीयः, अनुशशास, प्राणः, आकाशः, द्यौः, विद्युत्, इति, यः, एषः, विद्युति, पुरुषः, दृश्यते, सः, अहम्, अस्मि, सः, एव, अहम्, अस्मि, इति ॥

अन्वयः पदार्थ
अथ ह=इसके पीछे
आहवनीयः=आहवनीयाग्नि
एनम्=इस उपासक को

अन्वयः पदार्थ
अनुशशास=अनुशासन करता भया कि
प्राणः=प्राण

आकाशः=आकाश	पुरुषः=पुरुष
द्यौः=स्वर्ग	दृश्यते=दीख पड़ता है
विद्युत्=बिजुली	सः=वही
+ एताः=ये चार	अहम्=मैं
+ मे=मेरे	अस्मि=हूं
+तनवः=शरीर हैं	इति=इसलिये
+ तत्र=तहां	सः=वही
यः=जो	एव=निश्चय करके
एषः=यह	अहम्=मैं
विद्युति=बिजुली में	अस्मि=हूं

भावार्थ ।

दक्षिणाग्नि के उपदेश के अनन्तर इस ब्रह्मचारी को आहवनीय अग्नि उपदेश करता भया । प्राण, आकाश, द्यौ और विद्युत् ये चार मेरे शरीर हैं और जो यह पुरुष विद्युत् में दीखता है वही मैं हूं और जो मैं आहवनीय हूं वही विद्युत् में पुरुष है ॥ १ ॥

मूलम् ।

स य एतमेवं विद्वानुपास्तेऽपहते पापकृत्यां लोकी भवति सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति नास्यावरपुरुषाः क्षीयन्त उपवयं तं भुञ्जामोऽस्मिꣳश्च लोकेऽमुष्मिꣳश्च य एतमेवं विद्वानुपास्ते ॥ २ ॥

इति त्रयोदशः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

सः, यः, एतम्, एवम्, विद्वान्, उपास्ते, अपहते, पापकृत्याम्, लोकी-भवति, सर्वम, आयुः, एति, ज्योक्, जीवति, न, अस्य, अवरपुरुषाः, क्षीयन्ते, उपवयम, तम्, भुञ्जामः, अस्मिन्, च, लोके, अमुष्मिन्, च, यः, एतम्, एवम्, विद्वान्, उपास्ते ॥

अन्वयः	पदार्थ
यः	जो
विद्वान्	विद्वान्
एवम्	कहे हुए प्रकार से
एतम्	इस आहवनीयाग्नि की
उपास्ते	उपासना को करता है
सः	वह पुरुष
पापकृत्याम्	पापकर्म को
अपहते	नष्ट करता है
लोकी	लोकों का स्वामी
भवति	होता है
सर्वम्	संपूर्ण
आयुः	आयु को
एति	प्राप्त होता है
ज्योक्	सुयश के साथ
जीवति	जीता है
अस्य	इस उपासक के
अवरपुरुषाः	वंश के लोग
न	नहीं
क्षीयन्ते	नष्ट होते हैं
च	और
वयम्	हम तीनों अग्नि
अस्मिन्	इस
लोके	लोक में
च	और
अमुष्मिन्	उस लोक में
तम्	उस उपासक को
उपभुञ्जामः	पालन करते हैं
यः	जो
विद्वान्	विद्वान्
एवम्	कहे हुए प्रकार
एतम्	इस आहवनीयाग्नि की
उपास्ते	उपासना करता है

भावार्थ ।

जो पुरुष दक्षिणाग्नि की पूर्वोक्त प्रकार से जान करके उपासना करता है वह संपूर्ण पापों को नाश करता है और लोक में प्रसिद्ध गुणों-वाला होता है और पूर्ण आयु तक तेजस्वी हो करके जीता है । इसके कुल में कोई भी अल्प आयुवाला हो करके नहीं मरता है, किन्तु पूर्ण आयुवाले हो करके सब जीते हैं । हम उसकी इस लोक और परलोक में पालना करते हैं ॥ २ ॥

इति त्रयोदशः खण्डः ।

अथ चतुर्थाध्यायस्य चतुर्दशः खण्डः ।

मूलम् ।

ते होचुरुपकोसलैषा सौम्य तेऽस्मद्विद्याऽऽत्मविद्या चाऽऽचार्य्यस्तु ते गतिं वक्तेत्याजगाम हास्याचार्य्यस्तमाचार्य्योऽभ्युवादोपकोसल इति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

ते, ह, ऊचुः, उपकोसल, एषा, सौम्य, ते, अस्मत्, विद्या, आत्मविद्या, च, आचार्य्यः, तु, ते, गतिम्, वक्ता, इति, आजगाम, ह, अस्य, आचार्य्यः, तम्, आचार्य्यः, अभ्युवाद, उपकोसल, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
ते ह	वे तीनों अग्नि	इति	इस
ऊचुः	कहते भये कि	गतिम्	उत्तम मार्ग को
उपकोसल	हे उपकोसल !	वक्ता	कहेगा
सौम्य	हे सौम्य !	+ ततः	इसके पीछे
ते	तेरे लिये	+ कालेन	कुछ काल करके
एषा	यह	अस्य	इस उपकोसल का
अस्मद्विद्या	अग्निविद्या	आचार्य्यः	गुरु
च	और	आजगाम	आता भया
आत्मविद्या	ब्रह्मविद्या	उपकोसल	हे उपकोसल !
+ कथिता	कही गई है	इति	इस प्रकार
तु	लेकिन	+ संबोध्य	संबोधन करके
ते	तेरे लिये	आचार्य्यः	आचार्य ने
आचार्य्यः	गुरु	अभ्युवाद	कहा

भावार्थ ।

भिन्न-भिन्न उपदेशों को करके तीनों अग्नियों ने मिल करके उपकोसल से कहा । हे उपकोसल ! हे सौम्य ! इस अग्निविद्या और ब्रह्मबोध को हमने तुम्हारे प्रति कहा है, अब आचार्य तुम्हारे प्रति अग्नि और ब्रह्म के विद्यामार्ग को कहेगा । यह कह करके तीनों अग्नि उप-

राम हो गये । कुछ काल के पीछे आचार्य भी बाहर से लौट करके अपने घर आया और उपकोसल के मुख को देखकर बोला, हे उपकोसल ! ॥ १ ॥

मूलम् ।

भगव इति ह प्रतिशुश्राव ब्रह्मविद् इव सौम्य ते मुखं भाति को नु त्वाऽनुशशासेति को नु माऽनुशिष्याद्भो इति हापेव निह्नुत इमे नूनमीदृशा अन्यादृशा इति हाग्नीनभ्यूदे किं नु सौम्य किल तेऽवोचन्निति ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

भगवः, इति, ह, प्रतिशुश्राव, ब्रह्मविदः, इव, सौम्य, ते, मुखम्, भाति, कः, नु, त्वाम्, अनुशशास, इति, कः, नु, मा, अनुशिष्यात्, भोः, इति, ह, अप, इव, निह्नुते, इमे, नूनम्, ईदृशाः, अन्यादृशाः, इति, ह, अग्नीन्, अभ्यूदे, किम्, नु, सौम्य, किल, ते, अवोचन्, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
भगवः	हे पूज्य !
इति ह	इस प्रकार निश्चय करके
प्रतिशुश्राव	उपकोसल ने जवाब दिया तब
+ आचार्य्यः	गुरु ने
+ आह	कहा
सौम्य	हे सौम्य, उपकोसल!
ब्रह्मविदः	ब्रह्मवेत्ता की
इव	तरह
ते	तेरा
मुखम्	मुख
+ प्रसन्नम्	हर्षित
भाति	मालूम होता है
नु	मैं पूछता हूं
त्वाम्	तुझको
कः	कौन
अनुशशास	अनुशासन करता भया
इति	इस प्रकार
+ उक्तः	कहा गया उपकोसल
नु	प्रश्न का उत्तर देता है कि
भोः	हे आचार्य !
मा	मुझको आपके अतिरिक्त
कः	कौन अन्य पुरुष
अनुशिष्यात्	अनुशासन करेगा
इति	इस प्रकार कहने से

इव=ऐसा मालूम होता है कि
इह=इस विषय में
अपनिह्नुते इव=कही हुई बात को वह छिपाता है
इमे=ये तीनों अग्नि जो
नूनम्=निश्चय करके
ईदृशाः=कंपित होते हुए पुरुष की तरह
+ भान्ति=मालूम होते हैं
+ च=और
+ ये=जो
अन्यादृशाः=पहले ऐसे नहीं
+ भान्तिस्म=मालूम होते थे
+ इति ह=इस प्रकार हाथ उठाकर
अग्नीन्=अग्नियों की ओर निर्देश करता हुआ
अभ्यूदे=कहता भया तब
पुनः=फिर
+ आचार्य्यः=गुरु ने
+ आह=कहा
सौम्य=हे उपकोसल !
ते=ये अग्नि
किल=पूर्वकाल में
किमु नु=क्या
+ ते=तेरे लिये
अवोचन्=कहते भये

भावार्थ ।

हे भगवन् ! यह मैं हूं क्या आज्ञा है, कहिये । तब आचार्य ने कहा, हे सौम्य ! तेरा मुख ब्रह्मवित् की तरह सुशोभित होरहा है, तुझको किसने ब्रह्मविद्या का उपदेश किया है ? उन अग्नियों की ओर देखकर आचार्य ने कहा क्या तुझको इन अग्नियों ने ब्रह्मविद्या का उपदेश किया है (यह सुनकर तीनों अग्नि कंपायमान हो गये) इसके जवाब में उपकोसल कहता है हे स्वामिन् ! हां, क्योंकि आपके जाने के पीछे मनुष्यों में कौन मेरे को उपदेश कर सकता था ॥ २ ॥

मूलम् ।

इदमिति ह प्रतिजज्ञे लोकान्वाव किल सौम्य तेऽवोचन्नहं तु ते तद्वक्ष्यामि यथा पुष्करपलाश आपो न श्लिष्यन्त एवमेवं विदि पापं कर्म न श्लिष्यत इति ब्रवीतु मे भगवानिति तस्मै होवाच ॥ ३ ॥

इति चतुर्दशः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

इदम्, इति, ह, प्रतिजज्ञे, लोकान्, वाव, किल, सौम्य, ते, अवोचन्, अहम्, तु, ते, तत्, वक्ष्यामि, यथा, पुष्करपलाशे, आपः, न, श्लिष्यन्ते, एवम्, एवंविदि, पापम्, कर्म, न, श्लिष्यते, इति, ब्रवीतु, मे, भगवान्, इति, तस्मै, ह, उवाच ॥

अन्वयः	पदार्थ
इति	इस प्रकार
+ पृष्टः	पूछे हुए उपकोसल ने
ह	स्पष्ट
प्रतिजज्ञे	जवाब दिया कि अग्नियोंकाकहाहुआ
इदम्	यह उपदेश है
+ तदा	तब
+ आचार्य्यः	गुरु ने
+ उवाच	कहा कि
सौम्य	हे उपकोसल !
+ एते	इन
ते	तीनों अग्नियों ने
अवोचन्	जो कुछ कहा है
+ तत्	वह
लोकान् वाव	पृथिव्यादि लोक विषयक
किल	निश्चय करके
+ अवोचन्	कहा है
अहम्	मैं
तत्	उसको
ते	तेरे लिये उत्तम रीति से
तु	अवश्य
वक्ष्यामि	कहूंगा
+ यत्	जिसको
+ ज्ञात्वा	जान करके
यथा	जैसे
पुष्करपलाशे	कमलपत्र से
आपः	जल
न	नहीं
श्लिष्यन्ते	सम्बन्ध करता है
एवम्	वैसे ही
+ ब्रह्म	ब्रह्म को
एवंविदि	पूर्वोक्त रीति से जाननेवाले पुरुष को
पापम्	पाप
कर्म	कर्म
न	नहीं
श्लिष्यते	सम्बन्ध करता है
+ इति सः उवाच	इस पर वह उपकोसल कहता भया
भगवान्	हे पूज्य आप
मे	मेरे लिये

इति=इसी प्रकार	तस्मै ह=उस उपकोसल के
ब्रवीतु=कहैं	लिये
इति=तब आचार्य	उवाच=कहता भया

भावार्थ ।

पर हे भगवन्! दृष्टान्तरूप से अग्नियों ने मेरे प्रति उपदेश किया है, अब आप मेरे प्रति उसको स्पष्टरूप से कहिये। आचार्य ने कहा, हे सौम्य! अग्नियों ने तेरे प्रति पृथिवी आदि लोक का उपदेश किया है, ब्रह्मविद्या का उपदेश नहीं किया है। अब मैं तेरे प्रति उत्तम रीति से ब्रह्मविद्या का उपदेश करता हूं, जिसके माहात्म्य के श्रवण करने से जाननेवाले को पाप वैसे ही स्पर्श नहीं कर सकता है जैसे कमल के पत्ते को जल स्पर्श नहीं कर सकता है। इस तरह आचार्य के वाक्यों को सुन करके उपकोसल ने आचार्य से कहा अब आप मेरे प्रति उपदेश कीजिये ॥ ३ ॥

इति चतुर्दशः खण्डः ।

अथ चतुर्थाध्यायस्य पञ्चदशः खण्डः ।

मूलम् ।

य एषोऽक्षिणि पुरुषो दृश्यते एष आत्मेति होवाचैतदमृतमभयमेतद्ब्रह्मेति तद्यद्यप्यस्मिन्सर्पिर्वोदकं वा सिञ्चति वर्त्मनी एव गच्छति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

यः, एषः, अक्षिणि, पुरुषः, दृश्यते, एषः, आत्मा, इति, ह, उवाच एतत्, अमृतम्, अभयम्, एतत्, ब्रह्म, इति, तत, यद्यपि, अस्मिन्, सर्पिः, वा, उदकम, वा, सिञ्चति, वर्त्मनी, एव, गच्छति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यः	जो	इति	इस प्रकार
एषः	यह	+ आचार्यः	आचार्य
पुरुषः	पुरुष	उवाच	कहता भया
अक्षिणि	नेत्र विषे	यद्यपि	जिस काल में
दृश्यते	दीख पड़ता है	अस्मिन्	पुरुष के नेत्र में
एषः	यही	सर्पिः	घी
+ प्राणिनाम्	प्राणियों का	वा	अथवा
आत्मा	आत्मा है	उदकम्	जल
वा	और	सिञ्चति	डाला जाता है
एतत् ह	यही	तत्	वह घी या जल
अमृतम्	अविनाशी	वर्त्मनी एव	नेत्रों की पलकों से
अभयम्	भयरहित	गच्छति	नीचे गिर जाता है उन नेत्रों को हरज नहीं पहुँच सक्ता है
ब्रह्म	ब्रह्म है		
एतत्	यह बात		

भावार्थ ।

अब आचार्य उपकोसल के प्रति ब्रह्मविद्या का उपदेश करता है । हे सौम्य ! जो नेत्रों में पुरुष दिखाई देता है यही आत्मा है, यही अमृत है, यही अभय है, यही ब्रह्म है । यह ब्रह्मात्मा उसी पुरुष करके देखा जाता है जिसने बाह्यविषयों की ओर से नेत्रों को हटा लिया है और ब्रह्मचर्यादि साधनों करके सम्पन्न है, शान्तचित्त और विवेकी है । जब कोई नेत्रों में घृत अथवा जल डालता है तो वह पलकों के द्वारा बाहर निकल जाता है और नेत्र को कोई हानि नहीं पहुँचती है । जैसे कमल का पत्ता जल में रहता है परंतु जल का स्पर्श उसको हानि नहीं पहुँचाता है । हे सौम्य ! जिसके रहने के स्थान का ऐसा माहात्म्य है तो उसके अन्दर रहनेवाले का कैसा माहात्म्य होगा, यह तुम अनुभव कर सकते हो ॥ १ ॥

मूलम् ।

एतं संयद्वाम इत्याचक्षत एतꣳ हि सर्वाणि वामान्य-भिसंयन्ति सर्वाण्येनं वामान्यभिसंयन्ति य एवं वेद ॥२॥

पदच्छेदः ।

एतम्, संयद्वामः, इति, आचक्षते, एतम्, हि, सर्वाणि, वामानि, अ-भिसंयन्ति, सर्वाणि, एनम्, वामानि, अभिसंयन्ति, यः, एवम्, वेद ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
एनम्	नेत्रस्थ पुरुष को	+ अतः	इसलिये
संयद्वामः	संयद्वाम	सर्वाणि	सब
आचक्षते	कहते हैं	वामानि	सुन्दर पदार्थ
हि	क्योंकि	एनम्	उस पुरुष को
सर्वाणि	सब	अभिसंयन्ति	प्राप्त होते हैं
वामानि	वाम अर्थात् सुन्दर पदार्थ	यः	जो
एतम्	इस पुरुष को	+एतम्	इसको
अभिसंयन्ति	प्राप्त होते हैं	एवम्	इस प्रकार
		वेद	जानता है

भावार्थ ।

इसी यथोक्त पुरुष को अर्थात् आत्मा को संयद्वाम करके कहते हैं । वाम नाम उत्तम पदार्थ का है, जिस कारण से संपूर्ण सुन्दर-सुन्दर अथवा उत्तम पदार्थ आ करके नेत्रस्थ पुरुष को मिलते हैं, इसी कारण जो पुरुष इस प्रकार से जानता है उसको भी संपूर्ण उत्तम-उत्तम और सुन्दर पदार्थ आ करके प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

मूलम् ।

एष उ एव वामनीरेष हि सर्वाणि वामानि नयति सर्वाणि वामानि नयति य एवं वेद ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

एषः, उ, एव, वामनीः, एषः, हि, सर्वाणि, वामानि, नयति, सर्वाणि, वामानि, नयति, यः, एवम्, वेद ॥

अन्वयः	पदार्थ
एषः उ एव	यही नेत्रस्थ पुरुष
वामनीः	वामनी है
हि	क्योंकि
एषः	यही नेत्रस्थ पुरुष
सर्वाणि	सब
वामानि	सुन्दर पदार्थों को
+ प्राणिभ्यः	प्राणियों के लिये
नयति	प्राप्त करता है
सः	वह उपासक
सर्वाणि	सब
वामानि	सुन्दर पदार्थों को
नयति	प्राप्त करता है
यः	जो
एवम्	कहे हुए प्रकार
वेद	जानता है

भावार्थ ।

हे उपकोसल ! यही आत्मा वामनी है, क्योंकि यही आत्मा संपूर्ण पुण्यकर्मों के फलों को पुण्यकर्मों के अनुसार ही प्राप्त करता है जो पुरुष इस प्रकार उसको वामनीरूप करके जानता है उसमें भी आत्मा के धर्म होजाने से संपूर्ण पुण्यकर्मों के फल प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥

मूलम् ।

एष उ एव भामनीरेष हि सर्वेषु लोकेषु भाति सर्वेषु लोकेषु भाति य एवं वेद ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

एषः, उ, एव, भामनीः, एषः, हि, सर्वेषु, लोकेषु, भाति, सर्वेषु, लोकेषु, भाति, यः, एवम्, वेद ॥

अन्वयः	पदार्थ
एषः उ एव	यह नेत्रस्थ पुरुष
भामनीः	भामनी है अर्थात् प्रकाश देनेवाला है
हि	क्योंकि
एषः	यह नेत्रस्थ पुरुष अर्थात् आत्मा
सर्वेषु	सब
लोकेषु	लोकों में

भाति=भासता है
यः=जो
+ एतम्=इसको
एवम्=इस प्रकार
वेद=जानता है

+ सः=वही
सर्वेषु=सब
लोकेषु=लोकों में
भाति=प्रकाश करता है

भावार्थ।

यही आत्मा भामनीरूप भी है, क्योंकि संपूर्ण लोकों में वह सूर्य, अग्नि और चन्द्रमा की सूरत में प्रकाशता है और उन सबको यही आत्मा प्रकाश देता भी है। जो पुरुष इस आत्मा को भामनीरूप से जानता है अथवा उपासना करता है वह भी संसार में प्रकाशमान होता है ॥ ४ ॥

मूलम्।

अथ यदु चैवास्मिञ्छव्यं कुर्वन्ति यदि च नार्चिषमेवा-भिसंभवन्त्यर्चिषोऽहरह्न आपूर्यमाणपक्षमापूर्यमाणपक्षा-द्यान्षडुदङ्ङेति मासाꣳस्तान्मासेभ्यः संवत्सरꣳसंवत्स-रादित्यमादित्याच्चन्द्रमसं चन्द्रमसो विद्युतं तत्पुरुषोऽ-मानवः स एतान्ब्रह्म गमयत्येष देवपथो ब्रह्मपथ एतेन प्र-तिपद्यमाना इमं मानवमावर्तं नावर्तन्ते नावर्तन्ते ॥५॥

इति पञ्चदशः खण्डः।

पदच्छेदः।

अथ, यत्, उ, च, एव, अस्मिन्, शव्यम्, कुर्वन्ति, यदि, च, न, अर्चिषम्, एव, अभिसंभवन्ति, अर्चिषः, अहः, अह्नः, आपूर्यमाणपक्षम्, आपूर्यमाणपक्षाद्यान्, षट्, उदङ्, एति, मासान्, तान् मासेभ्यः, संवत्सरम्, संवत्सरात्, आदित्यम्, आदित्यात्, चन्द्रमसम्, चन्द्रमसः, विद्युतम्, तत्, पुरुषः, अमानवः, सः, एतान्, ब्रह्म, गमयति, एषः, देवपथः, ब्रह्मपथः, एतेन, प्रतिपद्यमानाः, इमम्, मानवम्, आवर्तम्, न, आवर्तन्ते, न, आवर्तन्ते ॥

अन्वयः	पदार्थ
अथ	इसके पीछे
अस्मिन्	इस संसार में मरने पर
यत् उ च एव	जो
+ ऋत्विजः	ऋत्विज्
शव्यम्	और्ध्वदैहिककर्म
कुर्वन्ति	करते हैं
च	और
यदि	जो
+ ऋत्विजः	ऋत्विज्
+ शव्यम्	और्ध्वदैहिककर्म
न	नहीं
+ कुर्वन्ति	करते हैं
+ ते	वे
अर्चिषम्	ज्योति अभिमानी देवता को
एव	ही
अभिसंभवन्ति	प्राप्त होते हैं
अर्चिषः	ज्योति अभिमानी देवता से
अहः	दिन के अभिमानी देवता को प्राप्त होते हैं
अह्नः	दिन के देवता से
आपूर्यमाणपक्षम्	शुक्लपक्षअभिमानी देवता को प्राप्त होते हैं
षट्	छः
आपूर्यमाणपक्षाद्यान्	शुक्लपक्षवाले
मासान्	महीनों को
+ यस्मिन्	जिसमें

अन्वयः	पदार्थ
+ सविता	सूर्य
उदङ्	उत्तर दिशा में
एति	रहता है
तान्	उन
+ मासान्	महीना अभिमानी देवता को अर्थात् उत्तरायण देवता को
+ ते	वे उपासक
+ इयन्ति	प्राप्त होते हैं
मासेभ्यः	षण्मासवाले देवता के बाद
संवत्सरम्	संवत्सर देवता को
+ इयन्ति	प्राप्त होते हैं
संवत्सरात्	संवत्सर देवताके बाद
आदित्यम्	सूर्य देवता को
+ इयन्ति	प्राप्त होते हैं
आदित्यात्	सूर्य के बाद
चन्द्रमसम्	चन्द्रमा
चन्द्रमसः	चन्द्रमा के बाद
विद्युतम्	विद्युत् को
+ इयन्ति	प्राप्त होते हैं
अमानवः	मनुष्य से पृथक्
सः	वह
पुरुषः	पुरुष
एतान्	इन पुरुषों को
+ ब्रह्मलोकात्	ब्रह्मलोक से
+ एत्य	आकर
तत्	उस
ब्रह्म	सत्यलोकस्थब्रह्मको

गमयति=ले जाता है
एषः=यही
देवपथः=देवमार्ग है
+ च=और यही
ब्रह्मपथः=ब्रह्मपथ है
एतेन=इसी मार्ग से
प्रतिपद्यमानाः=जानेवाले लोक
इमम्=इस
मानवम्=मनुसम्बन्धी
आवर्तम्=संसारचक्र को
+ पुनः=फिर
न=नहीं
आवर्तन्ते=वापस आते हैं
न=नहीं
आवर्तन्ते=लौट आते हैं

भावार्थ ।

अब ब्रह्मवेत्ता की गति को कहते हैं । ब्रह्मवेत्ता के मर जाने पर उसके हितकारी उसका शवकर्म अर्थात् मृतकसंस्कार करें व न करें । उसको मृतकसंस्कार करने से न कोई लाभ होता है और न करने से न कोई हानि पहुँचती है क्योंकि यह सब अज्ञानियों के लिये बनाये गये हैं, ज्ञानियों के लिये नहीं । ब्रह्मवित् ज्ञानी जब मरता है तब पहले ज्योतिअभिमानी देवता को प्राप्त होता है, फिर दिन अभिमानी देवता को, फिर शुक्लपक्ष अभिमानी देवता को, फिर उत्तरायण अभिमानी देवता को, फिर छह मासअभिमानी देवता को, फिर वर्ष अभिमानी देवता को, फिर सूर्य अभिमानी देवता को, फिर चन्द्रमा अभिमानी देवता को और फिर बिजुली अभिमानी देवता को प्राप्त होता है । इसके पीछे एक अमानव पुरुष ब्रह्मलोक से आकर उसको ब्रह्मलोक को ले जाता है । यही मार्ग ब्रह्ममार्ग भी कहा जाता है, इसी मार्ग से जानेवाला पुरुष फिर लौट करके इस मृत्युलोक में नहीं आता है ॥ ५ ॥

इति पञ्चदशः खण्डः ।

अथ चतुर्थाध्यायस्य षोडशः खण्डः ।

मूलम् ।

एष ह वै यज्ञो योऽयं पवत एष ह यन्निदꣳ सर्वं पु-

नाति यदेष यन्निदꣳ सर्वं पुनाति तस्मादेष एव यज्ञस्तस्य मनश्च वाग्वर्तनी ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

एषः, ह, वै, यज्ञः, यः, अयम्, पवते, एषः, ह, यन्, इदम्, सर्वम्, पुनाति, यत्, एषः, यन्, इदम्, सर्वम्, पुनाति, तस्मात्, एषः, एव, यज्ञः, तस्य, मनः, च, वाक्, वर्तनी ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
एषः ह वै	यही	एषः	यह वायु
+ वायुः	वायु	यन्	चलता हुआ
यः	जो	इदम्	इस
पवते	चलता है	सर्वम्	संपूर्ण जगत् को
अयम्	यही	पुनाति	पवित्र करता है
यज्ञः	यज्ञ है	तस्मात्	इसी कारण
एषः	यही वायु	एषः एव	यही वायु
ह	निश्चय करके	यज्ञः	यज्ञ है
यन्	चलता	तस्य	इसके
सन्	हुआ	मनः	मन
इदम्	इस	च	और
+सर्वम्	संपूर्ण वस्तुओं को	वाक्	वाणी
पुनाति	पवित्र करता है	वर्तनी	मार्ग हैं
यत्	जिस कारण		

भावार्थ ।

यह चलता हुआ वायु यज्ञ है, यही वायु शुद्ध है । शुद्ध हो करके यही वायु संसार के सर्व पदार्थों को पवित्र करता है, इसीसे यह वायु ही यज्ञरूप है । इस यज्ञ के दो मार्ग हैं—एक मन है और दूसरी वाणी है। यज्ञ का अधिष्ठाता देवता वायु है, यही प्राण अपान है, इसी करके यज्ञ की सिद्धि होती है तथा इसी करके मन और वाणी की प्रवृत्ति होती है ॥ १ ॥

मूलम् ।

तयोरन्यतरां मनसा सꣳस्करोति ब्रह्मा वाचा होताऽध्वर्युरुद्गाताऽन्यतरां स यत्रोपाकृते प्रातरनुवाके पुरा परिधानीयाया ब्रह्मा व्यववदति ॥ २ ॥ *

पदच्छेदः ।

तयोः, अन्यतराम्, मनसा, संस्करोति, ब्रह्मा, वाचा, होता, अध्वर्युः, उद्गाता, अन्यतराम्, सः, यत्र, उपाकृते, प्रातरनुवाके, पुरा, परिधानीयायाः, ब्रह्मा, व्यववदति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
ब्रह्मा	ब्रह्मऋत्विक्	+ संस्कुर्वन्ति	संस्कार करते हैं
तयोः	उन दोनों मार्गों में से	यत्र	ऐसी अवस्था में
अन्यतराम्	एक	सः	वह
+ वर्तनीम्	मार्ग को	ब्रह्मा	ब्रह्मऋत्विज्
मनसा	मन करके	प्रातरनुवाके	प्रातरनुवाक नामक कर्म के
संस्करोति	संस्कार करता है	उपाकृते	प्रारम्भ
होता	ऋग्वेदी ऋत्विज्	+ सति	होने पर
अध्वर्युः	यजुर्वेदी ऋत्विज्	+ च	और
उद्गाता	सामवेदी ऋत्विज्	परिधानीयायाः	परिधानीय ऋचा के जप से
+ एते	ये	पुरा	पहले
+ त्रयः	तीन	व्यववदति	बोलता है
अन्यतराम्	दूसरे मार्ग को		
वाचा	वाणी करके		

भावार्थ ।

उन दो मार्गों में से एक मार्ग को ब्रह्मा जो खास ऋत्विज् होता है वह मन से वाणी का संस्कार करता है अर्थात् चुपचाप ऋचा का ध्यान करता है और होता, अध्वर्यु तथा उद्गाता यह तीनों ऋत्विज् वाणी

*** इस मंत्र के अर्थ का सम्बन्ध आगेवाले मंत्र से है ।

से ही वाणी का संस्कार करके सजाते हैं अर्थात् ऋचा पढ़ते हैं । फिर जिस काल में ब्रह्मा परिधानीय ऋचा से पहले अनुवाक् कर्म के आरंभ में मौन को त्याग करता है और बोल उठता है ॥ २ ॥

मूलम् ।

अन्यतरामेव वर्तनीꣳ संस्करोति हीयतेऽन्यतरा स यथैकपाद् व्रजन् रथो वैकेन चक्रेण वर्तमानो रिष्यत्येवमस्य यज्ञो रिष्यति यज्ञं रिष्यन्तं यजमानोऽनुरिष्यति स इष्ट्वा पापीयान्भवति ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

अन्यतराम्, एव, वर्तनीम्, संस्करोति, हीयते, अन्यतरा, सः, यथा, एकपाद्, व्रजन्, रथः, वा, एकेन, चक्रेण, वर्तमानः, रिष्यति, एवम्, अस्य, यज्ञः, रिष्यति, यज्ञम्, रिष्यन्तम्, यजमानः, अनुरिष्यति, सः, इष्ट्वा, पापीयान्, भवति ॥

अन्वयः	पदार्थ
+ तदा	तब
सः	वह ब्रह्मा
अन्यतराम्	केवल एक
एव	ही
वर्तनीम्	वाणीरूप मार्ग को
संस्करोति	पवित्र करता है
+ च	और
अन्यतरा हीयते	मानो मार्ग नष्ट हो जाता है
यथा	जैसे
एकपाद्	एकपाद से
व्रजन्	चलता हुआ पुरुष
रिष्यति	नष्ट हो जाता है
वा	अथवा
एकेन	एक
चक्रेण	चक्र करके
वर्तमानः	चलनेवाला
रथः	रथ
+ यथा	जैसे
+ रिष्यति	नष्ट हो जाता है
एवम्	इसी प्रकार
अस्य	इस यजमान का
यज्ञः	यज्ञ मन से न ध्यान करने पर और वाणी से उच्चारण करने पर

रिष्यति=नष्ट हो जाता है
च=और
यजमानः=यजमान भी
रिष्यन्तम्=नष्ट होते हुए
यज्ञम्=यज्ञ के
अनुरिष्यति=पीछे नष्ट हो जाता है
+ च=और
सः=वह यजमान ऐसे
इष्ट्वा=यज्ञ करके
पापीयान्=बड़ा पापी
भवति=बनता है

भावार्थ ।

तब वाणीरूपी मार्ग का ही संस्कार करता है मन का नहीं, क्योंकि परिधानीय ऋचा के उच्चारण करने से मन एकाग्र नहीं रहता है, इसी से यज्ञ का नाश हो जाता है और जैसे एक पांव से चलता हुआ पुरुष या एक चक्र से चलता हुआ रथ नाश को प्राप्त हो जाता है उसी तरह ब्रह्मा करके अविधिपूर्वक किया हुआ यजमान का यज्ञ भी नाश को प्राप्त हो जाता है, और यज्ञ के नष्ट हो जाने से यजमान का भी नाश हो जाता है क्योंकि यज्ञ ही यजमान का प्राण होता है, इसी वास्ते यज्ञ के नाश से यजमान का नाश हो जाना योग्य है और वह यजमान भी यज्ञ करने से पापी होता है ॥ ३ ॥

मूलम् ।

अथ यत्रोपाकृते प्रातरनुवाके न पुरा परिधानीयाया ब्रह्मा व्यवदत्युभे एव वर्तनी संस्कुर्वन्ति न हीयतेऽन्यतरा ॥ ४ ॥ *

पदच्छेदः ।

अथ, यत्र, उपाकृते, प्रातरनुवाके, न, पुरा, परिधानीयायाः, ब्रह्मा, व्यवदति, उभे, एव, वर्तनी, संस्कुर्वन्ति, न, हीयते, अन्यतरा ॥

अन्वयः पदार्थ अन्वयः पदार्थ

अथ=फिर
यत्र=जहां
ब्रह्मा=ब्रह्मा ऋत्विज्
प्रातरनुवाके=प्रातरनुवाक कर्म के
उपाकृते=प्रारंभ
+ सति=होने पर

* इस मंत्र का सम्बन्ध अगलेवाले मंत्र से है ।

परिधानीयायाः=परिधानीय ऋचा से
पुरा=पहले
न=नहीं
व्यववदति=मौन किये रहता है
+ च=और
+ सर्वर्त्विजः=सब ऋत्विज्
उभे=दोनों
एव=ही
वर्तनी=मार्गों को अर्थात् मनसम्बन्धी और वाणी सम्बन्धी मार्गों को
संस्कुर्वन्ति=संस्कारयुक्त करते हैं
+ तत्र=वहां
अन्यतरा=दोनों मार्गों में से कोई एक भी मार्ग
न=नहीं
हीयते=नष्ट होता है अर्थात् यज्ञ ठीक हो जाता है

भावार्थ ।

जब ब्रह्मा प्रातरनुवाक कर्म के प्रारंभ हो जाने पर परिधानीय ऋचा के उच्चारण करने से पहले मौन का त्याग ही करता है तब यजमान के दोनों मार्ग संस्कारयुक्त रहते हैं और दोनों में से एक का भी नाश नहीं होता है ॥ ४ ॥

मूलम् ।

स यथोभयपाद्व्रजन् रथो वोभाभ्यां चक्राभ्यां वर्त्तमानः प्रतितिष्ठत्येवमस्य यज्ञः प्रतितिष्ठति यज्ञं प्रतितिष्ठन्तं यजमानोऽनुप्रतितिष्ठति स इष्ट्वा श्रेयान्भवति॥५॥

इति षोडशः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

सः, यथा, उभयपाद्, व्रजन्, रथः, वा, उभाभ्याम्, चक्राभ्याम्, वर्तमानः, प्रतितिष्ठति, एवम्, अस्य, यज्ञः, प्रतितिष्ठति, यज्ञम्, प्रतितिष्ठन्तम्, यजमानः, अनुप्रतितिष्ठति, सः, इष्ट्वा, श्रेयान्, भवति ॥

अन्वयः — पदार्थ

यथा=जैसे
उभयपाद्=दो पांव वाला
सः=वह पुरुष
व्रजन्=मार्ग चलते हुए
+ न=नहीं
+ हीयते=नष्ट होता है अर्थात् नहीं गिरता है
वा=अथवा

उभाभ्याम्=दो	+ च=और
चक्राभ्याम्=पहियों से	यजमानः=यज्ञकर्ता
वर्तमानः=युक्त	प्रतितिष्ठन्तम्=विधियुक्त
रथः=रथ	यज्ञम्=यज्ञ के
+ यथा=जैसे	अनुप्रतितिष्ठति=अनुसार फल को प्राप्त होता है
प्रतितिष्ठति=स्थिर रहता है अर्थात् गिरता नहीं है	+ च=और
एवम्=वैसे ही	+ सः=वह यजमान
अस्य=इस यजमान का	+ इष्ट्वा=यज्ञ करके
यज्ञः=यज्ञ	श्रेयान्=श्रेष्ठ
प्रतितिष्ठति=स्थिर रहता है अर्थात् दोनों मार्गों से युक्त होकर नहीं गिरता है	भवति=होता है

भावार्थ।

फिर जैसे दोनों चक्रों से चलता हुआ रथ स्थिर रहता है इसी प्रकार इस यजमान का यज्ञ भी स्थिर रहता है। यज्ञ के स्थिर रहने से यजमान भी स्थिर रहता है और यजमान यज्ञ को करके कल्याण को प्राप्त हो जाता है॥ ५॥

इति षोडशः खण्डः।

अथ चतुर्थाध्यायस्य सप्तदशः खण्डः।

मूलम्।

प्रजापतिर्लोकानभ्यतपत्तेषां तप्यमानानाꣳ रसान्प्रावृहदग्निं पृथिव्या वायुमन्तरिक्षादादित्यं दिवः॥ १॥

पदच्छेदः।

प्रजापतिः, लोकान्, अभ्यतपत्, तेषाम्, तप्यमानानाम्, रसान्, प्रावृहत्, अग्निम्, पृथिव्याः, वायुम्, अन्तरिक्षात्, आदित्यम्, दिवः॥

अन्वयः	पदार्थ
प्रजापतिः	प्रजापति
लोकान्	लोकों का और
+ उद्दिश्य	लोकाभिमानी देवताओं का
अभ्यतपत्	ध्यानरूप तप करता भया
+च	और
तप्यमानानां तेषाम्	उन तपाये हुए लोकों में से
रसान्	साररूप रसों को
एवम्	इस प्रकार
प्रावृहत्	ग्रहण करता भया
पृथिव्याः	पृथिवी से
अग्निम्	अग्नि को
अन्तरिक्षात्	आकाश से
वायुम्	वायु को
दिवः	स्वर्ग से
आदित्यम्	सूर्य को

भावार्थ ।

प्रजापति ने लोकों से सारवस्तु के ग्रहण करने की इच्छा करके ध्यानरूपी तप को किया । उस ध्यानरूपी तप से पृथिवी से अग्निरूपी रस को और अन्तरिक्ष से वायुरूपी रस को और स्वर्ग से आदित्यरूपी रस को निकालता भया ॥ १ ॥

मूलम् ।

स एतास्तिस्रो देवता अभ्यतपत्तासां तप्यमानानां रसान्प्रावृहदग्नेर्ऋचो वायोर्यजूंषि सामान्यादित्यात् ॥२॥

पदच्छेदः ।

सः, एताः, तिस्रः, देवताः, अभ्यतपत्, तासाम्, तप्यमानानाम्, रसान्, प्रावृहत्, अग्नेः, ऋचः, वायोः, यजूंषि, सामानि, आदित्यात् ॥

अन्वयः	पदार्थ
सः	वह प्रजापति
एताः	इन
तिस्रः	तीन अग्नि, वायु, सूर्य
देवताः	देवताओं का
अभ्यतपत्	ध्यानरूप तप करता भया
तप्यमानानाम्	ध्यान किये हुए
तासाम्	उन देवताओं के
रसान्	सार को
प्रावृहत्	निकालता भया
अग्नेः	अग्नि से
ऋचः	ऋग्वेद को

वायोः=वायु से	आदित्यात्=सूर्य से
यजूंषि=यजुर्वेद को	सामानि=सामवेद को

भावार्थ ।

फिर प्रजापति ने अग्नि, वायु और आदित्य इन तीनों देवताओं को ध्यानरूपी तप से तपाया, उन तपाये हुए देवताओं से अर्थात् अग्नि से ऋग्वेदरूपी रस को, वायु से यजुर्वेदरूपी रस को और आदित्य से सामवेदरूपी रस को निकाला ॥ २ ॥

मूलम् ।

स एतां त्रयीं विद्यामभ्यतपत्तस्यास्तप्यमानाया रसान्प्रावृहत्भूरित्यृग्भ्यो भुवरिति यजुर्भ्यः स्वरिति सामभ्यः ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

सः, एताम्, त्रयीम्, विद्याम्, अभ्यतपत्, तस्याः, तप्यमानायाः, रसान्, प्रावृहत्, भूः, इति, ऋग्भ्यः, भुवः, इति, यजुर्भ्यः, स्वः, इति, सामभ्यः ॥

अन्वयः पदार्थ	अन्वयः पदार्थ
+ पुनः=फिर	ऋग्भ्यः=ऋग्वेद से
सः=वह प्रजापति	भूः=भूः
एताम्=इन	इति=ऐसी व्याहृति को
त्रयीम्=तीन	यजुर्भ्यः=यजुर्वेद से
विद्याम्=वेदों का	भुवः=भुवः
अभ्यतपत्=ध्यानरूप तप करता भया	इति=ऐसी व्याहृति को
तप्यमानायाः=ध्यान की हुई	सामभ्यः=सामवेद से
तस्याः=वेदत्रयी के	स्वः=स्वः
रसान्=सार को	इति=ऐसी व्याहृति को
प्रावृहत्=निकालता भया	+जग्राह=ग्रहण करता भया

भावार्थ ।

फिर उस प्रजापति ने ऋक्, साम और यजुर्वेदत्रयी को ध्यानरूपी तप से तपाया । उस तपे हुए ऋग्वेद से भूः, यजुर्वेद से भुवः, और सामवेद से स्वः, व्याहृतिरूपी रस को निकाला । इसी वास्ते तीनों लोक, तीनों देवता और तीनों वेदों का रसरूप यह तीनों व्याहृतियां हैं ॥ ३ ॥

मूलम् ।

तद्यदृक्तो रिष्येद् भूःस्वाहेति गार्हपत्ये जुहुयादृचामेव तद्रसेन वीर्येणर्चां यज्ञस्य विरिष्टꣳ संदधाति ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

तत्, यत्, ऋक्तः, रिष्येत्, भूःस्वाहा, इति, गार्हपत्ये, जुहुयात्, ऋचाम्, एव, तत्, रसेन, वीर्येण, ऋचाम्, यज्ञस्य, विरिष्टम्, संदधाति ॥

अन्वयः	पदार्थ
तत्	इसलिये
यत्	यदि (अगर)
ऋक्तः	ऋग्वेदसम्बन्धी
+ यज्ञः	यज्ञ
रिष्येत्	नष्ट होजाय तो
भूःस्वाहा	भूःस्वाहा
इति	इस मंत्र करके
गार्हपत्ये	गार्हपत्य अग्नि में
जुहुयात्	होम करे
तत्	तब
ऋचाम्	ऋग्वेद के
रसेन	सार करके
ऋचाम्	ऋग्वेद के
वीर्येण	महत्त्व करके
+यजमानः	यजमान के
यज्ञस्य	यज्ञ की
विरिष्टम्	अपूर्णता को
एव	अवश्य
+सः	वह ब्रह्मा ऋत्विज्
संदधाति	पूर्ण करता है अर्थात् यज्ञ की कमी को मिटाता है

भावार्थ ।

यदि ऋग्वेद की ऋचाओं की ओर से यज्ञ में किसी तरह की

हानि पहुँचे तब गार्हपत्याग्नि में "भूः स्वाहा" इस मंत्र करके हवन करने से क्षति दूर होजाती है; क्योंकि ऋग्वेद से उत्पन्न हुई हानि ऋग्वेद के रसरूपी व्याहृति से ही दूर हो सक्ती है ॥ ४ ॥

मूलम् ।

अथ यदि यजुष्टो रिष्येद् भुवःस्वाहेति दक्षिणाग्नौ जुहुयाद्यजुषामेव तद्रसेन यजुषां वीर्येण यजुषां यज्ञस्य विरिष्टꣳ संदधाति ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यदि, यजुष्टः, रिष्येत्, भुवःस्वाहा, इति, दक्षिणाग्नौ, जुहुयात्, यजुषाम्, एव, तत्, रसेन, यजुषाम्, वीर्येण, यजुषाम्, यज्ञस्य, विरिष्टम्, संदधाति ॥

अन्वयः	पदार्थ
अथ	अब
यदि	अगर
यजुष्टः	यजुर्वेद के सम्बन्ध से
+ यज्ञः	यज्ञ
रिष्येत्	अपूर्ण होवे तो
भुवःस्वाहा	भुवःस्वाहा
इति	इस मंत्र करके
दक्षिणाग्नौ	दक्षिणाग्नि में
जुहुयात्	हवन करे
तत्	तब
यजुषाम्	यजुर्वेद के
रसेन	सार करके
यजुषाम्	यजुर्वेद के
वीर्येण	प्रभाव करके
+ एव	ही
यजुषाम्	यजुर्वेद के
यज्ञस्य	यज्ञ की
विरिष्टम्	कमी को
एव	अवश्य
सः	वह ऋत्विज्
संदधाति	पूर्ण करता है

भावार्थ ।

यदि यजुर्वेद के मंत्रों से यज्ञ में किसी तरह की क्षति होवे तब दक्षिणाग्नि में "भुवःस्वाहा" इस मंत्र से हवन करने से वह क्षति दूर हो जाती है; क्योंकि यजुर्वेद के मंत्रों से यज्ञ में हानि पहुँची हुई यजुर्वेद के रसरूपी व्याहृति से ही दूर हो सकती है ॥ ५ ॥

मूलम् ।

अथ यदि सामतो रिष्येत्स्वःस्वाहेत्याहवनीये जुहुयात्साम्नामेव तद्रसेन साम्नां वीर्येण साम्नां यज्ञस्य विरिष्टं संदधाति ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यदि, सामतः, रिष्येत्, स्वःस्वाहा, इति, आहवनीये, जुहुयात्, साम्नाम्, एव, तत्, रसेन, साम्नाम, वीर्येण, साम्नाम्, यज्ञस्य, विरिष्टम्, संदधाति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ	इसके पीछे	तत्	तब
यदि	अगर	साम्नाम्	सामवेद के
+ यज्ञः	यज्ञ	रसेन	सार करके
सामतः	सामवेद के सम्बन्ध से	साम्नान्	सामवेद के
रिष्येत्	अपूर्णता को प्राप्त हो तो	वीर्येण	प्रभाव करके
स्वःस्वाहा	स्वःस्वाहा	साम्नाम्	सामवेद के
इति	इस मंत्र करके	यज्ञस्य	यज्ञ की
आहवनीये	आहवनीय अग्नि में	विरिष्टम्	अपूर्णता
जुहुयात्	होम करे	एव	अवश्य
		+ सः	वह ऋत्विज
		संदधाति	पूर्ण करता है

भावार्थ ।

यदि यज्ञ में सामवेद के मंत्रों के उच्चारण करने से किसी तरह की क्षति हुई हो तब आहवनीय अग्नि में स्वःस्वाहा इस मंत्र करके हवन करने से वह क्षति पूर्ण हो जाती है; क्योंकि सामवेद के मंत्रों से उत्पन्न हुई क्षति सामवेद के रसरूपी व्याहृति करके ही दूर हो सकती है ॥ ६ ॥

मूलम् ।

तद्यथा लवणेन सुवर्णꣳ संदध्यात्सुवर्णेन रजतꣳ रजतेन त्रपु त्रपुणा सीसं सीसेन लोहं लोहेन दारु दारु चर्मणा ॥ ७ ॥*

पदच्छेदः ।

तत्, यथा, लवणेन, सुवर्णम्, संदध्यात्, सुवर्णेन, रजतम्, रजतेन, त्रपु, त्रपुणा, सीसम्, सीसेन, लोहम्, लोहेन, दारु, दारु, चर्मणा ॥

अन्वयः	पदार्थ
तत्	तब
यथा	जैसे
+ पुरुषः	पुरुष
लवणेन	सुहागा करके
सुवर्णम्	सुवर्ण को
सुवर्णेन	सुवर्ण करके
रजतम्	चांदी को
रजतेन	चांदी करके
त्रपु	रांगा को
त्रपुणा	रांगा करके
सीसम्	सीसे को
सीसेन	सीसा करके
लोहम्	लोहे को
लोहेन	लोहे करके
दारु	लकड़ी को
+ च	और
चर्मणा	चमड़े करके भी
दारु	लकड़ी को
संदध्यात्	बांधता वा साफ़ औरमुलायम कर ताहैअर्थात्अपना कार्यनिकालता है

भावार्थ ।

जैसे कोई सुहागा करके सुवर्ण को और सुवर्ण करके रजत को तथा रजत करके रांगे को और रांगा करके सीसा को, एवं सीसा करके लोहे को और लोहे करके काष्ठ को तथा काष्ठ को चरम करके बांधता है और साफ़ कर देता है अर्थात् अपना कार्य निकालता है ॥ ७ ॥

---

* इस मंत्र का अन्वय अगले मंत्र से है ।

मूलम् ।

एवमेषां लोकानामासां देवतानामस्यास्त्रय्या विद्याया वीर्येण यज्ञस्य विरिष्टꣳ संदधाति भेषजकृतो ह वा एष यज्ञो यत्रैवंविद्ब्रह्मा भवति ॥ ८ ॥

पदच्छेदः ।

एवम्, एषाम्, लोकानाम्, आसाम्, देवतानाम्, अस्याः, त्रय्याः, विद्यायाः, वीर्येण, यज्ञस्य, विरिष्टम्, संदधाति, भेषजकृतः, ह, वै, एषः, यज्ञः, यत्र, एवंविद्, ब्रह्मा, भवति ॥

अन्वयः	पदार्थ
एवम्	इसी प्रकार
एषाम्	इन कहे हुए
लोकानाम्	लोकों के
आसाम्	इन कहे हुए
देवतानाम्	देवताओं के
अस्याः	इन कहे हुए
त्रय्याः	वेदत्रयी
विद्यायाः	विद्या के
वीर्येण	रसरूप प्रभाव से
यज्ञस्य	यज्ञ की
विरिष्टम्	कमी को
+ब्रह्माऋत्विक्	ब्रह्मा ऋत्विज
संदधाति	पूर्ण करता है
यथा	जैसे
भेषजकृतः	रोगी को सुशिक्षित वैद्य नीरोग करदेता है
ह वै	ऐसे ही
यत्र	जिस यज्ञ में
ब्रह्मा	ब्रह्मा ऋत्विज
एवंविद्	इस प्रकार व्याहृतिहोम का और प्रायश्चित्त कर्म का ज्ञाता
भवति	होता है
एषः	वह
यज्ञः	यज्ञ
+वाञ्छितफलदायकः	वांछित फल का देनेवाला
+भवति	होता है

भावार्थ ।

इसी प्रकार इन कहे हुए लोकों के, देवताओं के और त्रयीविद्या के रसरूपी व्याहृतियों करके ऋत्विज ब्रह्मा यज्ञ की हानि को पूर्ण कर देता है । जैसे रोग का जाननेवाला सुशिक्षित वैद्य रोगी पुरुष को

रोग से रहित कर देता है वैसे ही जिस यज्ञ में व्याहृती और होमरूप प्रायश्चित्त का जाननेवाला ब्रह्मा ऋत्विज होता है वह यज्ञ भी फलदायक ही होता है ॥ ८ ॥

मूलम् ।

एष ह वा उदक्प्रवणो यज्ञो यत्रैवंविद्ब्रह्मा भवत्येवंविदं ह वा एषा ब्रह्माणमनुगाथा यतो यत आवर्तते तत्तद्गच्छति ॥ ९ ॥

पदच्छेदः ।

एषः, ह, वै, उदक्प्रवणः, यज्ञः, यत्र, एवंविद्, ब्रह्मा, भवति, एवंविदम्, ह, वै, एषा, ब्रह्माणम्, अनुगाथा, यतः, यतः, आवर्तते, तत्, तत्, गच्छति ॥

अन्वयः	पदार्थ
एषः ह	यही
यज्ञः	यज्ञ
वै	निश्चय करके
उदक्प्रवणः	उत्तर मार्ग की प्राप्ति का हेतु
+ भवति	होता है
एवंविद्	इस प्रकार व्याहृति होम का और प्रायश्चित्त कर्म का ज्ञाता
ब्रह्मा	ब्रह्मा ऋत्विज
भवति	होता है
एवंविदम्	उस ज्ञाता
ब्रह्माणम्	ब्रह्मा के
+ प्रति	प्रति
एषा	यह
ह	निश्चय करके
वै	ऐसी
अनुगाथा	गाथा है कि
यतः	जहां
यतः	जहां से
+ अध्वर्युः	अध्वर्यु
आवर्तते	गिरता है
तत् तत्	तहां तहां
+ तम्	उसको
गच्छति	पहुँचा देता है

भावार्थ ।

यह यज्ञ उत्तर की ओर प्रवाहवाला होता है अर्थात् उत्तम लोक

को ले जाता है, ऐसा जाननेवाला ब्रह्मा होता है। इसी वास्ते यह गाथा ब्रह्मा की स्तुति विषे कही गई है कि जिस जिस स्थान से होता और अध्वर्यु आदि करके हानि पहुँचती है उसी उसी स्थान में ब्रह्मा यज्ञ के प्रायश्चित्त को अनुसंधान करके उस क्षति की पूर्ति को कर देता है ॥ ९ ॥

मूलम्।

मानवो ब्रह्मैवैक ऋत्विक्कुरूनश्वाऽभिरक्षत्येवंविद्ध वै ब्रह्मा यज्ञं यजमानं सर्वांश्चर्त्विजोऽभिरक्षति तस्मा-देवंविदमेव ब्रह्माणं कुर्वीत नानेवंविदं नानेवंविदम् ॥१०॥

इति छान्दोग्योपनिषदि चतुर्थोऽध्यायः।

पदच्छेदः।

मानवः, ब्रह्मा, एव, एकः, ऋत्विक्, कुरून्, अश्वा, अभिरक्षति, एवंविद्, ह, वै, ब्रह्मा, यज्ञम्, यजमानम्, सर्वान्, च, ऋत्विजः, अभिरक्षति, तस्मात्, एवंविदम्, एव, ब्रह्माणं, कुर्वीत, न, अनेवंविदम्, न, अनेवंविदम् ॥

अन्वयः	पदार्थ
एकः	=एक
एव	=ही
मानवः	=ज्ञाता
ब्रह्मा	=ब्रह्मा
ऋत्विक्	=ऋत्विज
कुरून्	=यज्ञकर्ताओं को
अभिरक्षति	=रक्षा करता है
यथा	=जैसे
अश्वा	=घोड़ी अपने सवार को युद्ध में रक्षा करती है

अन्वयः	पदार्थ
एवंविद्	=इस प्रकार व्याहृतिहोम का और प्रायश्चित्त कर्म का ज्ञाता
ब्रह्मा	=ब्रह्मा ऋत्विज
यज्ञम्	=यज्ञ की
यजमानम्	=यजमान की
च	=और
सर्वान्	=सब
ऋत्विजः	=ऋत्विजों की
ह वै	=निश्चय करके
अभिरक्षति	=रक्षा करता है

तस्मात्=इसलिये
एवंविदम्=इस प्रकार यथोक्त व्याहृत्यादि के ज्ञाता को
एव=ही
ब्रह्माणम्=ब्रह्मा ऋत्विज
कुर्वीत=नियुक्त करे
अनेवंविदम्=यथोक्त व्याहृत्यादिक के न जाननेवाले को
न=नहीं
+ कुर्वीत=करे

भावार्थ ।

व्याहृति आदिकों का ज्ञाता यज्ञ की रक्षा को और ऋत्विजों की भी रक्षा को वैसे ही करता है, जैसे घोड़ी लड़ाई में सवार की रक्षा को करती है, इस वास्ते व्याहृति आदिकों के जाननेवाले को ही ब्रह्मा बनाना चाहिये दूसरे को नहीं ॥ १० ॥

इति चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

इति श्रीछान्दोग्योपनिषत्पूर्वार्धः समाप्तः ।

अथ छान्दोग्योपनिषद्

उत्तरार्ध।

(भाषा-टीका-सहित)

पञ्चमाध्यायस्य प्रथमः खण्डः ।
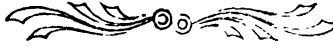
मूलम् ।

ॐ यो ह वै ज्येष्ठं च श्रेष्ठं च वेद ज्येष्ठश्च ह वै श्रेष्ठश्च भवति प्राणो वाव ज्येष्ठश्च श्रेष्ठश्च ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

यः, ह, वै, ज्येष्ठम्, च, श्रेष्ठम्, च, वेद, ज्येष्ठः, च, ह, वै, श्रेष्ठः, च, भवति, प्राणः, वाव, ज्येष्ठः, च, श्रेष्ठः, च ॥

अन्वयः	पदार्थ
यः	जो
ह वै	निश्चय करके
ज्येष्ठम्	आयु में बड़े को
च	और
श्रेष्ठम्	गुणों में उत्तम को
वेद	जानता है
+ सः	वह
ह वै	ही
ज्येष्ठः	सबमें ज्येष्ठ
च	और
श्रेष्ठः	श्रेष्ठ
भवति	होता है
च	और
प्राणः	प्राण
वाव	ही
च	निस्सन्देह
ज्येष्ठः	इन्द्रियों में ज्येष्ठ
च	और
श्रेष्ठः	श्रेष्ठ
+ अस्ति	है

भावार्थ ।

पुनरावृत्तिरूपा दक्षिणायनगति और वारंवार जन्मरूपा संसारगति ये दोनों अतिनिकृष्ट और क्लिष्ट हैं, इनसे मुमुक्षु को वैराग्यवान् होना उचित है, इसलिये इस पञ्चम प्रपाठक की भाषा टीका आरम्भ की जाती है । प्राण के उपासकों के लिये सब इन्द्रियों में प्राण की ज्येष्ठता और श्रेष्ठता प्रथम निरूपण करते हैं और कहते हैं कि जो ज्येष्ठ और श्रेष्ठ को जानता है वह भी ज्येष्ठ और श्रेष्ठ बनजाता है । इस फल का लोभ दिखाकर उपासक की वृत्ति को श्रुति अपने सम्मुख करके कहती है कि हे प्रियदर्शन ! सब इन्द्रियों में प्राण ही ज्येष्ठ है, क्योंकि जब बालक गर्भ में आता है तब उसके पिण्ड में पहले प्राण ही का आगमन होता है और फिर वह वाक् आदि इन्द्रियों के आने के लिये उनके गोलकों में प्रवेश करके उन गोलकों को फैलाता और बढ़ाता है । जिस करके उनके शरीर की वृद्धि और चक्षुआदि इन्द्रियों की स्थिति होती है, इसी कारण प्राण ज्येष्ठ है, "एतस्माज्जायते प्राणः" "प्राणमसृजत" इत्यादि श्रुति प्रमाण और प्राण श्रेष्ठ भी है, जैसे उत्तम घोड़े के दृष्टान्त से आगे मालूम होगा ॥ १ ॥

मूलम् ।

यो ह वै वसिष्ठं वेद वसिष्ठो ह स्वानां भवति वाग्वाव वसिष्ठः ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

यः, ह, वै, वसिष्ठम्, वेद, वसिष्ठः, ह, स्वानाम्, भवति, वाक्, वाव, वसिष्ठः ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यः=जो		ह वै=स्पष्ट	
वसिष्ठम्=धनाढ्य को		वेद=जानता है	

+ सः=वह	वाक्=वाणी
ह=भी	वाव=ही
स्वानाम्=अपनी जातिवालों में	वसिष्ठः=सब इन्द्रियों में
वसिष्ठः=धनाढ्य	धनाढ्य है
भवति=होता है	

भावार्थ ।

जो वसिष्ठ अर्थात् धनाढ्य को जानता है, अर्थात् उपासता है वह भी वसिष्ठ अर्थात् धनाढ्य हो जाता है । वाक् इन्द्रिय वसिष्ठ है, अर्थात् जो वाणीरूप प्राण की उपासना करता है, वह श्रेष्ठ वक्ता और धनवान् होता है और सभा में अपनी ज्ञातियों में सबको पराजय करके उत्तम धन प्राप्त करता है ॥ २ ॥

मूलम् ।

यो ह वै प्रतिष्ठां वेद प्रति ह तिष्ठत्यस्मिꣳश्च लोके-ऽमुष्मिꣳश्च चक्षुर्वाव प्रतिष्ठा ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

यः, ह, वै, प्रतिष्ठाम्, वेद, प्रति, ह, तिष्ठति, अस्मिन्, च, लोके, अमुष्मिन्, च, चक्षुः, वाव, प्रतिष्ठा ॥

अन्वयः पदार्थ	अन्वयः पदार्थ
यः=जो	अमुष्मिन्=परलोक में
प्रतिष्ठाम्=दृढ़ता को	च=भी
ह वै=स्पष्ट	प्रतितिष्ठति=दृढ़ स्थिति को
वेद=जानता है	प्राप्त होता है
+ सः=वह	चक्षुः=नेत्र
अस्मिन्=इस	ह=ही
लोके=लोक में	वाव=स्पष्ट
च=और	प्रतिष्ठा=दृढ़ स्थितिवाला है

भावार्थ ।

जो पुरुष इस प्रसिद्ध, प्रतिष्ठित, चक्षुविशिष्टप्राण को जानता है,

वह जीते हुये इस लोक में और मरने के पश्चात् परलोक में प्रतिष्ठा अर्थात् उत्तम स्थान को प्राप्त होता है, या दृढ़ता को प्राप्त होता है। प्रतिष्ठा क्या है, उस प्रश्न के उत्तर में कहते हैं कि चक्षु ही प्रतिष्ठित अर्थात् दृढ़ है, क्योंकि ऊंच, नीच, सम, दुर्गम स्थल में चक्षु से सम्यक् प्रकार देख करके पुरुष उत्तम स्थान में दृढ़ता के साथ स्थित होता है, इसलिये चक्षु ही प्रतिष्ठा है ॥ ३ ॥

मूलम् ।

यो ह वै संपदं वेद सꣳहास्मै कामाः पद्यन्ते दैवाश्च मानुषाश्च श्रोत्रं वाव संपत् ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

यः, ह, वै, संपदम्, वेद, सम्, ह, अस्मै, कामाः, पद्यन्ते, दैवाः, च, मानुषाः, च, श्रोत्रम्, वाव, संपत् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यः	जो	मानुषाः	मनुष्यसम्बन्धी
वै	निस्सन्देह	च	भी
सम्पदम्	सम्पत्ति को	कामाः	कामनायें
वेद	जानता है	सम्	सम्यक् प्रकार
अस्मै	उसके लिये	पद्यन्ते	प्राप्त होती हैं
ह	स्पष्ट	ह	निश्चय
दैवाः	देवसम्बन्धी	श्रोत्रम्	श्रोत्र
च	और	वाव	ही
		संपत्	संपत्ति है

भावार्थ ।

जो संपदा को जानता है, वह देव और मनुष्यसम्बन्धी कामनाओं को प्राप्त होता है, संपदा क्या है, इस प्रश्न के उत्तर में श्रुति कहती है कि श्रोत्र ही सम्पदा है, अर्थात् जब पुरुष श्रोत्रविशिष्ट प्राण की उपासना करता है तब श्रोत्र इन्द्रिय करके ही वेदों के मंत्रों को ग्रहण

कर उसके अर्थ को जानता है, फिर उसके अनुसार यज्ञादि कर्मों को करता है, उसके पीछे अपनी इष्टकामनाओं को प्राप्त होता है, इस कारण श्रोत्र ही काम संपत्ति के हेतु होने से सम्पदा है ॥ ४ ॥

मूलम् ।

यो ह वा आयतनं वेद आयतनं ह स्वानाम् भवति मनो ह वा आयतनम् ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ।

यः, ह, वै, आयतनम्, वेद, आयतनम्, ह, स्वानाम्, भवति, मनः, ह, वै, आयतनम् ॥

अन्वयः पदार्थ	अन्वयः पदार्थ
यः=जो	स्वानाम्=अपने लोगों का
वै=भले प्रकार	आयतनम्=घर या आश्रम
आयतनम्=घर को या आश्रम को	भवति=होता है
ह=स्पष्ट	मनः=मन
वेद=जानता है	वै=निस्सन्देह
+ सः=वह	ह=स्पष्ट
ह=निश्चय करके	आयतनम्=घर या आश्रम
	+ अस्ति=है

भावार्थ ।

जो कोई अपने स्थान को जानता है, वह अपने लोगों का आश्रय होता है, अर्थात् इन्द्रियों करके ग्रहण किये हुये भोगार्थ व ज्ञानार्थ विषयों का मन ही आश्रय है, इसलिये मन ही सबका आयतन है ॥ ५ ॥

मूलम् ।

अथ ह प्राणा अहꣳ श्रेयसि व्यूदिरेऽहꣳ श्रेयानस्म्यहꣳ श्रेयानस्मीति ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, ह, प्राणाः, अहम्, श्रेयसि, वि, ऊदिरे, अहम्, श्रेयान्, अस्मि, अहम्, श्रेयान्, अस्मि, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ=इसके पीछे		अहम्=मैं	
इति=इस प्रकार		श्रेयान्=श्रेष्ठ	
ह=निश्चय करके		अस्मि=हूं	
प्राणाः=इन्द्रियां		अहम्=मैं	
व्यूदिरे=आपस में लड़ती भई कि		श्रेयान्=श्रेष्ठ	
श्रेयसि=कल्याणकारक वस्तुओं में		अस्मि=हूं	

भावार्थ ।

हे सौम्य ! सब इन्द्रियां यथोक्त गुणों से संयुक्त होने पर भी साहंकार एक दूसरे से लड़ती झगड़ती भई, और कहती भई कि हम श्रेष्ठ हैं हम श्रेष्ठ हैं ॥ ६ ॥

मूलम् ।

ते ह प्राणाः प्रजापतिं पितरमेत्योचुर्भगवन् को नः श्रेष्ठ इति तान् होवाच यस्मिन्व उत्क्रान्ते शरीरं पापिष्ठतरमिव दृश्येत स वः श्रेष्ठ इति ॥ ७ ॥

पदच्छेदः ।

ते, ह, प्राणाः, प्रजापतिम्, पितरम, एत्य, ऊचुः, भगवन्, कः, नः, श्रेष्ठः, इति, तान्, ह, उवाच, यस्मिन्, वः, उत्क्रान्ते, शरीरम्, पापिष्ठतरम्, इव, दृश्येत, सः, वः, श्रेष्ठ, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
ते=वे सब		पितरम्=पितृरूप	
प्राणाः=प्राण आदि इन्द्रियां		प्रजापतिम्=प्रजापति के पास	
ह=स्पष्ट		एत्य=जाकर	

इति=इस प्रकार	वः=तुममें से
ऊचुः=कहती भईं कि	यस्मिन्=जिसके
भगवन्=हे स्वामिन् !	उत्क्रान्ते=निकल जाने पर
नः=हम सबोंमें	शरीरम्=शरीर
कः=कौन	पापिष्ठतरम्=शव
श्रेष्ठः=उत्तम	इव=ऐसा
+ अस्ति=है	दृश्येत=देख पड़े
तान्=उन सबों को	सः=वही
ह=स्पष्ट	वः=तुममें
+ प्रजापतिः=प्रजापति	श्रेष्ठः=श्रेष्ठ
इति=ऐसा	+ अस्ति=है
उवाच=उत्तर देता भया कि	

भावार्थ ।

तब सब इन्द्रियां इस बात के जानने के लिये कि कौन हममें श्रेष्ठ है; अपने पिता प्रजापति के पास जाकर प्रणाम करके कहती भईं कि हे भगवन् ! हम लोगों में से गुणों में कौन श्रेष्ठ है, आप कृपा करके कहें ताकि हमारे आपुस का विवाद मिट जाय, तब तिसको श्रवणकर प्रजापति उन इन्द्रियों से कहता भया कि जिस एक के निकल जाने से यह शरीर अतिशय करके अपवित्र दिखलाई पड़े वही तुम्हारे सबके मध्य श्रेष्ठ है ॥ ७ ॥

मूलम् ।

सा ह वागुच्चक्राम सा संवत्सरं प्रोष्य पर्येत्योवाच कथमशकतर्ते मज्जीवितुमिति यथा कला अवदन्तः प्राणन्तः प्राणेन पश्यन्तश्चक्षुषा शृण्वन्तः श्रोत्रेण ध्यायन्तो मनसैवमिति प्रविवेश ह वाक् ॥ ८ ॥

पदच्छेदः ।

सा, ह, वाक्, उत्, चक्राम, सा, संवत्सरम्, प्रोष्य, पर्येत्य, उवाच, कथम्, अशकत, ऋते, मत्, जीवितुम्, इति, यथा, कलाः, अवदन्तः,

प्राणन्तः, प्राणेन, पश्यन्तः, चक्षुषा, शृण्वन्तः, श्रोत्रेण, ध्यायन्तः, मनसा, एवम्, इति, प्रविवेश, ह, वाक् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
+तदा	तब	यथा	जिस प्रकार
सा	वह	कलाः	गूँगे
वाक्	वाक् इन्द्रिय	अवदन्तः	नहीं बोलते हुये पर
ह	स्पष्ट	प्राणेन	प्राण से
उच्चक्राम	निकलती भई	प्राणन्तः	श्वास लेते हुये
+ च	और	चक्षुषा	नेत्र से
सा	वह	पश्यन्तः	देखते हुये
संवत्सरम्	एक वर्षपर्यन्त	श्रोत्रेण	कान से
प्रोष्य	बाहर रहकर	शृण्वन्तः	सुनते हुये
पर्येत्य	फिर आ करके	मनसा	मन से
उवाच	बोलती भई कि	ध्यायन्तः	ध्यान करते हुये
+यूयम्	तुम सब	+ जीवन्ति	जीते हैं
मत्	मेरे	एवम्	उसी प्रकार
ऋते	विना	+ वयम्	हम सब
कथम्	किस तरह	+ जीवामः	जीते हैं
जीवितुम्	जीने को	इति	ऐसा
अशकत	शक्तिमान् होते भये	श्रुत्वा	सुनकर
इति	इस पर	वाक्	वाक् इन्द्रिय
+ते	उन सबोंने	ह	स्पष्ट
+ ऊचुः	कहा कि	प्रविवेश	शरीर में लौट आई

भावार्थ ।

हे सौम्य ! सर्वज्ञ प्रजापति के कहने पर वाक् इन्द्रिय अपने स्थान से निकलकर एक साल तक अपने व्यापार से उपराम होकर बाहर स्थित होती भई और जब एक साल व्यतीत हो गया तब शरीर के निकट पुनः आकर अन्य इन्द्रियों से प्रश्न करती भई कि हे सहचारियो !

तुम लोग मुझ बिना किस प्रकार अपने जीवन के धारण करने में समर्थ हुए । इस प्रश्न के सुनने पर सबोंने कहा कि जिस प्रकार गूंगा पुरुष लोक में वाणी बिना प्राण करके जीवता है, चक्षु करके देखता है, श्रोत्र करके श्रवण करता है, मन करके मनन करता है इसी प्रकार तुझ एक बिना हम लोग जीते हैं । इस प्रकार जब इन्द्रियों ने कहा तब वह वाक् इन्द्रिय अपनी अश्रेष्ठता समझ कर, श्रेष्ठता के अहंकार को त्याग कर, अपने स्थान में स्थित हो, अपने व्यापार में प्रवृत्त होती भई ॥ ८ ॥

मूलम् ।

चक्षुर्होच्चक्राम तत्संवत्सरं प्रोष्य पर्येत्योवाच कथमशकतर्ते मज्जीवितुमिति यथाऽन्धा अपश्यन्तः प्राणन्तः प्राणेन वदन्तो वाचा शृण्वन्तः श्रोत्रेण ध्यायन्तो मनसैवमिति प्रविवेश ह चक्षुः ॥ ९ ॥

पदच्छेदः ।

चक्षुः, ह, उत्, चक्राम, तत्, संवत्सरम्, प्रोष्य, पर्येत्य, उवाच, कथम्, अशक्रत, ऋते, मत्, जीवितुम्, इति, यथा, अन्धाः, अपश्यन्तः, प्राणन्तः, प्राणेन, वदन्तः, वाचा, शृण्वन्तः, श्रोत्रेण, ध्यायन्तः, मनसा, एवम्, इति, प्रविवेश, ह, चक्षुः ॥

अन्वयः	पदार्थ
+ ततः	तत्पश्चात्
चक्षुः	नेत्र
ह	स्पष्ट
उच्चक्राम	निकलता भया
+ च	और
तत्	वह
संवत्सरम्	एक वर्षतक
प्रोष्य	बाहर रह करके
पर्येत्य	फिर आकर
उवाच	पूछता भया कि
+ यूयम्	तुम सब
मत्	मेरे
ऋते	बिना
कथम्	कैसे

जीवितुम्=जीने को
अशकत=समर्थ भये
इति=इसपर
+ ते=उन सबोंने
+ ऊचुः=कहा कि
यथा=जैसे
अन्धाः=अन्धे
अपश्यन्तः=नहीं देखते हुए
प्राणेन=प्राण से
प्राणन्तः=श्वास लेते हुए
वाचा=वाणी से
वदन्तः=बोलते हुए
श्रोत्रेण=श्रोत्र से
शृण्वन्तः=सुनते हुए
मनसा=मन से
ध्यायन्तः=ध्यान करते हुए
+ जीवन्ति=जीते हैं
एवम्=उसी तरह
+ वयम्=हम सब
+ जीवामः=जीते हैं
इति=ऐसा
+श्रुत्वा=सुन करके
चक्षुः=नेत्र
ह=स्पष्ट
प्रविवेश=शरीर के अन्दर लौट आता भया

भावार्थ ।

हे सौम्य ! जब वाक् इन्द्रिय वापस आकर अपने व्यापार में प्रवृत्त होती भई, तब चक्षु इन्द्रिय अपने विषे श्रेष्ठता का अभिमान कर, शरीर से निकलकर, एक वर्षतक बाहर रहकर, अपने व्यापार से उपराम होकर, इन्द्रियादिकों के समीप आकर पूछती भई कि तुम सब मेरे विना अपने जीवन के धारण करने में कैसे समर्थ हुए ? इसके उत्तर में सबोंने कहा कि जैसे लोक विषे अन्धा विना नेत्र के प्राण करके जीता है, वाणी करके बोलता है, श्रोत्र करके श्रवण करता है और मन करके मनन करता है, इसी प्रकार अन्धपुरुषवत् तुझ विना हम सब अपने अपने व्यापारों को करते हुए प्राण करके जीवते हैं । जब सब इन्द्रियों ने इस प्रकार कहा तब वह चक्षुइन्द्रिय अपनी अश्रेष्ठता का अनुभव कर, श्रेष्ठता के अभिमान को त्यागकर, अपने स्थान में प्रवेश कर, अपने व्यापार में प्रवृत्त होती भई ॥ ९ ॥

मूलम् ।

श्रोत्रꣳ होच्चक्राम तत्संवत्सरं प्रोष्य पर्येत्योवाच कथमशकतर्ते मज्जीवितुमिति यथा बधिरा अशृण्वन्तः प्राणन्तः प्राणेन वदन्तो वाचा पश्यन्तश्चक्षुषा ध्यायन्तो मनसैवमिति प्रविवेश ह श्रोत्रम् ॥ १० ॥

पदच्छेदः ।

श्रोत्रम्, ह, उत्, चक्राम, तत्, संवत्सरम्, प्रोष्य, पर्येत्य, उवाच, कथम्, अशकत, ऋते, मत्, जीवितुम्, इति, यथा, बधिराः, अशृण्वतः, प्राणन्तः, प्राणेन, वदन्तः, वाचा, पश्यन्तः, चक्षुषा, ध्यायन्तः, मनसा, एवम्, इति, प्रविवेश, ह, श्रोत्रम् ॥

अन्वयः	पदार्थ
+ ततः	इसके पीछे
श्रोत्रम्	श्रोत्र इन्द्रिय
ह	स्पष्ट
उच्चक्राम	निकलती भई
+ च	और
तत्	वह
संवत्सरम्	एक वर्ष तक
प्रोष्य	बाहर रहकर
पर्येत्य	फिर आकर
उवाच	बोलती भई कि
यूयम्	तुम सब
मत्	मेरे
ऋते	विना
कथम्	कैसे
जीवितुम्	जीवन को
अशकत	समर्थ होते भये
इति	इस पर
+ ते	वे सब
+ ऊचुः	कहते भये कि
यथा	जैसे
बधिराः	बहिरे
अशृण्वन्तः	नहीं सुनते हुए
प्राणेन	प्राण से
प्राणन्तः	श्वास लेते हुए
वाचा	वाणी से
वदन्तः	बोलते हुए
चक्षुषा	नेत्र से
पश्यन्तः	देखते हुए
मनसा	मन से
ध्यायन्तः	ध्यान करते हुए
+ जीवन्ति	जीते हैं
एवम्	इसी प्रकार
+ जीवामः	हम सब जीते हैं
इति	ऐसा
+ श्रुत्वा	सुन करके

श्रोत्रम्=कर्ण इन्द्रिय	प्रविवेश=शरीर के अन्दर
ह=स्पष्ट	वापस आती भई

भावार्थ ।

हे सौम्य ! जब चक्षुइन्द्रिय अपने स्थान में आकर स्थित हुई, उसके पश्चात् श्रोत्रइन्द्रिय शरीर से निकल कर, एक वर्ष तक बाहर रहकर अपने व्यापार से उपराम होकर फिर आकर बोली कि हे इन्द्रियो ! मुझ बिना तुम सब अपने जीवन के धारण करने में कैसे समर्थ हुए ? तब सबोंने उत्तर दिया कि जैसे बहिरा पुरुष विना श्रोत्र इन्द्रिय के प्राण करके जीवता है, वाणी करके बोलता है, चक्षु करके देखता है, मन करके मनन करता है इसी प्रकार हे श्रोत्रइन्द्रिय ! तेरे विना बधिर पुरुषवत् हम सबका जीवनव्यापार होता है । इस प्रकार जब सब इन्द्रियों ने कहा तब श्रोत्रइन्द्रिय अपने श्रेष्ठत्वपने के अभिमान को त्यागकर और अतिलज्जित हो, अपने स्थान में आकर, फिर अपने व्यापार में प्रवृत्त होती भई ॥ १० ॥

मूलम् ।

मनो होच्चक्राम तत्संवत्सरं प्रोष्य पर्येत्योवाच कथमशकतर्ते मज्जीवितुमिति यथा बाला अमनसः प्राणन्तः प्राणेन वदन्तो वाचा पश्यन्तश्चक्षुषा शृ-ण्वन्तः श्रोत्रेणैवमिति प्रविवेश ह मनः ॥ ११ ॥

पदच्छेदः ।

मनः, ह, उत्, चक्राम, तत्, संवत्सरम्, प्रोष्य, पर्येत्य, उवाच, कथम्, अशकत, ऋते, मत्, जीवितुम्, इति, यथा, बालाः, अमनसः, प्राणन्तः, प्राणेन, वदन्तः, वाचा, पश्यन्तः, चक्षुषा, शृण्वन्तः, श्रोत्रेण, एवम्, इति, प्रविवेश, ह, मनः ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
+ ततः=इसके पीछे		+ ऊचुः=बोलते भये कि	
मनः=मन		यथा=जिस तरह	
ह=स्पष्ट		बालाः=छोटे बालक	
उच्चक्राम=निकलता भया		अमनसः=मनरहित	
+ च=और		प्राणेन=प्राण से	
तत्=वह		प्राणन्तः=श्वास लेते हुए	
संवत्सरम्=एक वर्ष तक		वाचा=वाणी से	
प्रोष्य=देह से बाहर रहकर		वदन्तः=बोलते हुए	
+ पुनः=फिर		चक्षुषा=नेत्र से	
पर्येत्य=वापस आकर		पश्यन्तः=देखते हुए	
उवाच=पूछता भया कि		श्रोत्रेण=कान से	
+ यूयम्=तुम सब		शृण्वन्तः=सुनते हुए	
मत्=मेरे		+ जीवन्ति=जीते हैं	
ऋते=विना		एवम्=इसी प्रकार	
कथम्=किस प्रकार		+ जीवामः=हम सब जीते हैं	
जीवितुम्=जीने को		इति=ऐसा	
अशकत=समर्थ हुए		+ श्रुत्वा=सुनकर	
इति=इसपर		मनः=मन	
+ ते=वे सब		ह=स्पष्ट	
		प्रविवेश=शरीर में लौट आया	

भावार्थ।

हे प्रियदर्शन ! तदनन्तर सब इन्द्रियों में श्रेष्ठ मन ने अभिमान सहित विचार किया कि सबका जीवनव्यापार मेरे आधीन है, यदि मैं शरीर विषे न रहूं तो कोई जी नहीं सकता है, ऐसा सोचकर शरीर से बाहर निकल गया और एक वर्ष पर्यन्त बाहर रहकर, अपने व्यापार से उपराम होकर, शरीरादिकों के निकट आकर इन्द्रियों से पूछता भया कि तुम लोग मुझ विना कैसे जीवन के धारण विषे समर्थ हुए ? तब इन्द्रियों ने उत्तर दिया कि जैसे बालक मन बिना

प्राण करके जीवता है, वाणी करके बोलता है, चक्षु करके देखता है, और श्रोत्र करके सुनता है इसी प्रकार हे मन ! तुम्हारे विना हम लोग भी बालकवत् जीवन का व्यापार करते हैं । इसको सुनकर अपने श्रेष्ठत्वपने के अभिमान को त्याग कर, लज्जा खाकर, अपने स्थान में स्थित होकर, अपने व्यापार में प्रवृत्त होता भया ॥ ११ ॥

मूलम् ।

अथ ह प्राण उच्चिक्रमिषन्स यथा सुहयः पड्वीशशङ्कून् संखिदेदेवमितरान् प्राणान्समखिदत्तꣳ हाभिसमेत्योचुर्भगवन्नेधि त्वं नः श्रेष्ठोऽसि मोत्क्रमीरिति ॥ १२ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, ह, प्राणः, उत्, चिक्रमिषन्, स, यथा, सुहयः पड्वीशशङ्कून्, सम्, खिदेत्, एवम्, इतरान्, प्राणान्, सम्, अखिदत्, तम्, ह, अभि, सम्, एत्य, ऊचुः, भगवन्, एधि, त्वम्, नः, श्रेष्ठः, असि, मा, उत्, क्रमीः, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ	अब	एवम्	उसी तरह
प्राणः	प्राण	+ सः	वह
ह	स्पष्ट	इतरान्	अन्य
उच्चिक्रमिषन्	निकलने की इच्छा करता भया	प्राणान्	इन्द्रियों को
यथा	जिस प्रकार	समखिदत्	उखाड़ता भया
सुहयः	उत्तम घोड़ा	+ तदा	तब
पड्वीशशङ्कून्	मेखों को	+ ते	वे सब
संखिदेत्	उखाड़ कर फेंक देता है	अभिसमेत्य	एक साथ मिल के
		तम्	उस प्राण से
		+ ऊचुः	कहती भई
		भगवन्	हे भगवन्

एधि=आप सदा ऐश्वर्य को प्राप्त होवें
नः=हम लोगों के मध्य
त्वम्=आप
ह=ही
श्रेष्ठः=श्रेष्ठ
असि=हैं
इति=ऐसा कहकर
+ पुनः=फिर
+ ऊचुः=कहती भई कि
मा=मत
उत्क्रमीः=आप इस शरीर के बाहर जावें

भावार्थ ।

हे सौम्य ! जब सब इन्द्रियां हार मानकर और लज्जित होकर अपने-अपने स्थानों में आकर, अपने काम में प्रवृत्त होती भई तब मुख्य प्राण अपने अंश अपानादिकों को लेकर और उनके आधीन इन्द्रियों को उखाड़ कर बाहर निकलने की इच्छा करता भया । जैसे तीव्र घोड़ा परीक्षक के ताड़ने से मेखों को उखाड़ कर भागने की इच्छा करता है । जब इन्द्रियां प्राण के निकलने से विकल होती भईं, तब सब प्राण के समीप आकर नम्रतापूर्वक कहती भईं कि हे भगवन् ! आप पूजा और नमस्कार के योग्य हैं, हम आपकी प्रजा हैं और आपके अर्थ बलि (कर) देने को तैयार हैं । आप हमारे स्वामी हैं, आप अपना कर लेवें और इस देह में रहें, आपके निकलने से हम सब नाश को प्राप्त हो जायँगी ॥ १२ ॥

मूलम् ।

अथ हैनं वागुवाच यदहं वसिष्ठोऽस्मि त्वं तद्वसिष्ठोऽसीत्यथ हैनं चक्षुरुवाच यदहं प्रतिष्ठाऽस्मि त्वं तत्प्रतिष्ठासीति ॥ १३ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, ह, एनम्, वाक्, उवाच, यत्, अहम्, वसिष्ठः, अस्मि, त्वम्, तत्, वसिष्ठः, असि, इति, अथ, ह, एनम्, चक्षुः, उवाच, यत्, अहम्, प्रतिष्ठा, अस्मि, त्वम्, तत्, प्रतिष्ठा, असि, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ=तब		अथ=फिर	
वाक्=वाणी		चक्षुः=नेत्र	
ह=स्पष्ट		ह=स्पष्ट	
एनम्=इस प्राण से		एनम्=इस प्राण से	
उवाच=कहती भई कि		उवाच=कहता भया कि	
यत्=अगर		यत्=यदि	
अहम्=मैं		अहम्=मैं	
वसिष्ठः=धनाढ्य		प्रतिष्ठा=दृढ़ता	
अस्मि=हूं		अस्मि=हूं	
इति=तो		इति=तो	
त्वम्=आप		त्वम्=आप	
+ अपि=भी		+ अपि=भी	
तत्=वैसे ही		तत्=वैसे ही	
वसिष्ठः=धनाढ्य		प्रतिष्ठा=दृढ़ता	
असि=हैं		असि=हैं	

भावार्थ ।

हे सौम्य ! वाक् इन्द्रिय फिर कहती भई कि हे भगवन् ! जो वसिष्ठत्व गुण मेरे विषे है वह आपही का दिया हुआ है, परन्तु अज्ञान करके उस आपके गुण को अपना गुण मानकर मैंने वृथा अभिमान किया है । इसके उपरान्त मुख्य प्राण से चक्षु इन्द्रिय कहती भई कि हे भगवन् ! जो प्रतिष्ठत्वगुण मुझ विषे है वह आपही का है, परन्तु आपके उस प्रतिष्ठत्वगुण को अपना जानकर मैंने वृथा अभिमान किया है ॥ १३ ॥

मूलम् ।

अथ हैनꣳ श्रोत्रमुवाच यदहꣳ संपदस्मि त्वं तत्संपदसीत्यथ हैनं मन उवाच यदहमायतनमस्मि त्वं तदायतनमसीति ॥ १४ ॥

पदच्छेदः।

अथ, ह, एनम्, श्रोत्रम्, उवाच, यत्, अहम्, सम्पत्, अस्मि, त्वम्, तत्, सम्पत्, असि, इति, अथ, ह, एनम्, मनः, उवाच, यत्, अहम्, आयतनम्, अस्मि, त्वम्, तत्, आयतनम्, असि, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ	इसके पश्चात्	अथ	फिर
श्रोत्रम्	कर्णइन्द्रिय	मनः	मन
एनम्	उक्त प्राण से	एनम्	इस प्राण से
इति	इस प्रकार	इति	इस प्रकार
ह	स्पष्ट	ह	स्पष्ट
उवाच	कहती भई कि	उवाच	कहता भया कि
यत्	यदि	यत्	यदि
अहम्	मैं	अहम्	मैं
सम्पत्	सम्पत्ति	आयतनम्	आश्रय
अस्मि	हूं	अस्मि	हूं
तत्	तो	तत्	तो
त्वम्	आप	त्वम्	आप
+ अपि	भी	+ अपि	भी
सम्पत्	सम्पत्ति	आयतनम्	आश्रय
असि	हैं	असि	हैं

भावार्थ।

हे सौम्य! जब मुख्य प्राण से वाक् और चक्षु अपनी आधीनता प्रकट करचुके, तदनन्तर श्रोत्र और मन उस मुख्य प्राण से कहने लगे–प्रथम श्रोत्र ने कहा कि हे भगवन्! आप पूजा और नमस्कार के योग्य हैं, जो मेरे में सम्पद्त्वरूप गुण है वह आपही का है मेरा नहीं; मैंने इसको अपना अज्ञानता करके मान रक्खा था। इसके उपरान्त मन मुख्य प्राण से कहने लगा कि हे भगवन्! आप पूजा

और नमस्कार के योग्य हैं, जो आयतनस्वरूप गुण मेरे विषे है वह आपही का है; मैंने उसको अज्ञानता से अपना गुण मान रक्खा था, जिसके कारण मुझको लज्जित होना पड़ा ॥ १४ ॥

मूलम् ।

न वै वाचो न चक्षूꣳषि न श्रोत्राणि न मनाꣳसीत्याचक्षते प्राण इत्येवाक्षते प्राणो ह्येवैतानि सर्वाणि भवति ॥ १५ ॥

इति प्रथमः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

न, वै, वाचः, न, चक्षूंषि, न, श्रोत्राणि, न, मनांसि, इति, आचक्षते, प्राणाः, इति, एव, आचक्षते, प्राणः, हि, एव, एतानि, सर्वाणि, भवति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
इति	इस कारण	आचक्षते	कहते हैं
वै	निश्चय करके	एतानि	इन
न	न	सर्वाणि	सबोंको
वाचः	वाक्यों को	प्राणः	प्राण
न	न	एव	ही
चक्षूंषि	नेत्रों को	इति	करके
न	न	आचक्षते	कहते हैं
श्रोत्राणि	कानों को	हि	क्योंकि
च	और	प्राणः	प्राण
न	न	एव	ही
मनांसि	मनइन्द्रियों को	+ एतेषाम्	इन सबोंका
+ करणानि	करण	+ करणम्	करण
		भवति	होता है

भावार्थ ।

सब वागादि इन्द्रियों में श्रेष्ठता केवल प्राण को ही है। क्योंकि

कार्य के करने में प्राण ही करण है, अर्थात् इसीके द्वारा कार्य किया जाता है, प्राणरहित वागादि इन्द्रियों करके नहीं किया जाता है। प्राण स्वतंत्र है, वागादि उसके परतंत्र हैं और इसी कारण सब इन्द्रियों को प्राण ही के नाम से कहते हैं। यदि वादी शंका करे कि इन्द्रियाँ जड़ होने के कारण उनका शरीर से निकलना, प्रजापति के पास जाना, पुनः शरीर में वापस आना, एक वर्ष पर्यन्त बाहर रहना, अपने व्यापार से उपराम होना, फिर वापस आकर प्रश्न करना, लज्जित होना, स्वस्थान में आकर स्वव्यापार में प्रवृत्त होना इत्यादि कुछ संभवै नहीं। इसके समाधान में आचार्य कहते हैं कि अग्नि आदि देवता चेतनावान् हैं और उनके आश्रित ये इन्द्रियां हैं। अधिष्ठान से अधिष्ठित पृथक् न होने के कारण तादात्म्य अध्यास करके वागादि इन्द्रियों को चेतनपना संभवै है, इसलिये उन बिषे वचन आदि क्रिया होती है। "अग्निर्वाग्भूत्वा मुखं प्राविशदिति" यह श्रुति प्रमाण है॥ १५ ॥

इति प्रथमः खण्डः ।

अथ पञ्चमाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः ।

मूलम्

स होवाच किं मेऽन्नं भविष्यतीति यत्किञ्चिदिदमाश्वभ्य आशकुनिभ्य इति होचुस्तद्वा एतदनस्यान्नमनो ह वै नाम प्रत्यक्षं न ह वा एवंविदि किञ्चनानन्नं भवतीति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

स, ह, उवाच, किम्, मे, अन्नम्, भविष्यति, इति, यत्, किंचित्, इदम्, आश्वभ्यः, आशकुनिभ्यः, इति, ह, ऊचुः, तत्, वै, एतत्, अनस्य,

अन्नम्, अनः, ह, वै, नाम, प्रत्यक्षम्, न, ह, वै, एवंविदि, किंचन, अनन्नम्, भवति, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
सः	वह प्राण	अनस्य	प्राण का ही
ह	स्पष्ट	अन्नम्	भोग
उवाच	कहता भया कि	+ अस्ति	है
मे	मेरेलिये	+ अतः	इसलिये
किम्	क्या	अनः	अन
अन्नम्	भोग्यवस्तु	ह वै	ही
भविष्यति	होगी	+ तस्य	उसका
इति	इस प्रकार	प्रत्यक्षम्	प्रत्यक्ष
+ ते	उन सबोंने	नाम	नाम अर्थात् इन्द्रियों में रहनेवाला है
ह	स्पष्ट	इति	इस प्रकार
ऊचुः	कहा कि	एवंविदि	जाननेवाले को
यत्	जो	ह वै	निश्चय करके
किञ्चित्	कुछ	किञ्चन	जो कुछ भोजन किया हुआ होता है
आश्वभ्यः	कुत्तों से लेकर	अनन्नम्	नहीं भोजन किया
+ च	और	भवति	होता है
आशकुनिभ्यः	पक्षियों पर्यन्त	+तत्	ऐसा
इदम्	यह भक्षणकरनेयोग्य	न	नहीं
एतत्	यह सब है		
तत्	वह सब		
वै	निश्चय करके		

भावार्थ ।

हे सौम्य ! जैसे राजा को प्रजा बलि अर्पण करता है, वैसे ही जब प्राण को इन्द्रियों ने अपना-अपना भाग अर्पण किया तब शरीर में स्वस्थ होकर प्राण ने उन इन्द्रियों से पूछा कि मेरा भोग क्या होगा ? इसपर वागादि कहती भई कि हे भगवन् ! जो कुछ इस लोक बिषे कुत्तों से लेकर पक्षियों तक भोग करने योग्य जो भोग्य वस्तु है, वह

सब आपका आहार होगी अथवा जो कुछ प्राणीमात्र करके खाया जाता है वह सब आपका भोग होगा । "प्राणोऽत्ता सर्वस्यान्नस्य" इस श्रुतिप्रमाण से प्राण और इन्द्रियों की आख्यायिका को कहकर श्रुति स्वयं प्राण की प्रतिष्ठा को इस प्रकार कहती है कि अन्न (भोग) अन (प्राण) का ही है अर्थात् जो कुछ लोक विषे भोग्य वस्तु है वह सब प्राण की ही है ऐसा जाननेवाले पुरुष को अन्न सदा प्राप्त रहता है ॥ १ ॥

मूलम् ।

स होवाच किं मे वासो भविष्यतीत्याप इति होचुस्तस्माद्वा एतदशिष्यन्तः पुरस्ताच्चोपरिष्टाच्चाद्भिः परिदधति लम्भुको ह वासो भवत्यनग्नो ह भवति ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

सः, ह, उवाच, किम्, मे, वासः, भविष्यति, इति, आपः, इति, ह, ऊचुः, तस्मात्, वै, एतत्, अशिष्यन्तः, पुरस्तात्, च, उपरिष्टात्, च, अद्भिः, परिदधति, लम्भुकः, ह, वासः, भवति, अनग्नः, ह, भवति ॥

अन्वयः — पदार्थ

स=वह प्राण
इति=ऐसा
ह=स्पष्ट
उवाच=पूछता भया कि
मे=मेरा
वासः=वस्त्र
किम्=क्या
भविष्यति=होगा
आपः=जल
इति=ऐसा
+ते=वे सब इन्द्रियां

अन्वयः — पदार्थ

ह=स्पष्ट
ऊचुः=कहती भई
तस्मात्=यही कारण है कि
अशिष्यन्तः=भोजन करने की इच्छावाले
पुरस्तात्=भोजन से पहिले
च=और
उपरिष्टात्=भोजन के पीछे
वै=अवश्य
एतत्=इस प्राण को
अद्भिः=जल से

परिदधाति=ढांकते हैं अर्थात् पानी पीते हैं
च=और
+ यः=जो
वासः=वस्त्र को
लम्भुकः भवति=प्राप्त होनेवाला होता है अर्थात् प्राण रखनेवाला प्राणी होता है
+ सः=वह
ह=निश्चय करके
अनग्नःभवति=नग्न नहीं होताहै अर्थात् सदा वस्त्रसंयुक्तरहताहै

भावार्थ ।

हे सौम्य ! प्राण फिर इन्द्रियों से प्रश्न करता भया कि मेरा वस्त्र क्या होगा ? उसके जवाब में वागादि इन्द्रियों ने कहा कि आपका वस्त्र जल होगा । यही कारण है कि विद्वान् ब्राह्मण भोजन के पहिले और पीछे जल को वस्त्रस्थानापन्न समझकर प्राण को अर्पण करता है । ऐसे विद्वान् को वस्त्र सदा प्राप्त रहता है ॥ २ ॥

मूलम् ।

तद्धैतत्सत्यकामो जाबालो गोश्रुतये वैयाघ्रपद्यायो-क्त्वोवाच यद्यप्येनच्छुष्काय स्थाणवे ब्रूयाज्जायेरन्नेवा-स्मिञ्छाखाः प्ररोहेयुः पलाशानीति ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

तत्, ह, एतत्, सत्यकामः, जाबालः, गोश्रुतये, वैयाघ्रपद्याय, उक्त्वा, उवाच, यदि, अपि, एनत्, शुष्काय, स्थाणवे, ब्रूयात्, जायेरन्, एव, अस्मिन्, शाखाः, प्ररोहेयुः, पलाशानि, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
सत्यकामः	सत्यकाम
जाबालः	जाबाल नामक ऋषि
तत्	उस
ह	ही
एनत्	इस प्राणस्तुति को
वैयाघ्रपद्याय	व्याघ्रपद नाम वाले ऋषि के पुत्र वैयाघ्रपद नामक
गोश्रुतये	गोश्रुति ऋषि के प्रति

उक्त्वा=कह करके	एतत्=इस प्राणविद्या को
+ इति=यह	ब्रूयात्=कहे तो
उवाच=कहता भया कि	अस्मिन्=इसमें
यदि=अगर	शाखाः=डालियां
+ प्राणोपासकः=प्राणविद्या का जाननेवाला	जायेरन्=उत्पन्न हो आवें
शुष्काय=सूखे	+ च=और
स्थाणवे=वृक्ष से	पलाशानि=पत्ते
अपि=भी	एव=निस्सन्देह
	प्ररोहेयुः=निकल आवें

भावार्थ ।

हे सौम्य ! सत्यकाम जाबाल नामक ऋषि, जो प्राणविद्या का सम्यक् प्रकार ज्ञाता था, वैयाघ्रपाद गोश्रुति ऋषि से कहता भया कि यदि प्राणविद्या का जाननेवाला प्राणोपासक किसी सूखे काष्ठ के ठूँठ से प्राणविद्या को कहे तो उस सूखे ठूंठ में नवीन शाखा, पत्र, पुष्पादिक प्रकट हो आवें और यदि यह प्राणविद्या साधनसम्पन्न जिज्ञासु प्रति सम्यक् प्राणोपासक करके उपदेश किया जाय तो यदि उस जिज्ञासु के अन्तःकरण में श्रद्धारूपा शाखा, धारणरूप पत्र और अहमग्रे उपासनारूप पुष्प और सूत्रात्मा के पद की प्राप्तिरूप फल प्राप्त होवें तो आश्चर्य ही क्या है ॥ ३ ॥

मूलम् ।

अथ यदि महज्जिगमिषेदमावास्यायां दीक्षित्वा पौर्णमास्यांॅ रात्रौ सर्वौषधस्य मन्थं दधिमधुनोरुपमथ्य ज्येष्ठाय श्रेष्ठाय स्वाहेत्यग्नावाज्यस्य हुत्वा मन्थे सम्पातमवनयेत् ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यदि, महत्, जिगमिषेत्, अमावास्यायाम्, दीक्षित्वा, पौर्ण-

मास्याम्, रात्रौ, सर्वौषधस्य, मन्थम्, दधिमधुनोः, उपमथ्य, ज्येष्ठाय, श्रेष्ठाय, स्वाहा, इति, अग्नौ, आज्यस्य, हुत्वा, मन्थे, सम्पातम्, अवनयेत् ॥

अन्वयः	पदार्थ
अथ	इसके पीछे
यदि	अगर
महत्	महत्त्व पाने की
जिगमिषेत्	इच्छा करे तो
अमावास्यायाम्	अमावस्या को
दीक्षित्वा	ब्रह्मचर्य व्रत करके
पौर्णमास्याम्	पौर्णमासी की
रात्रौ	रात में
सर्वौषधस्य	सब ओषधियों के
मन्थम्	कचेरस को
+ च	और
दधिमधुनोः	दही और शहद को
+ पात्रे	पात्र में
उपमथ्य	मिला करके
ज्येष्ठाय	ज्येष्ठाय
श्रेष्ठाय	श्रेष्ठाय
स्वाहा	स्वाहा
+ एताभ्याम्	इन दोनों मंत्रों
इति	करके
आज्यस्य	घी की आहुति को
अग्नौ	अग्नि में
हुत्वा	डाल करके
सम्पातम्	बचेखुचे घी को
मन्थे	ओषधियों के रस में
अवनयेत्	डाले

भावार्थ ।

जो विद्वान् महत्त्व पाने की इच्छा करता है उसके लिये निम्न कर्म की विधि कहते हैं । धन करके यज्ञ होता है और यज्ञ करके देवयान और पितृयान की प्राप्ति होती है, इसलिये इन मार्गों की प्राप्ति के निमित्त विद्वान् को मन्थाख्य कर्म कर्तव्य है । वह विद्वान् पहिले सत्यभाषण करे, ब्रह्मचर्य से रहे, स्नानादि से पवित्र रहे, भूमि पर कम्बल या चटाई पर शयन करे, इन्द्रियों को विषयों से रोके, समाहित चित्त होता हुआ प्राण की ज्येष्ठता व श्रेष्ठता आदि गुणों को श्रुतियों के वाक्यानुसार विचारता रहे, अन्न को त्यागकर केवल दूधमात्र का आहार करे । इस प्रकार आचरण करता हुआ अमावास्या से दीक्षित होकर पौर्णमासी की रात्रि में कर्म को आरम्भ करे और ग्राम में तथा अरण्य में

प्राप्त होनेवाली ओषधियों को अपनी शक्ति के अनुसार एकत्र करे और फिर उन ओषधियों को कूट कर मैदा बनावे और एक पात्र में रक्खे, फिर उसमें दही और सहत मिलाकर गूलर की लकड़ी से मन्थन करे । जब हवन "अग्नये स्वाहा" इत्यादि घृताहुति विधिपूर्वक कर चुके, तब "ज्येष्ठाय स्वाहा, श्रेष्ठाय स्वाहा" इन दो मंत्रों से घृताहुति करे और आहुतिदान से बचे हुए घी को (अर्थात् स्रुवा में बचे हुए घी को) मन्थ में डाले ॥ ४ ॥

मूलम् ।

वसिष्ठाय स्वाहेत्यग्नावाज्यस्य हुत्वा मन्थे सम्पातमवनयेत्प्रतिष्ठायै स्वाहेत्यग्नावाज्यस्य हुत्वा मन्थे सम्पातमवनयेत्सम्पदे स्वाहेत्यग्नावाज्यस्य हुत्वा मन्थे सम्पातमवनयेदायतनाय स्वाहेत्यग्नावाज्यस्य हुत्वा मन्थे सम्पातमवनयेत् ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ।

वसिष्ठाय, स्वाहा, इति, अग्नौ, आज्यस्य, हुत्वा, मन्थे, सम्पातम् , अवनयेत्, प्रतिष्ठायै, स्वाहा, इति, अग्नौ, आज्यस्य, हुत्वा, मन्थे, सम्पातम्, अवनयेत्, सम्पदे, स्वाहा, इति, अग्नौ, आज्यस्य, हुत्वा, मन्थे, सम्पातम्, अवनयेत्, आयतनाय, स्वाहा, इति, अग्नौ, आज्यस्य, हुत्वा, मन्थे, सम्पातम्, अवनयेत् ॥

अन्वयः	पदार्थ
वसिष्ठाय	वसिष्ठाय
स्वाहा	स्वाहा
इति	इस मंत्र करके
आज्यस्य	घृत को
अग्नौ	अग्नि में
हुत्वा	डालकर
सम्पातम्	स्रुवा में बचे हुए घी को
मन्थे	मन्थ में
अवनयेत्	डाले
प्रतिष्ठायै	प्रतिष्ठायै
स्वाहा	स्वाहा

इति=इस मंत्र करके
आज्यस्य=घृत को
अग्नौ=अग्नि में
हुत्वा=डालकर
सम्पातम्=स्रुवा में बचे हुए घृत को
मन्थे=मन्थ में
अवनयेत्=डाले
सम्पदे=सम्पदे
स्वाहा=स्वाहा
इति=इस मंत्र करके
आज्यस्य=घृत को
अग्नौ=अग्नि में
हुत्वा=डालकर
सम्पातम्=स्रुवा में बचे हुए घृत को
मन्थे=मन्थ में
अवनयेत्=डाले
आयतनाय=आयतनाय
स्वाहा=स्वाहा
इति=इस मंत्र करके
आज्यस्य=घृत को
अग्नौ=अग्नि में
हुत्वा=डालकर
सम्पातम्=स्रुवा में बचे हुए घृत को
मन्थे=मन्थ में
अवनयेत्=डाले

भावार्थ ।

हे सौम्य ! विद्वान् आहुति को इस प्रकार देवे "वसिष्ठाय स्वाहा" इस मन्त्र को पढ़कर घृताहुति अग्नि में देवे और स्रुवा में बचे हुए घी को मन्थ में डाले "प्रतिष्ठायै स्वाहा" इस मन्त्र को पढ़ कर घृताहुति अग्नि में देवे और स्रुवा में बचे हुए घी को मन्थ में डाले "सम्पदे स्वाहा" इस मन्त्र को पढ़कर घृताहुति अग्नि में देवे और स्रुवा में बचे हुए घी को मन्थ में डाले "आयतनाय स्वाहा" इस मन्त्र को पढ़कर घृताहुति को अग्नि में देवे और स्रुवा में बचे हुए घी को मन्थ में डाले ॥ ५ ॥

मूलम् ।

अथ प्रतिसृप्याञ्जलौ मन्थमाधाय जपत्यमो नामास्यमा हि ते सर्वमिदꣳ स हि ज्येष्ठः श्रेष्ठो राजाऽधिपतिः स मा ज्यैष्ठ्यꣳ श्रैष्ठ्यꣳ राज्यमाधिपत्यं गमयत्वहमेवेदꣳ सर्वमसानीति ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, प्रतिसृप्य, अञ्जलौ, मन्थम् , आधाय, जपति, अमः, नाम, असि, अमा, हि, ते, सर्वम् , इदम्, सः, हि, ज्येष्ठः, श्रेष्ठः, राजा, अधिपतिः, सः, मा, ज्यैष्ठ्यम्, श्रैष्ठ्यम्, राज्यम्, आधिपत्यम्, गमयतु, अहम्, एव, इदम्, सर्वम्, असानि, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
अथ	हवन के पश्चात्
+ अग्नेः	अग्नि से
प्रतिसृप्य	कुछ दूर हटके
अञ्जलौ	हाथ में
मन्थम्	मन्थ को
आधाय	लेकर
जपति	उसकी स्तुति करे
अमः	अम अर्थात् प्राण
नाम	नामक आप
असि	हो
अमा	प्राण के सहित
ते	आप का
हि	ही
इदम्	यह
सर्वम्	सब जगत्
+अस्ति	है
सः	वह (आप)
हि	निस्सन्देह
ज्येष्ठः	ज्येष्ठ
श्रेष्ठः	श्रेष्ठ
राजा	दीप्तिमान्
अधिपतिः	स्वामी हैं
सः	वह (आप)
मा	मेरे लिये
ज्यैष्ठ्यम्	ज्येष्ठता को
श्रैष्ठ्यम्	श्रेष्ठता को
राज्यम्	राज्य को
+च	और
आधिपत्यम्	स्वामित्व को
गमयतु	प्राप्त करे
इति	ताकि
अहम्	मैं
एव	निस्सन्देह
इदम्	इस
सर्वम्	सब ऐश्वर्य को
असानि	प्राप्त होऊँ

भावार्थ ।

हे सौम्य ! ऊपर कहे हुये प्रकार श्रद्धापूर्वक हवन करने के पश्चात् अग्निदेव से कुछ हटकर अपने दोनों हाथों की अञ्जुली में इस मन्था को लेकर उसकी स्तुति इस प्रकार करे " अमो नामास्यमा

हि ते सर्वमिदꣳ स हि ज्येष्ठः श्रेष्ठो राजाऽधिपतिः स मा ज्यैष्ठ्यꣳ श्रैष्ठ्यꣳ राज्यमाधिपत्यं गमयत्वहमेवेदꣳ सर्वमसानि " इस मन्त्र को पढ़े इसका अर्थ यह है कि हे मन्थ ! तू ही प्राण है और प्राणसहित सम्पूर्ण जगत् तू ही है, तू ही ज्येष्ठ, श्रेष्ठ स्वामी है, तू मेरे को ज्येष्ठता, श्रेष्ठता, स्वामित्व को प्राप्त कर, ताकि मैं सब प्रकार के ऐश्वर्य को प्राप्त होऊँ ॥ ६ ॥

मूलम् ।

अथ खल्वेतयर्चा पच्छ आचामति तत्सवितुर्वृणीमह इत्याचामति वयं देवस्य भोजनमित्याचामति श्रेष्ठꣳ सर्वधातममित्याचामति तुरं भगस्य धीमहीति सर्वं पिबति निर्णिज्य कꣳसं चमसं वा पश्चादग्नेः संविशति चर्मणि वा स्थण्डिले वा वाचंयमोऽप्रसाहः स यदि स्त्रियम्पश्येत्समृद्धं कर्मेति विद्यात् ॥ ७ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, खलु, एतया, ऋचा, पच्छः, आचामति, तत्, सवितुः, वृणीमहे, इति, आचामति, वयम्, देवस्य, भोजनम्, इति, आचामति, श्रेष्ठम्, सर्वधातमम्, इति, आचामति, तुरम्, भगस्य, धीमहि, इति, सर्वम्, पिबति, निर्णिज्य, कंसम्, चमसम्, वा, पश्चात्, अग्नेः, सम्, विशति, चर्मणि, वा, स्थण्डिले, वा, वाचंयमः, अप्रसाहः, सः, यदि, स्त्रियम्, पश्येत्, समृद्धम, कर्म, इति, विद्यात् ॥

अन्वयः	पदार्थ
अथ	इसके पश्चात्
खलु	निश्चय करके
एतया	इस आगे कहे हुये
ऋचा	मंत्र से
पच्छः	एक एक पाद
+ पठित्वा	पढ़ करके
आचामति	पीता जाय
तत्सवितुर्वृणीमहे	" तत्सवितुर्वृणीमहे "
इति	इस मन्त्र को पढ़ करके

आचामति=मन्थ को पीवे अर्थात् भक्षण करे
वयम् देवस्य भोजनम्=" वयम् देवस्य भोजनम् "
इति=इस मन्त्रको पढ़ करके
आचामति=मन्थ को पीवे
श्रेष्ठम् सर्वधातमम्=" श्रेष्ठम् सर्वधातमम् "
इति=इस
+ तृतीयपादम्=तीसरे पाद को
+ पठित्वा=पढ़ करके
आचामति=मन्थ को पीवे
तुरम् भगस्य धीमहि=" तुरम् भगस्य धीमहि "
इति=इस मन्त्र से
सर्वम्=सब मन्थ लेप को
पिबति=पीजावे
कंसम्=कांसे के पात्र को
वा=अथवा
चमसम्=चमसाकार औदुम्बर पात्र को
निर्णिज्य=धोकर
+ सर्वम्=सब
पिबति=पीजावे
सः=वह
अप्रसाहः=समाहित चित्त
अग्नेः=अग्नि के
पश्चात्=पश्चिम ओर
वाचंयमः=मौन होकर
चर्मणि=मृगचर्म पर
वा=अथवा
स्थण्डिले=शुद्ध भूमि पर
संविशति=शयन करे
यदि=अगर
+ स्वप्ने=स्वप्न में
स्त्रियम्=स्त्री को
पश्येत्=देखे तो
इति=ऐसा
विद्यात्=जाने कि
कर्म=कार्य
समृद्धम्=सिद्ध हुआ

भावार्थ ।

हे सौम्य ! इसके पश्चात् एक-एक पाद पढ़ कर, मन्थ में से एक-एक ग्रास निकाल कर भक्षण करता जाय " तत्सवितुर्वृणीमहे " इस प्रथम पाद को पढ़ कर प्रथम ग्रास को भक्षण करे " वयम् देवस्य भोजनम् " इस द्वितीय पाद को पढ़कर द्वितीय ग्रास को भक्षण करे " श्रेष्ठं सर्वधातमम् " इस तृतीय पाद को पढ़ करके तृतीय ग्रास को भक्षण करे " तुरम्भगस्य धीमहि " इस चतुर्थ पाद को पढ़ कर बचे खुचे उस मन्थ के पात्र को धोकर पीजाय । इसके पश्चात् समाहितचित्त होकर अग्नि की ओर मस्तक कर पूर्व दिशा

में मृगचर्म पर या केवल भूमि पर शयन करे । इस प्रकार सोया हुआ यजमान यदि स्वप्न में स्त्री को देखे, तो निश्चय करे कि मेरा कार्य सिद्ध हुआ, मुझको लक्ष्मी प्राप्त होगी ॥ ७ ॥

मूलम् ।

तदेष श्लोको यदा कर्मसु काम्येषु स्त्रियꣳ स्वप्नेषु पश्यति समृद्धिं तत्र जानीयात्तस्मिन्स्वप्ननिदर्शने तस्मिन्स्वप्ननिदर्शने ॥ ८ ॥

इति द्वितीयः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

तत्, एषः, श्लोकः, यदा, कर्मसु, काम्येषु, स्त्रियम्, स्वप्नेषु, पश्यति, समृद्धिम्, तत्र, जानीयात्, तस्मिन्, स्वप्ननिदर्शने, तस्मिन्, स्वप्ननिदर्शने ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यदा	जब	स्वप्ननिदर्शने	स्वप्न देखने पर
काम्येषु	किसी कामना से	तस्मिन्	उस
कर्मसु	यज्ञादि कर्मों के करने में	स्वप्ननिदर्शने	स्वप्न देखने पर
स्वप्नेषु	स्वप्न विषे	समृद्धिम्	सिद्धि की प्राप्ति को
स्त्रियम्	स्त्री को	जानीयात्	जाने
पश्यति	देखे तो	तत्	इस विषे
तत्र	उसी क्षण	एषः	यह
तस्मिन्	उस	श्लोकः	मंत्र
		+ प्रमाणं भवति	प्रमाण है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! जो विद्वान् पुरुष धन की कामना करके कर्म की समाप्ति करता है, यदि वह पुरुष सौभाग्यवती स्त्री को स्वप्न में देखे तो जाने कि मुझको धन अर्थात् लक्ष्मी अवश्य प्राप्त होगी । दो बार जो

" तस्मिन् स्वप्ननिदर्शने तस्मिन् स्वप्ननिदर्शने " मंत्र में पाठ है, वह कर्म की समाप्ति सूचनार्थ है ॥ ८ ॥

इति द्वितीयः खण्डः ।

अथ पञ्चमाध्यायस्य तृतीयः खण्डः ।

मूलम् ।

श्वेतकेतुर्हारुणेयः पञ्चालानाᳬं समितिमेयाय तᳬं ह प्रवाहणो जैवलिरुवाच कुमारानु त्वाशिषत्पितेत्यनु हि भगव इति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

श्वेतकेतुः, ह, आरुणेयः, पञ्चालानाम्, समितिम्, एयाय, तम्, ह, प्रवाहणः, जैवलिः, उवाच, कुमारानु, त्वा, अशिषत्, पिता, इति, अनु, हि, भगवः, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
आरुणेयः=	अरुण का पौत्र और आरुणि का पुत्र	इति=	इस प्रकार
श्वेतकेतुः=	श्वेतकेतु नामक ऋषि	ह=	स्पष्ट
ह=	निश्चय करके	उवाच=	प्रश्न करता भया कि
पञ्चालानाम्=	पञ्चाल देशके राजाकी	कुमारानु=	हे बालब्रह्मचारी
समितिम्=	सभा को	पिता=	तेरे पिता ने
एयाय=	जाता भया	त्वा=	तुझको
+ तत्र=	वहां पर	अशिषत्=	शिक्षा दी है
जैवलिः=	जीवल का पुत्र	+ सः=	उसने
प्रवाहणः=	प्रवाहण नामक राजा	+ उवाच=	उत्तर दिया कि
तम्=	उस आये हुए श्वेतकेतु से	भगवः=	हे राजकुमार
		इति=	इस प्रकार
		अनु=	शिक्षा दिया हुआ
		हि=	निस्सन्देह
		+ अस्मि=	मैं हूं

भावार्थ।

हे सौम्य! मुमुक्षु पुरुषों में इस नामरूप क्रियात्मक अतिदुःखमय संसार से वैराग्य उत्पन्न करने के लिये श्रुति भगवती एक आख्यायिका कहती हैं जिसमें उद्दालक नामक ऋषि और प्रवाहण नामक राजा का संवाद है। उसमें राजा ने ऋषि को संसारगति देखाने के लिये पञ्चाग्नि विद्या का उपदेश किया है, सो वह आख्यायिका इस प्रकार कही गई है—एक समय अरुण ऋषि का पौत्र और आरुणि का पुत्र श्वेतकेतु पञ्चालनाम देश के राजा की सभा में गया। इससे जीवलनाम राजा का पुत्र जैवालि प्रवाहण राजपुत्र ने प्रश्न किया कि हे कुमार! तेरे पिता ने तुझ को विद्या की शिक्षा दी है? उसने जवाब दिया कि हां, मैं शिक्षा पाया हुआ हूं॥ १॥

मूलम्।

वेत्थ यदितोऽधिप्रजाः प्रयन्तीति न भगव इति वेत्थ यथा पुनरावर्तन्त इति न भगव इति वेत्थ पथोर्देवयानस्य पितृयाणस्य च व्यावर्तना इति न भगव इति॥ २॥

पदच्छेदः।

वेत्थ, यत्, इतः, अधि, प्रजाः, प्रयन्ति, इति, न, भगवः, इति, वेत्थ, यथा, पुनः, आवर्तन्ते, इति, न, भगवः, इति, वेत्थ, पथोः, देवयानस्य, पितृयाणस्य, च, व्यावर्तना, इति, न, भगवः, इति॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यत्=जिस प्रकार		प्रयन्ति=जाती है	
प्रजाः=प्रजा		इति=सो	
इतः=इस लोक से		+ त्वम्=तू	
+ मृत्वा=मरकर		वेत्थ=जानता है	
अधि=ऊपर के लोक को		+ सः=उसने	

+ उवाच=उत्तर दिया कि
भगवः=हे भगवन्
इति=ऐसा
न=नहीं
वेत्थ=जानता
+ पुनः=फिर
+ पप्रच्छ=उसने पूछा
यथा=जिस प्रकार
+ गत्वा=जा करके
पुनः=फिर
आवर्तन्ते=लौटती है
इति=ऐसा
+ त्वम्=तू
वेत्थ=जानता है
+ सः=उसने
+ प्रत्युवाच=उत्तर दिया कि
भगवः=हे भगवन्
इति=ऐसा
न=नहीं जानता

+ पुनः=फिर
+ प्रपच्छ=प्रश्न किया कि
+ तत्स्थानम्=उस स्थान को
वेत्थ=जानता है
+ यतः=जहां से
देवयानस्य=देवयान
च=और
पितृयाणस्य=पितृयाण
पथोः=मार्गों का
व्यावर्तना=वियोग
+ अभूत्=हुआ है
+सः=उसने
इति=ऐसा
+ उवाच=उत्तर दिया कि
भगवः=हे भगवन्
इति=ऐसा
+ अपि=भी
न=नहीं जानता हूँ

भावार्थ ।

हे सौम्य ! प्रवाहण राजा ने प्रश्न किया कि जिस प्रकार इस लोक से प्रजा मर करके ऊर्ध्वलोक को जाती है इसको क्या तू जानता है ? श्वेतकेतु ने उत्तर दिया कि हे भगवन् ! उसको मैं नहीं जानता हूं । पुनः राजा ने प्रश्न किया कि जिस प्रकार से वह प्रजा फिर इस लोक विषे आती है क्या उसको तू जानता है ? श्वेतकेतु ने जवाब दिया कि हे भगवन् ! उसको भी मैं नहीं जानता हूं । तब फिर राजा ने प्रश्न किया कि हे कुमार ! तू उस जगह को भी जानता है जहां से देवयान और पितृयान मार्ग अलग-अलग होते हैं और देवमार्ग से गये हुए पुनरावृत्ति को नहीं प्राप्त होते हैं और पितृमार्ग से गये हुए

फिर लौट आते हैं । इसके उत्तर में श्वेतकेतु कहता है कि हे राजन्! मैं उसको नहीं जानता हूं ॥ २ ॥

मूलम् ।

वेत्थ यथाऽसौ लोको न सम्पूर्यत इति न भगव इति वेत्थ यथा पञ्चम्यामाहुतावापः पुरुषवचसो भवन्तीति नैव भगव इति ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

वेत्थ, यथा, असौ, लोकः, न, सम्, पूर्यते, इति, न, भगवः, इति, वेत्थ, यथा, पञ्चम्याम्, आहुतौ, आपः, पुरुषवचसः, भवन्ति, इति, न, एव, भगवः, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
यथा	जिस कारण
असौ	यह
लोकः	पितृलोक
न	नहीं
सम्पूर्यते	भर जाता है
इति	उस कारण को
+ त्वम्	तू
वेत्थ	जानता है
भगवः	हे भगवन्
इति	उस कारण को
न	नहीं
+ वेद्मि	जानता हूं
यथा	जिस प्रकार
पञ्चम्याम्	पांचवीं
आहुतौ	आहुति में
आपः	जल
पुरुषवचसः	पुरुष वाचक अथवा जीव वाचक
भवन्ति	होते हैं
इति	ऐसा
+ त्वम्	तू
वेत्थ	जानता है
+ सः	उसने
+ उवाच	उत्तर दिया कि
भगवः	हे भगवन्
इति	ऐसा
एव	भी
न	नहीं
वेद्मि	जानता हूं

भावार्थ ।

हे सौम्य ! जब श्वेतकेतु ने प्रवाहण राजा के तीन प्रश्नों का उत्तर नहीं दिया तब राजा ने फिर प्रश्न किया कि हे श्वेतकेतो! पितृलोक-

सम्बन्धी स्वर्गलोक में अनेक कर्म करनेवाले जाते हैं तो भी वह नहीं भर जाता है, इसका क्या कारण है तू जानता है ? इसके उत्तर में श्वेतकेतु ने कहा कि हे भगवन् ! उसको मैं नहीं जानता हूं । फिर राजा ने प्रश्न किया कि हे श्वेतकेतो ! आहुति किया हुआ जल पांचवीं आहुति में पुरुषाकार हो जाता है, क्या तू उसको जानता है ? उसने उत्तर दिया कि हे भगवन् ! मैं नहीं जानता हूं ॥ ३ ॥

मूलम् ।

अथ नु किमनुशिष्टोऽवोचथा यो हीमानि न विद्यात् कथꣳ सोऽनुशिष्टो ब्रवीतेति स हायस्तः पितुरर्धमेयाय तꣳ होवाचाऽननुशिष्य वाव किल मा भगवानब्रवीदनु त्वाऽशिषमिति ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, नु, किम्, अनुशिष्टः, अवोचथाः, यः, हि, इमानि, न, विद्यात्, कथम्, सः, अनुशिष्टः, ब्रवीत, इति, सः, ह, आयस्तः, पितुः, अर्धम्, एयाय, तम्, ह, उवाच, अननुशिष्य, वाव, किल, मा, भगवान्, अब्रवीत्, अनु, त्वा, अशिषम्, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
अथ	तब
+प्रवाहणः	राजा प्रवाहण ने
ह	स्पष्ट
+उवाच	कहा कि
+त्वम्	तू
+अज्ञः	अज्ञ
+सन्	होता हुआ
नु किम्	क्यों
अनुशिष्टः	शिक्षा पाया हुआ अपने को
अवोचथाः	कहा
यः	जो
हि	किसी प्रकार
इमानि	इन प्रश्नों के उत्तरों को
न	न
विद्यात्	जाने
सः	वह
कथम्	कैसे
अनुशिष्टः	शिक्षित हुआ अपने को

ब्रवीत=कहे	ह=स्पष्ट
+ तदा=तब	उवाच=कहता भया कि
सः=वह श्वेतकेतु	भगवान्=आपने
इति=इस प्रकार	मा=मुझको
+ राज्ञा=राजा करके	अननुशिष्य=विना शिक्षा दिए हुए
आयस्तः=परास्त किया हुआ	वाव=ही
पितुः=अपने पिता के	इति=ऐसा
अर्धम्=पास	किल=झूठ
एयाय=गया	अब्रवीत्=कहा कि
+ च=और	त्वा=तुझको
तम्=उससे	अन्वशिषम्=मैंने शिक्षा दी है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! जब श्वेतकेतु राजा के प्रश्नों का उत्तर न दे सका तब राजा ने कहा कि जब तू इस प्रकार का अज्ञ था तब तूने क्यों कहा कि मैं अपने पिता करके शिक्षा पाया हुआ हूं और क्यों इधर उधर अहंकार सहित गप्प मारता था कि मैं सब प्रकार की विद्या को जानता हूं । मेरे प्रश्नों का उत्तर न जानता हुआ तू विद्वानों के मध्य कैसे प्रतिष्ठा को पा सकता है ? तब वह श्वेतकेतु निरादरित और लज्जित होकर राजसभा से निकल कर अपने पिता के समीप गया, और उनसे कहा कि हे पितः ! आपने विना अनुशासन किये हुए मुझसे समावर्तन के समय कहा कि मैंने तुझको सर्वविद्या अध्ययन करा दिया है, अब कोई विद्या तेरे अध्ययन करने योग्य अवशिष्ट नहीं रही सो यह आपने मिथ्या ही कहा ॥ ४ ॥

मूलम् ।

पञ्च मा राजन्यबन्धुः प्रश्नानप्राक्षीत्तेषां नैकञ्चनाशकं विवक्तुमिति स होवाच यथा मा त्वं तदैतानवदो यथाहमेषां नैकञ्चन वेद यद्यहमिमानवेदिष्यं कथं ते नावक्ष्यमिति ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ।

पञ्च, मा, राजन्यबन्धुः, प्रश्नान्, अप्राक्षीत्, तेषाम्, न, एकञ्चन, अशकम्, विवक्तुम्, इति, सः, ह, उवाच, यथा, मा, त्वम्, तत्, एतान्, अवदः, यथा, अहम्, एषाम्, न, एकञ्चन, वेद, यदि, अहम्, इमान्, अवेदिष्यम्, कथम्, ते, न, अवक्ष्यम्, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
राजन्यबन्धुः	बहुत हैं क्षत्रिय बन्धु जिसके ऐसे प्रवाहण राजा ने
पञ्च	पांच
प्रश्नान्	प्रश्नों को
मा	मुझसे
अप्राक्षीत्	पूछा
+ परञ्च	परन्तु
+ अहम्	मैं
तेषाम्	उन प्रश्नों में से
एकञ्चन	एक को भी
विवक्तुम्	कहने को
न	न
अशकम्	समर्थ होता भया
+ यदा	जब
इति	इस प्रकार
+ श्वेतकेतुः	श्वेतकेतु ने
+ जगाद	कहा
तत्	तब
सः	वह पिता
+ पुनः	फिर
ह	स्पष्ट
उवाच	बोलता भया कि

अन्वयः	पदार्थ
मा	मुझसे
यथा	इस प्रकार
त्वम्	तूने
+ प्राक्	पहिले
+ एव	ही
एतान्	इन प्रश्नों को
अवदः	पूछा था पर
अहम्	मैं
एषाम्	उनमें से
एकञ्चन	एक को भी
यथा	अच्छी तरह से
न	नहीं
वेद	जानता हूं
यदि	जो
अहम्	मैं
इमान्	इनको
अवेदिष्यम्	जानता
+ तर्हि	तो
इति	ऐसा
ते	तेरे लिये
कथम्	क्यों
न	न
अवक्ष्यम्	कहता

भावार्थ ।

हे सौम्य ! श्वेतकेतु अपने पिता उद्दालक ऋषि से कहता भया कि उस क्षत्रिय राजपुत्र ने मुझसे पांच प्रश्न किये, पर मैं एक का भी उत्तर न दे सका आपने मुझसे समावर्तन काल में कहा था कि मैंने तुझको, सब विद्याओं में शिक्षित किया है, सो क्या आपने यह असत्य ही कहा था ? तब उद्दालक ऋषि अपने असत्यवादपने के निवारणार्थ अपने पुत्र से कहते हैं कि हे पुत्र ! जैसे तू राजा के प्रश्नों का उत्तर देने में असमर्थ हुआ वैसे ही मुझको उनके उत्तर देने में असमर्थ जान ; यदि मैं उस विद्या को जानता होता तो अवश्य तुझको उसमें शिक्षित करता । हे पुत्र ! तू मुझको प्रिय है, यदि वह विद्या मैं जानता होता, तो तुझको समावर्तनकाल विषे अवश्य कहता ॥ ५ ॥

मूलम् ।

स ह गौतमो राज्ञोऽर्धमेयाय तस्मै ह प्राप्तायार्हाञ्चकार स ह प्रातः सभाग उदेयाय तꣳ होवाच मानुषस्य भगवन्गौतम वित्तस्य वरं वृणीथा इति स होवाच तवैव राजन्मानुषं वित्तं यामेव कुमारस्यान्ते वाचमभाषथास्तामेव मे ब्रूहीति स ह कृच्छ्री बभूव ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ।

सः, ह, गौतमः, राज्ञः, अर्धम, एयाय, तस्मै, ह, प्राप्ताय, अर्हाञ्चकार, सः, ह, प्रातः, सभागे, उत्, एयाय, तम्, ह, उवाच, मानुषस्य, भगवन्, गौतम, वित्तस्य, वरम्, वृणीथाः, इति, सः, ह, उवाच, तव, एव, राजन्, मानुषम्, वित्तम्, याम, एव, , कुमारस्य, अन्ते, वाचम, अभाषथाः, ताम्, एव, मे, ब्रूहि, इति, सः, ह, कृच्छ्री, बभूव ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
सः	वह	ह	स्पष्ट
गौतमः	गौतम	राज्ञः	राजा के

अर्धम्=समीप
प्रयाय=गया
+ तदा=तब
+ सः=वह
+ राजा=राजा
तस्मै=उस
प्राप्ताय=आये हुए गौतम का
ह=निश्चयपूर्वक
अर्हाञ्चकार=पूजन करता भया
+ पुनः=फिर
प्रातः=दूसरे दिन प्रातःकाल
सः=वह गौतम
सभागे=सभा में राजा के
जाने पर
ह=अवश्य
उदेयाय=पहुँचता भया
+ च=और
+ सः=उस राजा ने
तम्=उस गौतम ऋषि से
इति=इस प्रकार
उवाच=कहा कि
भगवन्=हे भगवन् !
गौतम=गौतम ! (तुम)
मानुषस्य=मनुष्यसम्बन्धी
वित्तस्य=धन का
वरम्=वरदान
वृणीथाः=मांग लो
सः=उस गौतम ने
ह=स्पष्ट
उवाच=कहा कि
राजन्=हे राजन् !
मानुषम्=मनुष्यलोक का
वित्तम्=धनादिक
तव=तुम्हारे
एव=ही
+ तिष्ठतु=पास रहे
कुमारस्य=मेरे पुत्र के
अन्ते=समीप में अर्थात्
उससे
याम्=जिस
वाचम्=वाणी (प्रश्न) को
अभाषथाः=आपने कहा था
ताम्=उसी प्रश्न को
एव=ही
मे=मेरे लिये (मुझसे)
ब्रूहि=कहिये
इति=यह
+ श्रुत्वा=सुन करके
सः=वह राजा
ह=अति
कृच्छ्री=दुःखित
बभूव=होता भया

भावार्थ ।

हे सौम्य ! जब उद्दालक ऋषि ने अपने पुत्र श्वेतकेतु से कहा कि मैं भी राजा के प्रश्नों का उत्तर नहीं दे सकता हूं तब अपने को उस विद्या से अज्ञात पाकर उसके जानने के लिये जिज्ञासा धारण करके प-

श्वालदेश के जैवलि नाम राजा के राजगृह को जाता भया । जब वहाँ पहुँचा तब राजा ने उसके समीप जाकर कुशलप्रश्नपूर्वक अर्घ पाद्यादि आतिथ्य सत्कार करके सुख विश्राम निमित्त उसको एक मकान में ठहरा दिया । दूसरे दिन उद्दालक ऋषि स्नान संध्योपासनादि नित्यकर्म करके राजा की सभा में पहुँचे । उस राजा ने ऋषि का पूजा आदि सत्कार किया और हाथ जोड़ विनयपूर्वक ऋषि से कहा कि हे पूजा के योग्य, गौतम ! मनुष्यलोकसम्बन्धी धन, ग्राम, रत्न और रथ आदि पदार्थों में से अपनी कामनानुसार मांग लीजिये । इसके जवाब में गौतम ऋषि ने कहा कि हे राजन् ! मनुष्यलोकसम्बन्धी धनादिक सब आपके ही पास रहें मुझको उनकी कामना नहीं है । तब राजा ने शंकापूर्वक प्रश्न किया कि फिर आपकी क्या इच्छा है, किस अर्थ के लिये आपका आगमन हुआ है ? तब उद्दालक ऋषि ने जवाब दिया कि हे राजन् ! जो आपने मेरे पुत्र प्रति पांच प्रश्न किये हैं और जिसका उत्तर वह नहीं दे सका, उनको मैं भी नहीं जानता हूं, इसलिये जो पञ्चप्रश्नलक्षणा विद्या आपमें है उसको मेरे प्रति कहिये । यह सुनकर राजा को बड़ा खेद हुआ ॥ ६ ॥

मूलम् ।

तꣳ ह चिरं वसेत्याज्ञापयाञ्चकार तꣳ होवाच यथा मा त्वं गौतमावदो यथेयं न प्राक् त्वत्तः पुरा विद्या ब्राह्मणान् गच्छति तस्मादु सर्वेषु लोकेषु क्षत्रस्यैव प्रशासनमभूदिति तस्मै होवाच ॥ ७ ॥

इति तृतीयः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

तम्, ह, चिरम्, वस, इति, आज्ञापयाञ्चकार, तम्, ह, उवाच, यथा, मा, त्वम्, गौतम, अवदः, यथा, इयम्, न, प्राक्, त्वत्तः, पुरा,

विद्या, ब्राह्मणान्, गच्छति, तस्मात्, उ, सर्वेषु, लोकेषु, क्षत्रस्य, एव, प्रशासनम्, अभूत्, इति, तस्मै, ह, उवाच ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
+ सः	उस प्रवाहण राजा ने	+ वदामि	कहता हूं
तम्	उस गौतम ऋषि से	पुरा	पहले समय में
ह	स्पष्ट	त्वत्तः	आपसे
आज्ञापयाञ्चकार	कहा कि	प्राक्	पहिले
+ त्वम्	आप	इयम्	यह
चिरम्	कुछ कालतक	विद्या	विद्या
+ अत्र	यहां	ब्राह्मणान्	ब्राह्मणों के पास
वस	रहें	न	नहीं
+ च	और	गच्छति	थी
इति	ऐसा कहकर	+ च	और
+ पुनः	फिर भी	तस्मात्	इसी कारण
तम्	उस गौतम ऋषि से	उ	निश्चय करके
ह	स्पष्ट	सर्वेषु	सब
उवाच	कहता भया कि	लोकेषु	लोकों विषे
गौतम	हे गौतम !	क्षत्रस्य	क्षत्रियवंश में
यथा	चूंकि	एव	ही
त्वम्	तुमने	प्रशासनम्	इस विद्या का पठन पाठन
मा	मुझसे	अभूत्	रहा
अवदः	पूछा कि	इति	ऐसा
+ पञ्चप्रश्नलक्षणवताम्	पांचप्रश्नलक्षणवाली	+ उक्त्वा	कह करके
+ विद्याम्	विद्या को	+ सः	वह राजा
+ मे	मुझसे	तस्मै	गौतम ऋषि से
+ ब्रूहि	कहो	+ क्षमस्व	क्षमा कीजिये
यथा	इस कारण	+ इति	ऐसा
+ अहम्	मैं	उवाच ह	कहता भया

भावार्थ ।

हे सौम्य ! जब गौतम ने संसारसम्बन्धी वित्तादिकों की याचना न करके विद्या पाने की इच्छा प्रकट की तब राजा दुःखित होकर विचारने लगा कि यह सर्वोत्तम विद्या क्षत्रियवंश में ही आजतक रही, इसी विद्या को यह ब्राह्मण मांगता है, यदि नहीं देता हूं, तो धर्म से च्युत होता हूं; क्योंकि क्षत्रियों को सुपात्र ब्राह्मणों को दान देना परम धर्म है । यदि देता हूं तो यह अद्वितीय विद्या मेरे क्षत्रिय घर से निकलकर ब्राह्मणों के घर जाती है । परन्तु क्षत्रिय को धर्म से च्युत होना अयोग्य है, इसलिये परीक्षा लेकर इस ब्राह्मण जिज्ञासु को विद्या प्रदान करना ही उचित है । ऐसा विचारकर राजा ने कहा कि हे गौतम ! यहां एक वर्ष पर्यन्त मेरे पास निवास करो, पश्चात् मैं विद्या को आपके प्रति कहूंगा और इस प्रकार कहे हुए मेरे वाक्य पर आप क्षमा करें । हे गौतम ! आप सब प्रकार की विद्या जानते हैं और सर्वोत्तम ब्राह्मण हैं, तो भी उस विद्या को न जानते हुए जिसके प्रति मैंने आपके पुत्र से पांच प्रश्न किये थे, आपको उस विद्या के पाने के निमित्त तप करना उचित है । इस शास्त्ररीति को आप भलीप्रकार जानते हैं ऐसा निवेदन कर एक वर्ष बाद उस गौतम से राजा जैवलि विद्या कहता भया ॥ ७ ॥

इति तृतीयः खण्डः ।

अथ पञ्चमाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः ।

मूलम् ।

असौ वाव लोको गौतमाग्निस्तस्यादित्य एव समिद्रश्मयो धूमोऽहरर्चिश्चन्द्रमा अङ्गारा नक्षत्राणि विस्फुलिङ्गाः ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

असौ, वाव, लोकः, गौतम, अग्निः, तस्य, आदित्यः, एव, समित्, रश्मयः धूमः, अहः, अर्चिः, चन्द्रमाः, अङ्गाराः, नक्षत्राणि, विस्फुलिङ्गाः ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
गौतम	=हे गौतम !	रश्मयः	=किरणें
असौ	=यह स्वर्ग	धूमः	=धुवां हैं
लोकः	=लोक	अर्चिः	=प्रकाश
वाव	=ही	अहः	=दिन है
अग्निः	=अग्नि है	अङ्गाराः	=अङ्गार
+ च	=और	चन्द्रमाः	=चन्द्रमा है
तस्य	=उसका	विस्फुलिङ्गाः	= चिनगारियां
समित्	=ईंधन	नक्षत्राणि	=नक्षत्र हैं
एव	=निश्चय करके		
आदित्यः	=सूर्य है		

भावार्थ ।

हे गौतम ! अग्नि का उपासक हवन करते समय ऐसा चिन्तवन करता है कि मेरे सम्मुख की आहवनीय अग्नि स्वर्गरूप अग्नि है, इसका ईंधन सूर्य है, इसकी ज्वाला दिन है, इसकी चिनगारियां नक्षत्र हैं, इसका अंगार चन्द्रमा है । ऐसा समझकर इस अग्नि को स्वर्ग से तादात्म्यता करके जब शरीर छोड़ता है, तब उसी आहवनीय अग्नि की आहुतियां उसको स्वर्गलोक में ले जाती हैं और वहां वह स्वकर्मानुसार उत्तम सुखों को भोग कर चन्द्रलोक में आता है और चन्द्रलोक से जल द्वारा पृथ्वी पर आता है तथा व्रीह्यादि अन्नद्वारा मनुष्य का वीर्य बनता है । फिर स्त्रीयोनि को प्राप्त होकर पुरुष की सूरत में बाहर निकलता है और बड़े होनेपर फिर अपने अग्निहोत्रादि

कर्म को करने लगता है, जिस करके स्वर्गादि को प्राप्त हुआ था। इसी प्रकार कर्म द्वारा पुण्यजन्य उत्तम लोकों को प्राप्त होता रहता है ॥ १ ॥

मूलम् ।

तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवाः श्रद्धां जुह्वति तस्या आहुतेः सोमो राजा सम्भवति ॥ २ ॥

इति चतुर्थः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

तस्मिन्, एतस्मिन्, अग्नौ, देवाः, श्रद्धाम्, जुह्वति, तस्याः, आहुतेः, सोमः, राजा, सम्, भवति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
देवाः	यजमान की प्राणादि इन्द्रियां	+ च	और
तस्मिन्	उस	तस्याः	उस
एतस्मिन्	स्वर्गलोक	आहुतेः	आहुति से
अग्नौ	अग्नि में	+ फलम्	फलरूप
श्रद्धाम्	श्रद्धारूप जल को	सोमः	चन्द्रमा
जुह्वति	हवन करती हैं	राजा	राजा
		सम्भवति	उत्पन्न होता है

भावार्थ ।

जब हवनकर्ता पय घृतादि द्रव्य को स्वर्गाख्य अग्नि को स्मरण करता हुआ अपनी सम्मुख की आहवनीय अग्नि में हवन करता है, तब हवन की हुई घृतादि वस्तु सूक्ष्म परिणाम को प्राप्त हुई सूर्य की किरणों करके स्वर्ग को प्राप्त होती हैं और वहां एकत्रित रहती हैं। जब अग्निहोत्रकर्ता शरीर को त्यागता है और उसके शरीर का दाह उसके अग्निहोत्र अग्नि में किया जाता है, तब उस पुरुष को अग्निदेव स्वर्ग को पहुँचाता है। वहाँ वह अपने पूर्वकृत कर्म के फल को भोगता है,

और जब कर्मफल क्षय होने पर होता है, तब फिर वह शेषकर्म भोगार्थ स्वर्गाख्य अग्नि में श्रद्धारूप सूक्ष्म जल को हवन करता है और उन्हीं आहुतियों के साथ तन्मय हुआ आप भी हवन किया हुआ सा होता है, जिसका फल सोम राजा होता है अर्थात् वह चन्द्रलोक के भोगों को भोगने के लिये चन्द्रलोक में उत्पन्न होता है । हे गौतम ! यजमान के प्राण आदि इन्द्रियों को अग्नि आदि देवताओं के आश्रय होने के कारण देवता कहते हैं । यह जो अग्निहोत्र की घृतादि आहुतियां हैं, वे इस परिणामरूप होने के पहिले सूक्ष्म जलरूप थीं और श्रद्धा करके भावित होने से श्रद्धा कही जाती हैं यही श्रद्धारूपी जल स्वर्गाख्य अग्नि विषे हवन किया हुआ पांचवीं आहुति करके स्त्रीरूपाग्नि में पुरुष के परिणाम को प्राप्त होता है ॥ २ ॥

इति चतुर्थः खण्डः ।

अथ पञ्चमाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः ।

मूलम् ।

पर्जन्यो वाव गौतमाग्निस्तस्य वायुरेव समिदभ्रं धूमो विद्युदर्चिरशनिरङ्गारा ह्रादनयो विस्फुलिङ्गाः ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

पर्जन्यः, वाव, गौतम, अग्निः, तस्य, वायुः, एव, समित्, अभ्रम्, धूमः, विद्युत्, अर्चिः, अशनिः, अङ्गाराः, ह्रादनयः, विस्फुलिङ्गाः ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
गौतम	=हे गौतम !	समित्	=इंधन
पर्जन्यः	=वर्षाभिमानी देवता	वायुः	=पवन
वाव	=ही	एव	=ही है
अग्निः	=अग्नि है	धूमः	=धूम
तस्य	=उसका	अभ्रम्	=बादल है

अर्चिः=प्रकाश	अशनिः=वज्र है
विद्युत्=बिजुली है	ह्रादनयः=गर्जनशब्द
अङ्गाराः=अंगार	विस्फुलिङ्गाः=चिनगारियां हैं

भावार्थ ।

हे गौतम ! अग्नि का उपासक दूसरी बार अपने सम्मुख अग्नि को मेघदेवरूपाग्नि समझ कर कल्पना करता है कि इसका ईंधन वायु है । जैसे ईंधन से अग्नि वृद्धि को प्राप्त होता है वैसे ही वायु करके मेघ बढ़ता है और वृष्टि होती है, उसका धूम अभ्र (बादल) है । जैसे धूम से अग्नि की सिद्धि होती है वैसे ही अभ्ररूप धूम से मेघदेव की सिद्धि होती है । उसकी ज्वाला बिजुली है । जैसे ज्वाला में चमक होती है वैसे ही बिजुली में चमक है । उसका अंगार बिजुली का चमकना है । जैसे अंगार में चमक होती है वैसे ही बिजुली में चमक होती है । उसकी चिनगारियां मेघ का गर्जन शब्द हैं । जैसे चिन-गारियों में शब्द होते हैं वैसे ही मेघों के गर्जन में शब्द होते हैं ॥ १ ॥

मूलम् ।

तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवाः सोमꣳ राजानं जुह्वति तस्या आहुतेर्वर्षꣳ सम्भवति ॥ २ ॥

इति पञ्चमः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

तस्मिन्, एतस्मिन्, अग्नौ, देवाः, सोमम्, राजानम्, जुह्वति, तस्याः, आहुतेः, वर्षम्, सम्, भवति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
देवाः=	यजमान की प्राणादि इन्द्रियां	एतस्मिन्=	इस मेघरूप
तस्मिन्=	उसी	अग्नौ=	अग्नि में
		सोमम्=	सोम

राजानम्=राजा को	वर्षम्=वर्षारूप
जुह्वति=हवन करती हैं	फलम्=फल
तस्याः=उस	सम्भवति=उत्पन्न होता है
आहुतेः=आहुति से	

भावार्थ ।

हे गौतम ! ऐसे पर्जन्यरूप अग्नि बिषे यजमान की इन्द्रियां जो देवता कही जाती हैं, सोम राजा अर्थात् सोमलोकस्थ जीवात्मा को हवन करती हैं (ले जाती हैं) और उस दी हुई आहुति से वर्षारूप फल उत्पन्न होता है । हवनकर्ता ऐसी कल्पना करता है ॥ २ ॥

इति पञ्चमः खण्डः ।

अथ पञ्चमाध्यायस्य षष्ठः खण्डः ।

मूलम् ।

पृथिवी वाव गौतमाग्निस्तस्याः संवत्सर एव समिदाकाशो धूमो रात्रिरर्चिर्दिशोऽङ्गारा अवान्तरदिशो विस्फुलिङ्गाः ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

पृथिवी, वाव, गौतम, अग्निः, तस्याः, संवत्सरः, एव, समित्, आकाशः, धूमः, रात्रिः, अर्चिः, दिशः, अङ्गाराः, अवान्तरदिशः, विस्फुलिङ्गाः ॥

अन्वयः पदार्थ	अन्वयः पदार्थ
गौतम=हे गौतम !	संवत्सरः=संवत्सर है
पृथिवी=पृथ्वी	+ च=और
वाव=ही	धूमः=धूम
अग्निः=अग्नि है	आकाशः=आकाश है
तस्याः=उसका	अर्चिः=प्रकाश
समित्=ईंधन	

एव=ही	दिशः=दिशा हैं
रात्रिः=रात्रि है	विस्फुलिङ्गा=चिनगारियां
अङ्गाराः=अंगार	अवान्तरदिशः=उपदिशा हैं

भावार्थ ।

राजा जैवलि कहता है कि हे गौतम! यह पृथ्वी प्रसिद्ध अग्नि है, इसका ईंधन संवत्सर है। जैसे ईंधन से अग्नि प्रकाशित होती है वैसे ही व्रीह्यादिक अन्न संवत्सर करके उत्पन्न होकर पृथ्वी को प्रकाश करते हैं। इसका धूम आकाश है। जैसे अग्नि से धूम ऊपर को उठता है वैसे ही पृथ्वी से उठा हुआ आकाश भासता है। इसका अंगार पूर्वादि दिशा हैं। जैसे अग्नि अंगाररूप हो जाने से शान्त प्रतीत होने लगती है वैसे दिशा भी शान्त प्रतीत होती हैं। इसकी चिनगारियां ईशानादिक चारों कोण हैं। जैसे चिनगारियां अग्नि से इधर उधर निकलती हैं वैसे ही उपदिशायें भी दिशाओं से इधर उधर निकली हैं ॥ १ ॥

मूलम् ।

तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवा वर्षं जुह्वति तस्या आहुते-रन्नꣳ सम्भवति ॥ २ ॥

इति षष्ठः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

तस्मिन्, एतस्मिन्, अग्नौ, देवाः, वर्षम्, जुह्वति, तस्याः, आहुतेः, अन्नम्, सम्, भवति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
देवाः=प्राणादि इन्द्रियां		वर्षम्=वर्षा को	
तस्मिन्=उसी		जुह्वति=हवन करती हैं	
एतस्मिन्=इस पृथ्वीरूप		+ च=और	
अग्नौ=अग्नि में		तस्याः=उस	

आहुतेः=आहुति से	**+ फलम्=फल**
अन्नम्=अन्नरूप	**सम्भवति=उत्पन्न होता है**

भावार्थ ।

जब ऐसी पृथ्वीरूपाग्नि विषे देवता वर्षा की आहुति करते हैं, तब उस आहुति से व्रीहि जवादिक अन्न उत्पन्न होते हैं ॥ २ ॥

इति षष्ठः खण्डः ।

अथ पञ्चमाध्यायस्य सप्तमः खण्डः ।

मूलम् ।

पुरुषो वाव गौतमाग्निस्तस्य वागेव समित्प्राणो धूमो जिह्वाऽर्चिश्चक्षुरङ्गाराः श्रोत्रं विस्फुलिङ्गाः ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

पुरुषः, वाव, गौतम, अग्निः, तस्य, वाक्, एव, समित्, प्राणः, धूमः, जिह्वा, अर्चिः, चक्षुः, अङ्गाराः, श्रोत्रम्, विस्फुलिङ्गाः ॥

अन्वयः पदार्थ	अन्वयः पदार्थ
गौतम=हे गौतम !	धूमः=धूम
पुरुषः=पुरुष	प्राणः=प्राण है
वाव=ही	अर्चिः=प्रकाश
अग्निः=अग्नि है	जिह्वा=जिह्वा है
तस्य=उसका	अङ्गाराः=अंगारे
समित्=ईंधन	चक्षुः=नेत्र हैं
वाक्=वाणी	विस्फुलिङ्गाः=चिनगारियां
एवं=ही है	श्रोत्रम्=श्रोत्र हैं

भावार्थ ।

हे गौतम ! यह पुरुष ही प्रसिद्ध अग्नि है, इसका ईंधन वाणी है । जैसे ईंधन करके अग्नि प्रज्वलित होता है वैसे ही वाणी करके प्रतिभारूप पुरुष प्रकाश को प्राप्त होता है । उसका धूम प्राण है ।

जैसे अग्नि से धूम का उत्थान होता है वैसे पुरुषरूपाग्नि से मुख द्वारा प्राण का उत्थान होता है । इसकी ज्वाला जिह्वा है । जैसे ज्वाला लाल रंगवाली होती है वैसे जिह्वा भी लाल होती है । उसका अंगार चक्षु है । जैसे अंगार झलकता है वैसे नेत्र भी झलकता है । उसकी चिनगारियां श्रोत्र हैं । जैसे चिनगारियां इधर उधर बिखरती हैं वैसेही श्रोत्र भी घूम फिर करके शब्द ग्रहण करता है ॥ १ ॥

मूलम् ।

तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवा अन्नं जुह्वति तस्या आहुते रेतः सम्भवति ॥ २ ॥

इति सप्तमः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

तस्मिन्, एतस्मिन्, अग्नौ, देवाः, अन्नम्, जुह्वति, तस्याः, आहुतेः, रेतः, सम्, भवति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
देवाः	प्राणादि इन्द्रियां	+ च	और
तस्मिन्	उसी	तस्याः	उस
एतस्मिन्	इस पुरुषरूप	आहुतेः	आहुति से
अग्नौ	अग्नि में	रेतः	वीर्य
अन्नम्	अन्न को	सम्भवति	उत्पन्न होता है
जुह्वति	हवन करती हैं		

भावार्थ ।

ऐसी पुरुषरूपाग्नि विषे इन्द्रिय देवता व्रीहि जवादिक अन्न की आहुति करते हैं तब उस आहुति से वीर्यरूप फल उत्पन्न होता है ॥ २ ॥

इति सप्तमः खण्डः ।

अथ पञ्चमाध्यायस्याष्टमः खण्डः ।

मूलम् ।

योषा वाव गौतमाग्निस्तस्या उपस्थ एव समिद्यदुपमन्त्रयते स धूमो योनिरर्चिर्यदन्तः करोति तेऽङ्गारा अभिनन्दा विस्फुलिङ्गाः ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

योषा, वाव, गौतम, अग्निः, तस्याः, उपस्थः, एव, समित्, यत्, उप, मन्त्रयते, सः, धूमः, योनिः, अर्चिः, यत्, अन्तः, करोति, ते, अङ्गाराः, अभिनन्दाः, विस्फुलिङ्गाः ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
गौतम	=हे गौतम !	सः	=वह
योषा	=स्त्री	धूमः	=धूम है
वाव	=ही	योनिः	=योनि इन्द्रिय
अग्निः	=अग्नि है	अर्चिः	=ज्वाला है
तस्याः	=उसका	यत्	=जो
उपस्थः	=लिङ्गेन्द्रिय	अन्तःकरोति	=मैथुन है
एव	=ही	ते	=वे
समित्	=ईंधन है	अङ्गाराः	=अंगारे हैं
यत्	=जो (उससे)	अभिनन्दाः	=विषयजन्य सुखाभास
उपमन्त्रयते	=वार्तालाप करना है	विस्फुलिङ्गाः	=चिनगारियां हैं

भावार्थ ।

हे सौम्य ! राजा जैवलि कहता है कि हे गौतम ! यह स्त्री ही प्रसिद्ध अग्नि है, उसका ईंधन पुरुष की उपस्थ इन्द्रिय है । जैसे ईंधन से अग्नि प्रज्वलित होता है उसी तरह स्त्री भी पुत्रादि के उत्पन्न करने के लिये प्रकाशित होती है । उसका धूम वार्तालाप है । जैसे धूम से अग्नि की सिद्धि होती है उसी प्रकार वार्तालाप से स्त्री की

स्थिति प्रकट होती है । उसकी ज्वाला योनि है । जैसे ज्वाला में अरुणता होती है वैसे ही योनि में भी अरुणता होती है । उसका अंगार मैथुन है । जैसे अग्नि अंगाररूप होने पर शान्त हो जाती है वैसे ही मैथुन के पीछे कामाग्नि की शान्ति हो जाती है । उसकी चिनगारियां स्त्रीभोगजन्य आनन्द है । जैसे चिनगारियां अग्नि से निकलकर क्षणमात्र में नष्ट हो जाती हैं वैसे ही भोगजन्य सुखाभास भी क्षणमात्र में नष्ट हो जाता है ॥ १ ॥

मूलम् ।

तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवा रेतो जुह्वति तस्या आहुतेर्गर्भः सम्भवति ॥ २ ॥

इत्यष्टमः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

तस्मिन्, एतस्मिन्, अग्नौ, देवाः, रेतः, जुह्वति, तस्याः, आहुतेः, गर्भः, सम्, भवति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
देवाः=प्राणादि इन्द्रियां		+ च=और	
तस्मिन्=उसी		तस्याः=उस	
एतस्मिन्=इस स्त्रीरूप		आहुतेः=आहुति से	
अग्नौ=अग्नि में		गर्भः=गर्भरूप	
रेतः=वीर्य को		+ फलम्=फल	
जुह्वति=हवन करती हैं		संभवति=उत्पन्न होता है	

भावार्थ ।

जब ऐसी स्त्रीरूप अग्नि विषे देवता वीर्य की आहुति करते हैं तब उस आहुति से गर्भरूप फल उत्पन्न होता है । हे गौतम ! श्रद्धाशब्द का वाच्य जल स्वर्गलोकादि उक्त अग्नियों विषे हवनक्रम करके सोम, वर्षा, अन्न और रेत इत्यादि परिणाम को पाता हुआ स्त्रीरूप

अग्नि विषे गर्भरूप परिणाम को प्राप्त होता है । आहुति को जल कहने का कारण यह है कि आहुति में जलभाग अर्थात् घृत विशेष रहता है, और अन्न अर्थात् पार्थिव और अग्निभाग न्यून रहता है, इस कारण इसको जल का परिणाम कहते हैं ॥ २ ॥

इत्यष्टमः खण्डः ।

अथ पञ्चमाध्यायस्य नवमः खण्डः ।

मूलम् ।

इति तु पञ्चम्यामाहुतावापः पुरुषवचसो भवन्तीति स उल्वावृतो गर्भो दश वा नव वा मासानन्तः शयित्वा यावद्वाऽथ जायते ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

इति, तु, पञ्चम्याम्, आहुतौ, आपः, पुरुषवचसः, भवन्ति, इति, सः, उल्वावृतः, गर्भः, दश, वा, नव, वा, मासान्, अन्तः, शयित्वा, यावत्, वा, अथ, जायते ॥

अन्वयः	पदार्थ
उल्वावृतः	झिल्ली से लिपटा हुआ
सः	वह
गर्भः	गर्भस्थ पुरुष
दश	दश
वा	अथवा
नव	नव
वा	अथवा
यावत्	कम ज़्यादा
मासान्	महीनों तक
अन्तः	पेट में
शयित्वा	रहकर
अथ	तत्पश्चात्
जायते	उत्पन्न होता है
इति तु	इस प्रकार
पञ्चम्याम्	पांचवीं
आहुतौ	आहुति में
आपः	जल
पुरुषवचसः	पुरुष के परिणाम को
इति	ऊपर कहे हुए प्रकार प्राप्त
भवन्ति	होता है

भावार्थ ।

हे गौतम ! श्रद्धारूप जल जो प्रथम स्वर्गाख्य अग्नि में हवन किया गया था, वही क्रम से पञ्चम स्त्रीरूपाग्नि में वीर्यरूप से हवन किया हुआ पुरुषाकार परिणाम को प्राप्त होता है । यह उत्तर इस प्रश्न का है (पञ्चम्यामाहुतौ आपः पुरुषवचसो भवन्ति) पांचवीं आहुति में जल पुरुष नामवाला होता है जिसको कि मैंने तुम्हारे पुत्र से पूछा था । इस प्रश्न का तात्पर्य वैराग्य दिखलाने का है ताकि ऐसे परिणाम को प्राप्त हुआ पुरुष अनेक प्रकार के दुःखों से, जो गर्भाशय में उसको वारंवार सहना पड़ता है, बचने का प्रयत्न करे ॥ १ ॥

मूलम् ।

स जातो यावदायुषं जीवति तं प्रेतं दिष्टमितोऽग्नय एव हरन्ति यत एवेतो यतः सम्भूतो भवति ॥ २ ॥

इति नवमः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

सः, जातः, यावत्, आयुषम्, जीवति, तम्, प्रेतम्, दिष्टम्, इतः, अग्नये, एव, हरन्ति, यतः, एव, इतः, यतः, सम्भूतः, भवति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
जातः	पैदा हुआ	दिष्टम्	देख करके
सः	वह पुरुष	अग्नये	दाहकर्म के लिये
यावत्	जितनी	एव	निश्चय करके
आयुषम्	उसकी आयु है	इतः	उसके ग्राम से
+ तावत्	उतने काल तक	+ ऋत्विजादयः	ऋत्विक् या उसके लड़के आदिक
जीवति	जीता है	+ उपाग्नि	अग्नि के समीप
+ पुनः	फिर	हरन्ति	लेजाते हैं
तम्	उसको		
प्रेतम्	मरा हुआ		

यतः=जिससे	यतः=जिससे
+ सः=वह	एव=निश्चय करके
इतः=इस संसार में	सम्भूतः=आया
+आगतः=पैदा हुआ है	भवति=है

भावार्थ ।

हे गौतम ! ऊपर कहे हुए प्रकार पुरुष गर्भाशय में निवास कर और बाहर आकर, जितनी उसकी आयु होती है उतने काल पर्यन्त जीता है और जब कर्मफल को भोगकर मरता है तब यदि वह राजा है तो उसके मृतक शरीर को पुरोहित आदिक श्मशान में ले जाते हैं और यदि वह गृहस्थ साधारण पुरुष है तो उसके पुत्रादि श्मशान में ले जाते हैं । वहां उस अग्नि में दाह करते हैं जिससे वह उत्पन्न हुआ था । इसका तात्पर्य यह है कि केवल वेदोक्त अग्निहोत्रकर्ता घटीयंत्रवत् (रहँट की तरह) वारंवार जन्म मरण को प्राप्त होता है । कभी ऊर्ध्वलोक को जाकर स्वर्गलोक के भोगों को भोगता है और कभी लौटकर मृत्युलोक में स्त्रीयोनि को प्राप्त होकर अनेक प्रकार का दुःख उठाता है और अंत को उसी अग्नि में दाह किया जाता है जिस पञ्चाग्नि से पैदा हुआ था और स्वर्गलोक गया था ॥ २ ॥

इति नवमः खण्डः ।

अथ पञ्चमाध्यायस्य दशमः खण्डः ।

मूलम् ।

तद्य इत्थं विदुः ये चेमेऽरण्ये श्रद्धा तप इत्युपासते तेऽर्चिषमभिसंभवन्त्यर्चिषोऽहरह्न आपूर्यमाणपक्षमापूर्यमाणपक्षाद्यान्षडुदङ्ङेति मासाꣳस्तान् ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

तत्, ये, इत्थम्, विदुः, ये, च, इमे, अरण्ये, श्रद्धा, तपः, इति, उप, आसते, ते, अर्चिषम्, अभि, सम्, भवन्ति, अर्चिषः, अहः, अह्नः, आपूर्यमाणपक्षम्, आपूर्यमाणपक्षात्, यान्, षट्, उदङ्, एति, मासान्, तान् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
ये=जो गृहस्थाश्रमी पुरुष		ते=वे	
तत्=उस पञ्चाग्नि को		अर्चिषम्=प्रकाश को	
इत्थम्=इस प्रकार		अभि सम्भवन्ति=प्राप्त होते हैं	
विदुः=जानते हैं		अर्चिषः=प्रकाश से	
च=और		अहः=दिन को	
ये=जो		अह्नः=दिन से	
इमे=वानप्रस्थ संन्यासी		आपूर्यमाणपक्षम्=शुक्लपक्ष को	
अरण्ये=वन विषे		आपूर्यमाणपक्षात्=शुक्लपक्ष से	
श्रद्धा=श्रद्धा		तान्=उन	
+ च=और		षट्=छः	
तपः=तपपूर्वक		मासान्=महीनों को	
इति=इस प्रकार		यान्=जिनमें	
+ हिरण्यगर्भम्=हिरण्यगर्भ की		+आदित्यः=सूर्य	
उपासते=उपासना करते हैं		उदङ्केति=उत्तर मार्ग से निकलता है	

भावार्थ ।

हे गौतम ! जो अग्निहोत्र कर्म का कर्ता गृहस्थ पुरुष, जिसमें उपकुर्वाण ब्रह्मचारी भी शामिल हैं, इसके वास्तविकरूप को न जानकर कर्म करते हैं वे वारंवार ऊपर कहे हुए प्रकार जन्म मरण को

प्राप्त होते हैं; परन्तु जो अग्निहोत्र कर्म के कर्ता इस पञ्चाग्नि विद्या के यथार्थ रूप को जानकर हिरण्यगर्भ की उपासना सहित यज्ञकर्म को करते हैं वे उपासनाकर्मबल करके ब्रह्मलोक को प्राप्त होते हैं और वहां ब्रह्मा से ब्रह्मविद्या पाकर जन्म मरणरहित होते हैं । इसीप्रकार जो वानप्रस्थ और संन्यासी श्रद्धा और तपपूर्वक हिरण्यगर्भ की उपासना करते हैं वे भी ब्रह्मलोक को प्राप्त होकर, ब्रह्मा से ब्रह्मविद्या पाकर, मुक्त होते हैं । ब्रह्मचारी दो प्रकार के होते हैं, उपकुर्वाण और नैष्ठिक । उपकुर्वाण ब्रह्मचारी वे हैं जो ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर विद्याध्ययन के बाद गृहस्थाश्रमी बनते हैं और नैष्ठिक ब्रह्मचारी वे हैं जो ब्रह्मचर्य व्रत धारण करके गृहस्थाश्रम को नहीं ग्रहण करते हैं और उनको वानप्रस्थ तथा संन्यास का अधिकार होता है ॥ १ ॥

मूलम् ।

मासेभ्यः संवत्सरꣳ संवत्सरादादित्यमादित्याच्चन्द्रमसं चन्द्रमसो विद्युतं तत्पुरुषोऽमानवः स एनान्ब्रह्म गमयत्येष देवयानः पन्था इति ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

मासेभ्यः, संवत्सरम्, संवत्सरात्, आदित्यम्, आदित्यात्, चन्द्रमसम्, चन्द्रमसः, विद्युतम्, तत्, पुरुषः, अमानवः, सः, एनान्, ब्रह्म, गमयति, एषः, देवयानः, पन्थाः, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
मासेभ्यः	षट् मास से	चन्द्रमसः	चन्द्रमा से
संवत्सरम्	वर्ष को	विद्युतम्	विद्युत् को
संवत्सरात्	संवत्सर से	तत्	वहां से
आदित्यम्	सूर्य को	सः	वह
आदित्यात्	सूर्य से	अमानवः	दिव्य
चन्द्रमसम्	चन्द्रमा को	पुरुषः	पुरुष

एनान्=उन उपासकों को	एषः=यह
ब्रह्म=ब्रह्मलोक	देवयानः=देवयान
गमयति=ले जाता है	पन्थाः=मार्ग
इति=इस प्रकार	+ अस्ति=है

भावार्थ ।

हे गौतम ! जब विद्वान् उपासक उत्तरायण मार्ग के षट्मासाभिमानी देवता को प्राप्त होता है तब वहां से उसको संवत्सराभिमानी देवता ले जाता है । इस संवत्सराभिमानी देवता के पास से चन्द्राभिमानी देवता चन्द्रलोक को ले जाता है और चन्द्रलोक से विद्युत अभिमानी देवता अपने लोक को ले जाता है । उस विद्युत् लोक से ब्रह्मलोक का दिव्य पुरुष आकर उसे ब्रह्मलोक को ले जाता है और वहां वह देवतारूप होता हुआ सर्वोत्तम भाव को पाकर ब्रह्मा के साथ निवास करता है । इसीको देवयानमार्ग कहते हैं ॥ २ ॥

मूलम् ।

अथ य इमे ग्राम इष्टापूर्ते दत्तमित्युपासते ते धूममभिसम्भवन्ति धूमाद्रात्रिंꣳ रात्रेरपरपक्षमपरपक्षाद्यान्षड्दक्षिणैति मासाꣳस्तान्नैते संवत्सरमभिप्राप्नुवन्ति ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, ये, इमे, ग्रामे, इष्टापूर्ते, दत्तम्, इति, उप,आसते, ते, धूमम् अभि, सम्, भवन्ति, धूमात्, रात्रिम्, रात्रेः, अपरपक्षम्, अपरपक्षात् यान्, षट्, दक्षिणा, एति, मासान्, तान्, न, एते, संवत्सरम्, अभि, प्र आप्नुवन्ति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ=और		ग्रामे=ग्रामों में	
ये=जो		इष्टापूर्ते=अग्निहोत्र कूप तड़ागादिक	
इमे=ये कर्मोपासक गृहस्थ			

+ च=और
दत्तम्=दानादिक
इति=ऐसे और दूसरे कर्मों को
उपासते=करते हैं
ते=वे सब
धूमम्=धूमाभिमानी देवता को
अभिसम्भवन्ति=प्राप्त होते हैं
धूमात्=धूमलोक से
रात्रिम्=रात्रिअभिमानी देवता को
रात्रेः=रात्रिलोक से
अपरपक्षम्=कृष्णपक्ष को
अपरपक्षात्=कृष्णपक्ष से
एते=वे
तान्=उन
षट्=छह
मासान्=मासाभिमानी देवताओं के लोकों को
+गच्छन्ति=प्राप्त होते हैं
यान्=जिनमें
+ आदित्यः=सूर्य
दक्षिणा=दक्षिणायन
एति=होता है
संवत्सरम्=संवत्सरअभिमानी देवता को
न=नहीं
अभिप्राप्नुवन्ति=प्राप्त होते हैं

भावार्थ ।

हे गौतम ! जो गृहस्थ इष्टापूर्त दानादि कर्म करते हैं पर पञ्चाग्नि-विद्या को नहीं जानते हैं वे मरणोत्तर अग्नि बिषे दाह हुए धूमाभिमानी देवता के लोक को प्राप्त होते हैं और धूमलोक से रात्रिअभिमानी देवता के लोक को प्राप्त होते हैं । और फिर रात्रिलोक से कृष्णपक्षाभिमानी देवता के लोक को प्राप्त होते हैं और कृष्णपक्षाभिमानी लोक से षट्मासाभिमानी देवता के लोक को प्राप्त होते हैं । जिसमें सूर्य दक्षिणायन रहता है । परन्तु ये गृहस्थकर्मी संवत्सराभिमानी देवता को नहीं प्राप्त होते हैं । इष्टा से मतलब अग्निहोत्र वैदिक कर्म के हैं और पूर्त से मतलब बाग, कूप,पाठशालादिक के हैं । दान से मतलब उत्तम दान तथा निकृष्ट दान के हैं । उत्तम दान धन, अन्न और वस्त्रादि हैं जो ब्रह्मचारी, गृहस्थ,वानप्रस्थ स्वकर्मारूढों को श्रद्धापूर्वक दिये जाते हैं और निकृष्ट दान वह है जो स्वनामप्रकाशार्थ अन्धे, लूले, लँगड़े

या अन्य कर्मरहित ब्राह्मणों को दिया जाता है । यह पितृयानमार्ग कहलाता है ॥ ३ ॥

मूलम् ।

मासेभ्यः पितृलोकं पितृलोकादाकाशमाकाशाच्चन्द्रमसमेष सोमो राजा तद्देवानामन्नं तं देवा भक्षयन्ति॥४॥

पदच्छेदः ।

मासेभ्यः, पितृलोकम्, पितृलोकात्, आकाशम्, आकाशात्, चन्द्रमसम्, एषः, सोमः, राजा, तत्, देवानाम्, अन्नम्, तम्, देवाः, भक्षयन्ति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
मासेभ्यः	षट्मासाभिमानी देवता के लोक से	तत्	इसी कारण
पितृलोकम्	पितृलोक को	एषः	यह
पितृलोकात्	पितृलोक से	सोमः	सोम
आकाशम्	आकाश को	राजा	राजा
आकाशात्	आकाश से	देवानाम्	देवताओं का
चन्द्रमसम्	चन्द्रमा को	अन्नम्	अन्न है
+ प्राप्नुवन्ति	प्राप्त होते हैं	तम्	उसको
+ च	और	देवाः	देवता
		भक्षयन्ति	भोग करते हैं

भावार्थ ।

हे गौतम ! पूर्व मंत्रोक्त षट्मासाभिमानी देवता के लोक से पितृलोक को प्राप्त होते हैं, पितृलोक से आकाशाभिमानी देवता के लोक को प्राप्त होते हैं और आकाश से चन्द्रलोक को प्राप्त होते हैं । यह वहां चन्द्रमा है जो अंतरिक्ष में दृष्टिगोचर है और जिस लोक में प्राप्त हुए यजमान इन्द्रादि देवताओं के अन्न (भोग) बनते हैं तात्पर्य यह है कि जब यजमान शरीर त्यागकर चन्द्रलोक में जाते हैं तब वहां स्वकर्मानुसार वह स्त्री, सेवक, पशु बन जाते हैं और उनके साथ

इन्द्रादि देवता क्रीड़ा करते हैं । उस क्रीड़ा करने में उनको वैसा ही आनन्द मिलता है जैसा इन्द्रादिक देवताओं को मिलता है । चन्द्ररूप अन्न के भक्षण करने का यही मतलब है जो ऊपर कहा गया, यह नहीं है कि जैसे मनुष्य अन्न को ग्रास कर करके खाते हैं वैसा ही देवता उपासकों को भक्षण करते हैं ॥ ४ ॥

मूलम् ।

तस्मिन्यावत्संपातमुषित्वाऽथैतमेवाध्वानं पुनर्निवर्तन्ते यथैतमाकाशमाकाशाद्वायुं वायुर्भूत्वा धूमो भवति धूमो भूत्वाऽभ्रं भवति ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ।

तस्मिन्, यावत्, संपातम्, उषित्वा, अथ, एतम्, एव, अध्वानम्, पुनः, निर्, वर्तन्ते, यथा, एतम्, आकाशम्, आकाशात्, वायुम्, वायुः, भूत्वा, धूमः, भवति, धूमः, भूत्वा, अभ्रम्, भवति ॥

अन्वयः	पदार्थ
संपातम्	कर्म क्षय होने
यावत्	तक
तस्मिन्	उस चन्द्रमंडल में
उषित्वा	रह करके
अथ	तत्पश्चात्
पुनः	फिर
एतम्	उस
एव	ही
अध्वानम्	मार्ग से
यथा	जिस प्रकार
+ चन्द्रमण्डलम्	चन्द्रमण्डल को
एतम्	गये थे
+ तथा	इसी प्रकार
+ ततः	वहां से

अन्वयः	पदार्थ
आकाशम्	आकाश को
निर्वर्तन्ते	लौट आते हैं
आकाशात्	आकाश से
वायुम्	वायुलोक को आते
+ पुनः	फिर
वायुः	वायु
भूत्वा	होकर
धूमः	धूम
भवति	होता है
+ च	और
धूमः	धूम
भूत्वा	होकर
अभ्रम्	कोमल मेघ
भवति	होता है

भावार्थ ।

हे गौतम ! जब कर्मों का कर्मफल क्षय हो जाता है तब वह चन्द्रलोक से उसी मार्ग करके आता है जिस मार्ग करके गया था अर्थात् चन्द्रलोक से आकाश को, आकाश से वायुलोक को। वायुलोक में वह वायु होकर धूम होता है और धूम होकर मेघ होता है ।

प्रश्न—जो ऐसा कहा है कि इष्टापूर्तादि सर्व कर्मफल को कर्मी चन्द्रलोक में भोग लेता है और उन कर्मों के क्षय होनेपर मृत्युलोक को लौट आता है, यह असंभव है; क्योंकि जब कुछ कर्म शेष नहीं रहा, तो वह कर्मी कैसे मृत्युलोक में आ सकता है ?

उत्तर—कर्मी इष्टापूर्त के कर्मफल को चन्द्रलोक में भोगता है और उस कर्मफल की समाप्ति वहीं हो जाती है, परन्तु जो उसने और दूसरे कर्म किये हैं उसका भोग मृत्युलोक ही में हो सकता है। उस कर्म संस्कार से प्रेरित हुआ वह कर्मी मृत्युलोक में लौट आता है और अपने कर्मानुसार जन्म पाता है और फिर कर्म करने लगता है ।

प्रश्न—जब शरीर नष्ट होता है तब उसके साथ कर्म भी नष्ट हो जाते हैं, तब इष्टापूर्त कर्म करने के पहिले और शरीर करके किया गया जो कर्म है वह कर्म इष्टापूर्त कर्म के पश्चात् शरीर के दाह होनेपर नष्ट हो गया, तब फिर कर्मी चन्द्रलोक से मृत्युलोक में कैसे आ सकता है ?

उत्तर—शरीर के नाश होने से कर्मफल विना भोगे कभी नाश नहीं होता है, कर्म का सूक्ष्म संस्कार बुद्धि आदि में स्थित रहता है और उस कर्मी के जन्म लेने में कारण बनता है, यदि ऐसा न हो तो पैदा होते ही अपने माता पिता के अनुसार कर्म को नहीं कर सकता है। जब मर्कट (वानर) का बच्चा पैदा होता है तब पैदा होते ही अपने माता पिता के ऐसे ही कूदफांद करने लगता है। कारण यह है कि वह बच्चा इस जन्म के पहिले भी मर्कट था और उस जन्म के किये हुए कर्म के

संस्कार बने थे। यदि ऐसा न होता तो पैदा होते ही कूदफांद मर्कट की तरह न कर सकता; क्योंकि उसको किसी ने सिखलाया नहीं।

प्रश्न—श्रुति ने कर्मी के जाने को जैसे चन्द्रलोक में कहा है वही विधि चन्द्रलोक से आने को भी कही है, परन्तु इस प्रकार कर्मी नहीं आता है ?

उत्तर—श्रुति के कहने का तात्पर्य चन्द्रलोक से मृत्युलोक में आने का है चाहे किसी मार्ग करके आवे ॥ ५ ॥

मूलम् ।

अभ्रं भूत्वा मेघो भवति मेघो भूत्वा प्रवर्षति त इह व्रीहियवा ओषधिवनस्पतयस्तिलमाषा इति जायन्तेऽतो वै खलु दुर्निष्प्रापतरं यो यो ह्यन्नमत्ति यो रेतः सिञ्चति तद्भूय एव भवति ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ।

अभ्रम्, भूत्वा, मेघः, भवति, मेघः, भूत्वा, प्रवर्षति, ते, इह, व्रीहियवाः, ओषधिवनस्पतयः, तिलमाषाः, इति, जायन्ते, अतः, वै, खलु, दुर्निष्प्रापतरम, यः, यः, हि, अन्नम्, अत्ति, यः, रेतः, सिञ्चति, तत्, भूयः, एव, भवति ॥

अन्वयः	पदार्थ
+ सः	वह पुरुष
अभ्रम्	अभ्र
भूत्वा	होकर
मेघः	मेघ
भवति	होता है
मेघः	मेघ
भूत्वा	होकर
प्रवर्षति	वर्षता है

अन्वयः	पदार्थ
+ च	और
ते	वे सब
इह	मृत्युलोक में
व्रीहियवाः	धान यव
ओषधिवनस्पतयः	ओषधि वनस्पति
तिलमाषाः	तिल उर्द
इति	रूप से

आयन्ते=उत्पन्न होते हैं
अतः=इससे
+ निस्सरणम्=निकलना
वै खलु=निश्चय करके
दुर्निष्प्रापतरम्=कठिन है
हि=क्योंकि
यः=जो
यः=जो
अन्नम्=अन्न को
अत्ति=खाता है
+ च=और
+ पुनः=फिर
यः=जो
रेतः=वीर्य को
सिञ्चति=सिंचन करता है
भूयः=फिर
तत्=वही
एव=निश्चय करके उसी रूप से उत्पन्न
भवति=होता है

भावार्थ ।

हे गौतम ! वे पुरुष जिनके विशेष कर्म स्वर्ग में क्षीण हो गये हैं और शेष कर्म भोगार्थ रहगये हैं, वे अभ्र में रहकर मेघ में आते हैं और मेघ से वर्षा में आते हैं और फिर पृथ्वी को प्राप्त होते हैं तथा पृथ्वी से अन्न अथवा वनस्पति में जाते हैं। फिर अन्न के भक्षण करने पर पुरुष को प्राप्त होकर उसके वीर्य में रहते हैं और फिर स्त्री के गर्भाशय में प्राप्त होते हैं तथा मनुष्य शरीर पाकर बचे खुचे कर्मफल को भोगते हैं और भविष्यफलभोगार्थ कर्म करते हैं। यह गति शुभकर्मियों की है । जो अशुभकर्मी हैं, वे वर्षा में होकर नदी, समुद्र, पर्वत, वन आदि स्थानों में गिरते हैं और घासादि में प्रवेश करके क्रूरजीवों के भक्ष्य बनते हैं तथा अनादिकाल तक अचेत पड़े रहते हैं। जब किञ्चित् कर्म फल देने को उदय होते हैं, तब उद्भिज्ज के आकार को प्राप्त होते हैं अर्थात् जो पृथ्वी को फोड़-कर निकलते हैं, जैसे घास वृक्ष आदि । तिसके पीछे स्वेदज को प्राप्त होते हैं, जैसे जुआं, खटमल आदि । बाद को अण्डज को प्राप्त होते हैं, जैसे चील, कौआ आदि । यह घटीयंत्र की तरह क्रूरयोनियों में बारंबार आया जाया करता है और असंख्य काल तक उद्धार नहीं

होता । हे गौतम ! तुम अनुभव कर सकते हो कि स्त्री के गर्भाशय को प्राप्त होना ही और योनियों की अपेक्षा अतिदुर्लभ है और श्रेष्ठ कर्मों का फल है ॥ ६ ॥

मूलम् ।

तद्य इह रमणीयचरणा अभ्याशो ह यत्ते रमणीयां योनिमापद्येरन् ब्राह्मणयोनिं वा क्षत्रिययोनिं वा वैश्ययोनिं वाथ य इह कपूयचरणा अभ्याशो ह यत्ते कपूयां योनिमापद्येरञ्श्वयोनिं वा सूकरयोनिं वा चण्डालयोनिं वा ॥ ७ ॥

पदच्छेदः ।

तत्, ये, इह, रमणीयचरणाः, अभ्याशः, ह, यत्, ते, रमणीयाम्, योनिम्, आपद्येरन्, ब्राह्मणयोनिम्, वा, क्षत्रिययोनिम्, वा, वैश्ययोनिम्, वा, अथ, ये, इह, कपूयचरणाः, अभ्याशः, ह, यत्, ते, कपूयाम्, योनिम्, आपद्येरन्, श्वयोनिम्, वा, सूकरयोनिम्, वा, चण्डालयोनिम्, वा ॥

अन्वयः	पदार्थ
तत्	उनमें से
ये	जो
इह	इस संसार विषे
रमणीयचरणाः	उत्तम स्वभाव अर्थात् उत्तम आचरणवाले
+ सन्ति	हैं
ते	वे
अभ्याशः	शीघ्र
ह	ही
रमणीयाम्	उत्तम
योनिम्	योनि को
यत्	अर्थात्
ब्राह्मणयोनिम्	ब्राह्मणयोनि
वा	अथवा
क्षत्रिययोनिम्	क्षत्रिययोनि
वा	अथवा
वैश्ययोनिम्	वैश्ययोनि को
आपद्येरन्	प्राप्त होते हैं
अथ	और
ये	जो
इह	इस संसार विषे
कपूयचरणाः	निन्दितआचरणवाले

+ सन्ति=हैं
ते=वे
अभ्याशः=शीघ्र
ह=ही
कपूयाम्=निन्दित
योनिम्=योनि
यत्=अर्थात्
श्वयोनिम्=कुत्तों की योनि को
वा=अथवा
सूकरयोनिम्=सूकरयोनि को
वा=अथवा
चण्डालयोनिम्=चण्डालयोनि को
आपद्येरन्=प्राप्त होते हैं

भावार्थ ।

हे गौतम ! जो दैवीसम्पदावाले पुरुष हैं अर्थात् जिन्होंने इष्टापूर्त आदि कर्म किये हैं और साथ-ही-साथ उसके सत्य, दया, आर्जव और क्षमा आदि लक्षणों से लक्षित रहते हैं वे चन्द्रलोक में अपने इष्टापूर्त आदि कर्मों के फल को भोगकर मृत्युलोक में ऊपर कहे हुए मार्ग द्वारा आकर ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के कुल में उत्पन्न होते हैं अर्थात् जिनके सत्यगुणात्मक कर्म उत्तम हैं वे ब्राह्मणकुल में, जिनके मध्यम हैं वे क्षत्रियकुल में और जिनके निकृष्ट हैं वे वैश्यकुल में उत्पन्न होते हैं तथा जो इनके विपरीत आसुरीसम्पदावाले हैं अर्थात् इष्टापूर्तादि कर्म करते हैं पर असत्य, परस्त्रीगमन, निर्दयता, कुटिलता, क्रोध आदि दुष्ट लक्षणों से लक्षित रहते हैं वे इष्टापूर्तादि कर्मफल चन्द्रलोक में भोगकर मृत्युलोक में आकर अधम योनि अर्थात् श्वान, सूकर, चण्डाल आदि योनियों को प्राप्त होते हैं ॥ ७ ॥

मूलम् ।

अथैतयोः पथोर्न कतरेण च न तानीमानि क्षुद्राण्यसकृदावर्तीनि भूतानि भवन्ति जायस्व म्रियस्वेत्येतत् तृतीयꣳ स्थानं तेनासौ लोको न सम्पूर्यते तस्माज्जुगुप्सेत तदेष श्लोकः ॥ ८ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, एतयोः, पथोः, न, कतरेण, च, न, तानि, इमानि, क्षुद्राणि, असकृत्, आवर्तीनि, भूतानि, भवन्ति, जायस्व, म्रियस्व, इति, एतत्, तृतीयम्, स्थानम्, तेन, असौ, लोकः, न, सम्, पूर्यते, तस्मात्, जुगुप्सेत, तत्, एषः, श्लोकः ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ	और	भूतानि	जीव
+ ये	जो	भवन्ति	उत्पन्न होते हैं
+ न	न	तत्	इसलिये
+ विद्यासेविनः	पञ्चाग्नि विद्या के सेवी हैं	जायस्व	जन्मे
+ च	और	+ च	और
+ न	न	म्रियस्व	मरे
+ इष्टादिकर्म	इष्टापूर्तादि कर्म को	एषः	यह
+ सेवन्ते	सेवन करते हैं	+ ईश्वरस्य	ईश्वर की
+ ते	वे	श्लोकः	आज्ञा है
एतयोः	इन ऊपर कहे हुए दोनों	इति	इस प्रकार
पथोः	मार्गों में से	एतत्	यह
कतरेण	किसी मार्ग द्वारा	तृतीयम्	तृतीय
न	नहीं	स्थानम्	स्थान है
+ यन्ति	जाते हैं	+ च	और
तानि	वे	तेन	इसी कारण से
इमानि	ये	असौ	यह
च न	निश्चय करके	लोकः	लोक
क्षुद्राणि	क्षुद्र कीट पतंगादि	न	नहीं
असकृत्	वारंवार	सम्पूर्यते	पूर्ण होता है
आवर्तीनि	जीने मरनेवाले	तस्मात्	इसलिये
		+ एनम्	इस संसार से
		जुगुप्सेत	घृणा करे

भावार्थ ।

हे गौतम ! पञ्चाग्नि की उपासना करनेवाले उत्तरायण मार्ग से

क्रमशः संवत्सर को प्राप्त होते हैं, उसी तरह इष्टापूर्तादि कर्म करके कर्मी दक्षिणायन मार्ग से संवत्सर की अवधि तक पहुँचते हैं। फिर संवत्सर के आगे पञ्चाग्नि का उपासक उत्तरायण मार्ग से सूर्यलोक को प्राप्त होता है और इष्टापूर्तादि कर्म का कर्ता दक्षिण मार्ग करके पितृ-लोक को प्राप्त होता है। अग्नि का उपासक ब्रह्मलोक में दिव्य भोगों को भोगता है और ब्रह्मा से ब्रह्मविद्या पाकर स्वेच्छित मृत्युलोक में आता है एवं इष्टापूर्तादि कर्म का कर्ता अपने कर्मफलों को अल्प-काल तक चन्द्रलोक में भोगकर क्रमशः मृत्युलोक में जन्म को पाता है, परन्तु जो इन दोनों मार्गों के कर्मों से गिरे हैं, अर्थात् जो न इष्टापूर्तादि कर्म करते हैं और न पञ्चाग्नि विद्या की उपासना करते हैं वे मृत्युलोक ही में अधम योनि अर्थात् कीट, पतंगादि योनियों को प्राप्त होते रहते हैं, क्योंकि ईश्वर का संकेत (आज्ञा) है कि ऐसे जीव जो दोनों मार्गों से गिरे हैं वे वारंवार जन्में और मरें और यही कारण है कि न ये स्वर्गलोक को जाते हैं और न स्वर्गलोक पूर्ण होता है। यह संसार घृणा के योग्य है, इस कारण कि इसमें किञ्चित् मात्र सुख नहीं है। यह केवल दुःखरूप है, जीव घटीयन्त्र की तरह ऊपर नीचे अहर्निश फिरा करते हैं ॥ ८ ॥

मूलम्।

स्तेनो हिरण्यस्य सुरां पिबꣳश्च गुरोस्तल्पमावसन्ब्रह्महा चैते पतन्ति चत्वारः पञ्चमश्चचारꣳस्तैरिति ॥ ९ ॥

पदच्छेदः।

स्तेनः, हिरण्यस्य, सुराम्, पिबन्, च, गुरोः, तल्पम, आवसन्, ब्रह्महा, च, एते, पतन्ति, चत्वारः, पञ्चमः, च, आचरन्, तैः, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
हिरण्यस्य	सुवर्ण का
स्तेनः	चुरानेवाला
च	और
सुराम्	मदिरा को
पिबन्	पीनेवाला
गुरोः	गुरु की
तल्पम्	शय्या में
आवसन्	बसनेवाला अर्थात् गुरुस्त्रीगमन करनेवाला
च	और
ब्रह्महा	ब्राह्मण का मारनेवाला
एते	ये
चत्वारः	चारों
पतन्ति	पातकी होते हैं
च	और
तैः	उनके
+ सह	साथ
आचरन्	रहता हुआ
पञ्चमः	पांचवां भी
इति	इसी प्रकार
+ पतति	पतित होता है

भावार्थ ।

हे गौतम ! चार प्रकार के महापातकी होते हैं । उनमें से प्रथम वह जो ब्राह्मण का सुवर्ण चुराता है, द्वितीय वह ब्राह्मण जो मद्य पान करता है, तृतीय वह जो गुरुस्त्री से गमन करता है और चतुर्थ वह जो ब्राह्मण का वध करता है और पांचवां वह जो इन महापातकियों का साथ करता है । यह पांचों पतित होते हैं ॥ ९ ॥

मूलम् ।

अथ ह य एतानेवं पञ्चाग्नीन्वेद न सह तैरप्याचरन्पाप्मना लिप्यते शुद्धः पूतः पुण्यलोको भवति य एवं वेद य एवं वेद ॥ १० ॥

इति दशमः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

अथ, ह, यः, एतान्, एवम्, पञ्चाग्नीन्, वेद, न, सह, तैः, अपि, आचरन्, पाप्मना, लिप्यते, शुद्धः, पूतः, पुण्यलोकः, भवति, यः, एवम्, वेद, यः, एवम्, वेद ॥

अन्वयः	पदार्थ
अथ=इसके बाद	
यः=जो पुरुष	
ह=निस्सन्देह	
एतान्=इन पूर्वोक्त	
पञ्चाग्नीन्=पञ्चाग्नियों को	
एवम्=भली प्रकार	
वेद=जानता है	
यः=जो	
एवम्=इस प्रकार	
वेद=जानता है	
यः=जो	
एवम्=इस प्रकार	
वेद=जानता है	
+ सः=वह	

अन्वयः	पदार्थ
तैः=ऊपर कहे हुए उन पातकियों के	
सह=साथ	
आचरन्=रहता हुआ	
अपि=भी	
पाप्मना=पाप से	
न=नहीं	
लिप्यते=लिप्त होता है	
+ च=और	
+ सः=वह	
शुद्धः=शुद्धान्तःकरणवाला	
पूतः=पवित्र हुआ	
पुण्यलोकः=स्वर्गादि लोकों को प्राप्त होनेवाला	
भवति=होता है	

भावार्थ ।

हे गौतम ! जो पञ्चाग्नि विद्या को भली प्रकार जानता है वह इन पापियों से संयुक्त हुआ भी पाप से लिप्त नहीं होता है । वह पञ्चाग्नि विद्या के प्रसाद से शुद्ध होता हुआ प्रजापति आदि लोकों को प्राप्त होता है और जो (यः एवं वेद) दो बार कहा गया है, सो समस्त प्रश्नों के निर्णय के लिये और पञ्चाग्नि विद्या की समाप्ति के लिये कहा गया है ॥ १० ॥

इति दशमः खण्डः ।

अथ पञ्चमाध्यायस्यैकादशः खण्डः ।

मूलम् ।

प्राचीनशाल औपमन्यवः सत्ययज्ञः पौलुषिरिन्द्रद्युम्नो भाल्लवेयो जनः शार्कराक्ष्यो बुडिल आश्वतराश्विस्ते

इते महाशाला महाश्रोत्रियाः समेत्य मीमाᳬसाञ्चक्रुः को न आत्मा किं ब्रह्मेति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

प्राचीनशालः, औपमन्यवः, सत्ययज्ञः, पौलुषिः, इन्द्रद्युम्नः, भाल्लवेयः, जनः, शार्कराक्ष्यः, बुडिलः, आश्वतराश्विः, ते, ह, एते, महाशालाः, महाश्रोत्रियाः, समेत्य, मीमांसाञ्चक्रुः, कः, नः, आत्मा, किम्, ब्रह्म, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
प्राचीनशालः	प्राचीनशाल नामक ऋषि	ह	स्पष्ट
औपमन्यवः	उपमन्यु का पुत्र	महाशालाः	बड़े गृहस्थ
सत्ययज्ञः	सत्ययज्ञ नामक	महाश्रोत्रियाः	वेदाध्ययन में तत्पर रहनेवाले
पौलुषिः	पुलुष का पुत्र	समेत्य	इकट्ठे होकर
इन्द्रद्युम्नः	इन्द्रद्युम्न नामक	इति	यह
भाल्लवेयः	भाल्लवि का पुत्र	मीमांसाञ्चक्रुः	विचार करते भये कि
जनः	जन नामक	कः	कौन
शार्कराक्ष्यः	शर्कराक्ष का पुत्र	नः	हम सबका
बुडिलः	बुडिल नामक	आत्मा	आत्मा है
आश्वतराश्विः	अश्वतराश्व का पुत्र	+ च	और
ते	वे	किम्	क्या
एते	ये पांचों ऋषि	ब्रह्म	ब्रह्म है

भावार्थ ।

पञ्चाग्नि विद्या की समाप्ति के पश्चात् वैश्वानरविद्या को कहते हैं। हे सौम्य ! उपमन्यु का पुत्र प्राचीनशाल, पुलुष का पुत्र सत्ययज्ञ, भाल्लवि का पुत्र इन्द्रद्युम्न, शर्कराक्ष का पुत्र जन और अश्वतराश्व का पुत्र बुडिल ये पांचों ऋषि अकस्मात् किसी एक तीर्थपर मिले और स्नानादि करके अपनी वैश्वानरविद्या का पाठ करने लगे;

परन्तु वैश्वानर के एक एक अंग के ज्ञाता होने के कारण उनका पाठ एक दूसरे से नहीं मिलता था । तब सब परस्पर मिलकर वैश्वानर आत्मानिमित्त विचार करने लगे, (१) हमारा आत्मा कौन है ? (२) क्या आत्मा ब्रह्म है ? (३) क्या ब्रह्म और आत्मा एक दूसरे का विशेष्य विशेषण भाव है ? (४) क्या अध्यात्म उपाधिपरिच्छिन्न होने से ब्रह्म ही आत्मा कहाजाता है ? (५) क्या उपाधि के अभाव से आत्मा ही ब्रह्म कहा है ? क्या अभेदकर (अयमात्मा ब्रह्म) आत्मा ही ब्रह्म है, (नातः परमस्ति) इससे पृथक् कुछ नहीं है, (तत्त्वमसि) वही ब्रह्म तू जीवात्मा है, इत्यादि श्रुतिप्रमाणपूर्वक विचार करने लगे ॥ १ ॥

मूलम् ।

ते ह सम्पादयाञ्चक्रुरुद्दालको वै भगवन्तोऽयमारुणिः सम्प्रतीममात्मानं वैश्वानरमध्येति तꣳ हन्ताभ्यागच्छामेति तꣳ हाभ्याजग्मुः ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

ते, ह, सम्पादयाञ्चक्रुः, उद्दालकः, वै, भगवन्तः, अयम्, आरुणिः, सम्प्रति, इमम्, आत्मानम्, वैश्वानरम्, अधि , एति, तम्, हन्त, अभि, आ, गच्छामः, इति, तम्, ह, अभि, आ, जग्मुः ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
भगवन्तः	ऐश्वर्य है जिनमें	इमम्	इस
ते ह	ऐसे वे ऋषि	वैश्वानरम्	वैश्वानर
इति	यह	आत्मानम्	आत्मा को
सम्पादयाञ्चक्रुः	विचार करते भये कि	हन्त	भलीप्रकार
सम्प्रति	इस समय	अध्येति	जानता है
अयम्	यह	+ अतः	इसलिये
आरुणिः	अरुण का पुत्र	+ वयम्	हम सब
उद्दालकः	उद्दालकनामक ऋषि	तम्	उसके पास

अभ्यागच्छाम:=चलें	तम्=इस उद्दालक ऋषि के पास
ह=ऐसा	अभ्याजग्मु:=जाते भये
वै=निश्चय करके	

भावार्थ ।

हे सौम्य ! पूर्वोक्त पांचों ऋषियों ने यह जानकर कि इस समय अरुण का पुत्र उद्दालक ऋषि इस वैश्वानरविद्या को भली प्रकार जानता है, इसलिये उसके पास चलना उचित है और ऐसा निश्चय करके वे सब उसके पास जाते भये ॥ २ ॥

मूलम् ।

स ह सम्पादयाञ्चकार प्रक्ष्यन्ति मामिमे महाशाला महाश्रोत्रियास्तेभ्यो न सर्वमिव प्रतिपत्स्ये हन्ताहमन्यमभ्यनुशासानीति ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

सः, ह, सम्पादयाञ्चकार, प्रक्ष्यन्ति, माम्, इमे, महाशालाः, महाश्रोत्रियाः, तेभ्यः, न, सर्वम्, इव, प्रतिपत्स्ये, हन्त, अहम्, अन्यम्, अभि, अनु, शासानि, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
सः	वह उद्दालक ऋषि	माम्	मुझसे
+ तान्	उन पांचों ऋषियोंको	+ वैश्वानरम्	वैश्वानर आत्मा को
+ दृष्ट्वा	देखकर	प्रक्ष्यन्ति	पूछेंगे
ह	निस्सन्देह	+ परञ्च	परन्तु
इति	ऐसा	अहम्	मैं
सम्पादयाञ्चकार	विचारता भया कि	सर्वम्	सम्पूर्ण विद्या को
इमे	ये	तेभ्यः	उनसे
महाशालाः	गृहस्थ	हन्त	भली प्रकार
महाश्रोत्रियाः	वेद पढ़नेवाले	+ वक्तुम्	कहने को
		न	नहीं

प्रतिपत्स्ये=समर्थ हूं	अन्यम्=दूसरे
इव=ऐसा	+ उपदेष्टारम्=उपदेशक के पास
+ बुद्ध्वा=समझकर	+ गन्तुम्=जाने को
+ तेभ्यः=उनसे	अभ्यनुशासानि=कहूंगा

भावार्थ ।

हे सौम्य ! उन पांचों ऋषियों को आते देखकर उद्दालक ने निश्चय किया कि ये सब गृहस्थ वेद पढ़नेवाले वैश्वानरविद्या के प्रति मुझसे प्रश्न करेंगे और मैं उनके प्रश्नों के उत्तर को अच्छी तरह न दे सकूंगा, इसलिये मुनासिब यही है कि उनके लिये दूसरे उपदेशक को बताऊं ॥ ३ ॥

मूलम् ।

तान्होवाचाश्वपतिर्वै भगवन्तोऽयं कैकयः सम्प्रतीममात्मानं वैश्वानरमध्येति तꣳ हन्ताभ्यागच्छामेति तꣳ हाभ्याजग्मुः ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

तान्, ह, उवाच, अश्वपतिः, वै, भगवन्तः, अयम्, कैकयः, सम्प्रति, इमम्, आत्मानम, वैश्वानरम, अधि, एति, तम्, हन्त, अभि, आ, गच्छामः, इति, तम्, ह, अभि, आजग्मुः ॥

अन्वयः पदार्थ	अन्वयः पदार्थ
सः=वह उद्दालक	इमम्=इस
तान्=उन पांचों ऋषियों से	वैश्वानरम्=वैश्वानर
ह=स्पष्ट	आत्मानम्=आत्मा को
उवाच=कहता भया कि	वै=निश्चय करके
भगवन्तः=हे भगवन् !	हन्त=अच्छी तरह
अयम्=यह	अध्येति=जानता है
अश्वपतिः=अश्वपति	तम्=उसके पास
कैकयः=केकय देश का राजा	+ वयम्=हम सब
सम्प्रति=इस समय	अभ्यागच्छाम=चलें

इति=ऐसा	तम्=उसके पास
ह=निश्चय करके	अभ्याजग्मुः=जाते भये

भावार्थ ।

हे सौम्य ! उद्दालक ऋषि ने उन पांचों ऋषियों से कहा कि इस समय केकयदेश का राजा अश्वपति वैश्वानरविद्या को भलीप्रकार जानता है, हमलोग उसके पास चलें और उससे इस विद्या को ग्रहण करें । ऐसा विचार कर अश्वपति राजा के पास जाते भये ॥ ४ ॥

मूलम् ।

तेभ्यो ह प्राप्तेभ्यः पृथगर्हाणि कारयाञ्चकार स ह प्रातः संजिहान उवाच न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपो नानाहिताग्निर्नाविद्वान् न स्वैरी स्वैरिणी कुतो यक्ष्यमाणो वै भगवन्तोऽहमस्मि यावदेकैकस्मा ऋत्विजे धनं दास्यामि तावद्भगवद्भ्यो दास्यामि वसन्तु भगवन्त इति ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ।

तेभ्यः, ह, प्राप्तेभ्यः, पृथक्, अर्हाणि, कारयाञ्चकार, सः, ह, प्रातः, सम्, जिहान, उवाच, न, मे, स्तेनः, जनपदे, न, कदर्यः, न, मद्यपः, न, अनाहिताग्निः, न, अविद्वान्, न, स्वैरी, स्वैरिणी, कुतः, यक्ष्यमाणः, वै, भगवन्तः, अहम्, अस्मि, यावत्, एकैकस्मै, ऋत्विजे, धनम्, दास्यामि, तावत्, भगवद्भ्यः, दास्यामि, वसन्तु, भगवन्तः, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
सः=वह राजा		ह=भली प्रकार	
प्राप्तेभ्यः=आये हुए		कारयाञ्चकार=करवाता भया	
तेभ्यः=उन ऋषियों का		+ च=और	
अर्हाणि=पूजन		+ अन्येद्युः=दूसरे दिन	
पृथक्=अलग अलग		प्रातः=प्रातःकाल	

इति=ऐसा
\+ तान्=उनसे
उवाच=कहा कि
अहम् यक्षमाणः अस्मि=मैं यज्ञ करनेवाला हूं
वै=निश्चय करके
भगवन्तः=आप लोग
वसन्तु=ठहरें
\+ च=और
यावत्=जितना
धनम्=धन
एकैकस्मै=हर एक
ऋत्विजे=ऋत्विज के लिये
दास्यामि=दूंगा
तावत्=उतना ही
भगवद्भ्यः=आप लोगों को
दास्यामि=दूंगा
\+ एवं श्रुत्वा=ऐसा सुनकर
\+ ते=उन ऋषियों ने
\+ अस्वीचक्रुः=इन्कार किया
\+ तदा=तब
\+ राजा=राजा ने
\+ उवाच=कहा कि
मे=मेरे
जनपदे=देश में
न=न
स्तेनः=चोर है
न कदर्यः=न लोभी है
न=न
मद्यपः=मदिरा का पीनेवाला है
न=न
अनाहिताग्निः=यज्ञहीन है
न=न
अविद्वान्=मूर्ख है
न=न
स्वैरी=व्यभिचारी है
कुतः=कहां से
स्वैरिणी=व्यभिचारिणी
\+ सम्भवति=हो सकती है
\+ अतः=इसलिये
भगवन्तः=आप लोग
\+ धनम्=धन को
संजिहान=ग्रहण करें

भावार्थ ।

राजा ने आयेहुए उन छहों ऋषियों का भलीप्रकार सत्कार करवाता भया और दूसरे दिन प्रातःकाल उनसे कहा कि यदि आपलोग धन निमित्त आये हैं तो मेरे दिये हुए धन को आप ग्रहण करें । ऋषियों ने धन स्वीकार करने में इन्कार किया, तब राजा को संशय हुआ कि ऋषियों ने मेरे धन को अयोग्य समझकर इन्कार किया है, इसलिये इनका संशय दूर करने के निमित्त कहा कि हे ऋषियो ! मेरे देश में

चोर, लोभी, कुकर्मी, मूर्ख, व्यभिचारी और व्यभिचारिणी आदि कोई नहीं हैं, आप किस कारण धन लेने में इन्कार करते हैं ? फिर राजा को शंका हुई कि कदाचित् थोड़ा धन पाने का ख़्याल करके लेने से इन्कार करते हैं, इस शंका के दूर करने के लिये राजा कहता है कि मैं यज्ञ करूंगा और जितना धन मैं अपने ऋत्विजों में से हर एक को दूंगा उतना ही धन आप लोगों में से हर एक को दूंगा, आप ठहरें ॥ ५ ॥

मूलम् ।

ते होचुर्येन हैवार्थेन पुरुषश्चरेत्तꣳ हैव वदेदात्मानमेवेमं वैश्वानरꣳ सम्प्रत्यध्येषि तमेव नो ब्रूहीति ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ।

ते, ह, ऊचुः, येन, ह, एव, अर्थेन, पुरुषः, चरेत्, तम्, ह, एव, वदेत्, आत्मानम्, एव, इमम्, वैश्वानरम्, सम्प्रति, अधि, एषि, तम्, एव, नः, ब्रूहि, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
ते	=वे ऋषि	ह	=निश्चय करके
ह	=स्पष्ट	वदेत्	=कहे
एव	=ऐसा	सम्प्रति	=इस समय
ऊचुः	=कहते भये कि	इमम्	=उस
येन	=जिस	वैश्वानरम्	=वैश्वानर
अर्थेन	=प्रयोजन निमित्त	आत्मानम्	=आत्मा को
पुरुषः	=एक पुरुष	अध्येषि	=आप जानते हैं
चरेत्	=दूसरे के पास जाय	इति	=इसलिये
तम्	=उस	तम् एव	=उस ही को
एव	=ही	नः	=हमसे
+प्रयोजनम्	=अर्थ को	ब्रूहि	=आप कहें

भावार्थ ।

हे सौम्य ! ऋषियों ने राजा से कहा कि जब एक पुरुष दूसरे पुरुष

के पास जावे तो उसको चाहिए कि अपने अर्थ को प्रथम प्रकट करे। हम लोगों ने सुना है कि आप वैश्वानर विद्या को भली प्रकार जानते हैं, इसलिये उस विद्या का प्रदान आप हम लोगों को करें ॥ ६ ॥

मूलम् ।

तान्होवाच प्रातर्वः प्रतिवक्ताऽस्मीति ते ह समित्पाणयः पूर्वाह्णे प्रतिचक्रमिरे तान्हानुपनीयैवैतदुवाच ॥ ७ ॥

इत्येकादशः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

तान्, ह, उवाच, प्रातः, वः, प्रतिवक्ता, अस्मि, इति, ते, ह, समित्पाणयः, पूर्वाह्णे, प्रति, चक्रमिरे, तान्, ह, अनुपनीय, एव, एतत्, उवाच ॥

अन्वयः	पदार्थ
वः	आप लोगों को
प्रातः	प्रातःकाल
ह	अवश्य
प्रतिवक्ता	उत्तर देनेवाला
अस्मि	मैं होऊंगा
इति	ऐसा
तान्	उन ऋषियों से
ह	स्पष्ट
उवाच	कहता भया
ते	वे छहों ऋषि
समित्पाणयः	समिध हाथों में लेकर
पूर्वाह्णे	प्रातःकाल
+ राज्ञः	राजा के पास
प्रतिचक्रमिरे	जाते भये
+ च	और
+ सः	वह राजा
तान्	उनका
अनुपनीय एव	शिष्य कर्म न कराकर ही
एतत्	ऐसा
उवाच	कहता भया

भावार्थ ।

हे सौम्य ! राजा ने उन ऋषियों से कहा कि जिस विद्या को आप लोग चाहते हैं उसका प्रदान कल प्रातःकाल करूंगा । वे छहों ऋषि

दूसरे दिन भोर होते ही स्नानादि नित्य कर्म करके, समिधा हाथ में लिये हुए शिष्यवत् नम्रभाव से राजा के पास वैश्वानर विद्या ग्रहणार्थ गये और राजा शिष्यकर्म विना कराये हुए ही उनको वैश्वानर विद्या का प्रदान करता भया ॥ ७ ॥

इत्येकादशः खण्डः ।

अथ पञ्चमाध्यायस्य द्वादशः खण्डः ।

मूलम् ।

औपमन्यव कं त्वमात्मानमुपास्स इति दिवमेव भगवो राजन्निति होवाचैष वै सुतेजा आत्मा वैश्वानरो यं त्वमात्मानमुपास्से तस्मात्तव सुतं प्रसुतमासुतं कुले दृश्यते ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

औपमन्यव, कम्, त्वम्, आत्मानम्, उप, आस्से, इति, दिवम्, एव, भगवः, राजन्, इति, ह, उवाच, एषः, वै, सुतेजाः, आत्मा, वैश्वानरः, यम्, त्वम्, आत्मानम्, उप, आस्से, तस्मात्, तव, सुतम्, प्रसुतम्, आसुतम्, कुले, दृश्यते ॥

अन्वयः	पदार्थ
औपमन्यव	हे उपमन्यु के पुत्र!
त्वम्	आप
कम्	किस
आत्मानम्	वैश्वानर आत्मा को
उपास्से	उपासना करते हैं
इति	ऐसा
+ राजा	राजा
+ पप्रच्छ	पूछता भया
+ ऋषिः	ऋषि ने
+ उवाच	उत्तर दिया
भगवः	हे भगवन्!
राजन्	हे राजन्!
दिवम्	द्यौ लोक की
एव	ही उपासना करता हूं
+ पुनः	फिर
+ राजा	राजा ने
ह	स्पष्ट

उवाच=कहा कि
एषः=यह
वैश्वानरः=वैश्वानर
आत्मा=आत्मा
सुतेजाः=सुतेजा नाम से
प्रख्यातः=विख्यात है
यम्=जिस
आत्मानम्=आत्मा को
त्वम्=तुम
उपास्से=उपासते हो
+ च=और
तस्मात्=इसीलिये
तव=तुम्हारे
कुले=कुल विषे
सुतम्=लड़के
प्रसुतम्=पोते
आसुतम्=नाती
दृश्यते=दिखाई देते हैं

भावार्थ ।

हे सौम्य ! उन छहों ऋषियों में से एक ऋषि से जिसका नाम औपमन्यव था उससे राजा ने प्रश्न किया कि हे ऋषे ! तुम किस वैश्वानर आत्मा की उपासना करते हो ? उसने उत्तर दिया कि हे राजान् ! मैं द्यौलोकसम्बन्धी आत्मा की उपासना करता हूं । राजा ने कहा कि हे ऋषे ! तुम सुतेजा नामक वैश्वानर की उपासना पूरे अंग से करते हो और यही कारण है कि तुम्हारा कुल लड़के, पोते और प्रपोतों से सम्पन्न है ॥ १ ॥

मूलम् ।

अत्स्यन्नं पश्यसि प्रियमत्त्यन्नं पश्यति प्रियं भवत्यस्य ब्रह्मवर्चसं कुले य एतमेवमात्मानं वैश्वानरमुपास्ते मूर्धा त्वेष आत्मन इति होवाच मूर्धा ते व्यपतिष्यद्यन्मां नागमिष्य इति ॥ २ ॥

इति द्वादशः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

अत्सि, अन्नम्, पश्यसि, प्रियम्, अत्ति, अन्नम्, पश्यति, प्रियम्, भवति, अस्य, ब्रह्मवर्चसम्, कुले, यः, एतम्, एवम्, आत्मानम्,

वैश्वानरम्, उप, आस्ते, मूर्धा, तु, एषः, आत्मनः, इति, ह, उवाच, मूर्धा, ते, वि, अपतिष्यत्, यत्, माम्, न, आ, गमिष्यः, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
+ त्वम्	=तुम	प्रियम्	=प्रियपुत्रादिकों को
अन्नम्	=अन्न को	पश्यति	=देखता है
अत्सि	=खाते हो	तु	=परन्तु
प्रियम्	=प्रियपुत्रादिकों को	एषः	=यह
पश्यसि	=देखते हो	आत्मनः	=वैश्वानर आत्मा का
+ तथा	=इसी प्रकार	मूर्धा	=शिर यानी एक अंग है
यः	=जो	इति	=ऐसी
+ अन्यः	=कोई दूसरा	+ उपासनात्	=उपासना करने से
+ अपि	=भी	ते	=तुम्हारा
एतम्	=इस	मूर्धा	=शिर
वैश्वानरम्	=वैश्वानर	व्यपतिष्यत्	=गिरजाता
आत्मानम्	=आत्मा की	+ यत्	=जो
एवम्	=ही	+ त्वम्	=तुम
उपास्ते	=उपासना करता है	माम्	=मेरे पास
अस्य	=उसके	न	=न
कुले	=कुल में	आगमिष्यः	=आते
ब्रह्मवर्चसम्	=ब्रह्मतेजवाला	इति	=इस प्रकार
भवति	=होता है	ह	=निश्चयपूर्वक
अन्नम्	=अन्न को	उवाच	=राजा कहते भये
अत्ति	=खाता है		

भावार्थ ।

हे सौम्य ! राजा औपमन्यव ऋषि से कहता है कि जो तुम द्यौलोकसम्बन्धी वैश्वानर आत्मा की उपासना करते हो, वह सुतेजा नामक वैश्वानर आत्मा का शिर है अर्थात् एक अंग है । परन्तु तुम उस एकाङ्गी उपासना को पूर्ण वैश्वानर का अंग समझकर उपासना करते हो

इस कारण तुम आरोग्य हो, भोजन भली प्रकार करते हो और प्रिय-पुत्रादिकों से भली प्रकार सम्पन्न हो । इसी प्रकार दूसरा भी कोई वैश्वानर की उपासना करेगा, वह भी आरोग्य प्रियपुत्रादिकों से सम्पन्न ब्रह्मतेजस्वी होगा । यदि तुम मेरे पास न आते और किसी सभा में शास्त्रार्थ करते तो तुम्हारा मस्तक गिर जाता ॥ २ ॥

इति द्वादशः खण्डः ।

अथ पञ्चमाध्यायस्य त्रयोदशः खण्डः ।

मूलम् ।

अथ होवाच सत्ययज्ञं पौलुषिं प्राचीनयोग्य कं त्व-मात्मानमुपास्स इत्यादित्यमेव भगवो राजन्निति होवा-चैष वै विश्वरूप आत्मा वैश्वानरो यं त्वमात्मानमुपा-स्से तस्मात्तव बहु विश्वरूपं कुले दृश्यते ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, ह, उवाच, सत्ययज्ञम्, पौलुषिम्, प्राचीनयोग्य, कम्, त्वम्, आत्मानम्, उप, आस्से, इति, आदित्यम्, एव, भगवः, राजन्, इति, ह, उवाच, एषः, वै, विश्वरूपः, आत्मा, वैश्वानरः, यम्, त्वम्, आत्मानम्, उप, आस्से, तस्मात्, तव, बहु, विश्वरूपम, कुले, दृश्यते ॥

अन्वयः	पदार्थ
अथ	इसके बाद
+ राजा	राजा ने
सत्ययज्ञम्	सत्ययज्ञ
पौलुषिम्	पुलुष के पुत्र से
इति	ऐसा
उवाच	कहा कि
प्राचीनयोग्य	हे प्राचीनयोग्य
त्वम्	तुम
कम्	कौन
आत्मानम्	वैश्वानर आत्मा को
उपास्से	उपासते हो
भगवः	हे भगवन् !
राजन्	हे राजन् !

आदित्यम्=सूर्य को
एव=ही
+ अहम्=मैं
+ उपासे=उपासता हूं
इति=ऐसा
+ श्रुत्वा=सुनकर
+ राजा=राजा ने
ह=स्पष्ट
उवाच=कहा कि
एषः=यह
वै=ही
विश्वरूपः=विश्वरूप
आत्मा=आत्मा
वैश्वानरः=वैश्वानर
+ अस्ति=है
यम्=जिसको
त्वम्=तुम
उपास्से=उपासते हो
+ च=और
तस्मात्=यही कारण
तव=तुम्हारे
कुले=वंश विषे
बहु=बहुत
विश्वरूपम्=धन दौलत
दृश्यते=दिखाई देता है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! इसके पीछे राजा ने सत्ययज्ञ पुलुष के पुत्र से पूछा कि हे प्राचीनयोग्य ! तुम कौन वैश्वानर आत्मा का पूजन करते हो ? उसने उत्तर दिया कि हे राजन् ! मैं सूर्य की उपासना करता हूं । ऐसा सुनकर राजा ने कहा कि यही विश्वरूप वैश्वानर आत्मा है जिसकी तुम उपासना करते हो और यही कारण है कि तुम्हारे घर में बहुत सा धन दौलत दिखाई देता है ॥ १ ॥

मूलम् ।

प्रवृत्तोऽश्वतरीरथो दासीनिष्कोऽत्स्यन्नं पश्यसि प्रियमत्त्यन्नं पश्यति प्रियं भवत्यस्य ब्रह्मवर्चसं कुले य एतमेवमात्मानं वैश्वानरमुपास्ते चक्षुष्ट्वेतदात्मान इति होवाचान्धोऽभविष्यो यन्मां नागमिष्य इति ॥ २ ॥

इति त्रयोदशः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

प्रवृत्तः, अश्वतरीरथः, दासीनिष्कः, अत्सि, अन्नम्, पश्यसि,

प्रियम्, अत्ति, अन्नम्, पश्यति, प्रियम्, भवति, अस्य, ब्रह्मवर्चसम्, कुले, यः, एतम्, एवम्, आत्मानम्, वैश्वानरम्, उप, आस्ते, चक्षुः, तु, एतत्, आत्मनः, इति, ह, उवाच, अन्धः, अभविष्यः, यत्, माम्, न, आगमिष्यः, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
+ ते	तुम्हारे लिये
अश्वतरीरथः	खच्चरगाड़ी
+ च	और
दासीनिष्कः	दास दासी और मणि आदिक
प्रवृत्तः	तैयार हैं
त्वम्	तुम
अन्नम्	अन्न को
अत्सि	भोजन करते हो
प्रियम्	प्रियपुत्रादिकों को
पश्यसि	देखते हो
यः	जो कोई
एतम्	इस
आत्मानम्	आत्मा
वैश्वानरम्	वैश्वानर को
एवम्	इस प्रकार
उपास्ते	उपासता है
+ सः	वह
अन्नम्	अन्न को
अत्ति	खाता है
प्रियम्	प्रिय पुत्रादिकों को

अन्वयः	पदार्थ
पश्यति	देखता है
+ च	और
अस्य	इसके
कुले	वंश में
ब्रह्मवर्चसम्	ब्रह्मतेज
भवति	होता है
तु	परन्तु
आत्मनः	वैश्वानर आत्मा का
एतत्	यह
चक्षुः	नेत्र है अर्थात् एक अंग है
+ सः	वह राजा
इति	ऐसा
ह	साफ़
उवाच	कहता भया कि
यत्	जो
+ त्वम्	तुम
माम्	मेरे पास
न	न
आगमिष्यः	आते तो
अन्धः	अन्धे
अभविष्यः	हो जाते

भावार्थ ।

हे सौम्य ! राजा ने प्राचीनयोग्य ऋषि से कहा कि जो तुम सूर्य-रूप वैश्वानर आत्मा की उपासना करते हो वह सूर्य वैश्वानर आत्मा

का नेत्र है, इसलिये तुम एकाङ्गी उपासना करते हो और यही कारण है कि तुम आरोग्य हो, भली प्रकार भोजन करते हो, प्रिय पुत्रादिकों को देखते हो और तुम्हारे यहां बहुतेरे खच्चर, गाड़ी, दास, दासी तथा रत्नादि तुम्हारे भोगार्थ मौजूद हैं, और दूसरा भी कोई इस वैश्वानर की उपासना इसी प्रकार करेगा वह भी तुम्हारे ऐसा ऐश्वर्यवान् होगा । अगर तुम मेरे पास न आये होते और किसी सभा में शास्त्रार्थ निमित्त जाते तो एकाङ्गी उपासना के कारण नेत्रहीन हो जाते ॥ २ ॥

इति त्रयोदशः खण्डः ।

अथ पञ्चमाध्यायस्य चतुर्दशः खण्डः ।

मूलम् ।

अथ होवाचेन्द्रद्युम्नं भाल्लवेयं वैयाघ्रपद्य कं त्वमात्मानमुपास्स इति वायुमेव भगवो राजन्निति होवाचैष वै पृथग्वर्त्मात्मा वैश्वानरो यं त्वमात्मानमुपास्से तस्मात्त्वां पृथग्वलय आयन्ति पृथग्रथश्रेणयोऽनुयन्ति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, ह, उवाच, इन्द्रद्युम्नम्, भाल्लवेयम्, वैयाघ्रपद्य, कम्, त्वम्, आत्मानम्, उप, आस्से, इति, वायुम्, एव, भगवः, राजन्, इति, ह, उवाच, एषः, वै, पृथग्वर्त्मा, आत्मा, वैश्वानरः, यम्, त्वम्, आत्मानम्, उप, आस्से, तस्मात्, त्वाम्, पृथक्, वलयः, आयन्ति, पृथक्, रथश्रेणयः, अनुयन्ति ॥

अन्वयः	पदार्थ
अथ=तत्पश्चात्	
+ सः=वह राजा	
ह=स्पष्ट	
भाल्लवेयम्=भाल्लवि के पुत्र	
इन्द्रद्युम्नम्=इन्द्रद्युम्न से	
इति=ऐसा	
उवाच=पूछता भया कि	
वैयाघ्रपद्य=हे व्याघ्रपद के पुत्र !	

त्वम्=तुम
कम्=किस
आत्मानम्=वैश्वानर आत्मा को
उपास्से=उपासते हो
+ सः=उस ऋषि ने
+ उवाच=उत्तर दिया कि
भगवः=हे भगवन् !
राजन्=हे राजन् !
वायुम्=वायु को
इति=ऐसा
+ श्रुत्वा=सुनकर
+ राजा=राजा ने
उवाच=कहा कि
एषः=यह
एव=ही
ह वै=निस्संदेह
पृथग्वर्त्मा=अनेक मार्गों में फिरनेवाला
वैश्वानरः=वैश्वानर
+ आत्मा=आत्मा
+ अस्ति=है
यम्=जिस
आत्मानम्=आत्मा वैश्वानर को
त्वम्=तुम
उपास्से=उपासते हो
तस्मात्=इसी कारण
त्वाम्=तुम्हारे पास
पृथक्=अलग अलग
वलयः=भोग्य वस्तुएँ
आयन्ति=प्राप्त हैं
+ च=और
पृथक्=बहुतेरे
रथश्रेण्यः=रथादिक भी
अनुयन्ति=प्राप्त हैं

भावार्थ ।

हे सौम्य ! तत्पश्चात् राजा ने भाल्लवि के पुत्र इन्द्रद्युम्न से पूछा कि हे ऋषे ! तुम किस वैश्वानर आत्मा की उपासना करते हो ? ऋषि ने उत्तर दिया कि हे राजन् ! मैं वायु की उपासना करता हूं । यह सुनकर राजा ने कहा कि यह वायु निस्संदेह अनेक मार्गों द्वारा फिरने-वाला वैश्वानर आत्मा है, जिसकी तुम उपासना करते हो और यही कारण है कि तुम्हारे पास बहुत भोग्य वस्तु और बहुतेरे रथादिक सवा-रियां प्राप्त हैं ॥ १ ॥

मूलम् ।

अत्स्यन्नं पश्यसि प्रियमत्त्यन्नं पश्यति प्रियं भवत्य-स्य ब्रह्मवर्चसं कुले य एतमेवमात्मानं वैश्वानरमुपास्ते

प्राणस्त्वेष आत्मन इति होवाच प्राणस्त उदक्रमिष्यद्यन्मां नागमिष्य इति ॥ २ ॥

इति चतुर्दशः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

अत्सि, अन्नम् ,पश्यसि, प्रियम्, अत्ति, अन्नम्, पश्यति, प्रियम्, भवति, अस्य, ब्रह्मवर्चसम्, कुले, यः, एतम्, एवम्, आत्मानम्, वैश्वानरम्, उप, आस्ते, प्राणः, तु, एषः, आत्मनः, इति, ह, उवाच, प्राणः, ते, उत्, अक्रमिष्यत्, यत्, माम्, न, आगमिष्यः, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
त्वम्	तुम
अन्नम्	अन्न को
अत्सि	खाते हो
प्रियम्	प्रिय पुत्रादिकों को
पश्यसि	देखते हो
यः	जो कोई
एवम्	इस प्रकार
एतम्	इस
वैश्वानरम्	वैश्वानर
आत्मानम्	आत्मा को
उपास्ते	उपासता है
+ सः	वह
+ अपि	भी
अन्नम्	अन्न को
अत्ति	खाता है
प्रियम्	प्रियपुत्रादिकों को
पश्यति	देखता है
अस्य	इसके
कुले	वंश में
ब्रह्मवर्चसम्	ब्रह्मतेजवाला
भवति	होता है
तु	परन्तु
एषः	यह
आत्मनः	वैश्वानर आत्मा का
प्राणः	प्राण है
यत्	जो
माम्	मेरे पास
त्वम्	तुम
न	न
आगमिष्यः	आते तो
ते	तुम्हारा
ह	निश्चय करके
प्राणः	प्राण
उदक्रमिष्यत्	निकल जाता
इति	ऐसा
+ राजा	राजा ने
उवाच	कहा

भावार्थ ।

हे सौम्य ! राजा ने इन्द्रद्युम्न ऋषि से कहा कि तुम आरोग्य हो, अन्न को खाते हो, प्रिय पुत्रादिकों को देखते हो, जो कोई दूसरा भी इसी प्रकार इस वैश्वानर की उपासना करता है वह भी अन्न के भक्षण करने में समर्थ होता है और प्रियपुत्रादिकों को देखता है तथा उसके वंश में ब्रह्म तेज होता है । परन्तु यह वैश्वानर आत्मा का प्राण है अर्थात् उसका एक अंग है यदि मेरे पास तुम न आये होते तो तुम्हारा प्राण निकल जाता ॥ २ ॥

इति चतुर्दशः खण्डः ।

अथ पञ्चमाध्यायस्य पञ्चदशः खण्डः ।

मूलम् ।

अथ होवाच जनꣳ शार्कराक्ष्य कं त्वमात्मानमुपास्स इत्याकाशमेव भगवो राजन्निति होवाचैष वै बहुल आत्मा वैश्वानरो यं त्वमात्मानमुपास्से तस्मात्त्वं बहुलोऽसि प्रजया च धनेन च ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, ह, उवाच, जनम्, शार्कराक्ष्य, कम्, त्वम्, आत्मानम्, उप, आस्से, इति, आकाशम्, एव, भगवः, राजन्, इति, ह, उवाच, एषः, वै, बहुलः, आत्मा, वैश्वानरः, यम्, त्वम्, आत्मानम्, उप, आस्से, तस्मात्, त्वम्, बहुलः, असि, प्रजया, च, धनेन, च ॥

अन्वयः पदार्थ	अन्वयः पदार्थ
अथ=तत्पश्चात्	इति=ऐसा
+ राजा=राजा ने	उवाच=कहा कि
ह=स्पष्ट	शार्कराक्ष्य=हे शर्कराक्ष्य के पुत्र
जनम्=जन नामक ऋषि से	त्वम्=तुम

कम्=किस	बहुलः=बहुल (सम्पूर्ण)
आत्मानम्=वैश्वानर आत्मा को	वैश्वानरः=वैश्वानर
उपास्से=उपासते हो	आत्मा=आत्मा
ऋषिः=ऋषि ने	+ अस्ति=है
ह=ऐसा	यम्=जिस
उवाच=उत्तर दिया कि	आत्मानम्=आत्मा को
भगवः=हे भगवन् !	त्वम्=तुम
राजन्=हे राजन् !	उपास्से=उपासते हो
आकाशम्=आकाश को	च=और
एव=ही	तस्मात्=इसीलिये
इति=ऐसा	त्वम्=तुम
+ श्रुत्वा=सुनकर	प्रजया=सन्तान
+ राजा=राजा ने	च=और
उवाच=कहा कि	धनेन=धन करके
एषः=यह	बहुलः=सम्पन्न हुए
वै=ही	+ असि=हो

भावार्थ ।

हे सौम्य ! इसके पीछे राजा ने जन नामक ऋषि से पूछा कि तुम किस वैश्वानर आत्मा की उपासना करते हो, उस ऋषि ने उत्तर दिया कि हे भगवन् ! मैं आकाशरूप वैश्वानर की उपासना करता हूं । ऐसा सुनकर राजा ने कहा कि यही बहुल नामक अर्थात् व्यापक वैश्वानर आत्मा है जिसकी तुम उपासना करते हो और यही कारण है कि तुम बहुत सन्तान और धन करके सम्पन्न हो ॥ १ ॥

मूलम् ।

अत्स्यन्नं पश्यसि प्रियमत्त्यन्नं पश्यति प्रियं भवत्यस्य ब्रह्मवर्चसं कुले य एतमेवमात्मानं वैश्वानर-मुपास्ते संदेहस्त्वेष आत्मन इति होवाच संदेहस्ते व्य-शीर्यद्यन्मां नागमिष्य इति ॥ २ ॥

इति पञ्चदशः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

अत्सि, अन्नम्, पश्यसि, प्रियम्, अत्ति, अन्नम्, पश्यति, प्रियम्, भवति, अस्य, ब्रह्मवर्चसम्, कुले, यः, एतम्, एवम्, आत्मानम्, वैश्वानरम्, उप, आस्ते, संदेहः, तु, एषः, आत्मनः, इति, ह, उवाच, संदेहः, ते, व्यशीर्यत्, यत्, माम्, न, आगमिष्यः, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
+ त्वम्=तुम		अत्ति=खाता है	
अन्नम्=अन्न को		प्रियम्=प्रिय पुत्रादिकों को	
अत्सि=खाते हो		पश्यति=देखता है	
+ च=और		तु=परन्तु	
प्रियम्=प्रिय पुत्रादिकों को		आत्मनः=वैश्वानर आत्मा का	
पश्यसि=देखते हो		एषः=यह	
यः=जो कोई		संदेहः=शरीर का मध्य भाग है	
+ अन्यः=दूसरा		यत्=जो	
+ अपि=भी		+ त्वम्=तुम	
एवम्=इसी प्रकार		माम्=मेरे पास	
एतम्=इस		न=न	
वैश्वानरम्=वैश्वानर		आगमिष्यः=आये होते तो	
आत्मानम्=आत्मा को		ते=तुम्हारा	
उपास्ते=उपासता है		+ संदेहः=देह का मध्य भाग	
अस्य=इसके		व्यशीर्यत्=गल जाता	
कुले=वंश में		इति=ऐसा	
ब्रह्मवर्चसम्=ब्रह्मतेजवाला		+ राजा=राजा ने	
भवति=होता है		उवाच=कहा	
+ च=और			
अन्नम्=अन्न को			

भावार्थ ।

हे ऋषे ! तुम अन्न के भोजन करने में समर्थ हो और प्रिय पुत्रादिकों को अपने घर में देखते हो । जो कोई दूसरा भी इस वैश्वानर

आत्मा की उपासना करता है, उसके वंश में ब्रह्मतेज होता है और वह अन्न के भोगने में नीरोगता के कारण समर्थ होता है तथा प्रियपुत्रादिकों को अपने घर में देखता है परन्तु यह वैश्वानर आत्मा के देह का मध्य भाग है, जो तुम मेरे पास न आये होते तो तुम्हारे शरीर का मध्य भाग गिर जाता ॥ २ ॥

इति पञ्चदशः खण्डः ।

अथ पञ्चमाध्यायस्य षोडशः खण्डः ।

मूलम् ।

अथ होवाच बुडिलमाश्वतराश्विं वैयाघ्रपद्य कं त्वमात्मानमुपास्स इत्यप एव भगवो राजन्निति होवाचैष वै रयिरात्मा वैश्वानरो यं त्वमात्मानमुपास्से तस्मात्त्वꣳ रयिमान्पुष्टिमानसि ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, ह, उवाच, बुडिलम्, आश्वतराश्विम्, वैयाघ्रपद्य, कम्, त्वम्, आत्मानम्, उप, आस्से, इति, अपः, एव, भगवः, राजन्, इति, ह, उवाच, एषः, वै, रयिः, आत्मा, वैश्वानरः, यम्, त्वम्, आत्मानम्, उप, आस्से, तस्मात्, त्वम्, रयिमान्, पुष्टिमान्, असि ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ	तत्पश्चात्	वैयाघ्रपद्य	हे व्याघ्रपद के पुत्र
+ राजा	राजा	त्वम्	तुम
बुडिलम्	बुडिल नामक	कम्	किस
आश्वतराश्विम्	अश्वतराश्व के पुत्र से	आत्मानम्	आत्मा को
ह	स्पष्ट	उपास्से	उपासते हो
इति	ऐसा	भगवः	हे भगवन् !
उवाच	कहता भया कि	राजन्	हे राजन् !
		अपः	जल को

एव=ही
इति=ऐसा
+ श्रुत्वा=सुनकर
+ राजा=राजा ने
उवाच=कहा कि
एषः=यह
वै=ही
रयिः=रयिरूप धन
वैश्वानरः=वैश्वानर
आत्मा=आत्मा है
यम्=जिस
आत्मानम्=आत्मा को
त्वम्=तुम
उपास्से=उपासते हो
+ च=और
तस्मात्=यही कारण है कि
त्वम्=तुम
रयिमान्=धनवान्
+ च=और
पुष्टिमान्=शरीर से बलवान्
असि=हो

भावार्थ ।

हे सौम्य ! इसके पीछे राजा ने बुडिल नामक अश्वतराश्व के पुत्र से पूछा कि हे व्याघ्रपद के पुत्र ! तुम किस वैश्वानर आत्मा की उपासना करते हो ? उसने उत्तर दिया कि हे राजन् ! जलरूपी वैश्वानर की उपासना करता हूं । यह सुनकर राजा ने कहा कि यही रयिरूप अर्थात् धनरूप वैश्वानर आत्मा है, जिसकी तुम उपासना करते हो और यही कारण है कि तुम धनवान् और शरीर से बलवान् हो ॥ १ ॥

मूलम् ।

अत्स्यन्नं पश्यसि प्रियमत्त्यन्नं पश्यति प्रियं भवत्यस्य ब्रह्मवर्चसं कुले य एतमेवमात्मानं वैश्वानरमुपास्ते बस्तिस्त्वेष आत्मन इति होवाच बस्तिस्ते व्यभेत्स्यद्य-न्मां नागमिष्य इति ॥ २ ॥

इति षोडशः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

अत्सि, अन्नम्, पश्यसि, प्रियम्, अत्ति, अन्नम्, पश्यति, प्रियम्, भवति, अस्य, ब्रह्मवर्चसम्, कुले, यः, एतम्, एवम्, आत्मानम्,

वैश्वानरम्, उप, आस्ते, बस्तिः, तु, एषः, आत्मनः, इति, ह, उवाच, बस्तिः, ते, वि, अभेत्स्यत्, यत्, माम्, न, आगमिष्यः, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
+ त्वम्	तुम	अत्ति	खाता है
अन्नम्	अन्न को	प्रियम्	प्रियपुत्रादिकों को
अत्सि	खाते हो	पश्यति	देखता है
प्रियम्	प्रियपुत्रादिकों को	तु	परन्तु
पश्यसि	देखते हो	एषः	यह
यः	जो कोई	आत्मनः	वैश्वानर आत्मा का
+ अन्यः	दूसरा भी	बस्तिः	मूत्रसंग्रहस्थान
एवम्	इस प्रकार	+ अस्ति	है
एतम्	इस	यत्	जो
वैश्वानरम्	वैश्वानर	+ त्वम्	तुम
आत्मानम्	आत्मा की	माम्	मेरे पास
इति	ऐसी	न	न
उपास्ते	उपासना करता है	आगमिष्यः	आये होते तो
अस्य	उसके	ते	तुम्हारा
कुले	वंश में	बस्तिः	मूत्रसंग्रहस्थान
ब्रह्मवर्चसम्	ब्रह्मतेजवाला	व्यभेत्स्यत्	फटजाता
भवति	होता है	इति	ऐसा
+ च	और	+ राजा	राजा
+ सः	वह	उवाच	कहता भया
अन्नम्	अन्न को		

भावार्थ ।

हे सौम्य ! राजा ने कहा कि हे ऋषे ! तुम अन्न को खाते हो, प्रिय पुत्रादिकों को देखते हो ; जो कोई दूसरा भी इस प्रकार वैश्वानर आत्मा की उपासना करता है वह भी अन्न को खाता है, और अपने घर में प्रियपुत्रादिकों को देखता है और उसके वंश में ब्रह्मतेज

होता है । परन्तु यह वैश्वानर आत्मा का मूत्रसंग्रहस्थान है, जो तुम मेरे पास न आये होते तो तुम्हारा मूत्रसंग्रहस्थान फटजाता ॥ २ ॥

इति षोडशः खण्डः ।

अथ पञ्चमाध्यायस्य सप्तदशः खण्डः ।

मूलम् ।

अथ होवाचोद्दालकमारुणिं गौतम कं त्वमात्मानमुपास्स इति पृथिवीमेव भगवो राजन्निति होवाचैष वै प्रतिष्ठात्मा वैश्वानरो यं त्वमात्मानमुपास्से तस्मात्त्वं प्रतिष्ठितोऽसि प्रजया च पशुभिश्च ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, ह, उवाच, उद्दालकम्, आरुणिम्, गौतम, कम्, त्वम्, आत्मानम्, उप, आस्से, इति, पृथिवीम्, एव, भगवः, राजन्, इति, ह, उवाच, एषः, वै, प्रतिष्ठा, आत्मा, वैश्वानरः, यम्, त्वम्, आत्मानम्, उप, आस्से, तस्मात्, त्वम्, प्रतिष्ठितः, असि, प्रजया, च, पशुभिः, च ॥

अन्वयः	पदार्थ
अथ	तत्पश्चात्
+ राजा	राजा ने
आरुणिम्	अरुण के पुत्र
उद्दालकम्	उद्दालक ऋषि से
इति	ऐसा
उवाच	पूछा कि
गौतम	हे गौतम !
त्वम्	तुम
कम्	किस
आत्मानम्	वैश्वानर आत्मा को
उपास्से	उपासते हो
भगवः	हे भगवन् !
राजन्	हे राजन् !
पृथिवीम्	पृथ्वी को
एव	ही
इति	यह
+ श्रुत्वा	सुनकर
+ राजा	राजा ने
ह	स्पष्ट
उवाच	कहा कि

एषः=यह
वै=ही
वैश्वानरः=वैश्वानर
आत्मा=आत्मा
प्रतिष्ठा=पादरूप
+ अस्ति=है
यम्=जिसको
त्वम्=तुम
आत्मानम्=वैश्वानर आत्मा के नाम से
उपास्से=उपासते हो
च=और
तस्मात्=यही कारण है कि
त्वम्=तुम
प्रजया=संतान
च=और
पशुभिः=पशुओं करके
प्रतिष्ठितः=प्रतिष्ठित
असि=हो

भावार्थ ।

हे सौम्य ! इसके पश्चात् राजा ने अरुण के पुत्र उद्दालक ऋषि से पूछा कि तुम किस वैश्वानर आत्मा की उपासना करते हो ? ऋषि ने कहा कि हे राजन् ! मैं पृथ्वीरूप वैश्वानर की उपासना करता हूं । यह सुनकर राजा ने कहा कि यह वैश्वानर आत्मा पादरूप है अर्थात् उसका एक अंग है, जिसकी तुम उपासना करते हो और यही कारण है कि तुम बहुत संतान और पशु आदिकों करके सम्पन्न हो ॥ १ ॥

मूलम् ।

अत्स्यन्नं पश्यसि प्रियमत्त्यन्नं पश्यति प्रियं भवत्यस्य ब्रह्मवर्चसं कुले य एतमेवमात्मानं वैश्वानरमुपास्ते पादौ त्वेतावात्मन इति होवाच पादौ ते व्यम्लास्येतां यन्मां नागमिष्य इति ॥ २ ॥

इति सप्तदशः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

अत्सि, अन्नम्, पश्यसि, प्रियम्, अत्ति, अन्नम्, पश्यति, प्रियम्, भवति, अस्य, ब्रह्मवर्चसम्, कुले, यः, एतम्, एवम्, आत्मानम्, वैश्वानरम्, उप, आस्ते, पादौ, तु, एतौ, आत्मनः, इति, ह, उवाच, पादौ, ते, वि, अम्लास्येताम्, यत्, माम्, न, आगमिष्यः, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
+ त्वम्=तुम		पश्यति=देखता है	
अन्नम्=अन्न को		अस्य=उसके	
अत्सि=खाते हो		कुले=वंश में	
प्रियम्=प्रिय पुत्रादिकों को		ब्रह्मवर्चसम्=ब्रह्मतेजवाला	
पश्यसि=देखते हो		भवति=होता है	
यः=जो		तु=परन्तु	
+ अन्यः=कोई दूसरा भी		आत्मनः=वैश्वानर आत्मा	
एवम्=इस प्रकार		एतौ=ये	
एतम्=इस		पादौ=पैर हैं	
वैश्वानरम्=वैश्वानर		यत्=जो	
आत्मानम्=आत्मा की		+ त्वम्=तुम	
इति=ऐसी		माम्=मेरे पास	
उपास्ते=उपासना करता है		न=न	
+ सः=वह		आगमिष्यः=आते तो	
+ अपि=भी		ते=तुम्हारे	
अन्नम्=अन्न को		पादौ=पैर	
अत्ति=खाता है		व्यम्लास्येताम्=सूख जाते	
+ च=और		इति=ऐसा	
प्रियम्=प्रिय पुत्रादिकों को		+ राजा=राजा ने	
		उवाच=कहा	

भावार्थ ।

हे उद्दालक ऋषे ! तुम अन्न से सम्पन्न हो और प्रिय पुत्रादिकों को अपने घर में देखते हो । इसी प्रकार जो कोई दूसरा पुरुष वैश्वानर आत्मा की उपासना करता है वह भी आपके ऐसा अन्न और पुत्रादिकों से सम्पन्न होता है । परन्तु जिसकी तुम उपासना करते हो वह वैश्वानर आत्मा का पैर है, यदि तुम मेरे पास न आये होते तो तुम्हारे पैर गल जाते और तुम लूले हो जाते ॥ २ ॥

इति सप्तदशः खण्डः ।

अथ पञ्चमाध्यायस्याष्टादशः खण्डः ।

मूलम् ।

तान्होवाचैते वै खलु यूयं पृथगिवेममात्मानं वैश्वानरं विद्वाꣳसोऽन्नमत्थ यस्त्वेतमेवं प्रादेशमात्रमभिविमानमात्मानं वैश्वानरमुपास्ते स सर्वेषु लोकेषु सर्वेषु भूतेषु सर्वेष्वात्मस्वन्नमत्ति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

तान्, ह, उवाच, एते, वै, खलु, यूयम्, पृथक्, इव, इमम्, आत्मानम्, वैश्वानरम्, विद्वांसः, अन्नम्, अत्थ, यः, तु, एतम्, एवम्, प्रादेशमात्रम्, अभिविमानम्, आत्मानम्, वैश्वानरम्, उप, आस्ते, सः, सर्वेषु, लोकेषु, सर्वेषु, भूतेषु, सर्वेषु, आत्मसु, अन्नम्, अत्ति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
+ राजा	राजा ने	अन्नम्	अनेक प्रकार के भोगों को
तान्	उन छओं ऋषियों से	अत्थ	भोगते हो
ह	स्पष्ट	तु	परन्तु
उवाच	कहा कि	यः	जो कोई
यूयम्	तुम	एवम्	इस प्रकार
एते	ये सब	एतम्	इस
इमम्	इस	वैश्वानरम्	वैश्वानर
वैश्वानरम्	वैश्वानर	आत्मानम्	आत्मा को
आत्मानम्	आत्मा को	प्रादेशमात्रम्	प्रादेशमात्र
पृथक्	पृथक् पृथक्	+ च	और
इव विद्वांसः	जानते हुए		

१—प्रादेशमात्र से मतलब उस पुरुष से है जिसका शिर स्वर्ग, पैर पृथ्वी, नेत्र सूर्य-चन्द्र, धड़ आकाश, श्वास वायु, मुख अग्नि है अर्थात् (प्रकर्षेण दिश्यन्ते इति प्रादेशा द्युलोकादयः ते एव परिमाणाः यस्य तत् प्रादेशमात्रम्) ॥

अभिविमानम्=अभिविमान
+ ज्ञात्वा=जानकर
उपास्ते=उपासता है
सः=वह
सर्वेषु=सब
लोकेषु=लोकों में
सर्वेषु=सब
भूतेषु=भूतों में
सर्वेषु=सब
आत्मसु=प्राणियों में
वै खलु=निश्चय करके
अन्नम्=भोग को
अत्ति=भोगता है

भावार्थ ।

हे सोम्य ! राजा ने उन छओं ऋषियों से कहा कि हे ऋषियो ! तुम सब इस वैश्वानर आत्मा के एक-एक अंग की उपासना करते हो, उसका फल यह है कि तुम अन्न और प्रियपुत्रादि की बाहुलता को प्राप्त हो । यदि कोई इस वैश्वानर आत्मा की उपासना यह समझ कर करता है कि वह ब्रह्मा से लेकर चींटी पर्यन्त सबमें व्यापक है और स्वर्ग, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, सूर्य, चन्द्र तथा तारागणादि में स्थित है, वही जीवों के कर्मफल का दाता है, वही समष्टिचेतन आत्मा है, उससे पृथक् कुछ नहीं है, वही एक से अनेक होकर विराजमान है तो ऐसा उपासक सब लोकों में, सब प्राणियों में और समस्त भूतों में पूर्ण भोगों को भोगता है, वैश्वानर के एक-एक अंग की उपासना करने से न्यूनफल को दिखाकर अनिष्टफल भी उसी अंग का दिखाया है ताकि ऐसा समझकर उपासक अज्ञान के साथ वैश्वानर के एक अंग की उपासना न करे, बल्कि वैश्वानर के पूर्ण अङ्गों की उपासना ज्ञान करके करे और ऐसा करने से संपूर्ण फल प्राप्त होता है ॥ १ ॥

१—अभिविमान से मतलब उस पुरुष से है जिसका सम्बन्ध शरीरवासी समष्टिचेतन आत्मा से है अर्थात् जो कर्मियों को उनके कर्मानुसार उनके नियत किये हुए लोकों को ले जाता है अथवा व्यापक आत्मा से है, या उस चेतन आत्मा से है जो एक से अनेक होकर विराजमान है । ये दोनों शब्द वैश्वानर के विशेषण हैं ॥

मूलम् ।

तस्य ह वा एतस्यात्मनो वैश्वानरस्य मूर्धैव सुतेजा-श्चक्षुर्विश्वरूपः प्राणः पृथग्वर्त्मा सन्देहो बहुलो बस्ति-रेव रयिः पृथिव्येव पादावुर एव वेदिर्लोमानि बर्हिर्हृदयं गार्हपत्यो मनोऽन्वाहार्यपचन आस्यमाहवनीयः ॥ २ ॥

इत्यष्टादशः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

तस्य, ह, वै, एतस्य, आत्मनः, वैश्वानरस्य, मूर्धा, एव, सुतेजाः, चक्षुः, विश्वरूपः, प्राणः, पृथग्वर्त्मा, सन्देहः, बहुलः, बस्तिः, एव, रयिः, पृथिवी, एव, पादौ, उरः, एव, वेदिः, लोमानि, बर्हिः, हृदयम्, गार्हपत्यः, मनः, अन्वाहार्यपचनः, आस्यम् , आहवनीयः ॥

अन्वयः	पदार्थ
तस्य	उस
एतस्य	इस
वैश्वानरस्य	वैश्वानर
आत्मनः	आत्मा का
मूर्धा	शिर
ह वै	निश्चय करके
सुतेजाः	शोभन प्रकाशमान द्यौलोक है
चक्षुः	नेत्र
विश्वरूपः	सूर्य है
प्राणः	प्राण
पृथग्वर्त्मा	वायु है
सन्देहः	देह का मध्य भाग
बहुलः	आकाश है
बस्तिः	मूत्रसंग्रहस्थान
एव	निश्चय करके
रयिः	जल है
पादौ	पैर
एव	ही
पृथ्वी	पृथ्वी है
उरः	वक्षस्थल
वेदिः	वेदी है
लोमानि	रोम
बर्हिः	कुश हैं
हृदयम्	हृदय
गार्हपत्यः	गार्हपत्य अग्नि है
मनः	मन
अन्वाहार्यपचनः	अन्वाहार्य अग्नि है
आस्यम्	मुख
एव	निश्चय करके
आहवनीयः	आहवनीय (अग्नि है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! राजा ऋषियों से कहता है कि हे ऋषियो ! वैश्वानर आत्मा का शिर द्यौलोक है, प्राण वायु है, देह का मध्य भाग आकाश है, मूत्रसंग्रहस्थान जल है, पैर पृथ्वी है, नेत्र सूर्य है, वक्षस्थल वेदी है, रोम कुश हैं, हृदय गार्हपत्य अग्नि है, मन अन्वाहार्य अग्नि है और मुख आहवनीय अग्नि है । हे सौम्य ! गार्हपत्य वह अग्नि है जो अग्निहोत्र-कर्ता के घर में सदा स्थापित रहती है, अन्वाहार्य अग्नि वह है जिसको अग्नि-होत्रकर्ता गार्हपत्य अग्नि से निकालकर हवन करते समय अपने दक्षिण ओर रखता है, आहवनीय अग्नि वह है जो अन्वाहार्य से निकालकर हवनकर्ता अपने सम्मुख रखता है और जिसमें मंत्र पढ़कर आहुतियों को डालता है । गार्हपत्य अग्नि की समता हृदय से इस कारण कही है कि जैसे सब अग्नियों में मुख्य अग्नि गार्हपत्य है वैसे ही शरीर के सब स्थानों में हृदय मुख्य है । जैसे गार्हपत्य अग्नि से दक्षिणाग्नि की उत्पत्ति है वैसे ही मन की उत्पत्ति हृदय से होती है , क्योंकि खाये हुए अन्न का सब रस प्रथम हृदय में जाता है फिर उसका सूक्ष्म अंश मन की वृद्धि को करता है और जैसे आहवनीय अग्नि में इस मत-लब से आहुतियां छोड़ी जाती हैं कि उसका फल देवताओं को मिले, इसी प्रकार अन्नादिक भोग्य वस्तु की आहुति मुखरूप अग्नि में दी जाती है ताकि उसका फल नेत्रादिक शरीरस्थ देवताओं को मिले ॥२॥

इत्यष्टादशः खण्डः ।

अथ पञ्चमाध्यायस्यैकोनविंशः खण्डः ।

मूलम् ।

तद्यद्भक्तं प्रथममागच्छेत्तद्धोमीयꣳ स यां प्रथमामा-हुतिं जुहुयात्तां जुहुयात्प्राणाय स्वाहेति प्राणस्तृ-प्यति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

तत्, यत्, भक्तम्, प्रथमम्, आगच्छेत्, तत्, होमीयम्, सः, याम्, प्रथमाम्, आहुतिम्, जुहुयात्, ताम्, जुहुयात्, प्राणाय, स्वाहा, इति, प्राणः, तृप्यति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
तत्	पाकशाला में	जुहुयात्	हवन करना चाहे
यत्	जो	ताम्	उसको
प्रथमम्	पहले	प्राणाय	प्राणाय
भक्तम्	भोजन करने के लिये अन्न	स्वाहा	स्वाहा
आगच्छेत्	आवे	इति	ऐसा
तत्	वही	+ उक्त्वा	कहकर
होमीयम्	हवन करने योग्य	+ मुखे	मुख में
+भवति	होता है	जुहुयात्	हवन करे
सः	वह भोजनकर्ता	+ इति	ऐसा
याम्	जिस	+ कृते	करने से
प्रथमाम्	पहिली	प्राणः	प्राण
आहुतिम्	आहुति को	तृप्यति	संतुष्ट होता है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! ऋषियों से राजा कहता है कि भोजन समय जो अन्न पहिले आवे वही हवन करने योग्य है और पहिले ग्रास को, जिसकी वह आहुति करना चाहता है, " प्राणाय स्वाहा " यह कहकर मुख में डाले, ऐसा करने से प्राण सन्तुष्ट होता है ॥ १ ॥

मूलम् ।

प्राणे तृप्यति चक्षुस्तृप्यति चक्षुषि तृप्यत्यादित्यस्तृप्यत्यादित्ये तृप्यति द्यौस्तृप्यति दिवितृप्यन्त्यां यत्किंच द्यौश्चादित्यश्चाधितिष्ठतस्तत्तृप्यति तस्यानुतृप्तिं तृप्यति प्रजया पशुभिरन्नाद्येन तेजसा ब्रह्मवर्चसेनेति ॥ २ ॥

इत्येकोनविंशः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

प्राणे, तृप्यति, चक्षुः, तृप्यति, चक्षुषि, तृप्यति, आदित्यः, तृप्यति, आदित्ये, तृप्यति, द्यौः, तृप्यति, दिवि, तृप्यन्त्याम्, यत्, किञ्च, द्यौः, च, आदित्यः, च, अधितिष्ठतः, तत्, तृप्यति, तस्य, अनुतृप्तिम्, तृप्यति, प्रजया, पशुभिः, अन्नाद्येन, तेजसा, ब्रह्मवर्चसेन, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
प्राणे	प्राण के
तृप्यति	तृप्त होने पर
चक्षुः	नेत्र
तृप्यति	तृप्त होता है
चक्षुषि	नेत्र के
तृप्यति	तृप्त होने पर
आदित्यः	सूर्य
तृप्यति	तृप्त होता है
आदित्ये	सूर्य के
तृप्यति	तृप्त होने पर
द्यौः	द्यौलोक
तृप्यति	तृप्त होता है
दिवि	द्यौलोक के
तृप्यन्त्याम्	तृप्त होने पर
यत्	जो
किञ्च	कुछ
द्यौः	द्यौलोक
च	और
आदित्यः	सूर्यलोक विषे
अधितिष्ठतः	अधिष्ठित है
तत्	वह सब
तृप्यति	तृप्त हो जाता है
च	और
+ तत्	उसके
तृप्यति	तृप्त होने पर
तस्य	उस हवनकर्ता की
अनुतृप्तिम्	तृप्ति
प्रजया	संतान करके
पशुभिः	पशुओं करके
तेजसा	वाणी करके
ब्रह्मवर्चसेन	ब्रह्मतेज करके
इति	ऊपर कहे हुए प्रकार
भवति	होती है

भावार्थ ।

राजा कहता है कि हे ऋषियो ! प्राण के तृप्त होने पर नेत्र तृप्त होता है, नेत्र के तृप्त होने पर सूर्य तृप्त होता है, सूर्य के तृप्त होने पर द्यौलोक तृप्त होता है और द्यौलोक के तृप्त होने पर जो कुछ सूर्य और द्यौलोक के मध्य विषे स्थित है वह सब तृप्त होजाता है । उन सब के

तृप्त होने पर हवनकर्ता की तृप्ति सन्तान, पशु, उत्तम वाणी और ब्रह्मतेज करके होती है ॥ २ ॥

इत्येकोनविंशः खण्डः ।

अथ पञ्चमाध्यायस्य विंशः खण्डः ।

मूलम् ।

अथ यां द्वितीयां जुहुयात्तां जुहुयाद्व्यानाय स्वाहेति व्यानस्तृप्यति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, याम्, द्वितीयाम्, जुहुयात्, ताम्, जुहुयात्, व्यानायस्वाहा, इति, व्यानः, तृप्यति ॥

अन्वयः	पदार्थ
अथ	इसके पीछे
याम्	जिस
द्वितीयाम्	दूसरी
+ आहुतिम्	आहुति को
जुहुयात्	हवन करना चाहे
ताम्	उसको
इति	इस प्रकार
जुहुयात्	हवन करे
व्यानाय स्वाहा	व्यानाय स्वाहा
+ तर्हि	तो
व्यानः	व्यानवायु
तृप्यति	तृप्त हो जाता है

भावार्थ ।

राजा कहता है कि हे ऋषियो ! इसके पश्चात् हवनकर्ता दूसरी आहुति को "व्यानाय स्वाहा" यह कहकर मुख में हवन करे । ऐसा करने से व्यानवायु तृप्त होता है ॥ १ ॥

मूलम् ।

व्याने तृप्यति श्रोत्रं तृप्यति श्रोत्रे तृप्यति चन्द्रमास्तृप्यति चन्द्रमसि तृप्यति दिशस्तृप्यन्ति दिक्षु तृप्यन्तीषु यत्किञ्च दिशश्च चन्द्रमाश्चाधितिष्ठन्ति तत्तृप्यति

तस्यानुतृप्तिं तृप्यति प्रजया पशुभिरन्नाद्येन तेजसा ब्रह्म-वर्चसेनेति ॥ २ ॥

इति विंशः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

व्याने, तृप्यति, श्रोत्रम्, तृप्यति, श्रोत्रे, तृप्यति, चन्द्रमाः, तृप्यति, चन्द्रमसि, तृप्यति, दिशः, तृप्यन्ति, दिक्षु, तृप्यन्तीषु, यत्, किञ्च, दिशः, च, चन्द्रमाः, च, अधितिष्ठन्ति, तत्, तृप्यति, तस्य, अनुतृप्तिम्, तृप्यति, प्रजया, पशुभिः, अन्नाद्येन, तेजसा, ब्रह्मवर्चसेन, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
व्याने	व्यान वायु के
तृप्यति	तृप्त होने पर
श्रोत्रम्	श्रोत्र इन्द्रिय
तृप्यति	तृप्त होती है
श्रोत्रे	श्रोत्र के
तृप्यति	तृप्त होने पर
चन्द्रमाः	चन्द्रमा
तृप्यति	तृप्त होता है
चन्द्रमसि	चन्द्रमा के
तृप्यति	तृप्त होने पर
दिशः	दिशाएँ
तृप्यन्ति	तृप्त होती हैं
दिक्षु	दिशाओं के
तृप्यन्तीषु	तृप्त होने पर
यत्	जो
किञ्च	कुछ
दिशः	दिशाओं
च	और
चन्द्रमाः	चन्द्रमा विषे
अधितिष्ठन्ति	अधिष्ठित हैं
तत्	वह
+ सर्वम्	सब
तृप्यति	तृप्त होता है
+ तत्	उसके
इति	इस प्रकार
तृप्यति	तृप्त होने पर
तस्य	उस हवनकर्ता की
अनुतृप्तिम्	तृप्ति
प्रजया	संतान करके
पशुभिः	पशुओं करके
अन्नाद्येन	अन्न करके
तेजसा	तेज करके
च	और
ब्रह्मवर्चसेन	ब्रह्मतेज करके
+ भवति	होती है

भावार्थ ।

राजा कहता है कि हे ऋषियो ! व्यानवायु के तृप्त होनेपर श्रोत्र इन्द्रिय तृप्त होती है, श्रोत्र इन्द्रिय के तृप्त होनेपर चन्द्रमा तृप्त होता है, चन्द्रमा के तृप्त होने पर दिशाएँ तृप्त होती हैं, दिशाओं के तृप्त होने पर जो कुछ दिशाओं और चन्द्रमा के मध्य में स्थित है, वह सब तृप्त होता है, उसके तृप्त होने पर उस हवनकर्ता की तृप्ति संतान, पशु, अन्न, शरीर, तेज और ब्रह्मतेज करके होती है ॥ २ ॥

इति विंशः खण्डः ।

अथ पञ्चमाध्यायस्यैकविंशः खण्डः ।

मूलम् ।

अथ यां तृतीयां जुहुयात्तां जुहुयादपानाय स्वाहेत्यपानस्तृप्यति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, याम्, तृतीयाम्, जुहुयात्, ताम्, जुहुयात्, अपानाय, स्वाहा, इति, अपानः, तृप्यति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ	इसके पीछे	अपानाय स्वाहा	अपानाय स्वाहा
याम्	जिस	इति	ऐसा
तृतीयाम्	तीसरी	+ उक्त्वा	कहकर
+ आहुतिम्	आहुति को	जुहुयात्	हवन करे
जुहुयात्	हवन करना चाहे	+ तर्हि	तो
ताम्	इसको अर्थात् तीसरे ग्रास को	अपानः	अपान वायु
		तृप्यति	तृप्त होता है

भावार्थ ।

राजा कहता है कि हे ऋषियो ! तीसरी आहुति "अपानाय स्वाहा"

यह पढ़कर मुख में हवन करे । ऐसा करने से अपानवायु तृप्त होता है ॥ १ ॥

मूलम् ।

अपाने तृप्यति वाक्तृप्यति वाचि तृप्यन्त्यामग्निस्तृप्यत्यग्नौ तृप्यति पृथिवी तृप्यति पृथिव्यां तृप्यन्त्यां यत्किञ्च पृथिवी चाग्निश्चाधितिष्ठतस्तत्तृप्यति तस्यानुतृप्तिं तृप्यति प्रजया पशुभिरन्नाद्येन तेजसा ब्रह्मवर्चसेनेति ॥ २ ॥

इत्येकविंशः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

अपाने, तृप्यति, वाक्, तृप्यति, वाचि, तृप्यन्त्याम्, अग्निः, तृप्यति, अग्नौ, तृप्यति, पृथिवी, तृप्यति, पृथिव्याम्, तृप्यन्त्याम्, यत्, किञ्च, पृथिवी, च, अग्निः, च, अधि, तिष्ठतः, तत्, तृप्यति, तस्य, अनुतृप्तिम्, तृप्यति, प्रजया, पशुभिः, अन्नाद्येन, तेजसा, ब्रह्मवर्चसेन, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अपाने	अपान के	तृप्यन्त्याम्	तृप्त होने पर
तृप्यति	तृप्त होने पर	यत्	जो
वाक्	वाक् इन्द्रिय	किञ्च	कुछ
तृप्यति	तृप्त होती है	पृथिवी	पृथ्वी
वाचि	वाणी के	च	और
तृप्यन्त्याम्	तृप्त होने पर	अग्निः	अग्नि विषे
अग्निः	अग्नि	आधितिष्ठतः	स्थित है
तृप्यति	तृप्त होता है	तत्	वह सब
अग्नौ	अग्नि के	तृप्यति	तृप्त होता है
तृप्यति	तृप्त होने पर	+ तस्मिन्	उसके
पृथिवी	पृथ्वी	तृप्यति	तृप्त होने पर
तृप्यति	तृप्त होती है	तस्य	उस हवनकर्ता की
पृथिव्याम्	पृथ्वी के	इति	यह

अनुतृप्तिम्=तृप्ति
प्रजया=संतान
पशुभिः=पशु
तेजसा=तेज
अन्नाद्येन=अन्नादिक
च=और
ब्रह्मवर्चसेन=ब्रह्मतेज करके
+ भवति=होती है

भावार्थ ।

राजा कहता है कि हे ऋषियो ! अपानवायु के तृप्त होनेपर वाक् इन्द्रिय तृप्त होती है, वाक् के तृप्त होनेपर अग्निदेव तृप्त होता है, अग्नि के तृप्त होने पर पृथ्वी तृप्त होती है, पृथ्वी के तृप्त होनेपर जो कुछ पृथ्वी और अग्नि बिषे स्थित है वह सब तृप्त होता है तथा उसके तृप्त होने पर हवनकर्ता की तृप्ति संतान, पशु, अन्न, तेज और ब्रह्मतेज करके होती है ॥ २ ॥

इत्येकविंशः खण्डः ।

अथ पञ्चमाध्यायस्य द्वाविंशः खण्डः ।

मूलम् ।

अथ यां चतुर्थीं जुहुयात्तां जुहुयात्समानाय स्वाहेति समानस्तृप्यति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, याम्, चतुर्थीम्, जुहुयात्, ताम्, जुहुयात्, समानाय, स्वाहा, इति, समानः, तृप्यति ।

अन्वयः पदार्थ
अथ=इसके पीछे
याम्=जिस
चतुर्थीम्=चौथी
+ आहुतिम्=आहुति को
जुहुयात्=हवन करना चाहे
ताम्=उसको
समानाय स्वाहा=समानाय स्वाहा

अन्वयः पदार्थ
इति=ऐसा
+ उक्त्वा=कहकर
जुहुयात्=हवन करे
+ तर्हि=तो
समानः=समान वायु
तृप्यति=तृप्त होता है

भावार्थ ।

राजा कहता है कि हे ऋषियो ! तत्पश्चात् चौथी आहुति को "समानाय स्वाहा" ऐसा कहकर मुख में डाले तो समान वायु संतुष्ट होता है ॥ १ ॥

मूलम् ।

समाने तृप्यति मनस्तृप्यति मनसि तृप्यति पर्जन्यस्तृप्यति पर्जन्ये तृप्यति विद्युत्तृप्यति विद्युति तृप्यन्त्यां यत्किञ्च विद्युच्च पर्जन्यश्चाधितिष्ठतस्तत्तृप्यति तस्यानुतृप्तिं तृप्यति प्रजया पशुभिरन्नाद्येन तेजसा ब्रह्मवर्चसेनेति ॥ २ ॥

इति द्वाविंशः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

समाने, तृप्यति, मनः, तृप्यति, मनसि, तृप्यति, पर्जन्यः, तृप्यति, पर्जन्ये, तृप्यति, विद्युत्, तृप्यति, विद्युति, तृप्यन्त्याम्, यत्, किञ्च, विद्युत्, च, पर्जन्यः, च, अधितिष्ठतः, तत्, तृप्यति, तस्य, अनुतृप्तिम्, तृप्यति, प्रजया, पशुभिः, अन्नाद्येन, तेजसा, ब्रह्मवर्चसेन, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
समाने	समान वायु के	विद्युत्	बिजुली
तृप्यति	तृप्त होने पर	तृप्यति	तृप्त होती है
मनः	मन इन्द्रिय	विद्युति	बिजुली के
तृप्यति	तृप्त होती है	तृप्यन्त्याम्	तृप्त होने पर
मनसि	मन के	यत्	जो
तृप्यति	तृप्त होने पर	किञ्च	कुछ
पर्जन्यः	मेघ	विद्युत्	बिजुली
तृप्यति	तृप्त होता है	च	और
पर्जन्ये	मेघ के	पर्जन्यः	पर्जन्य विषे
तृप्यति	तृप्त होने पर	अधितिष्ठतः	स्थित है

तत्=वह सब	प्रजया=संतान
इति=इस प्रकार	पशुभिः=पशु
तृप्यति=तृप्त होता है	अन्नाद्येन=अन्न
+ तस्मिन्=उसके	तेजसा=तेज
तृप्यति=तृप्त होने पर	च=और
तस्य=उस हवनकर्ता की	ब्रह्मवर्चसेन=ब्रह्मतेज करके
अनुतृप्तिम्=तृप्ति	+ भवति=होती है

भावार्थ ।

राजा कहता है कि हे ऋषियो ! समान वायु के तृप्त होने पर मन तृप्त होता है, मन के तृप्त होने पर मेघ तृप्त होता है, मेघ के तृप्त होने पर बिजुली तृप्त होती है, बिजुली के तृप्त होने पर जो कुछ बिजुली और मेघ के मध्य में स्थित है वह सब तृप्त होता है और उसके तृप्त होने पर हवनकर्ता की तृप्ति संतान, पशु, अन्न, तेज और ब्रह्मतेज करके होती है ॥ २ ॥

इति द्वाविंशः खण्डः ।

अथ पञ्चमाध्यायस्य त्रयोविंशः खण्डः ।

मूलम् ।

अथ यां पञ्चमीं जुहुयात्तां जुहुयादुदानाय स्वाहेत्युदानस्तृप्यति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, याम्, पञ्चमीम्, जुहुयात्, ताम्, जुहुयात्, उदानाय, स्वाहा, इति, उदानः, तृप्यति ॥

अन्वयः पदार्थ	अन्वयः पदार्थ
अथ=इसके पीछे	+ आहुतिम्=आहुति को
याम्=जिस	जुहुयात्=हवन करना
पञ्चमीम्=पांचवीं	चाहे

ताम्=उसको	जुहुयात्=हवन करे
उदानाय स्वाहा=उदानाय स्वाहा	+ तर्हि=तो
इति=ऐसा	उदानः=उदान वायु
+ उक्त्वा=कहकर	तृप्यति=तृप्त होता है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! राजा कहता है कि हे ऋषियो ! पांचवीं आहुति अर्थात् ग्रास को "उदानाय स्वाहा" यह कहकर मुख में डाले । ऐसा करने से उदान वायु तृप्त होता है ॥ १ ॥

मूलम् ।

उदाने तृप्यति त्वक्तृप्यति त्वचि तृप्यन्त्यां वायुस्तृप्यति वायौ तृप्यत्याकाशस्तृप्यत्याकाशे तृप्यति यत्किञ्च वायुश्चाकाशश्चाधितिष्ठतस्तत्तृप्यति तस्यानुतृप्तिं तृप्यति प्रजया पशुभिरन्नाद्येन तेजसा ब्रह्मवर्चसेनेति॥ २ ॥

इति त्रयोविंशः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

उदाने, तृप्यति, त्वक्, तृप्यति, त्वचि, तृप्यन्त्याम् , वायुः, तृप्यति, वायौ, तृप्यति, आकाशः, तृप्यति, आकाशे, तृप्यति, यत् , किञ्च, वायुः, च, आकाशः, च, अधि, तिष्ठतः, तत्, तृप्यति, तस्य, अनुतृप्तिम् , तृप्यति, प्रजया, पशुभिः, अन्नाद्येन, तेजसा, ब्रह्मवर्चसेन, इति ॥

अन्वयः पदार्थ	अन्वयः पदार्थ
उदाने=उदान वायु के	तृप्यति=तृप्त होता है
तृप्यति=तृप्त होने पर	वायौ=वायु के
त्वक्=त्वक् इन्द्रिय	तृप्यति=तृप्त होने पर
तृप्यति=तृप्त होती है	आकाशः=आकाश
त्वचि=त्वक् इन्द्रिय के	तृप्यति=तृप्त होता है
तृप्यन्त्याम्=तृप्त होने पर	आकाशे=आकाश के
वायुः=वायु	तृप्यति=तृप्त होने पर

यत्=जो	+ तस्मिन्=उसके
किञ्च=कुछ	तृप्यति=तृप्त होने पर
वायुः=वायु	तस्य=उस हवनकर्ता की
च=और	अनुतृप्तिम्=तृप्ति
आकाशः=आकाश विषे	प्रजया=सन्तान
अधितिष्ठतः=स्थित है	पशुभिः=पशु
तत्=वह सब	अन्नाद्येन=अन्न
इति=इस प्रकार	तेजसा=तेज
तृप्यति=तृप्त होता है	ब्रह्मवर्चसेन=ब्रह्मतेज करके
च=और	+ भवति=होती है

भावार्थ ।

हे ऋषियो ! उदान वायु के तृप्त होनेपर त्वक् इन्द्रिय तृप्त होती है, त्वक् के तृप्त होनेपर वायु तृप्त होता है, वायु के तृप्त होने पर आकाश तृप्त होता है, आकाश के तृप्त होनेपर जो कुछ आकाश और वायु के मध्य में स्थित है वह सब तृप्त होता है तथा उसके तृप्त होनेपर हवनकर्ता की संतान, पशु, अन्न, तेज और ब्रह्मतेज करके तृप्ति होती है ॥ २ ॥

इति त्रयोविंशः खण्डः ।

अथ पञ्चमाध्यायस्य चतुर्विंशः खण्डः ।

मूलम् ।

स य इदमविद्वानग्निहोत्रं जुहोति यथाङ्गारानपोह्य भस्मनि जुहुयात्तादृक् तत्स्यात् ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

सः, यः, इदम्, अविद्वान्, अग्निहोत्रम्, जुहोति, यथा, अङ्गारान्, अपोह्य, भस्मनि, जुहुयात्, तादृक्, तत्, स्यात् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
सः	=वह	तादृक्	=वैसा
यः	=जो अग्निहोत्र कर्ता	स्यात्	=होता है
इदम्	=इस वैश्वानर आत्मा को	यथा	=जैसे कोई
अविद्वान्	=न जानता हुआ	अङ्गारान्	=जलती हुई अग्नि को
अग्निहोत्रम्	=अग्निहोत्रकर्म	अपोह्य	=छोड़कर
जुहोति	=करता है	भस्मनि	=राख में
तत्	=सो	जुहुयात्	=हवन करता है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! राजा कहता है कि हे ऋषियो ! वह जो इस वैश्वानर आत्मा को न जानता हुआ अग्निहोत्र कर्म करता है सो ऐसा होता है जैसे कोई प्रज्वलित अग्नि को छोड़कर राख में आहुति देता है । तात्पर्य इस मंत्र का यह है कि बाह्य अग्नि में आहुति देने से प्राण आदि जो पुरुष के शरीर के अन्दर स्थित हैं उनके लिये आहुति देना श्रेष्ठ है । यदि कोई पुरुष प्राणादि शरीरस्थ अग्नि को ज्ञानपूर्वक आहुति देता है और बाह्य अग्नि में नहीं देता है तो वह पाप से युक्त नहीं होता है ॥ १ ॥

मूलम् ।

अथ य एतदेवं विद्वानग्निहोत्रं जुहोति तस्य सर्वेषु लोकेषु सर्वेषु भूतेषु सर्वेष्वात्मसु हुतं भवति ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यः, एतत्, एवम्, विद्वान्, अग्निहोत्रम्, जुहोति, तस्य, सर्वेषु, लोकेषु, सर्वेषु, भूतेषु, सर्वेषु, आत्मसु, हुतम्, भवति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ	=परन्तु	एवम्	=इस प्रकार
यः	=जो	एतत्	=इस वैश्वानर को

विद्वान्=जानता हुआ
अग्निहोत्रम्=अग्निहोत्र को
जुहोति=करता है
तस्य=उसकी
हुतम्=हवन की हुई आहुति
सर्वेषु=सब
लोकेषु=लोकों में
सर्वेषु=सब
भूतेषु=भूतों में
सर्वेषु=सब
आत्मसु=जीवों में
भवति=प्राप्त होती है

भावार्थ ।

हे ऋषियो ! जो पुरुष वैश्वानर आत्मा को जानकर अग्निहोत्र कर्म करता है उसकी हवन की हुई आहुति सब लोकों में, सब भूतों में और सब जीवों में प्राप्त होती है ॥ २ ॥

मूलम् ।

तद्यथेषीकातूलमग्नौ प्रोतं प्रदूयेतैवꣳ हास्य सर्वे पाप्मानः प्रदूयन्ते य एतदेवं विद्वानग्निहोत्रं जुहोति ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

तत्, यथा, इषीकातूलम्, अग्नौ, प्रोतम्, प्रदूयेत, एवम्, ह, अस्य सर्वे, पाप्मानः, प्रदूयन्ते, यः, एतत्, एवम्, विद्वान्, अग्निहोत्रम्, जुहोति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यः=जो कोई		पाप्मानः=पाप	
एवम्=इस प्रकार		एवम्=इस प्रकार	
एतत्=इस वैश्वानर विद्या को		प्रदूयन्ते=जल जाते हैं	
विद्वान्=जानता हुआ		यथा=जिस प्रकार	
अग्निहोत्रम्=अग्निहोत्र कर्म को		तत्=वह	
जुहोति=करता है		इषीकातूलम्=मूंज का फूल	
अस्य=उसके		अग्नौ=अग्नि में	
सर्वे=सब		प्रोतम्=फेंका हुआ	
		ह=निश्चय	
		प्रदूयेत=भस्म हो जाता है	

भावार्थ ।

हे ऋषियो ! जो कोई इस प्रकार इस वैश्वानरविद्या को जानता हुआ अग्निहोत्र कर्म करता है उसके सब पाप इस प्रकार से भस्म हो जाते हैं जिस प्रकार मूंज का भुआ अग्नि में डाला हुआ भस्म हो जाता है ॥ ३ ॥

मूलम् ।

तस्मादु हैवंविद्यद्यपि चाण्डालायोच्छिष्टं प्रयच्छे-दात्मनि हैवास्य तद्वैश्वानरे हुतꣳस्यादिति तदेष श्लोकः ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

तस्मात्, उ, ह, एवंविद्, यदि, अपि, चाण्डालाय, उच्छिष्टम्, प्रयच्छेत्, आत्मनि, ह, एव, अस्य, तत्, वैश्वानरे, हुतम्, स्यात्, इति, तत्, एषः, श्लोकः ॥

अन्वयः	पदार्थ
एवंविद्	इस प्रकार वैश्वानरविद्या का जाननेवाला
यद्यपि	कदाचित्
चाण्डालाय	चण्डाल के लिये
उच्छिष्टम्	अपना जूठा अन्न
प्रयच्छेत्	देदे वे
उ	तो
तस्मात्	इस ज्ञान के कारण
वैश्वानरे	वैश्वानर
आत्मनि	आत्मा में
अस्य	उसका दिया हुआ
तत्	वह अन्न
ह एव	निस्संदेह ही
हुतम्	हवन किया हुआ
स्यात्	होता है
इति	इस ऊपर कहे हुए के पश्चात्
एषः	यह
तत्	आगे का
श्लोकः	मंत्र
ह	प्रमाण है

भावार्थ ।

हे ऋषियो ! अगर वैश्वानरविद्या का जाननेवाला अपना जूठा अन्न

भी कभी चाण्डाल को दे देवे तो ज्ञान के कारण अर्थात् वैश्वानरविद्या के जानने के कारण चाण्डाल को दिया हुआ वह अन्न वैश्वानर में आहुति दी हुई के तुल्य होता है । इसकी सत्यता के निमित्त आगे-वाला मंत्र प्रमाण है ॥ ४ ॥

मूलम् ।

यथेह क्षुधिता बाला मातरं पर्युपासत एवꣳ सर्वाणि भूतान्यग्निहोत्रमुपासत इत्यग्निहोत्रमुपासत इति ॥५॥

इति चतुर्विंशः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

यथा, इह, क्षुधिताः, बालाः, मातरम्, परि, उप, आसते, एवम्, सर्वाणि, भूतानि, अग्निहोत्रम्, उप, आसते, इति, अग्निहोत्रम्, उप, आसते, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
इह	इस संसार में	भूतानि	प्राणी
क्षुधिताः	भूखे	इति	इस
बालाः	बालक	अग्निहोत्रम्	अग्निहोत्रकर्म के
यथा	जैसे	उपासते	पास जाते हैं
मातरम्	माता के पास	इति	ऐसा जान करके
पर्युपासते	जाते हैं	अग्निहोत्रम्	अग्निहोत्रकर्म को
एवम्	वैसे ही	उपासते	उपासते हैं
सर्वाणि	सब		

भावार्थ ।

हे सौम्य ! राजा कहता है कि हे ऋषियो ! इस संसार में जैसे भूखे बालक अपनी माता के पास क्षुधानिवृत्त्यर्थ जाते हैं वैसे ही सब प्राणी फलप्राप्त्यर्थ इस अग्निहोत्रकर्म के पास जाते हैं अर्थात् अग्नि-होत्र का सेवन करते हैं । 'इति अग्निहोत्रमुपासते' यह दो बार आवर्तन अध्याय समाप्ति के लिये है ॥ ५ ॥

इति पञ्चमोऽध्यायः ।

अथ षष्ठाध्यायस्य प्रथमः खण्डः ।

मूलम् ।

ॐ श्वेतकेतुर्हारुणेय आस तꣳह पितोवाच श्वेत-केतो वस ब्रह्मचर्यं न वै सौम्यास्मत्कुलीनोऽननूच्य ब्रह्मबन्धुरिव भवतीति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

श्वेतकेतुः, ह, आरुणेयः, आस, तम् , ह, पिता, उवाच, श्वेतकेतो, वस, ब्रह्मचर्यम, न, वै, सौम्य, अस्मत्कुलीनः, अननूच्य, ब्रह्मबन्धुः, इव, भवति, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
आरुणेयः	आरुणि का पुत्र
श्वेतकेतुः	श्वेतकेतु
आस	था
पिता	उसका पिता
तम्	उससे
ह	स्पष्ट
इति	ऐसा
उवाच	कहता भया कि
श्वेतकेतो	हे श्वेतकेतो !
वै	श्रद्धा के साथ
ब्रह्मचर्यम्	ब्रह्मचर्य को
ह	भली प्रकार
वस	धारण कर अर्थात् गुरु गृह जाकर विद्या पढ़
सौम्य	हे प्रियपुत्र !
अस्मत्कुलीनः	मेरे वंश में पैदा हुआ कोई
अननूच्य	विद्याहीन
ब्रह्मबन्धुः	नाममात्र ब्राह्मण
इव	ऐसा
+ वै	निश्चय करके
न	नहीं
भवति	हुआ है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! ॐकार, पञ्चाग्नि और वैश्वानर की उपासना कहकर अब आख्यायिका द्वारा ज्ञान का व्याख्यान किया जाता है । अरुण का पौत्र और आरुणि अर्थात् उद्दालक का पुत्र श्वेतकेतु होता भया । यह पुत्र सबमें छोटा था, इस कारण उसके माता पिता उसको बहुत प्यार

करते थे । एक दिन उद्दालक पिता ने देखा कि श्वेतकेतु सयाना हो गया, पर इसने कुछ विद्याभ्यास नहीं किया, इस कारण दुःखित होता हुआ कहने लगा कि हे श्वेतकेतो, पुत्र ! तू ब्रह्मचर्य धारण कर, गुरुगृह जाकर विद्याध्ययन कर । हे प्रियपुत्र ! मेरे वंश में कोई ऐसा नहीं हुआ है कि जिसने विद्याध्ययन न किया हो और केवल नाममात्र ब्राह्मण कहलाया हो ॥ १ ॥

मूलम् ।

स ह द्वादशवर्ष उपेत्य चतुर्विंशतिवर्षः सर्वान्वेदानधीत्य महामना अनूचानमानी स्तब्ध एयाय तꣳ ह पितोवाच श्वेतकेतो यन्नु सौम्येदं महामना अनूचानमानी स्तब्धोऽस्युत तमादेशमप्राक्ष्यः ॥ २ ॥ *

पदच्छेदः ।

सः, ह, द्वादशवर्षः, उपेत्य, चतुर्विंशतिवर्षः, सर्वान्, वेदान्, अधीत्य, महामनाः, अनूचानमानी, स्तब्धः, एयाय, तम्, ह, पिता, उवाच, श्वेतकेतो, यत्, नु, सौम्य, इदम्, महामनाः, अनूचानमानी, स्तब्धः, असि, उत, तम्, आदेशम्, अप्राक्ष्यः ॥

अन्वयः	पदार्थ
सः	वह
द्वादशवर्षः	बारह वर्ष का होता हुआ
+ आचार्यम्	आचार्य के पास
उपेत्य	जाकर
चतुर्विंशतिवर्षः	चौबीस वर्ष की आयु तक रहकर
सर्वान्	सब
वेदान्	वेदों को
ह	भली प्रकार
अधीत्य	पढ़कर
स्तब्धः	प्रमत्त स्वभाववाला
+ च	और
अनूचानमानी	अपने को सबसे अधिक विद्वान् माननेवाला

* इस मंत्र का अन्वय अगले मंत्र से है ॥

महामनाः=महाअहंकारी
अनूचानमानी=सबसे अधिक अपने को विद्वान् माननेवाला
स्तब्धः=नम्रताहीन
असि=है
उत=क्या
नु=कभी
+ त्वम्=तू ने
तम्=उस
आदेशम्=विद्या को
+ आचार्यम्=आचार्य से
अप्राक्षीः=पूछा था

महामनाः=महाअहंकारी होता हुआ
+ पितृगृहम्=पिता के घर
प्रयाय=आवता भया
ह=तब
पिता=उसके पिता ने
तम्=उससे
इदम्=इस प्रकार
उवाच=कहा कि
श्वेतकेतो=हे श्वेतकेतो !
सौम्य=हे प्रियपुत्र !
यत्=जो
+ त्वम्=तू

भावार्थ ।

हे सौम्य ! जब वह श्वेतकेतु बारह वर्ष की अवस्था में आचार्य के पास जाकर, चौबीस वर्ष की अवस्था तक रहकर, सब वेदों को भली प्रकार पढ़कर, प्रमत्तस्वभाववाला और अपने को अधिक विद्वान् माननेवाला, महाअहंकारी होता हुआ अपने पिता के घर को वापस आया तब उसके पिता ने उसको महाअहंकारी नम्रताहीन देखकर कहा कि तू ने अपने आचार्य से उस विद्या को सीखा है ? ॥ २ ॥

मूलम् ।

येनाश्रुतꣳ श्रुतं भवत्यमतं मतमविज्ञातं विज्ञातमिति कथं नु भगवः स आदेशो भवतीति ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

येन, अश्रुतम्, श्रुतम्, भवति, अमतम्, मतम्, अविज्ञातम्, विज्ञातम्, इति, कथम्, नु, भगवः, सः, आदेशः, भवति, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
येन=जिस करके		इति=यह	
अश्रुतम्=नहीं सुना हुआ		+ श्रुत्वा=सुनकर	
श्रुतम्=सुना हुआ		+ श्वेतकेतुः=श्वेतकेतु ने	
भवति=होता है		इति=ऐसा	
अमतम्=नहीं समझा हुआ		+ उवाच=कहा कि	
मतम्=समझा हुआ		भगवः=हे भगवन् !	
+ भवति=होता है		कथम् नु=कैसा	
अविज्ञातम्=नहीं जाना हुआ		सः=वह	
विज्ञातम्=जाना हुआ		आदेशः=उपदेश अर्थात् विद्या	
+ भवति=होता है		+ अस्ति=है	

भावार्थ ।

जिस करके नहीं सुनी हुई, नहीं समझी हुई और नहीं जानी हुई वस्तु सुनी हुई, समझी हुई और जानी हुई की तरह प्रतीत होती है ! यह सुनकर श्वेतकेतु को मालूम हुआ कि पिता मुझसे विद्या में बढ़कर है और उसमें जब ऐसी वृत्ति उत्पन्न हुई तब उसमें नम्रता कुछ कुछ आई और उसने फिर कहा कि हे भगवन् ! वह कौन-सा ऐसी विद्या का उपदेश है ॥ ३ ॥

मूलम् ।

यथा सौम्यैकेन मृत्पिण्डेन सर्वं मृन्मयं विज्ञातꣳ स्याद्वाचारम्भणं विकारो नामधेयम्मृत्तिकेत्येव सत्यम् ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

यथा, सौम्य, एकेन, मृत्पिण्डेन, सर्वम्, मृन्मयम्, विज्ञातम्, स्यात्, वाचा, आरम्भणम्, विकारः, नामधेयम्, मृत्तिका, इति, एव, सत्यम् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
सौम्य=हे प्रियपुत्र !		एकेन=एक	
यथा=जिस प्रकार		मृत्पिण्डेन=मृत्पिण्ड से	

सर्वम्=सब
मृन्मयम्=मिट्टी के बने हुए बरतन
विज्ञातम्=जाने हुए
स्यात्=होते हैं
इति=उसी प्रकार
विकारः=घटादि विकार
नामधेयम्=नाममात्र
वाचा=वाणी करके
आरम्भणम्=कथन किया गया है
सत्यम्=वास्तव से
+ सर्वम्=सब
मृत्तिका=मिट्टी
एव=ही
+ अस्ति=है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! ऐसा सुनकर उद्दालक ऋषि ने कहा कि हे पुत्र ! जैसे एक मृत्तिका के पिण्ड से बनी हुई घटादि चीजें मृत्तिकारूप ही होती हैं पर उनका नाम वाणी करके पृथक् पृथक् होता है, अर्थात् जब कारण कार्य में अनुगत है तब वास्तव में नामरूप छोड़कर जो कारण है वही कार्य है, जो कार्य है वही कारण है । जैसे एक मिट्टी की बनी हुई चीजें घट शराव हंडी आदि हैं और मिट्टी उनमें अनुगत है, इस कारण वे सब मिट्टीरूप ही हैं, मिट्टी से पृथक् उनकी कोई सत्ता नहीं है । यदि मिट्टी निकालकर देखा जाय तो कहीं उनका पता नहीं लगता है ॥ ४ ॥

मूलम् ।

यथा सौम्यैकेन लोहमणिना सर्वं लोहमयं विज्ञातꣳ स्याद्वाचारम्भणं विकारो नामधेयं लोहमित्येव सत्यम् ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ।

यथा, सौम्य, एकेन, लोहमणिना, सर्वम्, लोहमयम्, विज्ञातम्, स्यात, वाचा, आरम्भणम्, विकारः, नामधेयम्, लोहम्, इति, एव, सत्यम ॥

अन्वयः	पदार्थ
सौम्य	हे प्रियदर्शन !
यथा	जैसे
एकेन	एक
लोहमणिना	सुवर्ण से
सर्वम्	सब
लोहमयम्	सुवर्ण की बनी हुई चीज़ें
विज्ञातम्	जानी जाती
स्यात्	हैं
इति	इसी प्रकार
विकारः	अँगूठी आदि सुवर्ण का विकार
वाचा	वाणी करके
नामधेयम्	नाममात्र
आरम्भणम्	आरम्भ किया हुआ है
सत्यम्	वास्तव से
+ तत्सर्वम्	वह सब
लोहम्	सुवर्ण
एव।स्ति	ही है

भावार्थ ।

हे प्रियदर्शन ! एक सुवर्ण से बनी हुई चीजें अँगूठी आदिक विकार सुवर्णरूप ही हैं । उनके पृथक् पृथक् नाम वाणी करके ज्ञात होते हैं । वास्तव से अँगूठी आदि जो कार्य हैं वे सब कारणरूप सुवर्ण हैं, क्योंकि सुवर्ण अँगूठी आदि में अनुगत है ॥ ५ ॥

मूलम् ।

यथा सौम्यैकेन नखनिकृन्तनेन सर्वं कार्ष्णायसं विज्ञातꣳ स्याद्वाचारम्भणं विकारो नामधेयं कृष्णायसमित्येव सत्यमेवꣳ सौम्य स आदेशो भवतीति ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ।

यथा, सौम्य, एकेन, नखनिकृन्तनेन, सर्वम्, कार्ष्णायसम्, विज्ञातम्, स्यात्, वाचा, आरम्भणम्, विकारः, नामधेयम्, कृष्णायसम्, इति, एव, सत्यम्, एवम्, सौम्य, सः, आदेशः, भवति, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
सौम्य	हे प्रियदर्शन !
यथा	जैसे
एकेन	एक
नखनिकृन्तनेन	नहन्नी से

सर्वम्=सब
कार्ष्णायसम्=लोहे की चीज़ों का
विज्ञातम्=ज्ञान
स्यात्=होता है
इति=उसी प्रकार
सौम्य=हे प्रियदर्शन!
इति=यह
कृष्णायसम्=लोहे का
विकारः=विकार छुरी आदि
नामधेयम्=नाममात्र
वाचा=वाणी करके
आरम्भणम्=कथन किया हुआ है
सत्यम्=वास्तव से
एवम्=इस प्रकार
इति=ऐसा
सः=वह
आदेशः=उपदेश
भवति=है

भावार्थ ।

हे प्रियदर्शन ! जैसे एक नहन्नी को देखकर सब लोहे की चीज़ों का ज्ञान होता है, यद्यपि उनके नाम भिन्न भिन्न होते हैं, वास्तव में वह सब लोहरूप ही हैं अर्थात् लोहे से पृथक् उनकी सत्ता कुछ नहीं है ॥ ६ ॥

मूलम् ।

न वै नूनं भगवन्तस्त एतदवेदिषुर्यद्ध्येतदवेदिष्य-न्कथं मे नावक्ष्यन्निति भगवांस्त्वेव मे तद्ब्रवीत्विति तथा सौम्येति होवाच ॥ ७ ॥

इति प्रथमः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

न, वै, नूनम्, भगवन्तः, ते, एतत्, अवेदिषुः, यत्, हि, एतत्, अवेदिष्यन्, कथम्, मे, न, अवक्ष्यन्, इति, भगवान्, तु, एव, मे, तत्, ब्रवीतु, इति, तथा, सौम्य, इति, ह, उवाच ॥

अन्वयः पदार्थ

इति=ऐसा
+ श्रुत्वा=सुनकर
+ श्वेतकेतुः=श्वेतकेतु ने
+ उवाच=कहा कि

अन्वयः पदार्थ

ते=वे
भगवन्तः=पूजनीय
+ सद्गुरवः=मेरे गुरु
नूनम् वै=निश्चय करके

एतत्=इस विद्या को
न=नहीं
अवेदिषुः=जानते होंगे
हि=कदाचित्
यत्=जो
+ ते=वे
एतत्=इस विद्या को
अवेदिष्यन्=जानते होते तो
कथम्=कैसे
मे=मेरेलिये
न=न
अवक्ष्यन्=कहते

इति तु=इस कारण
भगवान्=आप
एव=ही
तत्=उसको
मे=मेरेलिये
ब्रवीतु=कहें
इति=ऐसा
+ श्रुत्वा=सुनकर
+ उद्दालकः=उद्दालक ने
उवाच ह=कहा कि
सौम्य=हे सौम्य !
तथा=तथास्तु

भावार्थ ।

हे सौम्य ! ऐसा सुनकर श्वेतकेतु ने अपने पिता से कहा कि हे पूज्य पिता ! मेरे गुरु इस विद्या को नहीं जानते होंगे, यदि इस विद्या को जानते होते तो मुझसे अवश्य कहते । अब आप कृपा करके मुझको इस विद्या में सुशिक्षित करें । उद्दालक ने कहा कि हे सौम्य ! तथास्तु, मैं इच्छानुसार ऐसा ही करूंगा ॥ ७ ॥

इति प्रथमः खण्डः ।

अथ षष्ठाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः ।

मूलम् ।

सदेव सौम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयं तद्धैक आहुरसदेवेदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयं तस्मादसतः सज्जायेत ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

सत्, एव, सौम्य, इदम्, अग्रे, आसीत्, एकम्, एव, अद्वितीयम्,

तत्, ह, एके, आहुः, असत्, एव, इदम्, अग्रे, आसीत्, एकम्, एव, अद्वितीयम्, तस्मात्, असतः, सत्, जायेत ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
सौम्य=	हे प्रियदर्शन !	अग्रे=	पहिले
इदम्=	यह जगत्	इदम्=	यह
अग्रे=	अपनी उत्पत्ति से पहिले अर्थात् नामरूपधारण करने से पहिले	अद्वितीयम्=	द्वितीयहीन
		एकम्=	एक
		असत्=	असत्
		एव=	ही
अद्वितीयम्=	द्वितीयरहित	आसीत्=	था
एकम्=	एक	+ च=	और
सत्=	सत् ब्रह्मरूप	तस्मात्=	उस
एव ह=	ही निस्सन्देह	एव=	ही
आसीत्=	था	असतः=	असत् से
एके=	कोई आचार्य	तत् सत्=	यह सत् जगत्
आहुः=	कहते हैं कि	जायेत=	उत्पन्न होता भया

भावार्थ ।

हे सौम्य! यह नामरूपात्मक जगत्, जो इन्द्रियों का विषय हो रहा है, वह अपनी उत्पत्ति के पहिले एक सत्रूप ही था । जैसा कारण होता है वैसा ही कार्य होता है । जहां कारण अति सूक्ष्म होता है अर्थात् इन्द्रियों का विषय नहीं होता है, वहां कार्य द्वारा वह कारण जाना जाता है । मन्त्र में जो एकम्, अद्वितीयम्, एव, शब्द हैं वे सत् के विशेषण हैं अर्थात् वे बताते हैं कि वह सत् अस्तिमात्र, अतिसूक्ष्म, निर्विशेष, सर्वगत, एक, निरंजन, निरवयव, निराकार और विज्ञानघन है वह उपनिषदों के महावाक्यार्थ के ज्ञान से साक्षात् अनुभव किया जाता है ॥ १ ॥

इस पर एक दृष्टान्त देकर बोध कराते हैं—एक पुरुष एक गांव से

दूसरे गांव को जाता था । राह में देखा कि एक कुलाल (कुम्हार) मृत्तिका एकत्र कर रहा है । जब वह सायंकाल अपने गांव को वापस आने लगा तो देखा कि कुम्हार के आस पास अनेक प्रकार के बरतन आदि बने रक्खे हैं । बड़े आश्चर्य को प्राप्त होकर कुम्हार से पूछा कि यह सब क्या हैं और वह मृत्पिण्ड जो मैंने देखा था क्या हो गया ? कुलाल ने उत्तर दिया कि जो कुछ अपने सामने बरतन आदि देखते हो वे सब उसी मृत्पिण्ड के बने हैं जिसको तुमने पहिले देखा था । जो वह मृत्पिण्ड था वही ये हैं । इसमें और उस पिण्ड में कोई भेद नहीं है । उस पुरुष को बोध हो गया और आश्चर्य उसका दूर हो गया और वह शान्त होता हुआ अपने घर गया । हे सौम्य ! इसी प्रकार नामरूपसंयुक्त यह जगत् सत्रूप ब्रह्म ही है, इसमें उसमें रञ्चितमात्र भेद नहीं है ।

वैनाशिक आचार्य कहते हैं कि इस नामरूपात्मक जगत् के पहिले एक अद्वितीय असत् ही था, उस असत् से यह सत् जगत् उत्पन्न हुआ है । यह उनका कथन ठीक नहीं है, क्योंकि असत् से सत् उत्पन्न नहीं हो सकता है, ऐसा होना युक्ति श्रुति विरुद्ध है ।

वैशेषिक मतवाले कहते हैं कि यह जगत् पञ्चतत्त्व अर्थात् आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी करके बना है । वह अपनी उत्पत्ति के पहिले परमाणुरूप से सत् ब्रह्म के आश्रय था । उस परमाणु से यह जगत् उत्पन्न हुआ है । यह उनका कथन समीचीन नहीं है, क्योंकि ऐसा कहने से एक सत् प्रतीत होता है और दूसरा परिमाणु प्रतीत होता है, परन्तु मन्त्र में द्वैत को अलग करके सत् का विशेषण एकम्, अद्वितीयम् दिया है । इसलिये वैशेषिक मतवालों का अर्थ भी त्यागने योग्य है ।

मूलम् ।

कुतस्तु खलु सौम्यैवꣳस्यादिति होवाच कथमसतः सज्जायेतेति सत्त्वेव सौम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम् ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

कुतः, तु, खलु, सौम्य, एवम्, स्यात्, इति, ह, उवाच, कथम्, असतः, सत्, जायेत, इति, सत्, तु, एव, सौम्य, इदम्, अग्रे, आसीत्, एकम, एव, अद्वितीयम् ॥

अन्वयः पदार्थ	अन्वयः पदार्थ
सौम्य=हे प्रियदर्शन !	ह=स्पष्ट
एवम्=ऐसा	उवाच=कहा कि
कुतः=कैसा	इदम्=यह
खलु=निश्चय करके	तु=तो
स्यात्=हो सकता है	सौम्य=हे प्रियदर्शन !
तु=अर्थात्	एव=निश्चय करके
असतः=असत् से	अग्रे=पहिले
कथम्=कैसे	अद्वितीयम्=अद्वितीय
इति=यह	एकम्=एक
सत्=सत् नामरूपात्मक जगत्	सत्=सत्
जायेत=उत्पन्न हो सकता है	एव=ही
+ उद्दालकः=उद्दालक ने	इति=करके
	आसीत्=था

भावार्थ ।

हे सौम्य ! उद्दालक ऋषि ने श्वेतकेतु से कहा कि हे प्रियपुत्र ! असत् से सत् की उत्पत्ति नहीं हो सकती, इसलिये नामरूपात्मक जगत् को देखकर यही अनुभव होता है कि इसकी उत्पत्ति एक अद्वितीय सत् से ही है ॥ २ ॥

मूलम् ।

तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेयेति तत्तेजोऽसृजत तत्तेज ऐक्षत बहु स्यां प्रजायेयेति तदपोऽसृजत तस्माद्यत्र क्व च शोचति स्वेदते वा पुरुषस्तेजस एव तदध्यापो जायन्ते ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

तत्, ऐक्षत, बहु, स्याम्, प्रजायेय, इति, तत्, तेजः, असृजत, तत्, तेजः, ऐक्षत, बहु, स्याम्, प्रजायेय, इति, तत्, अपः, असृजत, तस्मात्, यत्र, क्व, च, शोचति, स्वेदते, वा, पुरुषः, तेजसः, एव, तत्, अधि, आपः, जायन्ते ॥

अन्वयः	पदार्थ
तत्	वह सत् परमात्मा
इति	ऐसी
ऐक्षत	इच्छा करता भया कि
+ अहम्	मैं
बहु	बहुत रूप से
स्याम्	हो जाऊँ
+ च	और
प्रजायेय	प्रजा को उत्पन्न करूं
तत्	इस इच्छा के पीछे
तेजः	अग्नि को
असृजत	उत्पन्न करता भया
+ च	और
तत्	वह सत्
तेजः	अग्नि
इति	ऐसी
ऐक्षत	इच्छा करता भया कि
+ अहम्	मैं
बहु	बहुरूप

अन्वयः	पदार्थ
स्याम्	हो जाऊँ
+ च	और
प्रजायेय	प्रजा को उत्पन्न करूं
तत्	उसके पीछे
अपः	जल को
असृजत	उत्पन्न करता भया
तस्मात्	इसी कारण
यत्र	जहां कहीं
च	और
क्व	जब कभी
पुरुषः	पुरुष
शोचति	शोक करता है
+ वा	तब
स्वेदते	पसीना निकलने लगता है
+ च	और
तत्	यह

अधि+सिध्यति=सिद्ध करता है कि	आपः=जल
तेजसः=अग्नि से	जायन्ते=उत्पन्न होते हैं

भावार्थ ।

हे सौम्य ! वह सत् परमात्मा ऐसी इच्छा करता भया कि मैं एक हूं, बहुत रूप हो जाऊ और असंख्य प्रजा को उत्पन्न करूं । ऐसी इच्छा करके अग्नि को उत्पन्न करता भया । फिर वह अग्नि ऐसी इच्छा करता भया कि मैं एक से अनेक हो जाऊं और अनेक प्रजा को उत्पन्न करूं । इस इच्छा के पश्चात् वह अग्नि जल को उत्पन्न करता भया, इसलिये जहां कहीं और जब कभी कोई पुरुष शोक करता है तब उसके शरीर से पसीना निकलने लगता है । इसी से यह सिद्ध होता है कि अग्नि से ही जल की उत्पत्ति होती है ॥ ३ ॥

मूलम् ।

ता आप ऐक्षन्त बह्व्यः स्याम प्रजायेमहीति ता अन्नमसृजन्त तस्माद्यत्र क्व च वर्षति तदेव भूयिष्ठमन्नं भवत्यद्भ्य एव तदध्यन्नाद्यं जायते ॥ ४ ॥

इति द्वितीयः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

ताः, आपः, ऐक्षन्त, बह्वयः, स्याम्, प्रजायेमहि, इति, ताः, अन्नम्, असृजन्त, तस्मात्. यत्र, क्व, च, वर्षति, तत्, एव, भूयिष्ठम्, अन्नम्, भवति, अद्भयः, एव, तत्, अधि, अन्नाद्यम, जायते ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
ताः=उस		च=और	
आपः=जल ने		प्रजायेमहि=प्रजा को उत्पन्न करूँ	
ऐक्षन्त=इच्छा की कि		इति=एसा शोचने पर	
बह्वयः=मैं बहुत		ताः=उस जल ने	
स्याम्=हो जाऊं		अन्नम्=अन्न को	

अमृजन्त=पैदा किया
तस्मात्=इस कारण
क्व=जब कभी
यत्र=कहीं
वर्षति=वर्षा होती है
+ तत्=तब
एव=निश्चय करके
भूयिष्ठम्=विशेष
अन्नम्=अन्न
भवति=होता है
तत् एव=सोई
अधि + सिध्यति=सिद्ध करता है कि
अद्भ्यः=जल से
अन्नाद्यम्=अन्नादिक
जायते=उत्पन्न होता है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! उस सत् परमात्मा ने अपने विषे जलतत्त्व को धारण करके इच्छा की कि मैं बहुत प्रकार का हो जाऊं और अनेक प्रकार की सृष्टि को रचूं । ऐसी इच्छा करते ही उसने जलरूप करके अन्न को पैदा किया अथवा अन्न के कारणभूत पृथ्वी को पैदा किया, इसलिये जब कभी और जहां कहीं वर्षा होती है वहां अन्न की बाहुल्यता होती है, जिससे सिद्ध होता है कि जल से ही भक्षण करने योग्य अन्न उत्पन्न होता है ॥ ४ ॥

इति द्वितीयः खण्डः ।

अथ षष्ठाध्यायस्य तृतीयः खण्डः ।

मूलम् ।

तेषां खल्वेषां भूतानां त्रीण्येव बीजानि भवन्त्याण्डजं जीवजमुद्भिज्जमिति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

तेषाम्, खलु, एषाम्, भूतानाम्, त्रीणि, एव, बीजानि, भवन्ति, आण्डजम्, जीवजम्, उद्भिज्जम्, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
एषाम्=इन चराचर		तेषाम्=उन उत्तर दक्षिण मार्ग से भ्रष्ट जीवों की उत्पत्ति	
भूतानाम्=भूतों की		आण्डजम्=अण्डज	
+ उत्पत्तौ=उत्पत्ति में		जीवजम्=जरायुज	
खलु=निश्चय करके		उद्भिज्जम्=उद्भिज्ज	
त्रीणि=तीन		इति=करके	
एव=ही		+ भवति=होती है	
बीजानि=कारण अर्थात्			
भवन्ति=होते हैं			

भावार्थ ।

हे सौम्य ! जो जीव उत्तर मार्ग और दक्षिण मार्ग से भ्रष्ट हुए हैं, उनकी उत्पत्ति के तीन कारण हैं अर्थात् तीन जरिये हैं या तो वे अण्डे से उत्पन्न होते हैं जैसे पक्षी सर्पादि अथवा जेर से उत्पन्न होते हैं जैसे मनुष्य पशु आदि या पृथ्वी को फोड़कर उत्पन्न होते हैं जैसे वृक्ष अन्नादि । किसी किसी आचार्य ने चार कारण कहे हैं । यहां इस मंत्र में चौथे कारण स्वेदज को अण्डज में शामिल कर दिया है, इसलिये सब जीवों की उत्पत्ति में तीन ही कारण हैं ॥ १ ॥

मूलम् ।

सेयं देवतैक्षत हन्ताहमिमास्तिस्रो देवता अनेन जीवेनात्मनाऽनुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणीति ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

सा, इयम्, देवता, ऐक्षत, हन्त, अहम्, इमाः, तिस्रः, देवत अनेन, जीवेन, आत्मना, अनु, प्रविश्य, नामरूपे, व्याकरवाणि, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
हन्त=हर्ष है कि		देवता=सत्स्वरूप ब्रह्म	
सा=वह		ऐक्षत=इच्छा करता हुआ कि	
इयम्=यह			

अहम्=मैं
+ च=और
इमाः=य
तिस्रः= { तीनों अर्थात् अग्नि, जल, पृथ्वी }
देवताः=देवता

अनेन=इस
जीवेन=जीव
आत्मना=आत्मा के साथ
अनुप्रविश्य=मिलकर
नामरूपे=नाम रूप को
व्याकरवाणि=प्रकट करूं

भावार्थ ।

हे सौम्य ! फिर वह सत्रूप परमात्मा ऐसा विचारता भया कि मैं इन तीनों देवताओं अर्थात् अग्नि, जल, पृथ्वी में चैतन्य जीवात्मा होकर प्रवेश करूं और नामरूप को प्रकट करूं ॥ २ ॥

मूलम् ।

तासां त्रिवृतं त्रिवृतमेकैकां करवाणीति सेयं देवते-मास्तिस्रो देवता अनेनैव जीवेनात्मनाऽनुप्रविश्य नाम-रूपे व्याकरोत् ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

तासाम्, त्रिवृतम्, त्रिवृतम्, एकैकाम्, करवाणि, इति, सा, इयम्, देवता, इमाः, तिस्रः, देवताः, अनेन, एव, जीवेन, आत्मना, अनु, प्रविश्य, नामरूपे, व्याकरोत् ॥

अन्वयः पदार्थ

तासाम्=उन तीन तत्त्वों में से
एकैकाम्=एक एक का
त्रिवृतम्=तीन
त्रिवृतम्=तीन विभाग
करवाणि=करूं
इति=ऐसी इच्छा करके
सा=वह
इयम्=यह

अन्वयः पदार्थ

देवता=देवता (परब्रह्म)
इमाः=उन
तिस्रः=तीनों
देवताः= { देवताओं में अर्थात् अग्नि, जल, पृथ्वी में }
अनेन=इस अपने प्रतिबिम्बरूप

एव=ही	अनुप्रविश्य=प्रवेश करके
जीवेन=जीव	नामरूपे=नाम रूप को
आत्मना=आत्मा के साथ	व्याकरोत्=प्रकट करता भया

भावार्थ ।

हे सौम्य! सत् परमात्मा सृष्टि रचने के निमित्त ऐसी इच्छा करता भया कि एक एक तत्त्व के तीन तीन विभाग करूं अर्थात् त्रिवृत्करण करके एक तत्त्व का आधा और दो तत्त्वों का चौथाई चौथाई मिलाकर सृष्टि रचूं । ऐसा विचारकर उन देवताओं अर्थात् अग्नि, जल, पृथ्वी के ऊपर कहे हुए भाग में अपने प्रतिबिम्बरूप चैतन्य जीवात्मा के साथ प्रवेश करके नाम रूप को प्रकट करता भया और जैसे वेदान्त ग्रन्थों में सृष्टि की उत्पत्ति पञ्चीकरण से है इसी तरह इस उपनिषद् में सृष्टि की उत्पत्ति त्रिवृत्करण करके कही गई है; क्योंकि विना तत्त्वों के न्यून अधिक किये हुए सृष्टि की उत्पत्ति हो नहीं सकती है और तत्त्वों की साम्य अवस्था में नामरूप प्रकट हो नहीं सकता है ॥ ३ ॥

मूलम् ।

तासां त्रिवृतं त्रिवृतमेकैकामकरोद्यथा नु खलु सौम्येमास्तिस्रो देवतास्त्रिवृत्त्रिवृदेकैका भवति तन्मे विजानीहीति ॥ ४ ॥

इति तृतीयः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

तासाम्, त्रिवृतम्, त्रिवृतम्, एकैकाम्, अकरोत्, यथा, नु, खलु, सौम्य, इमाः, तिस्रः, देवताः, त्रिवृत्, त्रिवृत, एकैका, भवति, तत, मे, विजानीहि, इति ।

अन्वयः पदार्थ	अन्वयः पदार्थ
+ च=और	एकैकाम्=एक एक को
तासाम्=उन तीनों तत्त्वों में से	त्रिवृतम्=तीन

त्रिवृतम्=तीन भाग	इति=करके
अकरोत्=करता भया	एकैका=एक एक
यथा=जिस प्रकार	भवति=होते हैं
इमाः=यह	तत्=उसको
तिस्रः=तीनों	सोम्य=हे सौम्य !
देवताः=देवता	मे=मुझसे
त्रिवृत्=तीन	नु खलु=निश्चय करके
त्रिवृत्=तीन मिल	विजानीहि=जान तू

भावार्थ ।

हे सौम्य ! प्रथम सत् परमात्मा उन तीन तत्त्वों में से एक एक को तीन तीन भाग करता भया और फिर जिस प्रकार तीन तीन मिल करके एक एक होते हैं उसको मैं तुझसे कहता हूं ॥ ४ ॥

इति तृतीयः खण्डः ।

अथ षष्ठाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः ।

मूलम् ।

यदग्ने रोहितꣳ रूपं तेजसस्तद्रूपं यच्छुक्लं तदपां यत्कृष्णं तदन्नस्यापागादग्नेरग्नित्वं वाचारम्भणं विकारो नामधेयं त्रीणि रूपाणीत्येव सत्यम् ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

यत्, अग्नेः, रोहितम्, रूपम्, तेजसः, तत्, रूपम्, यत्, शुक्लम्, तत्, अपाम्, यत्, कृष्णम्, तत्, अन्नस्य, अपागात्, अग्नेः, अग्नित्वम्, वाचा, आरम्भणम्, विकारः, नामधेयम्, त्रीणि, रूपाणि, इति, एव, सत्यम् ॥

अन्वयः पदार्थ	अन्वयः पदार्थ
यत्=जो	रोहितम्=लाल
अग्नेः=अग्नि का	रूपम्=रूप है

तत्=वह
तेजसः=तेज का
रूपम्=रूप है अर्थात् अपना रूप है
यत्=जो
शुक्लम्=श्वेत रूप है
तत्=वह
अपाम्=जल का है
यत्=जो
कृष्णम्=श्याम रूप है
तत्=वह
अन्नस्य=अन्न का है अर्थात् पृथ्वी का है
अग्नेः=अग्नि से
+ त्रयाणाम्=तीनों रूपों को
अपागात्=अलग कर दिया
+ तर्हि=तो
+ अग्नेः=अग्नि का
अग्नित्वम्=अग्नित्व
विकारः=विकार
नामधेयम्=नाममात्र
वाचा=वाणी करके
आरम्भणम्=कथन किया हुआ है
+ तस्मात्=इसलिये
त्रीणि=तीनों
रूपाणि=रूप
इति=ऊपर कहे हुए
एव=निश्चय करके
सत्यम्=सत्य हैं

भावार्थ ।

हे सौम्य ! प्रज्वलित अग्नि में जो लालरूप है वह तेज का है अर्थात् अपना है । जो श्वेतरूप है वह जल का है, जो श्यामरूप है वह पृथ्वी का है । यदि प्रकाशित अग्नि से तीनों रूप लाल, सफ़ेद और श्याम अलग करके देखें तो अग्नि के अग्नित्व का कहीं पता नहीं लगेगा, केवल शब्दमात्र अग्नि रह जायगी; इसलिये लाल, श्वेत और श्यामरूप अग्नि में सत्य हैं; इससे पृथक् कुछ नहीं है जो अग्नि कहा जाय ॥ १ ॥

मूलम् ।

यदादित्यस्य रोहितꣳ रूपं तेजसस्तद्रूपं यच्छुक्लं तदपां यत्कृष्णं तदन्नस्यापागादादित्यादादित्यत्वं वाचारम्भणं विकारो नामधेयं त्रीणि रूपाणीत्येव सत्यम् ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

यत्, आदित्यस्य, रोहितम्, रूपम्, तेजसः, तत्, रूपम्, यत्, शुक्लम्, तत्, अपाम्, यत्, कृष्णम्, तत्, अन्नस्य, अपागात्, आदित्यात्, आदित्यत्वम्, वाचा, आरम्भणम्, विकारः, नामधेयम्, त्रीणि, रूपाणि, इति, एव, सत्यम् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यत्=जो		+ यदि=जो	
आदित्यस्य=सूर्य का		आदित्यात्=सूर्य से	
रोहितम्=लाल		+त्रिरूपाणि=तीनों रूपों को	
रूपम्=रूप है		अपागात्=अलग करदें	
तत्=वह		+ तर्हि=तो	
तेजसः=तेज अर्थात् अग्नि का है		+ आदित्यस्य=सूर्य का	
यत्=जो		आदित्यत्वम्=सूर्यत्व	
शुक्लम्=श्वेत		विकारः=विकार	
रूपम्=रूप है		नामधेयम्=नाममात्र	
तत्=वह		वाचा=वाणी करके	
अपाम्=जल का है		आरम्भणम्=कथन किया जाता है	
यत्=जो		+ तस्मात्=इसलिये	
कृष्णम्=काला है		त्रीणि=ये तीनों	
तत्=वह		रूपाणि=रूप	
अन्नस्य=अन्न अर्थात् पृथ्वी का है		इति=ऊपर कहे हुए	
		एव=निश्चय करके	
		सत्यम्=सत्य हैं	

भावार्थ ।

हे सौम्य ! जो सूर्य में लालरूप है वह अग्नि का है, जो श्वेतरूप है वह जल का है, जो श्यामरूप है वह पृथ्वी का है । यदि इन तीनों रूपों को अलग करके देखा जाय तो सूर्य के सूर्यत्व का कहीं पता

नहीं, केवल सूर्य नाममात्र शब्द का विषय रह जायगा । इस कारण तीनों रूप सत्य हैं, इनसे पृथक् सूर्य का कहीं पता नहीं है ॥ २ ॥

मूलम् ।

यच्चन्द्रमसो रोहितꣳ रूपं तेजसस्तद्रूपं यच्छुक्लं तदपां यत्कृष्णं तदन्नस्यापागाच्चन्द्राच्चन्द्रत्वं वाचारम्भणं विकारो नामधेयं त्रीणि रूपाणीत्येव सत्यम् ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

यत्, चन्द्रमसः, रोहितम्, रूपम्, तेजसः, तत्, रूपम्, यत्, शुक्लम्, तत्, अपाम्, यत्, कृष्णम्, तत्, अन्नस्य, अपागात्, चन्द्रात्, चन्द्रत्वम्, वाचा, आरम्भणम्, विकारः, नामधेयम्, त्रीणि, रूपाणि, इति, एव, सत्यम् ॥

अन्वयः	पदार्थ
यत्	जो
चन्द्रमसः	चन्द्रमा का
रोहितम्	लाल
रूपम्	रूप है
तत्	वह
तेजसः	तेज का
रूपम्	रूप है
यत्	जो
शुक्लम्	श्वेत है
तत्	वह
अपाम्	जल का है
यत्	जो
कृष्णम्	श्याम है
तत्	वह
अन्नस्य	अन्न का है अर्थात् पृथ्वी का है
+ यदि	अगर
चन्द्रात्	चन्द्रमा से
+ त्रीणि	तीनों रूपों को
अपागात्	अलग करदें
+ तर्हि	तो
+ चन्द्रस्य	चन्द्रमा का
चन्द्रत्वम्	चन्द्रत्व
विकारः	विकार
नामधेयम्	नाम
वाचा	वाणी करके
आरम्भणम्	कथनमात्र है
+ तस्मात्	इसलिये
+ एतानि	ये
त्रीणि	तीनों
रूपाणि	रूप
इति	ऊपर कहे हुए
एव	निश्चय करके
सत्यम्	सत्य हैं

भावार्थ ।

जो चन्द्रमा में लालरूप है वह अग्नि का है, जो श्वेतरूप है वह जल का है, जो श्यामरूप है वह पृथ्वी का है। यदि इन तीनों रूपों को अलग करके चन्द्रमा देखा जाय तो केवल नाममात्र शब्द का विषय पाया जायगा, इसलिये ऊपर कहे हुए तीनों रूप सत्य हैं। इनसे पृथक् चन्द्रमा की कोई सत्ता नहीं है ॥ ३ ॥

मूलम् ।

यद्विद्युतो रोहितꣳरूपं तेजसस्तद्रूपं यच्छुक्लं तदपां यत्कृष्णं तदन्नस्यापागाद्विद्युतो विद्युत्त्वं वाचारम्भणं विकारो नामधेयं त्रीणि रूपाणीत्येव सत्यम् ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

यत्, विद्युतः, रोहितम्, रूपम्, तेजसः, तत्, रूपम्, यत्, शुक्लम्, तत्, अपाम्, यत्, कृष्णम्, तत्, अन्नस्य, अपागात्, विद्युतः, विद्युत्त्वम्, वाचा, आरम्भणम्, विकारः, नामधेयम्, त्रीणि, रूपाणि, इति, एव, सत्यम् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यत्	जो	यत्	जो
विद्युतः	बिजुली का	कृष्णम्	श्याम है
रोहितम्	लाल	तत्	वह
रूपम्	रूप है	अन्नस्य	अन्न अर्थात् पृथ्वी का है
तत्	वह	+ विद्युतः	बिजुली से
तेजसः	अग्नि का	+ त्रीणि	तीनों रूपों को
रूपम्	रूप है	अपागात्	अलग करदेवें
यत्	जो	+ तर्हि	तो
शुक्लम्	श्वेत है	विद्युतः	बिजुली का
तत्	वह	विद्युत्त्वम्	विद्युत्त्व
अपाम्	जल का है		

विकारः=विकार
नामधेयम्=नाम
वाचा=वाणी करके
आरम्भणम्=कथनमात्र
+ शिष्यते=रहता है
+ तस्मात्=इसलिये
+ एतानि=यही
त्रीणि=तीनों
रूपाणि=रूप
इति=ऊपर कहे हुए
एव=निश्चय करके
सत्यम्=सत्य हैं

भावार्थ।

जो बिजुली में लालरूप है वह अग्नि का है, जो श्वेतरूप है वह जल का है, जो श्यामरूप है वह पृथ्वी का है। यदि इन रूपों को अलग करके बिजुली देखी जाय तो वह केवल नाममात्र शब्द का विषय पाई जायगी, इसलिये ऊपर कहे हुए तीनों रूप सत्य हैं। इनसे पृथक् बिजुली की कोई सत्ता नहीं है॥ ४॥

मूलम्।

एतद्ध स्म वै तद्विद्वाᳪस आहुः पूर्वे महाशाला महाश्रोत्रिया न नोऽद्य कश्चनाश्रुतममतमविज्ञातमुदाहरिष्यतीति ह्येभ्यो विदाञ्चक्रुः॥ ५॥

पदच्छेदः।

एतत्, ह, स्म, वै, तत्, विद्वांसः, आहुः, पूर्वे, महाशालाः, महाश्रोत्रियाः, न, नः, अद्य, कश्चन, अश्रुतम्, अमतम्, अविज्ञातम्, उत्, आहरिष्यति, इति, हि, एभ्यः, विदाञ्चक्रुः॥

अन्वयः पदार्थ अन्वयः पदार्थ

एतत्=इस
तत्=त्रिवृत्करण को
विद्वांसः=जानते हुए
पूर्वे=पूर्वकाल के
महाशालाः=बड़े गृहस्थ
+ च=और
महाश्रोत्रियाः=बड़े श्रोत्रिय आचार्य
ह=स्पष्ट
आहुः स्म=कहते भये कि
नः=हमारे कुल में
कश्चन=कोई भी
इति=ऐसा
न=नहीं
+ बभूव=हुआ है
+ यः=जो

+ एतत्=उसको
अश्रुतम्=नहीं सुना हो
अमतम्=नहीं समझा हो
अविज्ञातम्=नहीं जाना हो
+ यम्=जिसको
अद्य=अब
उदाहरिष्यति=लोग कहेंगे
+ च=और
+ ते=वे आचार्य
हि=भली प्रकार
एभ्यः=इन्हीं तीनों रूपों से
वै=निश्चय करके
+ सर्वम्=सबको
विदाञ्चक्रुः=जानते भये

भावार्थ ।

उद्दालक ऋषि अपने पुत्र श्वेतकेतु से कहते हैं कि हे प्रिय-पुत्र ! पूर्वकाल के बड़े गृहस्थ और बड़े श्रोत्रिय आचार्य सत्-चैतन्य को जानकर और त्रिवृत्करण को जानकर ऐसा कहते हैं कि हमारे वंश में कोई ऐसा नहीं हुआ है जिसने उसको न सुना हो, न समझा हो, न जाना हो और न अनुभव किया हो । हे सौम्य ! हमारे लिये अब कोई वस्तु ऐसी नहीं है जो सुनने योग्य, समझने योग्य और जानने योग्य बाकी रही हो । वे हमारे पूर्वज लोग त्रिवृत्करण के रूपों को जानकर सब कुछ जानते भये । अब जो कोई हैं उन्होंने भी उन्हीं पूर्वज आचार्यों करके ही सब वस्तु को जाना है ॥ ५ ॥

मूलम् ।

यदु रोहितमिवाभूदिति तेजसस्तद्रूपमिति तद्विदाञ्चक्रुर्यदु शुक्लमिवाभूदित्यपाᳬरूपमिति तद्विदाञ्चक्रुर्यदु कृष्णमिवाभूदित्यन्नस्य रूपमिति तद्विदाञ्चक्रुः ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ।

यत्, उ, रोहितम्, इव, अभूत्, इति, तेजसः, तत्, रूपम्, इति, तत्, विदाञ्चक्रुः, यत्, उ, शुक्लम्, इव, अभूत्, इति, अपाम्, रूपम्, इति, तत्, विदाञ्चक्रुः, यत्, उ, कृष्णम्, इव, अभूत्, इति, अन्नस्य, रूपम, इति, तत्, विदाञ्चक्रुः ॥

अन्वयः	पदार्थ
यत्=जो	
रोहितम्=लाल	
इव=सा	
रूपम्=रूप	
अभूत्=होता भया	
तत्=वह	
इति=निश्चय करके	
तेजसः=अग्नि का है	
इति=ऐसा	
तत् (ते)=वे आचार्य	
विदाञ्चक्रुः=जानते भये	
उ=और	
यत्=जो	
शुक्लम्=श्वेत	
रूपम्=रूप	
इव=सा	
अभूत्=होता भया	
तत्=वह	
इति=निश्चय करके	
अपाम्=जल का है	
इति=ऐसा	
विदाञ्चक्रुः=जानते भये	
उ=और	
यत्=जो	
कृष्णम्=श्याम	
रूपम्=रूप	
इव=सा	
अभूत्=होता भया	
तत्=वह	
इति=निश्चय करके	
अन्नस्य=अन्न अर्थात् पृथ्वी का है	
इति=ऐसा	
तत् (ते)=वे आचार्य	
उ=निस्सन्देह	
विदाञ्चक्रुः=जानते भये	

भावार्थ ।

हे प्रियपुत्र ! हमारे कुल के विद्वान् वृद्धों ने एकत्र हो करके पदार्थ देखने के पश्चात् विचार करके निश्चय किया कि इसमें जो लाल-रूप दीखता है वह अग्नि का है, जो श्वेतरूप है वह जल का है, और जो श्यामरूप है वह पृथ्वी का है, अगर इन तीनों रूपों को अलग करके पदार्थ देखा जाय तो उसका कहीं पता नहीं । ये तीनों तत्त्व अर्थात् अग्नि, जल और पृथ्वी अभिन्ननिमित्त उपादानकारण करके सत् चैतन्य के कार्य होने से तद्रूप ही हैं, इसलिये सत्चैतन्य परमात्मा से पृथक् किसी वस्तु की सत्ता नहीं है, उसको जानकर सब पदार्थ वही रूप जाना जाता है ॥ ६ ॥

मूलम् ।

यद्वविज्ञातमिवाभूदित्येतासामेव देवतानाꣳ समास इति तद्विदाञ्चक्रुर्यथा खलु नु सोम्येमास्तिस्रो देवताः पुरुषं प्राप्य त्रिवृत्त्रिवृदेकैका भवति तन्मे विजानीहीति ॥ ७ ॥

इति चतुर्थः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

यत्, उ, अविज्ञातम्, इव, अभूत्, इति, एतासाम्, एव, देवतानाम्, समासः, इति, तत्, विदाञ्चक्रुः, यथा, खलु नु, सौम्य, इमाः, तिस्रः, देवताः, पुरुषम्, प्राप्य, त्रिवृत्, त्रिवृत्, एकैका, भवति, तत्, मे, विजानीहि, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
उ	और
यत्	जो
अविज्ञातम्	अति सूक्ष्म अर्थात् बुद्धि का अविषय
इव	ऐसा
अभूत्	होता भया
तत्	वह
एतासाम्	इन
एव	ही
देवतानाम्	देवताओं का अर्थात् अग्नि, जल, पृथ्वी का
समासः	समुदाय है
इति	इस प्रकार
+ते	वे वृद्ध आचार्य
विदाञ्चक्रुः	जानते भये
सौम्य	हे प्रियपुत्र !
यथा	जिस प्रकार
खलु नु	निश्चय करके
इमाः	ये
तिस्रः	तीनों
देवताः	देवता अग्नि, जल, पृथ्वी
पुरुषम्	चेतन देव को
प्राप्य	प्राप्त होकर
त्रिवृत्	तीन
त्रिवृत्	तीन विभाग
इति	हो करके
एकैका	एक एक
भवति	होते हैं
तत्	उसको
मे	मुझसे
इति	इस प्रकार
विजानीहि	तू जान

भावार्थ ।

हे श्वेतकेतो ! जो कुछ कि अतिसूक्ष्म होने के कारण हमारे ज्येष्ठ श्रेष्ठ पितामह ने नहीं समझा उसके निमित्त जान लिया कि वह इन्हीं तीनों देवताओं अर्थात् अग्नि, जल और पृथ्वी के मेल से है, अर्थात् उनसे पृथक् इसकी कोई सत्ता नहीं है और जिस प्रकार अग्नि, जल तथा पृथ्वी से हस्तपादवाला शरीर उत्पन्न होकर चैतन्य-देव को प्राप्त हुआ है । उस मिले हुए त्रिवृत्करण विभागों के हर एक भाग को अब मुझसे तू जान ॥ ७ ॥

इति चतुर्थः खण्डः ।

अथ षष्ठाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः ।

मूलम् ।

अन्नमशितं त्रेधा विधीयते तस्य यः स्थविष्ठो धातुस्तत्पुरीषं भवति यो मध्यमस्तन्माᳫँसं योऽणिष्ठस्तन्मनः ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

अन्नम्, अशितम्, त्रेधा, विधीयते, तस्य, यः, स्थविष्ठः, धातुः, तत्, पुरीषम्, भवति, यः, मध्यमः, तत्, मांसम्, यः, अणिष्ठः, तत्, मनः ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अशितम्	भोजन किया हुआ	स्थविष्ठः	स्थूल
अन्नम्	अन्न	धातुः	भाग है
त्रेधा	तीन भाग में	तत्	वह
विधीयते	विभाग किया जाता है	पुरीषम्	पुरीष
तस्य	उस अन्न का	भवति	होता है
यः	जो	यः	जो
		मध्यमः	मध्यभाग है

तत्=वह	अणिष्ठः=सूक्ष्मभाग है
मांसम्=मांस होता है	तत्=वह
+ च=और	मनः=मन
यः=जो	+ भवति=होता है

भावार्थ ।

हे पुत्र ! जो जीवों करके अन्न भोजन किया जाता है, उसके तीन विभाग होते हैं। उसमें से जो स्थूलभाग है उसका पुरीष बनता है, जो मध्यमभाग है उसका मांस बनता है और जो सूक्ष्मभाग है उसका मन होता है ॥ १ ॥

मूलम् ।

आपः पीतास्त्रेधा विधीयन्ते तासां यः स्थविष्ठो धातुस्तन्मूत्रं भवति यो मध्यमस्तल्लोहितं योऽणिष्ठः स प्राणः ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

आपः, पीताः, त्रेधा, विधीयन्ते, तासाम्, यः, स्थविष्ठः, धातुः, तत्, मूत्रम्, भवति, यः, मध्यमः, तत्, लोहितम, यः, अणिष्ठः, सः, प्राणः ॥

अन्वयः पदार्थ	अन्वयः पदार्थ
पीताः=पिये हुए	भवति=होता है
आपः=जल	यः=जो
त्रेधा=तीन भाग में	मध्यमः=मध्यम है
विधीयन्ते=विभाग होते हैं	तत्= वह
तासाम्=उनमें से	लोहितम्=रक्त होता है
यः=जो	यः=जो
स्थविष्ठः=स्थूल	अणिष्ठः=सूक्ष्म है
धातुः=भाग है	सः=वह
तत्=वह	प्राणः=प्राण
मूत्रम्=मूत्र	+ भवति=होता है

भावार्थ ।

हे पुत्र ! जीवों करके पिये हुए जल के तीन भाग होते हैं, उसमें जो स्थूलभाग है उसका मूत्र बनता है, जो मध्यमभाग है उसका रक्त बनता है और जो सूक्ष्मभाग है उसका प्राण होता है ॥ २ ॥

मूलम् ।

तेजोऽशितं त्रेधा विधीयते तस्य यः स्थविष्ठो धातुस्तदस्थि भवति यो मध्यमः स मज्जा योऽणिष्ठः सा वाक् ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

तेजः, अशितम्, त्रेधा, विधीयते, तस्य, यः, स्थविष्ठः, धातुः, तत्, अस्थि, भवति, यः, मध्यमः, सः, मज्जा, यः, अणिष्ठः, सा, वाक् ॥

अन्वयः **पदार्थ**

अशितम्=खाया हुआ
तेजः=तेज अर्थात् घृत, तेल आदि
त्रेधा=तीन भाग में
विधीयते=विभाग होता है
तस्य=उसका
यः=जो
स्थविष्ठः=स्थूल
धातुः=भाग है
तत्=वह
अस्थि=हड्डी
भवति=होती है
यः=जो
मध्यमः=मध्यमभाग है
सः=वह
मज्जा=मज्जा होती है
यः=जो
अणिष्ठः=सूक्ष्मभाग है
सा=वह
वाक्=वाक् इन्द्रिय
+ भवति=होती है

भावार्थ ।

हे पुत्र ! खाये हुए उद्दीपन घृत, तैलादि वस्तु के भी तीन भाग होते हैं । उसके स्थूलभाग से हड्डी बनती है, मध्यमभाग से मज्जा बनती है और सूक्ष्मभाग से वाक् इन्द्रिय होती है ॥ ३ ॥

मूलम् ।

अन्नमयꣳहि सौम्य मन आपोमयः प्राणस्तेजोमयी वागिति भूय एव मा भगवान्विज्ञापयत्विति तथा सौम्येति होवाच ॥ ४ ॥

इति पञ्चमः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

अन्नमयम्, हि, सौम्य, मनः, आपोमयः, प्राणः, तेजोमयी, वाक्, इति, भूयः, एव, मा, भगवान्, विज्ञापयतु, इति, तथा, सौम्य, इति, ह, उवाच ॥

अन्वयः पदार्थ	अन्वयः पदार्थ
सौम्य=हे प्रियदर्शन !	भूयः=फिर
अन्नमयम्=अन्नमय	इति=इसको
हि=निश्चय करके	एव=ही
मनः=मन है	मा (माम्)=मुझसे
आपोमयः=जलमय	विज्ञापयतु=कहें
प्राणः=प्राण है	इति=यह
तेजोमयी=अग्निमय	+ श्रुत्वा=सुनकर
वाक्=वाणी है	सौम्य=हे प्रियपुत्र !
इति=यह	तथा=बहुत अच्छा
+ श्रुत्वा=सुनकर	इति=ऐसा
+ श्वेतकेतुः=श्वेतकेतु ने	+ उद्दालकः=उद्दालक ने
+ उवाच=कहा कि	ह=स्पष्ट
भगवान्=आप	उवाच=कहा

भावार्थ ।

हे प्रियदर्शन ! अन्न का सूक्ष्म अंश मन है, जल का प्राण है और अग्नि का वाणी है । यह उपदेश अतिप्रिय लगने तथा अच्छी तरह न समझने के कारण श्वेतकेतु अपने पिता उद्दालक ऋषि से

कहता है कि हे प्रभो ! आप इसी को फिर सविस्तार कहें। उद्दालक ऋषि ने कहा कि बहुत अच्छा, सुनो कहता हूं ॥ ४ ॥

इति पञ्चमः खण्डः ।

अथ षष्ठाध्यायस्य षष्ठः खण्डः ।

मूलम् ।

दध्नः सौम्य मथ्यमानस्य योऽणिमा स ऊर्ध्वः समुदीषति तत्सर्पिर्भवति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

दध्नः, सौम्य, मथ्यमानस्य, यः, अणिमा, सः, ऊर्ध्वः, सम्, उत्, ईषति, तत्, सर्पिः, भवति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
सौम्य	हे प्रियदर्शन !	ऊर्ध्वः	ऊपर
मथ्यमानस्य	मथे जाते हुए	समुदीषति	निकल आता है
दध्नः	दही का	+ च	और
यः	जो	तत्	वही
अणिमा	सूक्ष्मभाग है	सर्पिः	घी
सः	वह	भवति	होता है

भावार्थ ।

हे प्रियदर्शन ! दही के मथने से जो उसका सूक्ष्म अंश ऊपर निकल आता है वही घी कहलाता है ॥ १ ॥

मूलम् ।

एवमेव खलु सौम्यान्नस्याश्यमानस्य योऽणिमा स ऊर्ध्वः समुदीषति तन्मनो भवति ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

एवम्, एव, खलु, सौम्य, अन्नस्य, अश्यमानस्य, यः, अणिमा, सः, ऊर्ध्वः, सम्, उत, ईषति, तत्, मनः, भवति ।

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
सौम्य=हे प्रियपुत्र !		ऊर्ध्वः=ऊपर	
एवम्=इसी प्रकार		समुदीषति=उठता है	
एव=निश्चय करके		+ च=और	
अश्यमानस्य=खाये हुए		तत्=वह	
अन्नस्य=अन्न का		खलु=ही	
यः=जो		मनः=मन	
अणिमा=सूक्ष्म अंश है		भवति=होता है	
सः=वह			

भावार्थ ।

हे प्रियपुत्र ! इसी प्रकार खाये हुए अन्न का जो सूक्ष्म अंश ऊपर उठ आता है वही मन होता है ॥ २ ॥

मूलम् ।

अपाᳬ सौम्य पीयमानां योऽणिमा स ऊर्ध्वः समुदीषति स प्राणो भवति ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

अपाम्, सौम्य, पीयमानाम्, यः, अणिमा, सः, ऊर्ध्वः, सम्, उत्, ईषति, सः, प्राणः, भवति ।

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
सौम्य=हे प्रियदर्शन !		ऊर्ध्वः=ऊपर को	
पीयमानाम्=पान किये हुए		समुदीषति=प्राप्त होता है	
अपाम्=जल का		+ च=और	
यः=जो		सः=वही	
अणिमा=सूक्ष्मभाग है		प्राणः=प्राण	
सः=वह		भवति=होता है	

भावार्थ ।

हे प्रियदर्शन ! पिये हुए जल का जो सूक्ष्म भाग ऊर्ध्व को जाता है वही प्राण होता है ॥ ३ ॥

मूलम् ।

तेजसः सौम्याश्यमानस्य योऽणिमा स ऊर्ध्वः समुदीषति सा वाग्भवति ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

तेजसः, सौम्य, अश्यमानस्य, यः, अणिमा, सः, ऊर्ध्वः, सम्, उत्, ईषति, सा, वाक्, भवति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
सौम्य	हे प्रियदर्शन !	ऊर्ध्वः	ऊपर को
अश्यमानस्य	खाये हुए	समुदीषति	प्राप्त होता है
तेजसः	तेज अर्थात् घृत तैलादि का	+ च	और
यः	जो	सा	वही
अणिमा	सूक्ष्म भाग है	वाक्	वाणी
सः	वह	भवति	होती है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! खाये हुए घृत तैलादिकों का जो सूक्ष्म अंश ऊपर को प्राप्त होता है उसी की वाणी होती है ॥ ४ ॥

मूलम् ।

अन्नमयꣳहि सौम्य मन आपोमयः प्राणस्तेजोमयी वागिति भूय एव मा भगवान् विज्ञापयत्विति तथा सौम्येति होवाच ॥ ५ ॥

इति षष्ठः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

अन्नमयम्, हि, सौम्य, मनः, आपोमयः, प्राणः, तेजोमयी, वाक्, इति, भूयः, एव, मा, भगवान्, विज्ञापयतु, इति, तथा, सौम्य, इति, ह, उवाच ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
सौम्य=हे प्रियदर्शन !		भूयः=फिर	
हि=निश्चय करके		इति=इसको	
अन्नमयम्=अन्नमय		एव=ही	
मनः=मन है		मा (माम्)=मुझसे	
आपोमयः=जलमय		विज्ञापयतु=कहें	
प्राणः=प्राण है		इति=ऐसा	
तेजोमयी=अग्निमय		+ श्रुत्वा=सुनकर	
वाक्=वाणी है		+ पिता=उद्दालक पिता	
इति=यह		सौम्य=हे प्रियदर्शन !	
+ श्रुत्वा=सुनकर		तथा=तथास्तु	
+ श्वेतकेतुः=श्वेतकेतु ने		इति=ऐसा	
+ उवाच=कहा कि		ह=स्पष्ट	
भगवान्=हे पिता ! आप		उवाच=कहता भया	

भावार्थ ।

हे प्रियदर्शन ! अन्न का सूक्ष्म अंश मन है, जल का प्राण है और अग्नि का वाणी है । ऐसा सुनकर श्वेतकेतु ने कहा कि हे प्रभो ! आप इसी को फिर सविस्तार कहें । उद्दालक ने कहा कि अच्छा सुनो, कहता हूं ॥ ५ ॥

इति षष्ठः खण्डः ।

अथ षष्ठाध्यायस्य सप्तमः खण्डः ।

मूलम् ।

षोडशकलः सौम्य पुरुषः पञ्चदशाहानि माशीः काममपः पिबापोमयः प्राणो न पिबतो विच्छे-त्स्यत इति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

षोडशकलः, सौम्य, पुरुषः, पञ्चदश, अहानि, मा, आशीः, कामम्, अपः, पिब, आपोमयः, प्राणः, न, पिबतः, विच्छेत्स्यते, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
सौम्य	हे प्रियपुत्र !
षोडशकलः	सोलह कलायुक्त
पुरुषः	पुरुष है
+ अतः	इसलिये
पञ्चदश	पन्द्रह
अहानि	दिन तक
मा	मत
आशीः	भोजन कर
अपः	जल को

अन्वयः	पदार्थ
कामम्	यथेच्छित
पिब	पीता रह
आपोमयः	जलमय
प्राणः	प्राण है
इति	इस कारण
पिबतः	जलपीते हुए पुरुषका
+ प्राणः	प्राण
न	नहीं
विच्छेत्स्यते	पृथक् होता है

भावार्थ ।

उद्दालक ऋषि कहते हैं कि हे पुत्र ! एक दिवस भोजन किये हुए अन्न का जो सूक्ष्म अंश है सोई मन की एक कलाशक्ति है, जब यह पुरुष षोडश दिन भोजन करता है तब सोलह अंश से युक्त हुआ मन षोडश कलावाला कहलाता है, उस मन से युक्त हुआ पुरुष सब काम के करने में समर्थ होता है । इस बात के निश्चय करने के लिये कि विना अन्न के खाये हुए मन शक्तिहीन हो जाता है और मन के शक्तिहीन होने से पुरुष भी शक्तिहीन हो जाता है । हे प्रियपुत्र ! तुम पन्द्रह दिन तक भोजन मत करो, केवल जल प्राणरक्षार्थ पिया करो, क्योंकि प्राण जल का सूक्ष्म अंश है । जब तक पुरुष जल पिया करता है, तब तक उसका प्राण उससे पृथक् नहीं होता है ॥ १ ॥

मूलम् ।

स ह पञ्चदशाहानि नाशाथ हैनमुपससाद किं ब्रवीमि भो इत्यृचः सौम्य यजूꣳषि सामानीति स होवाच न वै मा प्रतिभान्ति भो इति ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

सः, ह, पञ्चदश, अहानि, न, आशाथ, ह, एनम्, उप, ससाद, किम्, ब्रवीमि, भोः, इति, ऋचः, सौम्य, यजूंपि, सामानि, इति, सः, ह, उवाच, न, वै, मा, प्रतिभान्ति, भोः, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
सः ह	वह श्वेतकेतु	+ पिता	पिता ने
पञ्चदश	पन्द्रह	+ उवाच	कहा कि
अहानि	दिन तक	सौम्य	हे प्रियपुत्र !
न	नहीं	ऋचः	ऋग्वेद
आशाथ	भोजन करता भया	यजूंपि	यजुर्वेद
+ ततः	तत्पश्चात्	सामानि	सामवेद के मंत्रों को
एनम्	उस अपने पिता	+ ब्रूहि	पढ़
+ उद्दालकम्	उद्दालक के पास	इति	ऐसा
उपससाद	जाता भया	+ श्रुत्वा	सुनकर
ह	और	सः	उस श्वेतकेतु ने
इति	ऐसा	उवाच	कहा कि
+ उवाच	कहता भया कि	भोः	हे पिता !
भोः	हे पिता !	वै	निश्चय करके
किम्	क्या मैं	मा	मुझको
ब्रवीमि	कहूं	+ तानि	वे मंत्र
इति	ऐसा	न	नहीं
+ श्रुत्वा	सुनकर	प्रतिभान्ति	स्मरण आते हैं

भावार्थ ।

हे सौम्य ! अपने पिता की आज्ञानुसार श्वेतकेतु ने पन्द्रह दिन तक भोजन नहीं किया और फिर अपने पिता के पास जाकर कहा कि अब मैं क्या कहूं ? ऐसा सुनकर उसके पिता ने कहा कि हे पुत्र ! तू ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद के मंत्रों को पढ़ । उसने उत्तर दिया कि हे पिता ! भोजन न करने से मन की दुर्बलता के कारण वे मंत्र मुझको नहीं याद आते हैं ॥ २ ॥

मूलम् ।

तꣳ होवाच यथा सौम्य महतोऽभ्याहितस्यैकोऽङ्गारः खद्योतमात्रः परिशिष्टः स्यात्तेन ततोऽपि न बहु दहे-देवꣳ सौम्य ते षोडशानां कलानामेका कलातिशिष्टा स्यात्तयैतर्हि वेदान्नानुभवस्यशानाथ मे विज्ञास्यसीति ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

तम्, ह, उवाच, यथा, सौम्य, महतः, अभ्याहितस्य, एकः, अङ्गारः, खद्योतमात्रः, परिशिष्टः, स्यात्, तेन, ततः, अपि, न, बहु, दहेत्, एवम्, सौम्य, ते, षोडशानाम्, कलानाम्, एका, कला, अतिशिष्टा, स्यात्, तया, एतर्हि, वेदान्, न, अनुभवसि, अशान, अथ, मे, विज्ञास्यसि, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
+ पिता	उद्दालक पिता
तम्	उस श्वेतकेतु से
इति	ऐसा
ह	स्पष्ट
उवाच	कहता भया कि
सौम्य	हे प्रियपुत्र !
यथा	जिस प्रकार
महतः	बड़ी
अभ्याहितस्य	प्रज्वलित
+ अग्नेः	अग्नि की
एकः	एक
अङ्गारः	चिनगारी
खद्योतमात्रः	जुगुनूमात्र
परिशिष्टः	शेष
अपि	भी
स्यात्	रह जावे
ततः	तो
तेन	उस करके
बहु	बहुत सा ईंधन
न	नहीं
दहेत्	जल सकता है
सौम्य	हे सौम्य !
एवम्	इसी प्रकार
ते	तुम्हारे मन की
षोडशानाम्	सोलह
कलानाम्	कलाओं में से
एका	एक
कला	कला
अतिशिष्टा	शेष
स्यात्	रह गई है
तया	उस एक कला से
एतर्हि	इस समय

वेदान्=वेदों को	+ अन्नम्=अन्न को
न=नहीं	अशान=खा
अनुभवसि=अनुभव कर सकता	+ ततः=तत्पश्चात्
है तू	मे=मेरे
अथ=अब	+ वचनम्=उपदेश को
+ त्वम्=तू	विज्ञास्यसि=ठीक ठीक समझेगा

भावार्थ ।

हे सौम्य ! उद्दालकऋषि अपने पुत्र श्वेतकेतु से कहते हैं कि हे प्रियपुत्र ! जिस प्रकार ईंधन करके प्रज्वलित अग्नि की समाप्ति होने पर एक चिनगारी जुगनू की तरह शेष रहजाती है और वह चिनगारी बहुत से ईंधन के जलाने में असमर्थ होती है इसी प्रकार हे पुत्र ! तुम्हारे मन की पन्द्रह कला अन्न के न खाने से नष्ट हो गई हैं, केवल एक कला रहगई है, सो उस करके वेदों का अनुभव तू नहीं कर सकता है । अब थोड़ा थोड़ा अन्न क्रमशः प्रतिदिन खाया कर, फिर मेरे उपदेश को ठीक ठीक समझेगा ॥ ३ ॥

मूलम् ।

स हाशाथ हैनमुपससाद तꣳ ह यत्किञ्च पप्रच्छ सर्वꣳ ह प्रतिपेदे ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

सः, ह, आशाथ, ह, एनम्, उपससाद, तम्, ह, यत्, किञ्च, पप्रच्छ, सर्वम्, ह, प्रतिपेदे ॥

अन्वयः पदार्थ	अन्वयः पदार्थ
+ अथ=तत्पश्चात्	+ च=और
सः=वह श्वेतकेतु	एनम्=अपने पिता के समीप
ह=भलीप्रकार	उपससाद=प्राप्त हुआ
+ अन्नम्=अन्न को	+ तदा=तब
आशाथ=खाता भया	

तम्=उस श्वेतकेतु से	+ तत्=उस
यत्=जो	सर्वम्=सबको
किञ्च=कुछ वेदादि विषयक	ह=स्पष्ट
पप्रच्छ=पूछागया	प्रतिपेदे=उसने कह सुनाया

भावार्थ ।

हे सौम्य ! वह श्वेतकेतु अपने पिता उद्दालक ऋषि की आज्ञानुसार क्रमशः पन्द्रह दिन तक थोड़ा थोड़ा अन्न खाता रहा और फिर अपने पिता के पास गया । तब जो कुछ उद्दालक ऋषि ने अपने पुत्र श्वेतकेतु से वेदादिविषयक प्रश्न किये उन सबका उसने ठीक ठीक उत्तर दिया ॥ ४ ॥

मूलम् ।

तꣳ होवाच यथा सौम्य महतोऽभ्याहितस्यैकमङ्गारं खद्योतमात्रं परिशिष्टं तं तृणैरुपसमाधाय प्रज्वालयेत्तेन ततोऽपि बहु दहेत् ॥ ५ ॥ *

पदच्छेदः ।

तम्, ह, उवाच, यथा, सौम्य, महतः, अभ्याहितस्य, एकम्, अङ्गारम्, खद्योतमात्रम्, परिशिष्टम्, तम्, तृणैः, उपसमाधाय, प्रज्वालयेत्, तेन, ततः, अपि, बहु, दहेत् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
+ पिता	उद्दालक ऋषि ने	अभ्याहितस्य	प्रज्वलित
तम्	उस श्वेतकेतु से	+ अग्नेः	अग्नि की
ह	स्पष्ट	तम्	उस
उवाच	कहा कि	एकम्	एक
सौम्य	हे प्रियपुत्र	खद्योतमात्रम्	जुगुनूमात्र
यथा	जिस प्रकार	परिशिष्टम्	बची हुई
महतः	बड़ी	अङ्गारम्	चिनगारी को

* इस मन्त्रका सम्बन्ध अगले मन्त्र से है ।

तृणैः=तिनकों से	ततः=उससे
उपसमाधाय=आच्छादन करके	बहु=अधिक ईंधन
प्रज्वालयेत्=प्रज्वलित करे	अपि=भी
+ तर्हि=तो	दहेत्=जल जाता है
तेन=उस चिनगारी करके	

भावार्थ ।

हे सौम्य ! उद्दालक ऋषि अपने पुत्र श्वेतकेतु से कहते हैं कि हे प्रियपुत्र ! जिस प्रकार बड़ी प्रज्वलित अग्नि की शेष एक चिनगारी जुगनूमात्र रह जाती है और घास पाकर प्रज्वलित हुई अपने से बड़े ईंधन को जला देती है ॥ ५ ॥

मूलम् ।

एवꣳ सौम्य ते षोडशानां कलानामेका कलातिशिष्टाभूत् साऽन्नेनोपसमाहिता प्राज्वालीत्तयैतर्हि वेदाननुभवस्यन्नमयꣳ हि सौम्य मन आपोमयः प्राणस्तेजोमयी वागिति तद्धास्य विजज्ञाविति विजज्ञाविति ॥ ६ ॥

इति सप्तमः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

एवम्, सौम्य, ते, षोडशानाम्, कलानाम्, एका, कला, अतिशिष्टा, अभूत्, सा, अन्नेन, उपसमाहिता, प्राज्वालीत्, तया, एतर्हि, वेदान् , अनुभवसि, अन्नमयम्, हि, सौम्य, मनः, आपोमयः, प्राणः, तेजोमयी, वाक्, इति, तत्, ह, अस्य, विजज्ञौ, इति, विजज्ञौ, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
सौम्य=हे प्रियदर्शन !		ते=तेरे मन की	
एवम्=इसी प्रकार		षोडशानाम्=सोलह	

कलानाम्=कलाओं में से
एका=एक
कला=कला
अतिशिष्टा=शेष
अभूत्=रह गई थी
सा=वह
+ एव=ही
अन्नेन=अन्न करके
उपसमाहिता=बढ़ी हुई
प्राज्वालीत्=प्रज्वलित है
तया=उसी करके
एतर्हि=इन
वेदान्=वेदों को
अनुभवसि=तू अब अनुभव करता है
हि=क्योंकि
सौम्य=हे प्रियपुत्र !
अन्नमयम्=अन्नमय
हि=निश्चय करके
मनः=मन है
आपोमयः=जलमय
प्राणः=प्राण है
तेजोमयी=अग्निमय
वाक्=वाणी है
इति=इस प्रकार
अस्य=इस अपने पिता के
तत्=उपदेश को
+ सः=वह (श्वेतकेतु)
विजज्ञौ=मानता भया
इति=ऐसा
विजज्ञौ=मानता भया

भावार्थ ।

उसी प्रकार हे प्रियपुत्र ! तेरे मन की सोलह कलाओं में से एक कला जो शेष रह गई थी वही अन्न करके बढ़ी हुई प्रकाशमान हो गई है । उसी करके तू सब वेदों को अब अनुभव करता है अर्थात् उनको पढ़ता है और समझता है, क्योंकि हे पुत्र ! मन अन्न का सूक्ष्म अंश है, प्राण जल का सूक्ष्म अंश है और वाणी अग्नि का सूक्ष्म अंश है । इस प्रकार श्वेतकेतु अपने पिता उद्दालकऋषि का उपदेश मानता भया ।

उद्दालकऋषि चन्द्रमा का दृष्टान्त देकर अपने पुत्र श्वेतकेतु को समझाते हैं कि हे सौम्य ! जैसे चन्द्रमा कृष्णपक्ष में एक एक कला प्रतिदिन घटने से पन्द्रहवें दिन एक कलावाला रह जाता है और वह वस्तु के प्रकाश करने में असमर्थ हो जाता है परन्तु जब शुक्लपक्ष

आता है तब उसकी प्रतिदिन एक एक कला बढ़ती है और पूर्णिमा की रात्रि में वह चन्द्रमा षोडशकलायुक्त होकर सब पदार्थों के भली-प्रकार प्रकाशने में समर्थ होता है; इसी प्रकार हे पुत्र ! जब तैंने पन्द्रह दिन तक अन्न नहीं खाया, तब तेरे मन की केवल एक कला शेष रह गई थी और वह वेदादिकों के ग्रहण करने में असमर्थ हो गइ थी, परन्तु जब तू थोड़ा थोड़ा अन्न पन्द्रह दिन तक खाता रहा, तब तेरा मन सोलह कलाओं से युक्त होकर वेदादिकों के पढ़ने और समझने में समर्थ हो गया । इस अपने पिता के उपदेश को कि मन का अन्नमयत्व, प्राण का जलमयत्व और वाणी का अग्निमयत्व जो पिता ने कहा है, सो ठीक है ऐसा मान गया ॥ ६ ॥

इति सप्तमः खण्डः ।

अथ षष्ठाध्यायस्याष्टमः खण्डः ।

मूलम् ।

उद्दालको हारुणिः श्वेतकेतुं पुत्रमुवाच स्वप्नान्तं मे सौम्य विजानीहीति यत्रैतत्पुरुषः स्वपिति नाम सता सौम्य तदा सम्पन्नो भवति स्वमपीतो भवति तस्मा-देनꣳ स्वपितीत्याचक्षते स्वꣳ ह्यपीतो भवति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

उद्दालकः, ह, आरुणिः, श्वेतकेतुम्, पुत्रम्, उवाच, स्वप्नान्तम्, मे, सौम्य, विजानीहि, इति, यत्र, एतत्, पुरुषः, स्वपिति, नाम, सता, सौम्य, तदा, सम्पन्नः, भवति, स्वम्, अपीतः, भवति, तस्मात्, एनम्, स्वपिति, इति, आचक्षते, स्वम्, हि, अपीतः, भवति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
आरुणिः=अरुण का पुत्र		पुत्रम्=अपने पुत्र	
उद्दालकः=उद्दालक ऋषि		श्वेतकेतुम्=श्वेतकेतु से	

इति=इस प्रकार
ह=निश्चयपूर्वक
उवाच=कहता भया कि
सौम्य=हे प्रियपुत्र !
स्वप्नान्तम्=स्वप्न के अन्त विषे
सुषुप्ति को
मे=मुझसे
विजानीहि=जान तू
यत्र=जिसमें
एतत्=यह
पुरुषः=पुरुष
स्वपिति=सोता है
+ च=और
+ सः=वह
+ यदा=जब
+ इति=ऐसा
नाम=होता है
तदा=तब
सौम्य=हे प्रियदर्शन !
सता=सत्परमात्मा से
सम्पन्नः=संयुक्त
भवति=होता है (अर्थात्)
स्वम्=अपने स्वरूप में
अपीतः=लय
भवति=हो जाता है
तस्मात्=इसी कारण
एनम्=इसको
स्वपिति=यह सोता है
इति=ऐसा लोग
आचक्षते=कहते हैं
हि=क्योंकि
+ सः=वह जीवात्मा
स्वम्=अपने स्वरूप को
अपीतः=प्राप्त
भवति=हो जाता है

भावार्थ ।

अरुण का पुत्र उद्दालक ऋषि अपने पुत्र श्वेतकेतु से कहता है कि हे प्रियपुत्र ! स्वप्न के पश्चात् सुषुप्ति आती है, इसमें यह पुरुष अर्थात् जीवात्मा विश्राम करता है, तब वह अपने सच्चिदानन्द परमात्मा को अर्थात् अपने वास्तविक रूप को प्राप्त हो जाता है और तभी उसको लोग कहते हैं कि यह सोता है; क्योंकि जीवात्मा अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है । माया और उसके साथ चेतन और उसमें चेतन का आभास ये तीनों मिलकर ईश्वरसंज्ञा कहलाता है । अन्तःकरण-विशिष्ट चेतन और उसमें चेतन का आभास जीवसंज्ञा कहलाता है । यदि जीव की उपाधि अन्तःकरण से पृथक् कर दी जाय और ईश्वर की उपाधि माया अलग कर दी जाय तो जीव का चेतनभाग

और ईश्वर का चेतनभाग दोनों एक ही होते हैं अर्थात् जो चेतन जीव का है वही चेतन ईश्वर का है । जैसे चेतन व्यापक है वैसे माया भी व्यापक है; क्योंकि चेतन व्यापक माया में व्याप्त है और अन्तःकरण मलिन माया अर्थात् अविद्या का कार्य है और जो चैतन्य आत्मा सुषुप्ति अर्थात् कारण शरीर में स्थित है, वही स्वप्न में अर्थात् सूक्ष्म शरीर में स्थित है । जब जीव जाग्रत् तथा स्वप्न अवस्था के व्यवहारों से पृथक् हो जाता है तब विश्रामनिमित्त सुषुप्ति अवस्था को लौट जाता है और वहां मनादिक कर्मों के संस्कारों को लेकर लय हो जाता है । इसलिये जीव का चैतन्यभाग अपने वास्तविक चैतन्य अर्थात् ब्रह्म में प्राप्त हो जाता है और तब वह आनन्दभुक् कहलाता है अर्थात् उस अवस्था में यह न कर्ता है और न भोक्ता है ॥ १ ॥

मूलम् ।

स यथा शकुनिः सूत्रेण प्रबद्धो दिशं दिशं पतित्वा-न्यत्रायतनमलब्ध्वा बन्धनमेवोपश्रयत एवमेव खलु सौम्य तन्मनो दिशं दिशं पतित्वान्यत्रायतनमलब्ध्वा प्राणमेवोपाश्रयते प्राणबन्धनꣳ हि सौम्य मन इति ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

सः, यथा, शकुनिः, सूत्रेण, प्रबद्धः, दिशम्, दिशम्, पतित्वा, अन्यत्र, आयतनम्, अलब्ध्वा, बन्धनम्, एव, उपश्रयते, एवम्, एष, खलु, सौम्य, तत्, मनः, दिशम्, दिशम्, पतित्वा, अन्यत्र, आयतनम्, अलब्ध्वा, प्राणम्, एव, उपाश्रयते, प्राणबन्धनम्, हि, सौम्य, मनः, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
सौम्य	हे प्रियदर्शन !
यथा	जिस प्रकार
सूत्रेण	सूत से
प्रबद्धः	बँधा हुआ
सः	वह
शकुनिः	पक्षी
दिशम् दिशम्	चारों ओर
पतित्वा	घूम फिर करके
अन्यत्र	दूसरी जगह
आयतनम्	बैठने के लिये स्थान को
अलब्ध्वा	न पाकर
बन्धनम्	बँधे हुए का
एव	ही
उपाश्रयते	आश्रय लेता है
एवम्	इसी प्रकार
सौम्य	हे प्रियपुत्र !
तत्	वह
मनः	मन
एव	भी
दिशम् दिशम्	चारों ओर
पतित्वा	घूम फिर करके
अन्यत्र	दूसरी जगह
आयतनम्	विश्राम अर्थात् निमित्तस्थान को
अलब्ध्वा	न पाकर
प्राणम्	प्राण अर्थात् ब्रह्म का
एव	ही
उपाश्रयते	आश्रय लेता है
हि	क्योंकि
मनः	मन अर्थात् जीव का
खलु	निश्चय करके
इति	यह
प्राणबन्धनम्	प्राण अर्थात् ब्रह्म ही ठहरने की जगह है

भावार्थ ।

हे प्रियदर्शन ! जिस तरह सूत से बांधा हुआ पक्षी चारों तरफ इधर उधर घूमकर मनुष्य के हाथ में स्थित अङ्गु पर आकर विश्राम के लिये आश्रय लेता है, उसी तरह हे कमललोचन ! वह मन अर्थात् मनविशिष्ट चेतन अपना जीवात्मा चारों ओर घूम घुमाकर और दूसरी जगह न ठहरकर प्राण अर्थात् प्राणउपहित चेतन अथवा ब्रह्म का सुषुप्ति में आश्रय लेता है, क्योंकि मन अर्थात् जीवात्मा के ठहरने की जगह निश्चय करके प्राणउपहित ब्रह्म ही है । तात्पर्य इस मन्त्र का यह है कि जीवात्मा जाग्रत् अवस्था में नेत्र में स्थित

होकर संसार के सब प्रपञ्चों को रचता है और उनका द्रष्टा भी होता है, उसी तरह स्वप्न अवस्था में कण्ठ बिषे स्थित होकर अपने शरीर के अन्दर ही सब प्रपञ्चों को रचता है और उनका द्रष्टा होता है और इसी प्रकार जब व्यवहार करते करते थक जाता है, तब सब प्रपञ्चों से अलग होकर, सुषुप्ति में अपने अधिष्ठान ब्रह्म के साथ विश्राम करने लगता है, फिर उस दशा में प्रपञ्च का कहीं पता नहीं लगता है केवल उसका संस्कार रह जाता है, वही संस्कार फिर जीव को बाहर लाकर पूर्ववत् बाह्याभ्यन्तर व्यवहारों में लगा देता है। हे पुत्र ! जैसे मनुष्य बुलबुल चिड़िया को पालते हैं और उसके पेड़ू में एक सूत बांध देते हैं और उसको एक लोहे के अड्डेपर बैठा देते हैं, वह इधर उधर कूद फांदकर उसी अड्डे पर आ बैठता है और विश्राम लेता है। उसी तरह हे प्यारे पुत्र ! इस जीवात्मा का अड्डा सुषुप्ति अवस्था में ब्रह्म है जोकि मनुष्य के अन्तःकरण बिषे स्थित है। उस अड्डे पर जीव स्वप्न और जाग्रत् के व्यवहारों से थकित होकर जा बैठता है और थोड़े काल तक पक्षीवत् आराम पाता है। वासनारूपी सूत जीव का बन्धन है, अगर यह वासना कट जाय तो जीव ब्रह्म को प्राप्त होकर वहीं लय हो जावे ॥ २ ॥

मूलम् ।

अशनापिपासे मे सौम्य विजानीहीति यत्रैतत्पुरुषोऽशिशिषति नामाप एव तदशितं नयते तद्यथा गोनायोऽश्वनायः पुरुषनाय इत्येवं तदप आचक्षतेऽशनायेति तत्रैतच्छुङ्गमुत्पतितꣳ सौम्य विजानीहि नेदममूलं भविष्यतीति ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

अशनापिपासे, मे, सौम्य, विजानीहि, इति, यत्र, एतत्, पुरुषः,

अशिशिषति, नाम, आपः, एव, तत्, अशितम्, नयते, तत्, यथा, गोनायः, अश्वनायः, पुरुषनायः, इति, एवम्, तत्, अपः, आचक्षते, अशनाय, इति, तत्र, एतत्, शुङ्गम्, उत्पतितम्, सौम्य, विजानीहि, न, इदम्, अमूलम्, भविष्यति, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
सौम्य	हे प्रियपुत्र !	आचक्षते	कहते हैं
इति	इसी प्रकार	यथा	जैसे
अशनापिपासे	भूख प्यास की विद्या को	गोनायः	गौ को ले जानेवाला गोनाय
मे	मुझसे	अश्वनायः	घोड़े को लेजानेवाला अश्वनाय
विजानीहि	तू जान	पुरुषनायः	पुरुष को ले जानेवाला पुरुषनाय
यत्र	जब	+ आचक्षन्ते	कहे जाते हैं
नाम	प्रसिद्ध	इति	इसी
एतत्	यह	एवम्	प्रकार
पुरुषः	पुरुष	सौम्य	हे प्रियदर्शन !
अशिशिषति	खाने की इच्छा करता है	उत्पतितम्	उत्पन्न हुए
तत्	तब	एतत्	इस
अशितम्	खाये हुए अन्न को	शुङ्गम्	अंकुररूपी शरीर को
आपः	जल	+ त्वम्	तू
एव	निश्चय करके	विजानीहि	जान कि
नयते	अन्दर ले जाकर हजम कर देता है	इति	ऐसा
तत्र	तब	इदम्	यह
तत्	उस	अमूलम्	जड़रहित
अपः	जल को	न	नहीं
अशनाय	अशनाय	भविष्यति	है
इति	नाम करके		

भावार्थ ।

उद्दालक ऋषि कहते हैं कि हे सौम्य, श्वेतकेतो ! अब तू भूख-

प्यास की विद्या को अर्थात् भूख लगने का क्या कारण है और उसके पचने का क्या कारण है, मुझसे जान । जब पहिले का खाया हुआ अन्न जल करके पचजाता है तब फिर यह पुरुष खाने की इच्छा करता है और तभी खाये हुए अन्न को जल करके जिसको वह पीछे से पीता है, उसको अन्दर ले जाता है अर्थात् हजम कर देता है और इसी कारण उस जल का नाम अशनाय पड़ता है । जैसे गौ को लेजानेवाले का नाम गोनाय, घोड़े को लेजानेवाले को अश्वनाय और पुरुषों को लेजानेवाले का नाम पुरुषनाय होता है । क्योंकि जल और अन्न करके पुरुष के शरीर की पुष्टि होती है, इसलिये जल और अन्न इस शरीर के कारण हैं; क्योंकि विना कारण के कार्य हो नहीं सकता है । जैसे अंकुर को देखकर उसके कारण बीज के सूक्ष्म अंश का अनुभव होता है, वैसे ही पुरुष के शरीर को देखकर उसके कारण जल और पृथ्वी का अनुभव होता है । पृथ्वी और जल का कारण परमात्मा है । क्योंकि कार्य कारणरूप ही होता है, इसलिये अन्न जल सत् चैतन्यरूप ही है और अन्न जल का कार्य जो शरीर है वह भी सत् चैतन्यरूप ही है ॥ ३ ॥

मूलम् ।

तस्य क्व मूलꣳ स्यादन्यत्रान्नादेवमेव खलु सोम्यान्नेन शुङ्गेनापो मूलमन्विच्छाद्भिः सोम्य शुङ्गेन तेजो मूलमन्विच्छ तेजसा सोम्य शुङ्गेन सन्मूलमन्विच्छ सन्मूलाः सोम्येमाः सर्वाः प्रजाः सदायतनाः सत्प्रतिष्ठाः ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

तस्य, क्व, मूलम्, स्यात्, अन्यत्र, अन्नात्, एवम्, एव, खलु, सोम्य, अन्नेन, शुङ्गेन, अपः, मूलम्, अन्विच्छ, अद्भिः, सोम्य,

शुङ्गेन, तेजः, मूलम्, अन्विच्छ, तेजसा, सौम्य, शुङ्गेन, सत्, मूलम्, अन्विच्छ, सन्मूलाः, सौम्य, इमाः, सर्वाः, प्रजाः, सदायतनाः, सत्प्रतिष्ठाः ॥

अन्वयः	पदार्थ
सौम्य	हे प्रियपुत्र !
अन्नात्	अन्न से
अन्यत्र	पृथक्
तस्य	उस शरीर का
कः	कौन दूसरा
मूलम्	कारण
स्यात्	हो सकता है
सौम्य	हे प्रियदर्शन !
खलु	निश्चय करके
अन्नेन	अन्नरूप
शुङ्गेन	अंकुर द्वारा
अपः	जल को
एव	ही
मूलम्	अन्न का कारण
अन्विच्छ	जानो
+ च	और
अद्भिः	जलरूप
शुङ्गेन	अंकुर द्वारा
तेजः	अग्नि को
+ जलस्य	जल का
मूलम्	कारण
अन्विच्छ	जानो
+ च	और
सौम्य	हे प्रियपुत्र !
तेजसा	अग्निरूपी
शुङ्गेन	अंकुर द्वारा
सत्	सत् ब्रह्म को अग्नि का
+ एव	ही
मूलम्	कारण
अन्विच्छ	जानो
सौम्य	हे प्रियात्मा !
सन्मूलाः	सत् ब्रह्म है मूल जिसका
सदायतनाः	सत् ब्रह्म है निवासस्थान जिसका
सत्प्रतिष्ठाः	सत् ब्रह्म ही है समाप्तिस्थान जिसका
एवम्	ऐसी
इमाः	इस
सर्वाः	सब
प्रजाः	सृष्टि को
अन्विच्छ	जानो

भावार्थ ।

उद्दालक ऋषि अपने पुत्र श्वेतकेतु से कहते हैं कि हे प्रियपुत्र ! अन्न से पृथक् शरीर का दूसरा कारण कौन हो सकता है, अर्थात् और

कोई दूसरा कारण नहीं है, अन्न ही कारण है । जब यह पुरुष भोजन करता है तब उस भोजन किये हुए अन्न को पिया हुआ जल उदर विषे ले जाकर द्रवीभूत करता है और तब जठराग्नि करके पचाया हुआ अन्न रसादि के परिणाम को क्रम से प्राप्त होता है । फिर उस रस से रुधिर होता है और रुधिर से मांस, मांस से मेद, मेद से अस्थि, अस्थि से मज्जा तथा मज्जा से शुक्र (वीर्य) होता है । इसी प्रकार स्त्री करके भोजन किया हुआ अन्न रसादि के परिणाम को पाय अंत में शोणित होता है और तब अन्न के कार्य शुक्र शोणित के एकत्र होने से गर्भ विषे देह उत्पन्न होता है और उस गर्भ विषे भी अन्न के रस करके ही वर्धमान होता है । नित्य भोजन करने से ही शरीर की स्थिति रहती है, एतदर्थ रस अन्न का परिणाम होने से इस देह-रूप अंकुर का कारण अन्न ही है । जब अन्न इसको नहीं मिलता है तब इसका अभाव हो जाता है । इसी प्रकार अन्नरूप अंकुर का कारण जल ही जानो और जलरूप अंकुर का कारण अग्नि को जानो और अग्निरूप अंकुर का कारण सत् ब्रह्म को जानो । हे प्रियपुत्र ! जब तुम विचार करके इस जगत् की सृष्टि को देखोगे तब तुमको निश्चय हो जायगा कि इस सृष्टि का सत् ब्रह्म ही मूल है, सत् ब्रह्म ही निवासस्थान है और सत ब्रह्म ही समाप्तिस्थान है । ब्रह्म से पृथक् जो कुछ इसका नाम रूप है वह केवल कहनेमात्र ही है अर्थात् ब्रह्म से पृथक् इसकी कोई सत्ता नहीं है ॥ ४ ॥

मूलम् ।

अथ यत्रैतत्पुरुषः पिपासति नाम तेज एव तत्पीतं नयते तद्यथा गोनायोऽश्वनायः पुरुषनाय इत्येवं तत्तेज आचष्ट उदन्येति तत्रैतदेव शुङ्गमुत्पतितꣳ सौम्य विजानीहि नेदममूलं भविष्यतीति ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यत्र, एतत्, पुरुषः, पिपासति, नाम, तेजः, एव, तत्, पीतम्, नयते, तत्, यथा, गोनायः, अश्वनायः, पुरुषनायः, इति, एवम्, तत्, तेजः, आचष्टे, उदन्य, इति, तत्र, एतत, एव, शुङ्गम्, उत्पतितम, सौम्य, विजानीहि, न, इदम्, अमूलम्, भविष्यति, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
अथ	तत्पश्चात्
यत्र	जब
नाम	प्रसिद्ध
एतत्पुरुषः	यह पुरुष
पिपासति	जल पीने की इच्छा करता है
तत्	तब
तेजः	अग्नि
एव	निश्चय करके
पीतम्	पिये हुए जल को
नयते	शरीर के अन्दर शोषण करता है
+ च	और
+ तदा	तब
तत्	उसको
यथा	जैसे
गोनायः	गौ को ले जानेवाले का नाम गोनाय
अश्वनायः	घोड़े को लेजानेवाले का नाम अश्वनाय
+ च	और
पुरुषनायः	पुरुषों को लेजानेवाले का नाम पुरुषनाय है
इत्येवम्	वैसे ही
तत्तेजः	उस अग्नि को
उदन्य	उदन्य
इति	नाम करके
आचष्टे	कहते हैं
सौम्य	हे प्रियपुत्र !
तत्र	उस विषे
इति	ऐसा
इदम्	इसको
विजानीहि	निश्चय करो कि
एतत्	यह
उत्पतितम्	उत्पन्न हुआ
शुङ्गम्	शरीररूपी अंकुर
अमूलम्	कारणरहित
एव	निश्चय करके
न	न
भविष्यति	होगा

भावार्थ ।

हे सौम्य ! उद्दालक ऋषि कहते हैं कि हे प्रियपुत्र ! जब पुरुष

जल को पीता है तब आभ्यन्तरीय अग्नि उसको शोषण कर लेता है और फिर उसको रक्त और वीर्य बनाकर सारे शरीर में फैला देता है। जिस करके यह अग्नि ऐसा करने को समर्थ हुआ है उसी सत् ब्रह्म को इसका कारण जानो, दूसरा कोई कारण नहीं है । जब यह अग्नि जल को शोषण कर इसकी शक्ति को सारे शरीर में प्रवेश करता है तब उसका नाम उदन्य होता है । जैसे गौ को ले जानेवाले को गोनाय, घोड़े का ले जानवाले को अश्वनाय और पुरुषों को ले जानेवाले को पुरुषनाय कहते हैं ॥ ५ ॥

मूलम् ।

तस्य क्व मूलꣳ स्यादन्यत्राद्भ्योऽद्भिः सौम्य शुङ्गेन तेजो मूलमन्विच्छ तेजसा सौम्य शुङ्गेन सन्मूलमन्विच्छ सन्मूलाः सौम्येमाः सर्वाः प्रजाः सदायतनाः सत्प्रतिष्ठा यथा नु खलु सौम्येमास्तिस्रो देवताः पुरुषं प्राप्य त्रिवृत्त्रिवृदेकैका भवति तदुक्तं पुरस्तादेव भवत्यस्य सौम्य पुरुषस्य प्रयतो वाङ्मनसि सम्पद्यते मनः प्राणे प्राणस्तेजसि तेजः परस्यां देवतायाम् ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ।

तस्य, क्व, मूलम्, स्यात्, अन्यत्र, अद्भ्यः, अद्भिः, सौम्य, शुङ्गेन, तेजः, मूलम्, अन्विच्छ, तेजसा, सौम्य, शुङ्गेन, सत्, मूलम्, अन्विच्छ, सन्मूलाः, सौम्य, इमाः, सर्वाः, प्रजाः, सदायतनाः, सत्प्रतिष्ठाः, यथा, नु, खलु, सौम्य, इमाः, तिस्रः, देवताः, पुरुषम्, प्राप्य, त्रिवृत्, त्रिवृत्, एकैका, भवति, तत्, उक्तम्, पुरस्तात्, एव, भवति, अस्य, सौम्य, पुरुषस्य, प्रयतः, वाक्, मनसि, सम्पद्यते, मनः, प्राणे, प्राणः, तेजसि, तेजः, परस्याम्, देवतायाम् ॥

अन्वयः	पदार्थ
+ हे भगवन्	हे भगवन् !
तस्य	उस शरीर का
मूलम्	कारण
क	कौन है
+ इति	यह
+ श्रुत्वा	सुनकर
+ उद्दालकः	उद्दालक ऋषि ने
+ उवाच	कहा कि
सौम्य	हे प्रियदर्शन !
अद्भ्यः	जल से
अन्यत्र	पृथक् दूसरा
+ कथम्	कैसे
स्यात्	हो सकता है
सौम्य	हे प्रियपुत्र !
अद्भिः	जलरूप
शुङ्गेन	अंकुर करके
तेजः	अग्नि को
खलु	निस्संदेह
मूलम्	जल का कारण
अन्विच्छ	निश्चय करो
सौम्य	हे पुत्र !
तेजसा	अग्निरूप
शुङ्गेन	अंकुर करके
सत्	सत्ब्रह्म को
मूलम्	कारण
अन्विच्छ	जानो
सौम्य	हे प्रियात्मा !
सन्मूलाः	सत्ब्रह्म ही है मूल जिसका
सदायतनाः	सत्रूप ब्रह्म ही है निवासस्थान जिसका

अन्वयः	पदार्थ
+ च	और
सत्प्रतिष्ठाः	सत्ब्रह्म ही है समाप्तिस्थान जिसका
+ एवम्	ऐसी
इमाः	इस
सर्वाः	सब
प्रजाः	प्रजा को
+ अवधारय	निश्चय करो
+ च	और
यथा	जिस प्रकार
इमाः	यह
तिस्रः	तीनों
देवताः	देवता अर्थात् पृथ्वी, जल, अग्नि
पुरुषम्	पुरुष को
प्राप्य	प्राप्त होकर
एकैका	एक एक के
त्रिवृत्	तीन तीन विभाग
त्रिवृत्	त्रिवृत्करण
भवति	होते हैं
तत्	सो
नु	तो
पुरस्तात्	पहिले
एव	ही
उक्तम् भवति	कहा गया है
सौम्य	हे प्रियपुत्र !
अस्य	इस
प्रयतः	मरते हुए
पुरुषस्य	पुरुष की

वाक्=वाणी
मनसि=मन में
+ प्राप्नोति=प्राप्त होती है
मनः=मन
प्राणे=प्राण में
प्राणः=प्राण
तेजसि=अग्नि में
तेजः=अग्नि
परस्याम्=पर
देवतायाम्=ब्रह्मदेव बिषे
संपद्यते=प्राप्त होती है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! अब श्वेतकेतु अपने पिता उद्दालक ऋषि से पूछता है कि हे भगवन् ! शरीर का मूलकारण कौन है ? यह सुनकर उद्दालक ऋषि कहते हैं कि हे प्रियपुत्र ! इसका कारण जल है, जल के सिवाय और क्या हो सकता है । जलरूप अंकुर को देखकर इसका कारण अग्नि को निश्चय करो । हे प्रियपुत्र ! इस प्रत्यक्ष सृष्टि का मूल कारण सत् ब्रह्म ही है और इसके रहने का स्थान भी ब्रह्म ही है । यह ब्रह्म ही में लय होती है, ब्रह्म के सिवाय और कोई अधिष्ठान सत्ता इसकी नहीं है । जिस प्रकार यह तीनों अर्थात् अग्नि, जल और पृथ्वी से पुरुष का शरीर त्रिवृत्करणद्वारा होता है सो मैं पहिले ही कहचुका हूँ । अब यहाँ पर उसके कहने की आवश्यकता नहीं है । हाँ, इतना कहना अवश्य है कि पुरुष जब शरीर को त्यागता है तब वाणी मन में, मन प्राण में तथा प्राण अग्नि में प्रवेश करता है और अग्नि परब्रह्मदेव बिषे लय हो जाता है । हे सौम्य ! यह सृष्टि जो तुम देखते हो निराकार परमात्मा से पृथक् नहीं है ॥ ६ ॥

मूलम् ।

स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदꣳ सर्वं तत्सत्यꣳ स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति भूय एव मा भगवान्विज्ञापयत्विति तथा सौम्येति होवाच ॥ ७ ॥

इति अष्टमः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

सः, यः, एषः, अणिमा, एतदात्म्यम्, इदम्, सर्वम्, तत्, सत्यम्, सः, आत्मा, तत्, त्वम्, असि, श्वेतकेतो, इति, भूयः, एव, मा, भगवान्, विज्ञापयतु, इति, तथा, सौम्य, इति, ह, उवाच ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यः=जो		इति=इस प्रकार	
सः=वह		+श्रुत्वा=सुनकर	
अणिमा=अतिसूक्ष्म है		+ श्वेतकेतुः=श्वेतकेतु ने	
सः=सोई		+ उवाच=कहा कि	
एषः=यह		भगवान्=आप	
आत्मा=आत्मा है		भूयः=फिर	
तत्=वही		एव=भी	
सत्यम्=सत्य है		मा=मुझ को	
+ यत्=जो		विज्ञापयतु=उपदेश करें	
एतदात्म्यम्=यह सत् रूप आत्मा है		इति=यह	
तत्=वही		+ श्रुत्वा=सुनकर	
इदम्=यह		+ उद्दालकः=उद्दालक ने	
सर्वम्=सब जगत् है		ह=स्पष्ट	
श्वेतकेतो=हे श्वेतकेतो !		इति=ऐसा	
+ तत्=सोई		उवाच=कहा कि	
त्वम्=तू		सौम्य=हे प्रियपुत्र !	
असि=है		तथा=बहुत अच्छा	

भावार्थ ।

हे सौम्य ! उद्दालक ऋषि अपने चन्द्रमुख श्वेतकेतु से कहते हैं कि हे प्रियपुत्र ! जो अतिसूक्ष्म सबका अधिष्ठान कहा गया है वही यह तेरा आत्मा है । यही आत्मा सब जगत् का सत्रूप है और वही हे श्वेतकेतो ! परब्रह्म तू है । यह सुनकर श्वेतकेतु को बड़ा

आनन्द प्राप्त हुआ और अपने पिता से प्रार्थना की कि हे भगवन् ! और कुछ इस ब्रह्मविद्या के बारे में दृष्टान्तपूर्वक मुझे उपदेश करें, मैं आपकी अमृतरूपी वाणी से भलीप्रकार तृप्त नहीं हुआ हूं ॥ ७ ॥

इति अष्टमः खण्डः ।

अथ षष्ठाध्यायस्य नवमः खण्डः ।

मूलम् ।

यथा सौम्य मधु मधुकृतो निस्तिष्ठन्ति नानात्ययानां वृक्षाणाꣳ रसान्समवहारमेकताꣳ रसं गमयन्ति ॥ १ ॥ *

पदच्छेदः ।

यथा, सौम्य, मधु, मधुकृतः, निस्तिष्ठन्ति, नानात्ययानाम्, वृक्षाणाम्, रसान्, समवहारम्, एकताम्, रसम्, गमयन्ति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
सौम्य	हे प्रियदर्शन !	एकताम्	एक
यथा	जैसे	रसम्	रस
मधुकृतः	मधुमक्खियां	गमयन्ति	बनाती हैं
नानात्ययानाम्	बहुत प्रकार के	+ च	और
वृक्षाणाम्	वृक्षों के	+ पुनः	फिर
रसान्	रसों को	मधु	सहत
समवहारम्	जमा करके	निस्तिष्ठन्ति	बनाती हैं

भावार्थ ।

उद्दालक ऋषि अपने पुत्र श्वेतकेतु से कहते हैं कि हे प्रियपुत्र ! जैसे मधुमक्षिकायें अनेक वृक्ष के फूलों के रस को एकत्र करती हैं और फिर उसको मधुत्वभाव को प्राप्त करके मधु बनाती हैं ॥ १ ॥

---

* इस मंत्र का सम्बन्ध अगले मंत्र से है ।

मूलम् ।

ते यथा तत्र न विवेकं लभन्तेऽमुष्याहं वृक्षस्य रसोऽस्म्यमुष्याहं वृक्षस्य रसोऽस्मीत्येवमेव खलु सौम्येमाः सर्वाः प्रजाः सति सम्पद्य न विदुः सति सम्पद्यामह इति ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

ते, यथा, तत्र, न, विवेकम्, लभन्ते, अमुष्य, अहम्, वृक्षस्य, रसः, अस्मि, अमुष्य, अहम्, वृक्षस्य, रसः, अस्मि, इति, एवम्, एव, खलु, सौम्य, इमाः, सर्वाः, प्रजाः, सति, सम्पद्य, न, विदुः सति, सम्पद्यामहे, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
+ च	और
सौम्य	हे प्रियपुत्र !
यथा	जिस प्रकार
तत्र	उस बहुत के वृक्ष में
ते	वे रस
इति	इस
+ एवम्	प्रकार
विवेकम्	ज्ञान को
खलु	निश्चय करके
न	नहीं
लभन्ते	प्राप्त होते हैं कि
अहम्	मैं
अमुष्य	अमुक
वृक्षस्य	वृक्ष का
रसः	रस
अस्मि	हूं
अहम्	मैं
अमुष्य	अमुक
वृक्षस्य	वृक्ष का
रसः	रस
अस्मि	हूं
एवम् एव	उसी प्रकार
इमाः	ये
सर्वाः	सब
प्रजाः	प्रजा
सति	सत्ब्रह्म बिषे
सम्पद्य	प्राप्त होकर
इति	ऐसा
न	नहीं
विदुः	जानती हैं कि
+ वयम्	हम सब
सति	ब्रह्म बिषे
संपद्यामहे	प्राप्त हुई हैं

भावार्थ ।

और हे प्रियपुत्र ! जिस प्रकार वे रस सहत के छत्ते में जाकर उनको यह विवेक नहीं रहता है कि मैं अमुक वृक्ष का रस हूं। उसी प्रकार ये सब जीव सुपुप्तिकाल अथवा मरणकाल अथवा प्रलयकाल विषे सद्ब्रह्म को प्राप्त होकर उनको यह ज्ञान नहीं रहता है कि हम सब ब्रह्म पहिले थे और अब ब्रह्म को प्राप्त हैं। कारण इस सबका यह है कि अहंकारजन्य वासना कि हम ब्राह्मण हैं, क्षत्रिय हैं, वैश्य हैं, शूद्र हैं और सिंहादि हैं, ऐसे संस्कार को लेकर जीव सुपुप्तयादि काल में प्रवेश करते हैं। मैं ब्रह्म हूं, मैं सत् चित् आनन्दरूप हूं ऐसा अनुभव करके नहीं प्रवेश करते हैं और यही कारण है कि उनको पूर्व की वासना वहां से बाहर खींच लाकर उनके कर्मादिकों में लगा देती है और तब वे अपने कर्म पूर्ववत् करने लगते हैं ॥ २ ॥

मूलम् ।

त इह व्याघ्रो वा सिꣳहो वा वृको वा वराहो वा कीटो वा पतङ्गो वा दꣳशो वा मशको वा यद्यद्भवन्ति तदाभवन्ति ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

ते, इह, व्याघ्रः, वा, सिंहः, वा, वृकः, वा, वराहः, वा, कीटः, वा, पतङ्गः वा, दंशः, वा, मशकः, वा, यत्, यत्, भवन्ति, तत्, आभवन्ति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
ते=	मैं ब्रह्मरूप हूं इस ज्ञान से रहित वे जीवात्मा	सिंहः=	सिंह
इह=	इस संसार में	वा=	अथवा
व्याघ्रः=	व्याघ्र	वृकः=	भेड़िया
वा=	अथवा	वा=	अथवा
		वराहः=	सूकर

वा=अथवा	वा=आदिक
कीटः=कीड़ा	यत् यत्=जो जो
वा=अथवा	भवन्ति=उत्पन्न हुए हैं
पतङ्गः=पतिङ्गा	तत्=वही
वा=अथवा	+ तत्=वही
दंशः=डांस	+ पुनः=फिर
वा=अथवा	+ अपि=भी
मशकः=मस्से	आभवन्ति=होते हैं

भावार्थ ।

उद्दालक ऋषि कहते हैं कि हे प्रियपुत्र ! जबतक मैं सत् चित आनन्दरूप ब्रह्म हूं, यह ज्ञान नहीं होता है तबतक संसार बिषे सुषुप्तयादि अवस्था में व्याघ्र, सिंह, भेड़िया, सुअर, कीड़ा, पतिंगा, मस्सा, डांस, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रादि शरीर धरता हुआ और अपने कर्तापने के संस्कार अपने बिषे लेता हुआ जीव ब्रह्म को प्राप्त होता है और फिर जाग्रत् अवस्था में बाहर निकल आता है, तत्पश्चात् अपने पूर्ववासना के संस्कार से प्रेरित हुआ अपने अपने कर्मों में लगजाता है, परन्तु जो पुरुष जाग्रत् बिषे श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ आचार्य से मिलकर श्रुति के महावाक्यार्थ के ज्ञान को पाकर उसको सम्यक् प्रकार मनन, निदिध्यासन कर निस्संशय हो अपने आप सत्चैतन्यरूप आत्मा को साक्षात् करता है और मन, बुद्धि आदि उपाधि और उनके धर्म कर्मादिकों से अलग होकर अपने को सबका द्रष्टा (साक्षी) अनुभव करता है तब वह विद्वान् पुरुष सत्ब्रह्म को प्राप्त होकर सद्रूप ही हो जाता है और फिर जीवभाव बिषे नहीं आता; क्योंकि जाग्रत् में ही सत् चैतन्य अपने आत्मा को सम्यक् प्रकार जान के उस बिषे " सोऽहमस्मि " भाव को प्राप्त हो गया है ॥ ३ ॥

मूलम् ।

स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदꣳ सर्वं तत्सत्यꣳ स

आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति भूय एव मा भगवा-न्विज्ञापयत्विति तथा सौम्येति होवाच ॥ ४ ॥

इति नवमः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

सः, यः, एषः, अणिमा, एतदात्म्यम, इदम्, सर्वम, तत्, सत्यम, सः, आत्मा, तत्, त्वम्, असि, श्वेतकेतो, इति, भूयः, एव, मा, भगवान्, विज्ञापयतु, इति, तथा, सौम्य, इति, ह, उवाच ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यः	जो	त्वम्	तू
सः	वह	असि	है
अणिमा	अतिसूक्ष्म	इति	यह
+ आख्यातः	कहा गया है	+ श्रुत्वा	सुनकर
सः	वही	+ श्वेतकेतुः	श्वेतकेतु ने
एषः	यह	+ उवाच	कहा कि
आत्मा	आत्मा है	+ पितः	हे पिता !
+ च	और	भूयः	और
तत्	वही	एव	भी
सत्यम्	सत्य है	भगवान्	आप
इति	इस प्रकार	मा	मुझको
एतदात्म्यम्	यह सत् है आत्मा जिसका ऐसा	विज्ञापयतु	उपदेश करें
इदम्	यह	+ इति श्रुत्वा	यह सुनकर
सर्वम्	सब जगत् है	+ उद्दालकः	उद्दालक ने
श्वेतकेतो	हे श्वेतकेतो !	ह	स्पष्ट
+ च	और	उवाच	कहा कि
तत्	सोई	सौम्य	हे पुत्र !
		तथा	बहुत अच्छा

भावार्थ ।

उद्दालक ऋषि अपने पुत्र श्वेतकेतु से कहते हैं कि हे प्रियपुत्र !

जो अतिसूक्ष्म कहा गया है और जिसमें सबकी स्थिति है वही यह आत्मा है, वही यह सत्य ब्रह्म है और वही तू है । यह सुनकर श्वेतकेतु ने कहा कि हे भगवन् ! जैसे कोई मनुष्य अपने घर में सोकर उठता है और दूसरे गांव को जाता है तब उसको मालूम रहता है कि मैं अपने मकान से यहां आया हूं , इसी प्रकार जब जीव जाग्रत् अवस्था से सुषुप्ति में जाते हैं और वहां सत्ब्रह्म को प्राप्त होकर लौट आते हैं तब उनको क्यों ज्ञान नहीं रहता है कि हम सत्ब्रह्म को प्राप्त होकर आये हैं । हे प्रभो ! इसके बारे में आप मुझको विशेष उपदेश करें । पिता ने कहा कि अच्छा ऐसा ही होगा ॥ ४ ॥

इति नवमः खण्डः ।

अथ षष्ठाध्यायस्य दशमः खण्डः ।

मूलम् ।

इमाः सौम्य नद्यः पुरस्तात्प्राच्यः स्यन्दन्ते पश्चात्प्रतीच्यस्ताः समुद्रात्समुद्रमेवापियन्ति स समुद्र एव भवति ता यथा तत्र न विदुरियमहमस्मीयमहमस्मीति ॥ १ ॥ *

पदच्छेदः ।

इमाः, सौम्य, नद्यः, पुरस्तात्, प्राच्यः, स्यन्दन्ते, पश्चात्, प्रतीच्यः, ताः, समुद्रात्, समुद्रम्, एव, अपियन्ति, सः, समुद्रः, एव, भवति, ताः, यथा, तत्र, न, विदुः, इयम्, अहम्, अस्मि, इयम्, अहम्, अस्मि, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
सौम्य	=हे प्रियदर्शन !	प्राच्यः	=पूर्वदिशा की बहनेवाली
इमाः	=ये		

* इसका अन्वय अगले मंत्र से है ॥

नद्यः=नदियां	सः=वह
पुरस्तात्=पूर्वदिशा को	समुद्रः=समुद्ररूप
स्यन्दन्ते=बहती हैं	एव=ही
+ च=और	भवति=हो जाता है
प्रतीच्यः=पश्चिम दिशा की बहनेवाली	+ च=और
नद्यः=नदियां	यथा=जिस प्रकार
पश्चात्=पश्चिम दिशा को	ताः=वे सब नदियां
स्यन्दन्ते=बहती हैं	तत्र=समुद्र में
+ च=और	इति=ऐसा
ताः=वे सब	न=नहीं
समुद्रात्=समुद्र से निकल कर	विदुः=जानती हैं कि
समुद्रम्=समुद्र में	अहम्=मैं
एव=ही	इयम्=यह
अपियन्ति=जाती हैं	अस्मि=हूं
+ च=और	अहम्=मैं
+ पुनः=फिर	इयम्=यह
	अस्मि=हूं

भावार्थ ।

हे सौम्य ! उद्दालक ऋषि अपने पुत्र से उदाहरण देकर कहते हैं कि हे श्वेतकेतो ! जैसे पूर्व ओर की जानेवाली नदियां पूर्व दिशा को जाती हैं और पश्चिम ओर की जानेवाली नदियां पश्चिम दिशा को जाती हैं और जो जल समुद्र से उठकर बादलों द्वारा पर्वतों पर बरसता है, वही नदी की सूरत में समुद्र में पहुँच कर समुद्ररूप हो-जाता है । जैसे ये गंगा, यमुना आदिक नदियां समुद्र में पहुँचकर लीन हो जाती हैं और अपने को भूल जाती हैं ॥ १ ॥

मूलम् ।

एवमेव खलु सोम्येमाः सर्वाः प्रजाः सत आगम्य न विदुः सत आगच्छामह इति त इह व्याघ्रो वा सिंहो

वा वृको वा वराहो वा कीटो वा पतङ्गो वा दंशो वा मशको वा यद्यद्भवन्ति तदाभवन्ति ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

एवम्, एव, खलु, सौम्य, इमाः सर्वाः, प्रजाः, सतः, आगम्य, न, विदुः, सतः, आगच्छामहे, इति, ते, इह, व्याघ्रः, वा, सिंहः, वा, वृकः, वा, वराहः, वा, कीटः, वा, पतङ्गः, वा, दंशः, वा, मशकः, वा, यत्, यत्, भवन्ति, तत्, आभवन्ति ॥

अन्वयः पदार्थ	अन्वयः पदार्थ
सौम्य=हे प्रियदर्शन !	वा=अथवा
एवम्=उसी	वृकः=भेड़िया
एव=प्रकार	वा=अथवा
खलु=निश्चय करके	वराहः=सूकर
इमाः=ये	वा=अथवा
सर्वाः=सब	कीटः=कीड़ा
प्रजाः=प्रजायें	वा=अथवा
सतः=सत् को	पतङ्गः=पतिङ्गा
आगम्य=प्राप्त हो करके	वा=अथवा
इति=यह	दंशः=डांस
न=नहीं	वा=अथवा
विदुः=जानती हैं कि	मशकः=मस्सा
+वयम्=हम सब	वा=आदिक
सतः=सत्ब्रह्म को	यत्=जो
आगच्छामहे=प्राप्त हुए हैं	यत्=जो
इह=इस संसार में	भवन्ति=हुए हैं
ते=वे	तत्=वही वही
व्याघ्रः=व्याघ्र	+ पुनः=फिर
वा=अथवा	आभवन्ति=होते हैं
सिंहः=सिंह	

भावार्थ ।

उसी प्रकार हे पुत्र ! सब जीव व्याघ्र, सिंह, भेड़िया, सूकर,

कीड़ा, पतङ्गा और मस्सा आदिक जब सुषुप्ति में सत्ब्रह्म को प्राप्त होते हैं, तब उनको यह ज्ञान नहीं होता है कि हम सत्ब्रह्म को प्राप्त हैं और जब सुषुप्ति से जाग्रत् में आते हैं, तब भी उनको यह ज्ञान नहीं रहता है कि हम सत्ब्रह्म को प्राप्त होकर आये हैं । जिस हालत में वे जाते हैं उसी हालत में लौट आते हैं ॥ २ ॥

मूलम् ।

स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदꣳ सर्वं तत्सत्यꣳ स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति भूय एव मा भगवान् विज्ञापयत्विति तथा सौम्येति हो वाच ॥ ३ ॥

इति दशमः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

सः, यः, एषः, अणिमा, एतदात्म्यम्, इदम्, सर्वम्, तत्, सत्यम्, सः, आत्मा, तत्, त्वम्, असि, श्वेतकेतो, इति, भूयः, एव, मा, भगवान्, विज्ञापयतु, इति, तथा, सौम्य, इति, ह, उवाच ॥

अन्वयः	पदार्थ
यः	जो
सः	वह
अणिमा	अतिसूक्ष्म
+ आख्यातः	कहा गया है
सः	वही
एषः	यह
आत्मा	आत्मा है
+ च	और
तत्	वही
सत्यम्	सत्य है
इति	इस प्रकार
एतदात्म्यम्	यह सत् है आत्मा जिसका ऐसा
इदम्	यह
सर्वम्	सब जगत् है
+ च	और
श्वेतकेतो	हे श्वेतकेतु !
तत्	वही
त्वम्	तू
असि	है
इति	यह
+ श्रुत्वा	सुनकर
+ श्वेतकेतुः	श्वेतकेतु ने
+ उवाच	कहा कि
+ पितः	हे पिता !
भूयः	और

एव=भी	+ उद्दालकः=उद्दालक ने
भगवान्=आप	ह=स्पष्ट
मा=मुझको	उवाच=कहा कि
विज्ञापयतु=उपदेश करें	सौम्य=हे पुत्र !
इति=यह	तथा=अच्छा कहता हूं
+ श्रुत्वा=सुनकर	

भावार्थ ।

हे सौम्य ! उद्दालक ऋषि अपने पुत्र श्वेतकेतु से कहते हैं कि हे प्रियपुत्र ! जो अतिसूक्ष्म कहा गया है वही यह आत्मा है, वही सत्य है, और वही तू है । यह सुनकर श्वेतकेतु ने कहा कि हे भगवन् ! आप और भी दृष्टान्तपूर्वक मुझे उपदेश करें । उद्दालक ऋषि ने कहा बहुत अच्छा कहता हूं, सुनो ॥ ३ ॥

इति दशमः खण्डः ।

अथ षष्ठाध्यायस्यैकादशः खण्डः ।

मूलम् ।

अस्य सौम्य महतो वृक्षस्य यो मूलेऽभ्याहन्याज्जीवन् स्रवेद्यो मध्येऽभ्याहन्याज्जीवन् स्रवेद्योऽग्रेऽभ्याहन्याज्जीवन् स्रवेत्स एष जीवेनात्मनानुप्रभूतः पेपीयमानो मोदमानस्तिष्ठति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

अस्य, सौम्य, महतः, वृक्षस्य, यः, मूले, अभ्याहन्यात्, जीवन्, स्रवेत्, यः, मध्ये, अभ्याहन्यात्, जीवन्, स्रवेत्, यः, अग्रे, अभ्याहन्यात्, जीवन्, स्रवेत्, सः, एषः, जीवेन, आत्मना, अनुप्रभूतः, पेपीयमानः, मोदमानः, तिष्ठति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
सौम्य=हे प्रियदर्शन !		महतः=बड़े	
अस्य=इस		वृक्षस्य=वृक्ष के	

मूल=मूल में
यः=जो कोई
अभ्याहन्यात्=कुल्हाड़ी का प्रहार करे तो
स्रवेत्=रस टपकेगा
+ तु=परन्तु
जीवन्=जीता
+ स्यात्=रहेगा
यः=जो कोई
मध्ये=मध्य में
अभ्याहन्यात्=कुल्हाड़ी का प्रहार करे तो
स्रवेत्=रस चूता रहेगा
+ तु=परन्तु
जीवन्=जीता हुआ
+ तिष्ठत्=स्थित रहेगा
यः=जो कोई
अग्रे=चोटी पर
अभ्याहन्यात्=प्रहार करे तो
स्रवेत्=रस टपकेगा
+ परम्=परन्तु
जीवन्=जीता
+ स्यात्=रहेगा
+ हि=क्योंकि
पेपीयमानः=रस को जड़ द्वारा पीता हुआ
+ च=और
मोदमानः=आनन्द युक्त होता हुआ
सः=वह
एषः=यह सारा वृक्ष
जीवेन=अपने जीव
आत्मना=आत्मा करके
अनुभूतः=व्याप्त होता हुआ
तिष्ठति=स्थित रहता है

भावार्थ ।

उद्दालक ऋषि अपने पुत्र से कहते हैं कि हे प्रियपुत्र ! अगर कोई पुरुष सम्मुख के हरे भरे वृक्ष के मूल में कुल्हाड़ी एक बार प्रहार करे तो इसमें से थोड़ा रस निकल आवेगा, परन्तु वृक्ष सूखेगा नहीं । उसी तरह से मध्य में या चोटी पर मारे तो उस घाव से रस टपकेगा परन्तु वृक्ष सूखेगा नहीं ; क्योंकि इस वृक्ष भर में जीवात्मा व्यापक है और वही पृथ्वी जल आदि के सार को अपने मूल द्वारा खींच-कर अपने सम्पूर्ण शरीर में फैला देता है और घाव को पूरा कर देता है तथा आनन्द भोगता है ॥ १ ॥

मूलम् ।

अस्य यदेकाᳬ शाखां जीवो जहात्यथ सा शुष्यति

द्वितीयां जहात्यथ सा शुष्यति तृतीयां जहात्यथ सा शुष्यति सर्वं जहाति सर्वः शुष्यति ॥ २ ॥ *

पदच्छेदः ।

अस्य, यत्, एकाम्, शाखाम्, जीवः, जहाति, अथ, सा, शुष्यति, द्वितीयाम्, जहाति, अथ, सा, शुष्यति, तृतीयाम्, जहाति, अथ, सा, शुष्यति, सर्वम्, जहाति, सर्वः, शुष्यति ॥

अन्वयः	पदार्थ
अस्य	इस वृक्ष की
एकाम्	एक
शाखाम्	शाखा को
यत्	जब
जीवः	जीव
जहाति	छोड़ देता है
अथ	तब
सा	वह
शुष्यति	सूख जाती है
+ यत्	जब
द्वितीयाम्	दूसरी को
जहाति	छोड़ देता है
अथ	तब
सा	वह भी
शुष्यति	सूख जाती है
+ यत्	जब
तृतीयाम्	तीसरी को
जहाति	छोड़ देता है
अथ	तब
सा	वह भी
शुष्यति	सूख जाती है
+ यत्	जब
सर्वम्	सब वृक्ष को
जहाति	छोड़ देता है
अथ	तब
सर्वः	सब
शुष्यति	सूख जाता है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! उद्दालक ऋषि कहते हैं कि हे श्वेतकेतो ! जब जीव एक शाखा को त्याग देता है, तब वह सूख जाती है । जब दूसरी वा तीसरी को त्याग देता है, तब वह भी सूख जाती है और जब सम्पूर्ण वृक्ष को त्याग देता है, तब सम्पूर्ण वृक्ष सूख जाता है । यह जीवात्मा वाक्, मन, प्राण और इन्द्रियों में व्याप्त है । जब ये

* इसका अन्वय अगले मंत्र से है ।

इन्द्रियां उससे अलग होजाती हैं, तब वह भी उनसे अलग होजाता है । जबतक प्राण का जीवात्मा से सम्बन्ध रहता है, तभी तक यह खाता पीता है और जो कुछ खाता पीता है, वह रस होकर संपूर्ण वृक्ष में फैल जाता है और वही वृक्ष बिषे जीवात्मा की स्थिति को दिखलाता है । अन्न और जल करके जीवात्मा शरीर बिषे स्थित रहता है और जब तक जीवात्मा शरीर बिषे स्थित है, तब तक वह भोक्ता है । जब किसी कारण से वृक्ष के किसी भाग में विघ्न पहुँचता है, तब वहां से जीवात्मा चल देता है, तब वह शाखा या वृक्ष का भाग सूख जाता है, क्योंकि रस का रहना वृक्ष में जीवात्मा के रहने पर स्थित है, इससे यह सिद्ध होता है कि वृक्षों में भी चैतन्य की स्थिति है ॥ २ ॥

मूलम् ।

एवमेव खलु सौम्य विद्धीति होवाच जीवापेतं वाव किलेदं म्रियते न जीवो म्रियत इति स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदꣳ सर्वं तत्सत्यꣳ स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति भूय एव मा भगवान् विज्ञापयत्विति तथा सौम्येति होवाच ॥ ३ ॥

इत्येकादशः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

एवम्, एव, खलु, सौम्य, विद्धि, इति, ह, उवाच, जीवापेतम्, वाव, किल, इदम्, म्रियते, न, जीवः, म्रियते, इति, सः, यः, एषः, अणिमा, एतदात्म्यम्, इदम्, सर्वम्, तत्, सत्यम्, सः, आत्मा, तत्, त्वम्, असि, श्वेतकेतो, इति, भूयः, एव, मा, भगवान्, विज्ञापयतु, इति, तथा, सौम्य, इति, ह, उवाच ॥

अन्वयः	पदार्थ
सौम्य	हे प्रियदर्शन !
एवमेव	उसी प्रकार
इदम्	यह शरीर
जीवापेतम्	जीवरहित
वाव	अवश्य
म्रियते	मर जाता है
किल	पर
जीवः	जीव
खलु	निश्चय करके
न	नहीं
म्रियते	मरता है
इति	ऐसा
विद्धि	जानो
+ च	और
यः	जो
सः	वह
अणिमा	अतिसूक्ष्म
+ आख्यातः	कहा गया है
सः	वही
एषः	यह
आत्मा	आत्मा है
तत्	वही
सत्यम्	सत्य है
श्वेतकेतो	हे श्वेतकेतु !
तत्	सोई
त्वम्	तू
असि	है
+ च	और
एतदात्म्यम्	जो अति सूक्ष्म सत् व्यापक आत्मा है
इति	सोई
इदम्	यह
सर्वम्	सब जगत् है
इति	इस प्रकार
+ श्रुत्वा	सुनकर
+ श्वेतकेतुः	श्वेतकेतु ने
ह	स्पष्ट
उवाच	कहा कि
+ भगवन्	हे भगवन् !
भूयः	और
एव	भी
भगवान्	आप
मा	मुझको
विज्ञापयतु	उपदेश करें
इति	ऐसा
+ श्रुत्वा	सुन
+ उद्दालकः	उद्दालक ऋषि ने
ह	स्पष्ट
उवाच	कहा कि
सौम्य	हे प्रियपुत्र !
तथा	ऐसा ही
+ भविष्यति	होगा

भावार्थ ।

हे सौम्य ! उद्दालक ऋषि अपने पुत्र से कहते हैं कि हे श्वेतकेतो ! जब जीव वृक्ष में से निकल जाता है, तब वह मर जाता है, पर जीव

नहीं मरता है। यही अवस्था मनुष्य के शरीर की भी है, जो अति सूक्ष्म है, वही आत्मा है, वही सत्य है, वही यह जगत् है और वही तू है यह जो आत्मा है वह कभी नहीं मरता है; क्योंकि जब कोई काम करते करते सो जाता है और फिर उठता है तब उसको स्मरण होता है कि मैंने अमुक काम अधूरा छोड़ दिया है। जब प्राणी पैदा होते हैं, तब पैदा होते ही माता का दूध पीने लगते हैं और भय भी उनको होता है, जिससे सिद्ध होता है कि पूर्व जन्म में वह जीव थे और अपने पूर्व किये हुए कर्मों को स्मरण करके वैसे ही करने लगते हैं। जो वैदिक अग्निहोत्रादि कर्म किया जाता है, वह भी दूसरे जन्म के फलभोगार्थ ही किया जाता है। इस सबसे यही सिद्ध होता है कि जीव भूत, भविष्यत् और वर्तमान तीनों कालों में बराबर बना रहता है, इसका नाश नहीं होता है। जो कुछ यह दृश्यमान नाम रूपवाला जाग्रत् दिखलाई देता है, वह उसी निराकार परमात्मा से ही निकला है। यह सुनकर श्वेतकेतु ने कहा कि हे पितः! आप कृपा करके फिर भी इसी को कहें। उद्दालक ने कहा कि बहुत अच्छा कहता हूं सुनो ॥ ३ ॥

इत्येकादशः खण्डः।

अथ षष्ठाध्यायस्य द्वादशः खण्डः।

मूलम्।

न्यग्रोधफलमत आहरेतीदं भगव इति भिन्द्धीति भिन्नं भगव इति किमत्र पश्यसीत्यण्व्य इवेमा धाना भगव इत्यासामङ्गैकां भिन्द्धीति भिन्ना भगव इति किमत्र पश्यसीति न किञ्चन भगव इति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

न्यग्रोधफलम्, अतः, आहर, इति, इदम्, भगवः, इति, भिन्द्धि, इति, भिन्नम्, भगवः, इति, किम्, अत्र, पश्यसि, इति, अण्व्यः, इव, इमाः, धानाः भगवः, इति, आसाम्, अङ्ग, एकाम्, भिन्द्धि, इति, भिन्ना, भगवः, इति, किम्, अत्र, पश्यसि, इति, न, किञ्चन, भगवः, इति॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
+ सौम्य	हे प्रियदर्शन !	इमाः	इन
अतः	इस सामने के	धानाः	बीजों को
न्यग्रोधफलम्	वट वृक्ष से एक फल को	अङ्ग	हे पुत्र !
आहर	ला	आसाम्	इनमें से
भगवः	हे भगवन् !	इति	किसी
इदम्	यह है	एकाम्	एक को
इति	इसको	भिन्द्धि	तोड़
भिन्द्धि	तोड़	भगवः	हे भगवन् !
इति	यह	इति	यह
भिन्नम्	तोड़ दिया गया	भिन्ना	तोड़ दिया गया
अत्र	इसमें	अत्र	इस बीज में
किम्	क्या	किम्	क्या
पश्यसि	देखता है	पश्यसि	देखता है
भगवः	हे भगवन् !	भगवः	हे भगवन् !
अण्व्यः	अति छोटे छोटे	किञ्चन	कुछ
इव	से	न	नहीं *

भावार्थ ।

हे सौम्य ! उद्दालक ऋषि अपने पुत्र श्वेतकेतु से कहते हैं कि हे प्रियपुत्र ! जो यह सामने वटवृक्ष है उसमें से एक फल तोड़ ले आ, उसने वैसा ही किया । एक फल ले आया, तब पिता ने कहा कि

*इस मंत्र में ६ इति छोड़ दिये गये हैं, उनसे कोई अर्थ सिद्ध नहीं होता है।

इसको तोड़ो। उसने वैसा ही किया, उसको तोड़ा। फिर पिता ने कहा कि इसके अन्दर क्या है? उसने कहा कि महाराज ! इसमें छोटे छोटे बीज हैं। फिर पिता ने कहा कि हे पुत्र ! इनमें से एक को तोड़ो। उसने एक बीज को तोड़ा। पिता ने कहा कि इसके अन्दर क्या देखता है? उसने कहा कि इसके अन्दर कुछ भी नहीं दिखाई देता है ॥ १ ॥

मूलम् ।

तꣳहोवाच यं वै सौम्यैतमणिमानं न निभालयस एतस्य वै सौम्यैषोऽणिम्न एवं महान्यग्रोधस्तिष्ठति श्रद्धस्व सौम्येति ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

तम्, ह, उवाच, यम्, वै, सौम्य, एतम्, अणिमानम्, न, निभालयसे, एतस्य, वै, सौम्य, एषः, अणिम्नः, एवम्, महान्यग्रोधः, तिष्ठति, श्रद्धस्व, सौम्य, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
उद्दालकः	उद्दालक ऋषि
तम्	उस श्वेतकेतु से
ह	स्पष्ट
+ इति	ऐसा
उवाच	कहता भया कि
सौम्य	हे प्रियपुत्र !
यम्	जिस
एतम्	इस
अणिमानम्	अतिसूक्ष्म अंश को
वै	निस्संदेह
न	नहीं
निभालयसे	देखता है तू

अन्वयः	पदार्थ
एतस्य वै	उसी
अणिम्नः	अतिसूक्ष्म अंश बीज का
सौम्य	हे प्रियदर्शन !
एषः	यह
एवम्	ऐसा
महान्यग्रोधः	बड़ा वटवृक्ष
तिष्ठति	खड़ा है
इति	इस प्रकार
सौम्य	हे प्रिय !
+ त्वम्	तू
श्रद्धस्व	विश्वास कर

भावार्थ ।

उद्दालक ऋषि कहते हैं कि हे प्रियपुत्र ! जिस वटबीज को तोड़ करके तूने देखा और उसके अन्दर कुछ नहीं पाया, उसी में से यह इतना बड़ा वृक्ष, जो तेरे सामने खड़ा है, निकला है । देख, कैसा शाखाओं, टहनियों और फलफूलों से लदा है । इसी प्रकार हे सौम्य ! यह संसार भी निराकार सत्ब्रह्म से निकलकर वटवृक्षवत् विस्तृत हो रहा है । हे पुत्र ! जब तू मेरे वाक्य में श्रद्धा करेगा तब तू समझेगा कि बीज के दो दालों के नीचे जो अतिसूक्ष्म अंकुर होता है, उसी में निराकार शक्ति वृक्ष के बढ़ने और फल-फूल देने के संस्कार को लिये हुए स्थित रहती है और फिर उसी में से काल पाकर ऐसा विशाल वृक्ष हो जाता है । इसी प्रकार मेरे उपदेश में श्रद्धा रखने से तुझको अनुभव हो जायगा कि अनिर्वचनीय सत् असत् से विलक्षण जगत् उसी सत् परमात्मा से निकला है ॥ २ ॥

मूलम् ।

स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदꣳ सर्वं तत्सत्यꣳस आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति भूय एव मा भगवान्विज्ञापयत्विति तथा सौम्येति होवाच ॥ ३ ॥

इति द्वादशः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

सः, यः, एषः, अणिमा, एतदात्म्यम्, इदम्, सर्वम्, तत, सत्यम्, सः, आत्मा, तत्, त्वम्, असि, श्वेतकेतो, इति, भूयः, एव, मा, भगवान्, विज्ञापयतु, इति, तथा, सौम्य, इति, ह, उवाच ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यः	जो	अणिमा	अतिसूक्ष्म
सः	वह	+ आख्यातः	कहा गया है

सः=वही
एषः=यह
आत्मा=आत्मा है
तत्=वही
सत्यम्=सत्य है
श्वेतकेतो=हे श्वेतकेतो !
तत्=सोई
त्वम्=तू
असि=है
+ च=और
एतदात्म्यम्=जो अतिसूक्ष्म सत आत्मा है
इति=सोई
इदम्=यह
सर्वम्=सब जगत है
इति=यह

+ श्रुत्वा=सुनकर
+ श्वेतकेतुः=श्वेतकेतु ने
+ उवाच=कहा कि
+ पितः=हे पिता !
भूयः=फिर
एव=भी
भगवान्=आप
मा=मुझको
ह=भलीप्रकार
विज्ञापयतु=उपदेश करें
इति=ऐसा
+ श्रुत्वा=सुनकर
+ पिता=पिता ने
उवाच=कहा कि
सौम्य=हे प्रियपुत्र !
तथा इति=ऐसा ही होगा

भावार्थ ।

उद्दालक ऋषि कहते हैं कि हे प्रियपुत्र ! जो अतिसूक्ष्म कहा गया है वही यह आत्मा है, वही सत्‌ब्रह्म है, वही सबका आधार है और वही तू है । यह सुनकर श्वेतकेतु ने कहा कि हे पिता ! और भी दृष्टान्तपूर्वक इसीको मेरे प्रति उपदेश कीजिये । उद्दालक ने कहा कि बहुत अच्छा ऐसा ही होगा ॥ ३ ॥

इति द्वादशः खण्डः ।

अथ षष्ठाध्यायस्य त्रयोदशः खण्डः ।

मूलम् ।

लवणमेतदुदकेऽवधायाथ मा प्रातरुपसीदथा इति स ह तथा चकार तꣳ होवाच यद्दोषा लवणमुदकेऽवाधा अङ्ग तदाहरेति तद्धावमृश्य न विवेद ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

लवणम्, एतत्, उदके, अवधाय, अथ, मा, प्रातः, उपसीदथाः, इति, सः, ह, तथा, चकार, तम्, ह, उवाच, यत्, दोषा, लवणम्, उदके, अवाधाः, अङ्ग, तत्, आहर, इति, तत्, ह, अवमृश्य, न, विवेद ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
+ उद्दालकः	उद्दालक ऋषि ने	+ उद्दालकः	उद्दालक ऋषि ने
+ उवाच	कहा कि	तम्	उस श्वेतकेतु से
अथ	अब	उवाच	कहा कि
+ त्वम्	तू	अङ्ग	हे प्रियवत्स !
एतत्	इस	दोषा	रात्रि में
लवणम्	लवणपिण्ड को	यत्	जो
उदके	जल में	लवणम्	लवण
अवधाय	डालकर	उदके	जल में
प्रातः	कल्ह प्रातःकाल	अवाधाः	छोड़दिया था
मा	मेरे पास	तत्	उसको
उपसीदथाः	आना	आहर	निकाल ला
इति	ऐसा	इति	ऐसा
+ उक्तः	कहा गया	+ श्रुत्वा	सुनकर
सः	वह श्वेतकेतु	तत्	उस लवण को
ह	निस्संदेह	ह	अवश्य
तथा	वैसा	अवमृश्य	खोजता भया
+ एव	ही	+ तु	परन्तु
चकार	करता भया	न	नहीं
+ तदा	तब	विवेद	ज्ञान पाया

भावार्थ ।

उद्दालक ऋषि अपने पुत्र से कहते हैं कि हे सौम्य ! इस लवण-पिण्ड को ले और पानी में डालकर कल प्रातःकाल मेरे पास आना। श्वेतकेतु ने वैसा ही किया और जब दूसरे दिन प्रातःकाल अपने पिता

के पास गया, तब पिता ने कहा कि उस लवणपिण्ड को ला, जिसको तूने कल सायंकाल को पानी में छोड़ दिया था । वह श्वेतकेतु गया । पानी में हाथ डालकर बहुत टटोला, परन्तु पानी में लवण का कहीं पता न लगा ॥ १ ॥

मूलम् ।

यथा विलीनमेवाङ्गास्यान्तादाचामेति कथमिति लवणमिति मध्यादाचामेति कथमिति लवणमित्यन्तादाचामेति कथमिति लवणमित्यभिप्रास्यैतदथ मोपसीदथा इति तद्ध तथा चकार तच्छश्वत्संवर्तते तꣳ होवाचात्र वाव किल सत्सौम्य न निभालयसेऽत्रैव किलेति ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

यथा, विलीनम्, एव, अङ्ग, अस्य, अन्तात्, आचाम, इति, कथम्, इति, लवणम्, इति, मध्यात्, आचाम, इति, कथम्, इति, लवणम्, इति, अन्तात, आचाम, इति, कथम्, इति, लवणम्, इति, अभिप्रास्य, एतत्, अथ, मा, उपसीदथाः, इति, तत्, ह, तथा, चकार, तत्, शश्वत्, संवर्तते, तम्, ह, उवाच, अत्र, वाव, किल, सत्, सौम्य, न, निभालयसे, अत्र, एव, किल, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अङ्ग	हे पुत्र !	अन्तात्	ऊपरी भाग को
यथा	जिस प्रकार	आचाम	चख और कह
विलीनम्	जललीन	इति	यह
लवणम्	लवण को	कथम्	कैसा है
एव	निश्चय करके	+ पुत्रः	पुत्र ने
+ ज्ञास्यसि	तू जानेगा	+ उवाच	कहा कि
इति	सो	लवणम्	लवण
+ शृणु	सुन	इति	सा है
अस्य	इस जल के	मध्यात्	जल के मध्यभाग के

आचाम=चख और कह
कथम्=कैसा है
+ पुत्रः=पुत्र ने
+ उवाच=कहा कि
लवणम्=लवण
इति=सा है
+ अस्य=इसके
अन्तात्=अधोभाग को
आचाम=चख और कह
इति=यह
कथम्=कैसा है
+ पुत्रः=पुत्र ने
+ उवाच=कहा कि
+ लवणम्=लवण
इति=सा
+ अस्ति=है
+ पिता=पिता ने
+ उवाच=कहा कि
अथ=अब
एतत् अभिप्रास्य=इस चारों तरफ़ से चखे हुए लवण को त्यागकर
मा=मेरे
उपसीदथाः=पास आ
इति=ऐसा
+ श्रुत्वा=सुनकर
तत्=वह
ह=निस्संदेह
तथा=वैसा
+ एव=ही
चकार=करता भया
+ च=और (फिर)
इति=इस प्रकार
उवाच=बोला कि
+ भगवः=हे भगवन् !
तत्=वह लवण
+ अस्मिन्=इस जल में
शश्वत्=अच्छी प्रकार नित्य
संवर्तते=विद्यमान है
इति=ऐसे
+ उक्तवन्तम्=कहते हुए
तम्=उस श्वेतकेतु से
+ पिता=उद्दालक पिता ने
ह=स्पष्ट
+ उवाच=कहा कि
सौम्य=हे प्रियपुत्र !
इति=इसी प्रकार
सत्=वह सत्ब्रह्म
अत्र=इस शरीर में
वाव=ही
+ तिष्ठति=स्थित है
किल=परन्तु
न=नहीं
निभालयसे=दीखता है
किल=पर
अत्र एव इति=उसी में लय है

भावार्थ ।

जब श्वेतकेतु ने आकर अपने पिता से कहा कि लवणपिण्ड का

कहीं पता नहीं है । तब पिता ने कहा कि पानी को ऊपर से चख । उसने वैसा ही किया और कहने लगा कि निमक है । फिर पिता ने कहा कि मध्य में से चख । उसने वैसा ही किया और कहा कि निमक है । फिर पिता ने कहा कि नीचे से चख । उसने वैसा ही किया और कहा कि निमक है । तब उद्दालक ने कहा कि मुख के जल को फेंककर मेरे पास आ । उसने वैसा ही किया । जब वह पास आया तब पिता ने कहा कि हे पुत्र ! जैसे निमक इस सब जल में व्याप्त है, उसी तरह इस जगत् में सत् ब्रह्म सर्वत्र व्याप्त है । हे पुत्र ! जैसे पानी में लय हुआ निमक नेत्रादि इन्द्रियों का विषय नहीं है पर अनुभव द्वारा जाना जाता है, उसी प्रकार सत्ब्रह्म इन्द्रियों का विषय नहीं है पर अनुभव से साक्षात् किया जाता है ॥ २ ॥

मूलम् ।

स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदꣳ सर्वं तत्सत्यꣳ स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति भूय एव मा भगवान् विज्ञापयत्विति तथा सौम्येति होवाच ॥ ३ ॥

इति त्रयोदशः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

सः, यः, एषः, अणिमा, एतदात्म्यम्, इदम्, सर्वम्, तत्, सत्यम्, सः, आत्मा, तत्, त्वम्, असि, श्वेतकेतो, इति, भूयः, एव, मा, भगवान्, विज्ञापयतु, इति, तथा, सौम्य, इति, ह, उवाच ।

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यः=जो		एषः=यह	
सः=वह		आत्मा=आत्मा है	
अणिमा=अतिसूक्ष्म		तत्=वही	
+ आख्यातः=कहागया है		सत्यम्=सत्य है	
सः=वही		श्वेतकेतो=हे श्वेतकेतो !	

तत्=सोई
त्वम्=तू
असि=है
+ च=और
एतदात्म्यम्=जो यह सत् व्यापक आत्मा है
इति=सोई
इदम्=यह
सर्वम्=सब जगत् है
इति=इस प्रकार
+ श्रुत्वा=सुनकर
+ श्वेतकेतुः=श्वेतकेतु ने
उवाच=कहा कि
+ भगवः=हे भगवन् !
भूयः=और भी
भगवान्=आप
मा=मुझको
हु=भला प्रकार
विज्ञापयतु=उपदेश करें
इति + श्रुत्वा=यह सुन
+ उद्दालकः=उद्दालक ने
+ उवाच=कहा कि
सौम्य=हे प्रियवत्स !
तथा एव इति=ऐसा ही होगा

भावार्थ ।

उद्दालक ऋषि कहते हैं कि हे प्रियपुत्र ! जो अतिसूक्ष्म कहा गया है वही यह आत्मा है, वही सत् ब्रह्म है और वही तू है । यह सुनकर श्वेतकेतु ने कहा कि हे भगवन् ! आप कृपाकर और भी उपदेश करें । उद्दालक ने कहा बहुत अच्छा, सुनो, कहता हूं ॥ ३ ॥

इति त्रयोदशः खण्डः ।

अथ षष्ठाध्यायस्य चतुर्दशः खण्डः ।

मूलम् ।

यथा सौम्य पुरुषं गन्धारेभ्योऽभिनद्धाक्षमानीय तं ततोऽतिजने विसृजेत्स यथा तत्र प्राङ् वोदङ् वाधराङ् वा प्रत्यङ् वा प्रध्मायीताभिनद्धाक्ष आनीतोऽभिनद्धाक्षो विसृष्टः ॥ १ ॥ *

---

* इसका सम्बन्ध अगले मंत्र से है ।

पदच्छेदः ।

यथा, सौम्य, पुरुषम्, गन्धारेभ्यः, अभिनद्धाक्षम्, आनीय, तम्, ततः, अतिजने, विसृजेत्, सः, यथा, तत्र, प्राङ्, वा, उदङ्, वा, अधराङ्, वा, प्रत्यङ्, वा, प्रध्मायीत, अभिनद्धाक्षः, आनीतः, अभिनद्धाक्षः, विसृष्टः ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
सौम्य	हे प्रियदर्शन !	प्राङ्	पूर्वमुख होता हुआ
यथा	जिस प्रकार	वा	अथवा
+ कश्चित्	कोई	उदङ्	उत्तरमुख होता हुआ
+ तस्करः	चोर	वा	अथवा
+ कश्चित्	किसी	अधराङ्	अधोमुख होता हुआ
अभिनद्धाक्षम्	नेत्रबंध	वा	अथवा
पुरुषम्	पुरुष को	प्रत्यङ्	पश्चिमाभिमुख होता हुआ
गन्धारेभ्यः	गन्धार देश से	प्रध्मायीत	चिल्लावे कि
आनीय	लाकर	+ अहम्	मैं
तम्	उस	अभिनद्धाक्षः	बद्धनेत्र
+ आनीतम्	लाये हुए को	आनीतः	लाया गया हूं
अतिजने	निर्जन वन में	वा	और
विसृजेत्	छोड़ दे	अभिनद्धाक्षः	बद्धनेत्र
ततः	तो	+ एव	ही
सः	वह पुरुष	विसृष्टः	छोड़ा गया हूँ
तत्र	उस वन में		

भावार्थ ।

उद्दालक ऋषि अपने पुत्र श्वेतकेतु से कहते हैं कि हे सौम्य ! जैसे कोई चोर किसी पुरुष की आंखों में पट्टी बांधकर और हाथ को रस्सी से बांधकर गन्धारदेश से लाकर किसी वन बिषे छोड़ दे और वहां पर वह किसी मनुष्य को न पाकर कभी पूर्व, कभी उत्तर, कभी पश्चिम और कभी दक्षिण को इधर उधर घूमता हुआ चिल्लावे, यह

कहता हुआ कि चोरों ने मुझको मेरी आंख में पट्टी बांधकर और गन्धार देश से लाकर ऐसी हालत में यहां पर छोड़ दिया है ॥ १ ॥

मूलम् ।

तस्य यथाभिनहनं प्रमुच्य प्रब्रूयादेतां दिशं गन्धारा एतां दिशं व्रजेति स ग्रामाद् ग्रामं पृच्छन् पण्डितो मेधावी गन्धारानेवोपसंपद्येतैवमेवेहाचार्यवान् पुरुषो वेद तस्य तावदेव चिरं यावन्न विमोक्ष्येऽथ सम्पत्स्य इति ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

तस्य, यथा, अभिनहनम्, प्रमुच्य, प्रब्रूयात्, एताम्, दिशम्, गन्धाराः, एताम्, दिशम्, व्रज, इति, सः, ग्रामात्, ग्रामम्, पृच्छन्, पण्डितः, मेधावी, गन्धारान्, एव, उपसम्पद्येत, एवम्, एव, इह, आचार्यवान्, पुरुषः, वेद, तस्य, तावत्, एव, चिरम्, यावत्, न, विमोक्ष्ये, अथ, सम्पत्स्ये, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
यथा	जैसे
तस्य	उस
+ विक्रोशतः	नेत्रबंद चिल्लाते हुए पुरुष की
अभिनहनम्	पट्टी को
प्रमुच्य	खोल करके
+ कश्चित्	कोई
+ दयालुः	दयालु पुरुष
प्रब्रूयात्	कहे कि
एताम्	इस
दिशम्	दिशा की ओर
गन्धाराः	गन्धार देश
+ सन्ति	हैं
एताम्	इस
दिशम्	दिशा को
व्रज	तू जा
इति	ऐसा
प्रमोचितः	छोड़ा गया
सः	वह पुरुष
+ यदि	अगर
पण्डितः	पण्डित
+ च	और
मेधावी	बुद्धिमान्
+ अस्ति	है

+ तर्हि=तो
ग्रामात्=ग्राम से
ग्रामम्=ग्राम को
पृच्छन्=पूछता हुआ
गन्धारान्=गन्धारदेश को
एव=अवश्य
उपसम्पद्येत=प्राप्त हो जायगा
एवम्=ऐसे
एव=ही
इह=इस लोक में
आचार्यवान्=विद्वान्
पुरुषः=पुरुष
इति=इस प्रकार
वेद=जानता है कि
तस्य=उसका
तावत् एव=तबही तक
चिरम्=देर है
यावत्=जबतक
+ सः=वह
न=नहीं
विमोक्ष्ये=बंध से छूटता है
अथ=बंध से छूटते ही
सम्पत्स्ये=सत् ब्रह्म को प्राप्त हो जायगा

भावार्थ ।

उद्दालक ऋषि कहते हैं कि हे प्रियपुत्र ! जब कोई दयालु पुरुष ऐसे दुःखी पुरुष के आर्त शब्द को सुनकर उसके पास जाकर उसके आंख की पट्टी को अलग करदे और हाथ की रस्सी को खोल दे, यह कहता हुआ कि गन्धारदेश यहां से उत्तर की तरफ़ है, इस रास्ते से वापस चला जा । जब उसकी आंख की पट्टी खुल गई और हाथ की रस्सी दूर हो गई, तब वह पुरुष दयालु पुरुष के उपदेशानुसार गांव से गांव को पूछता हुआ और वहां से ठीक बतलाने पर और राह को ठीक समझ लेने पर अपने गन्धारदेश को पहुँच जाता है और दूसरी जगह नहीं जाता है, उसी प्रकार अज्ञ पुरुष को कामरूपी चोर, परमधाम-रूपी गन्धारदेश से ज्ञानरूपी नेत्र में अविद्यारूपी पट्टी से बांधकर संसाररूपी वन में लाकर छोड़ देता है, जिसमें अनेक दुःखरूपी स्त्री पुत्रादि जीव व्याघ्रादि की सूरत में रहते हैं और जिन करके वह भयभीत हुआ-हुआ इधर उधर चिल्लाता फिरता है, पर जब कभी श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ आचार्य मिल जाता है और वह उसकी उस

दशापर करुणा करके उसके विचाररूपी नेत्र से अविद्यारूपी पट्टी को खोल देता है, तब वह विषयवासना से छूटा हुआ सद्गुरु के उपदेशानुसार, सीधा रास्ता पाकर और जानकर अपने गृहरूप आत्मा को, जहां से वह पकड़ लाया गया था, पहुँच जाता है ॥ २ ॥

मूलम् ।

स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदꣳ सर्वं तत्सत्यꣳस आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति भूय एव मा भगवान्विज्ञापयत्विति तथा सौम्येति होवाच ॥ ३ ॥

इति चतुर्दशः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

सः, यः, एषः, अणिमा, एतदात्म्यम, इदम , सर्वम्, तत्, सत्यम्, सः, आत्मा, तत्, त्वम, असि, श्वेतकेतो, इति, भूयः, एव, मा, भगवान्, विज्ञापयतु, इति, तथा, सौम्य, इति, ह, उवाच ॥

अन्वयः	पदार्थ
यः	जो
सः	वह
अणिमा	अतिसूक्ष्म
+ आख्यातः	कहा गया है
सः	वही
एषः	यह
आत्मा	आत्मा है
तत्	वही
सत्यम्	सत्य है
श्वेतकेतो	हे श्वेतकेतो !
तत्	वही
त्वम्	तू
असि	है
+ च	और

अन्वयः	पदार्थ
एतदात्म्यम्	जो सत्व्यापक आत्मा है
इति	सोई
इदम्	यह
सर्वम्	सब जगत् है
इति	यह
+ श्रुत्वा	सुनकर
+ श्वेतकेतुः	श्वेतकेतु ने
+ उवाच	कहा कि
+ पितः	हे पिता !
भूयः	फिर
अपि	भी
भगवान्	आप
+ कृपया	कृपा करके

+ एनाम्=इसी ब्रह्मविद्या को	+ पिता=उद्दालक पिता ने
ह=अवश्य	उवाच=कहा कि
मा=मेरे प्रति	सौम्य=हे प्रियपुत्र !
विज्ञापयतु=उपदेश करें	तथा एव=ऐसा ही
इति=यह	अस्तु=होगा
+ श्रुत्वा=सुन	

भावार्थ ।

उद्दालक ऋषि अपने पुत्र से कहते हैं कि हे प्रियवत्स ! जो अति सूक्ष्म कहा गया है, वही यह आत्मा है, वही सत्य ब्रह्म है और वही तू है । ऐसा सुनकर श्वेतकेतु ने प्रार्थना की कि हे पिता ! आप फिर भी इसी ब्रह्मविद्या का उपदेश मुझको करें । उद्दालक ऋषि ने कहा कि बहुत अच्छा, सुनो, कहता हूं ॥ ३ ॥

इति चतुर्दशः खण्डः ।

अथ षष्ठाध्यायस्य पञ्चदशः खण्डः ।

मूलम् ।

पुरुषꣳसौम्योतोपतापिनं ज्ञातयः पर्युपासते जानासि मां जानासि मामिति तस्य यावन्न वाङ्मनसि संपद्यते मनः प्राणे प्राणस्तेजसि तेजः परस्यां देवतायां तावज्जानाति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

पुरुषम्, सौम्य, उत, उपतापिनम्, ज्ञातयः, पर्युपासते, जानासि, माम्, जानासि, माम्, इति, तस्य, यावत्, न, वाक्, मनसि, संपद्यते, मनः, प्राणे, प्राणः, तेजसि, तेजः, परस्याम्, देवतायाम्, तावत्, जानाति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
सौम्य=हे प्रियपुत्र !		+ दृष्टान्तम्=दृष्टान्त	
उत=और		+ शृणु=सुनो	

+ यदा=जब
उपतापिनम्= { ज्वरादि से पीड़ित अर्थात् मरते समय }
पुरुषम्=मनुष्य के पास
ज्ञातयः=उसके संबंधी लोग
पर्युपासते=चारों ओर बैठते हैं
+ च=और
+ आहुः=कहते हैं कि
माम्=मुझको
+ त्वम्=तू
जानासि=जानता है
माम्=मुझको
+ त्वम्=तू
जानासि=जानता है
+ तु=तो
तावत्=तभीतक
जानाति=वह जानता है
यावत्=जबतक
तस्य=उसकी
वाक्=वाणी
मनसि=मन में
मनः=मन
प्राणे=प्राण में
प्राणः=प्राण
तेजसि=अग्नि में
तेजः=अग्नि
परस्याम्=पर
देवतायाम्=ब्रह्मदेव में
न=नहीं
+ सम्पद्यते=प्रवेश करते हैं

भावार्थ ।

उद्दालक ऋषि कहते हैं कि हे प्रियपुत्र ! जब कोई पुरुष बीमार हो जाता है और उसके मरने का समय निकट आ जाता है, तब उसके संबन्धी उसके चारों ओर घेरकर बैठ जाते हैं और पिता कहता है कि हे पुत्र ! तुम मुझको पहिंचानते हो ? उसी तरह पुत्र कहता है कि हे पिता ! तुम मुझको पहिंचानते हो ? वह तभीतक उनको पहिंचानता है जबतक उसकी वाणी मन में, मन प्राण में, प्राण अग्नि में, और अग्नि परब्रह्मदेव में लय नहीं हो जाते हैं ॥ १ ॥

मूलम् ।

अथ यदाऽस्य वाङ्मनसि संपद्यते मनः प्राणे प्राणस्तेजसि तेजः परस्यां देवतायामथ न जानाति ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यदा, अस्य, वाक्, मनसि, संपद्यते, मनः, प्राणे, प्राणः, तेजसि, तेजः, परस्याम्, देवतायाम्, अथ, न, जानाति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ	तत् पश्चात्	तेजः	अग्नि
यदा	जब	परस्याम्	पर
अस्य	उसकी	देवतायाम्	ब्रह्मदेव में
वाक्	वाणी	सम्पद्यते	प्राप्त हो जाता है
मनसि	मन में	अथ	तब
मनः	मन	+ सः	वह पुरुष
प्राणे	प्राण में	+ तान्	उनको
प्राणः	प्राण	न	नहीं
तेजसि	अग्नि में	जानाति	जानता है

भावार्थ ।

उद्दालक ऋषि अपने पुत्र से कहते हैं कि हे प्रियपुत्र! पुरुष का मरना संसार में वैसे ही है जैसे सुषुप्ति अवस्था में सत्‌ब्रह्म को प्राप्त होना है। इसीके दिखलाने के लिये श्रुति कहती है कि जब अग्नि सत्‌ब्रह्म में लय हो जाती है तब वह पुरुष किसी को नहीं पहिंचानता है, उसी तरह से सुषुप्ति में सत्‌ब्रह्म को प्राप्त हुआ पुरुष कुछ नहीं जानता है। अज्ञानी पुरुष मरण को प्राप्त होकर अपने पूर्वले शरीर मनुष्य, सिंह, अश्व, देवतादि बिषे पूर्व कर्मों के संस्कार के कारण प्रवेश करते हैं अर्थात् जन्म लेते हैं, परन्तु जो ज्ञानी पुरुष हैं और जिन्होंने सम्पूर्ण कर्म की वासनाओं को काट दिया है तथा ब्रह्मविद् आचार्य के उपदेश से अपने वास्तविक स्वरूप को प्राप्त हैं, वे फिर देह त्यागानन्तर जन्म को नहीं पाते हैं। हे प्रियपुत्र! इसके समझने के लिये उदाहरण को सुनो। लवण की दो डली में से एक डली घृतसहित है और दूसरी घृतरहित

है । यदि दोनों डली पानी में छोड़ दी जावें तो घृतरहित डली पानी में गलकर पानीरूप ही हो जायगी और घृतसहित डली पानी में पड़ी हुई भी चिक्रनाई के कारण ज्यों-की-त्यों निकल आवेगी । इसी प्रकार अज्ञानी पुरुष कर्मों के संस्काररूपी चिकनाई से युक्त हुआ जलरूप सत्ब्रह्म को प्राप्त हो करके भी चिकनाई के कारण बाहर निकल आता है, परन्तु ज्ञानरूपी अग्नि करके नाश कर दिया है चिकनाईरूप कर्म के संस्कार को जिसने वह जब जलरूप सत्ब्रह्म को प्राप्त होता है तब वह ब्रह्म में प्रवेश करके ब्रह्मभाव को प्राप्त हो, ब्रह्मरूप ही हो जाता है । इस कारण श्रुति कहती है कि जब ऐसे पुरुष की वाणी मन में, मन प्राण में, प्राण अग्नि में, अग्नि परब्रह्म देव में लय हो जाती है तब वह पुरुप कुछ नहीं जानता है केवल सच्चिदानन्दरूप हो जाता है ॥ २ ॥

मूलम् ।

स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदꣳसर्वं तत्सत्यꣳ स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति भूय एव मा भगवान्विज्ञापयत्विति तथा सोम्येति होवाच ॥ ३ ॥

इति पञ्चदशः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

सः, यः, एषः, अणिमा, एतदात्म्यम्, इदम्, सर्वम्, तत्, सत्यम्, सः, आत्मा, तत्, त्वम्, असि, श्वेतकेतो, इति, भूयः, एव, मा, भगवान्, विज्ञापयतु, इति, तथा, सौम्य, इति, ह, उवाच ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यः=जो		सः=वही	
सः=वह		एषः=यह	
अणिमा=अति सूक्ष्म		आत्मा=आत्मा है	
+ आख्यातः=कहा गया है		तत्=वही	

सत्यम्=सत्य है
श्वेतकेतो=हे श्वेतकेतो !
तत्=वही
त्वम्=तू
असि=है
+ च=और
एतदात्म्यम्=जो सत्व्यापक आत्मा है
इति=सोई
इदम्=यह
सर्वम्=सब जगत् है
इति=यह
+ श्रुत्वा=सुनकर
+ पुत्रः=श्वेतकेतु ने
+ उवाच=कहा कि
भगवान्=आप
भूयः=फिर
+ अपि=भी
मा=मुझको
हु=अवश्य
विज्ञापयतु=उपदेश करें
इति=यह
+ श्रुत्वा=सुन
+ पिता=पिता ने
उवाच=कहा कि
सौम्य=हे प्रियपुत्र !
तथा=ऐसा
एव=ही
+ अस्तु=होगा

भावार्थ ।

उद्दालक ऋषि कहते हैं कि हे प्रियदर्शन ! जो अतिसूक्ष्म कहा गया है वही यह आत्मा है, वही सत्य है, वही इस जगत् का आधार है और वही सत्ब्रह्मरूप तू है । ऐसा सुनकर श्वेतकेतु ने कहा कि हे पूज्यतम ! आप फिर भी इसी को उपदेश करें । उद्दालक ऋषि ने कहा कि बहुत अच्छा, कहता हूं ॥ ३ ॥

इति पञ्चदशः खण्डः ।

अथ षष्ठाध्यायस्य षोडशः खण्डः ।

मूलम् ।

पुरुषꣳ सौम्योत हस्तगृहीतमानयन्त्यपहार्षीत्स्तेयमकार्षीत्परशुमस्मै तपतेति स यदि तस्य कर्ता भवति तत एवानृतमात्मानं कुरुते सोऽनृताभिसन्धोऽनृतेनात्मानमन्तर्धाय परशुं तप्तं प्रतिगृह्णाति स दह्यतेऽथ हन्यते ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

पुरुषम्, सौम्य, उत, हस्तगृहीतम्, आनयन्ति, अपहार्षीत्, स्तेयम्, अकार्षीत्, परशुम्, अस्मै, तपत, इति, सः, यदि, तस्य, कर्ता, भवति, ततः, एव, अनृतम्, आत्मानम्, कुरुते, सः, अनृताभिसन्धः, अनृतेन, आत्मानम्, अन्तर्धाय, परशुम्, तप्तम्, प्रतिगृह्णाति, सः, दह्यते, अथ, हन्यते ।

अन्वयः	पदार्थ
सौम्य	हे प्रियपुत्र !
+ यदा	जब
+ राजदूताः	राजदूत
हस्तगृहीतम्	हस्तबद्ध हुए
पुरुषम्	संदिग्ध चोर को
आनयन्ति	लाते हैं
उत	और
+ ब्रुवन्ति	कहते हैं कि
+ एषः	इसने
अपहार्षीत्	धन का हरण किया है
स्तेयम्	चोरी
अकार्षीत्	की है
+ तदा	तब
+ न्यायाधिकारिणः	न्यायाधिकारी पुरुष
इति	ऐसी
+ आज्ञापयन्ति	आज्ञा देते हैं कि
अस्मै	इस चोर की जांच के लिये
परशुम्	परशु नामक अस्त्र को
तपत	तपाओ
यदि	अगर
सः	वह
तस्य	उस चोरी का
कर्ता	करनेवाला
भवति	है
ततः	तो
तत्	उस छिपाने से
एव	ही
आत्मानम्	अपने को
अनृतम्	झूठा
कुरुते	बनाता है
+ च	और
+ यदा	जब
सः	वह
अनृताभिसन्धः	झूठ बोलनेवाला
अनृतेन	झूठ से
आत्मानम्	अपने को
अन्तर्धाय	आच्छादित कर
तप्तम् परशुम्	तप्त परशु को
प्रतिगृह्णाति	पकड़ता है
तदा सः	तब वह
दह्यते	जल जाता है
अथ	तत्पश्चात्
हन्यते	मार डाला जाता है

भावार्थ ।

उद्दालक ऋषि अपने पुत्र से उदाहरण देकर फिर समझाते हैं कि हे प्रियवत्स ! जब संदिग्ध चोर के हाथ बांध करके राजदूत कचहरी में लाते हैं और न्यायाधिकारी पुरुष के सम्मुख खड़ा करते हैं और कहते हैं कि इसने धन का हरण किया है और चोरी की है । जब वह चोरी करने से इन्कार करता है और झूठ बोलता है, तब उसके हाथ पर सत्य की जांच के लिये अग्नि से तप्त परशु (कुल्हाड़ी) को रख देते हैं । यदि उसका हाथ जल जाता है तो वह बध कर दिया जाता है ॥ १ ॥

मूलम् ।

अथ यदि तस्याकर्ता भवति तत एव सत्यमात्मानं कुरुते स सत्याभिसन्धः सत्येनात्मानमन्तर्धाय परशुं तप्तं प्रतिगृह्णाति स न दह्यतेऽथ मुच्यते ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यदि, तस्य, अकर्ता, भवति, ततः, एव, सत्यम्, आत्मानम्, कुरुते, सः, सत्याभिसन्धः, सत्येन, आत्मानम्, अन्तर्धाय, परशुम्, तप्तम्, प्रतिगृह्णाति, सः, न, दह्यते, अथ, मुच्यते ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ	और	कुरुते	करता है
यदि	अगर	+ च	और
तस्य	उस चोरी का	+ यदा	जब
+ सः	वह	सः	वह
अकर्ता	नहीं करनेवाला	सत्याभिसन्धः	सत्य बोलनेवाला
भवति	है तो	एव	निश्चय करके
ततः	उस सत्यभाषण से	सत्येन	सत्य से
आत्मानम्	अपने को	आत्मानम्	अपने को
सत्यम्	सत्य	अन्तर्धाय	रक्षा करके

तप्तम्=तप्त
परशुम्=परशु को
प्रतिगृह्णाति=पकड़ लेता है
+ तु=तब
सः=वह
न=नहीं
दह्यते=जलता है
अथ=और फिर
मुच्यते=छोड़ दिया जाता है

भावार्थ ।

और हे श्वेतकेतो ! अगर उस पुरुष ने चोरी नहीं की है और सत्यभाषण करके अपने को सत्य से युक्त करता है, तब वह तप्तलोह को हाथ से पकड़ लेता है और जब नहीं जलता है तब वह छोड़ दिया जाता है ॥ २ ॥

मूलम् ।

स यथा तत्र नादाह्येतैतदात्म्यमिदꣳ सर्वं तत्सत्यꣳ स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति तद्धास्य विजज्ञाविति विजज्ञाविति ॥ ३ ॥

इति षोडशः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

सः, यथा, तत्र, न, अदाह्येत, एतदात्म्यम्, इदम, सर्वम्, तत्, सत्यम्, सः, आत्मा, तत्, त्वम्, असि, श्वेतकेतो, इति, तत्, ह, अस्य, विजज्ञौ, इति, विजज्ञौ, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
+ सौम्य=	हे प्रियपुत्र !	+ इह=	संसार बिषे
यथा=	जिस तरह	+ दुःखैः=	दुःखों करके
सः=	वह सत्यवादी	+ न=	नहीं
तत्र=	उस परीक्षा में	+ दह्यते=	तपायमान होता है
न=	नहीं	एतदात्म्यम्=	और जो यह सत् व्यापक आत्मा है
अदाह्येत=	जलता है	इति=	वही
+ इति एव=	उसी तरह	इदम्=	यह
+ ब्रह्मनिष्ठः=	ब्रह्मनिष्ठ		
+ सत्याभिसन्धः=	सत्यवादी पुरुष		

सर्वम्=सब जगत् है
\+ च=और
सः=वही
आत्मा=तेरा आत्मा है
तत्=वही
सत्यम्=सत्य है
श्वेतकेतो=हे श्वेतकेतो !
तत्=वही
त्वम्=तू
असि=है
इति=इस प्रकार
अस्य=उस अपने पिता के
तत्=उस उपदेश को
ह=भली प्रकार
विजज्ञौ=समझता भया
इति=इस प्रकार
विजज्ञौ=समझता भया

भावार्थ ।

उद्दालक ऋषि अपने पुत्र से कहते हैं कि हे प्रियपुत्र ! जैसे संदिग्ध चोर सत्य का आश्रय करके तपित कुल्हाड़ी को न्यायाध्यक्ष के सामने उठा लेता है और नहीं जलता है, उसी तरह से वह पुरुष जिसने सत्य ब्रह्म को सम्पूर्ण जगत् में व्यापक जाना है और सबका आत्मा समझा है, वह किसी प्रकार से दुःख करके तपायमान नहीं होता है और वही ऐसा व्यापक ब्रह्म तू है । ऐसा उद्दालक ऋषि अपने पुत्र को समझाता भया और वह श्वेतकेतु भली प्रकार इस ब्रह्मविद्या को समझता भया ॥ ३ ॥

इति षष्ठोऽध्यायः ।

अथ सप्तमाध्यायस्य प्रथमः खण्डः ।

मूलम् ।

ॐ अधीहि भगव इति होपससाद सनत्कुमारं नारदस्तꣳ होवाच यद्वेत्थ तेन मोपसीद ततस्त ऊर्ध्वं वक्ष्यामीति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

अधीहि, भगवः, इति, ह, उपससाद, सनत्कुमारम्, नारदः, तम्,

ह, उवाच, यत्, वेत्थ, तेन, मा, उपसीद, ततः, ते, ऊर्ध्वम्, वक्ष्यामि, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
नारदः	नारद ऋषि	ह	स्पष्ट
सनत्कुमारम्	सनत्कुमार ऋषि के पास	तम्	उस नारद ऋषि से
उपससाद	गये	ह	निश्चय के साथ
+ च	और	+ उवाच	कहते भये कि
इति	इस प्रकार	+ त्वम्	तुम
उवाच	कहते भये कि	यत्	जो कुछ
भगवः	हे भगवन्!	वेत्थ	जानते हो
+ माम्	मुझको	तेन	उससे
अधीहि	आप शिक्षा दें	मा (माम्)	मुझको
इति	ऐसा	उपसीद	विज्ञात करो
+ श्रुत्वा	सुनकर	ततः ऊर्ध्वम्	तब फिर
+ सः	वह सनत्कुमार ऋषि	ते	तुम्हारे लिये
		वक्ष्यामि	मैं उपदेश करूंगा

भावार्थ ।

अब नारद और सनत्कुमार ऋषियों का संवाद चला है । जब नारद ऋषि सनत्कुमार ऋषि के पास गये और प्रार्थना की कि हे भगवन्! मुझको ब्रह्मविद्या विषे शिक्षा दीजिये तब सुनकर सनत्कुमार ने नारद ऋषि से यह कहा कि हे नारद! जो जो विद्या आप जानते हैं, उन सबको मुझसे कहें तत्पश्चात् मैं तुमको उपदेश करूंगा । सनत्कुमार ऋषि के पास नारद ऋषि के जाने का कारण यह था कि नारद ऋषि सब विद्या जानते थे परन्तु उनके चित्त में शान्ति नहीं थी, इसलिये आत्मविद्या की जिज्ञासा करके, चित्त की शान्ति के निमित्त, सनत्कुमार ऋषि के पास गये । यह जानकर कि विना श्रोत्रियब्रह्मनिष्ठ आत्मानुभवी आचार्य के उपदेश पाये, मुझको ब्रह्मविद्या की प्राप्ति नहीं होगी और न चित्त शान्त होगा । ऐसे

आचार्य भगवान् सनत्कुमार हैं और वह मेरे ज्येष्ठ भ्राता भी हैं, जैसा वह उपदेश मुझको करेंगे वैसा और कोई न करेगा; क्योंकि ब्रह्मविद्या सदा अपने प्यारे को ही यथायोग्य उपदेश की जाती है और वही उपदेश फलदायक होता है। जैसा कृष्ण भगवान् ने अर्जुन के प्रति, कपिल भगवान् ने देवहूती के प्रति और याज्ञवल्क्य भगवान् ने मैत्रेयी के प्रति किया है ॥ १ ॥

मूलम् ।

सहोवाच ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदꣳ सामवेद-माथर्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदं पित्र्यꣳ राशिं दैवं निधिं वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्यां ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां क्षत्रविद्यां नक्षत्रविद्याꣳ सर्पदेव-जनविद्यामेतद्भगवोऽध्येमि ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

सः, ह, उवाच, ऋग्वेदम, भगवः, अध्येमि, यजुर्वेदम्, सामवेदम्, आथर्वणम्, चतुर्थम्, इतिहासपुराणम्, पञ्चमम, वेदानाम्, वेदम्, पित्र्यम्, राशिम्, दैवम्, निधिम्, वाकोवाक्यम्, एकायनम्, देवविद्याम्, ब्रह्मविद्याम्, भूतविद्याम्, क्षत्रविद्याम, नक्षत्रविद्याम, सर्पदेवजनविद्याम्, एतत्, भगवः, अध्येमि ॥

अन्वयः	पदार्थ
ह	प्रसिद्ध
सः	वह नारद
उवाच	बोले कि
भगवः	हे भगवन्!
ऋग्वेदम्	ऋग्वेद
यजुर्वेदम्	यजुर्वेद
सामवेदम्	सामवेद
+ च	और
चतुर्थम्	चौथे
आथर्वणम्	अथर्ववेद को
अध्येमि	मैं जानता हूं
पञ्चमम्	पाँचवें
इतिहासपुराणम्	इतिहास पुराण

राशिम्, दैवम्=गणित और फलित ज्योतिष शास्त्र
निधिम्=निधिविद्या
वाकोवाक्यम्=तर्कशास्त्र
एकायनम्=नीतिशास्त्र
देवविद्याम्=निरुक्तशास्त्र
वेदानाम्=वेदों का
वेदम्=वेद अर्थात् व्याकरण शास्त्र
पित्र्यम्=श्राद्धकल्प
ब्रह्मविद्याम्=शिक्षाकल्पादि
क्षत्रविद्याम्=धनुर्वेद
भूतविद्याम्=भूततंत्रशास्त्र
नक्षत्रविद्याम्=ज्योतिषशास्त्र
सर्पदेवजन-विद्याम्=सर्पदेवजनविद्या
एतत्=इन सब विद्याओं को
भगवः=हे भगवन् !
अध्येमि=जानता हूं

भावार्थ ।

सनत्कुमार के पूछने पर नारद ऋषि कहते हैं कि हे भगवन् ! ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, इतिहासपुराण, गणित और फलित ज्योतिषशास्त्र, निधिशास्त्र, तर्कशास्त्र, नीतिशास्त्र, निरुक्तशास्त्र, व्याकरणशास्त्र, श्राद्धकल्प, शिक्षाकल्प, छन्द आदि, धनुर्विद्या, भूतविद्या, नक्षत्रविद्या और सर्पदेवजनविद्या इन सबको मैं भली प्रकार जानता हूं ॥ २ ॥

मूलम् ।

सोऽहं भगवो मन्त्रविदेवास्मि नात्मविच्छ्रुतꣳह्येव मे भगवद्दृशेभ्यस्तरति शोकमात्मविदिति सोऽहं भगवः शोचामि तं मा भगवाञ्छोकस्य पारं तारयत्विति तꣳहोवाच यद्वै किञ्चैतदध्यगीष्ठा नामैवैतत् ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

सः, अहम्, भगवः, मन्त्रवित्, एव, अस्मि, न, आत्मवित्, श्रुतम्, हि, एव, मे, भगवद्दृशेभ्यः, तरति, शोकम्, आत्मवित्, इति, सः, अहम्, भगवः, शोचामि, तम्, मा, भगवान्, शोकस्य, पारम्, तारयतु, इति, तम्, ह, उवाच, यत्, वै, किञ्च, एतत्, अध्यगीष्ठाः, नाम, एव, एतत् ॥

उत्तरार्ध ।

अन्वयः	पदार्थ
भगवः	हे भगवन् !
+ यद्यपि	यद्यपि
सः	वह वेदादिकों का पढ़नेवाला
+ च	और
मन्त्रवित्	मन्त्रों का जाननेवाला
एव	भी
अस्मि	मैं हूं
+ हि	तौ भी
अहम्	मैं
शोचामि	शोकयुक्त हूं
हि	क्योंकि
आत्मवित्	ब्रह्मवित्
अहम्	मैं
न	नहीं
+ अस्मि	हूं
भगवद्दृशेभ्यः	आप सरीखे
+ ब्रह्मविद्भ्यः	ब्रह्मज्ञानियों से
मे	मुझे
श्रुतम्	श्रवण
+ आसीत्	हो चुका है कि
आत्मवित्	आत्मज्ञानी
एव	निश्चय करके
शोकम्	दुःख को
तरति	पार कर जाता है
भगवः	हे भगवन् !

अन्वयः	पदार्थ
+ अतः	इस कारण
तम्	उस शोकग्रस्त
मा (माम्)	मुझको
भगवान्	आप
शोकस्य	शोक के
पारम्	पार
तारयतु	उतार देवें
इति	ऐसा
+ उक्तवन्तम्	कहते हुए
तम्	उस नारद से
ह	स्पष्ट
सः	वह
+ महर्षिः	महाऋषि सनत्कुमार
इति	इस प्रकार
उवाच	बोले कि
यत्	जो
किञ्च	कुछ
एतत्	इस कही हुई विद्या को
+ त्वम्	तुमने
अध्यगीष्ठाः	अध्ययन किया है
एतत्	यह सब
वै	निश्चय करके
नाम	नाममात्र
एव	ही है

भावार्थ ।

नारद ऋषि कहते हैं कि हे भगवन् ! मैंने यद्यपि वेदादिकों को पढ़ा है और मंत्रों को जाना है तथा उनके अनुसार कर्म भी किया

है , तो भी मैं शोक करके युक्त हूं; क्योंकि मैं ब्रह्मवित् नहीं हूं । आप सरीखे ब्रह्मज्ञानियों करके मैंने सुना है कि ब्रह्मज्ञानी अवश्य दुःख को पार कर जाते हैं, इसलिये मैं आपसे प्रार्थना करता हूं कि आप ब्रह्मविद्या बिषे मुझे ऐसा उपदेश करें कि मैं शोकसागर से अजाखुरवत् पार हो जाऊं । इस पर सनत्कुमार ऋषि ने कहा कि हे नारद ! जो कुछ कि तुमने अध्ययन किया है और जिसको कह सुनाया है, वह सब केवल नाममात्र विद्या हैं, उनसे शान्ति कदापि नहीं हो सकती है ॥ ३ ॥

मूलम् ।

नाम वा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेद आथर्वणश्चतुर्थ इतिहासपुराणः पञ्चमो वेदानां वेदः पित्र्यो राशिर्दैवो निधिर्वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्या ब्रह्मविद्या भूतविद्या क्षत्रविद्या नक्षत्रविद्या सर्वदेवजनविद्या नामैवैतन्नामोपास्वेति ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

नाम, वै, ऋग्वेदः, यजुर्वेदः, सामवेदः, आथर्वणःचतुर्थः, इतिहासपुराणः, पञ्चमः, वेदानाम, वेदः, पित्र्यः, राशिः, दैवः, निधिः, वाकोवाक्यम्, एकायनम् , देवविद्या, ब्रह्मविद्या, भूतविद्या, क्षत्रविद्या, नक्षत्रविद्या, सर्पदेवजनविद्या, नाम, एव, एतत् , नाम, उपास्व, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
+ देवर्षे	हे देवऋषि नारद !
ऋग्वेदः	ऋग्वेद
यजुर्वेदः	यजुर्वेद
सामवेदः	सामवेद
चतुर्थः	चौथा
आथर्वणः	अथर्ववेद
पञ्चमः	पाँचवाँ
इतिहासपुराणः	इतिहास पुराण
वेदानाम्	वेदों का
वेदः	वेद अर्थात् व्याकरण
पित्र्यः	श्राद्धकल्प
राशिः	गणितविद्या
दैवः	फलितशास्त्र
निधिः	निधिविद्या
एकायनम्	नीतिशास्त्र

वाकोवाक्यम्=तर्कशास्त्र	एतत्=यह सब विद्या
देवविद्या=निरुक्तशास्त्र	नाम=नाम हैं
ब्रह्मविद्या=शिक्षाकल्प छन्दादि	इति=इसलिये
भूतविद्या=भूततंत्रशास्त्र	नाम=नाम की
क्षत्रविद्या=धनुर्वेद	एव=ही
नक्षत्रविद्या=ज्योतिषशास्त्र	उपास्य=उपासना करो
सर्पदेवजनविद्या=सर्पदेवजनविद्या	

भावार्थ ।

हे सौम्य ! जब नारद ऋषि ने अपनी अध्ययन की हुई विद्या भगवान् सनत्कुमार को कह सुनाई, तब भगवान् सनत्कुमार ने विचार किया कि नारद ऋषि अनेक प्रकार की विद्या जानते हैं, इस कारण उन सबका संस्कार उनके अन्तःकरण विषे स्थित है, जो संशय की जड़ है । यावत् उस सबका अभाव न हो जायगा तावत् उनको आत्म-साक्षात्कार न होगा । अब अन्य सब आचार्यों को त्यागकर श्रद्धापूर्वक मेरे पास आये हैं इसलिए मेरा धर्म है कि उनको आत्मोपदेश करके शोकसागर से पार कर दूं और ऐसा तभी होगा जब उनको स्थूल नामो-पासना से लेकर अन्तःप्राणोपासना दिखाकर, ऋषि के संशय को दूरकर, सर्व का आश्रय जो महासूक्ष्म भूमाख्य सत् चैतन्य आत्मा है, उसका उपदेश किया जायगा । ऐसा सोचकर सनत्कुमार ऋषि ने नारद ऋषि से कहा कि जो कुछ विद्या आपने पढ़ी है, वह सब नाम ही है और नाम ब्रह्मबुद्धि करके उपास्य है ॥ ४ ॥

मूलम् ।

स यो नाम ब्रह्मेत्युपास्ते यावन्नाम्नो गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यो नाम ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवो नाम्नो भूय इति नाम्नो वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति ॥ ५ ॥

इति प्रथमः खण्डः ।

पदच्छेदः।

सः, यः, नाम, ब्रह्म, इति, उपास्ते, यावत्, नाम्नः, गतम्, तत्र, अस्य, यथाकामचारः, भवति, यः, नाम, ब्रह्म, इति, उपास्ते, अस्ति, भगवः, नाम्नः, भूयः, इति, नाम्नः, वाव, भूयः, अस्ति, इति, तत्, मे, भगवान्, ब्रवीतु, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
सः	वह नामोपासक	भवति	होता है
यः	जो	इति	इस कारण
नाम	नाम	भगवः	हे भगवन्!
ब्रह्म	ब्रह्म की	+ यदि	अगर
इति	इस प्रकार	नाम्नः	नाम से
उपास्ते	उपासना करता है	भूयः	श्रेष्ठ
यः	जो कोई	+ कश्चित्	कोई और
नाम	नाम	अस्ति	है तो
ब्रह्म	ब्रह्म की	भगवान्	आप
इति	इस प्रकार	तत्	उसको
उपास्ते	उपासना करता है तो	मे	मेरे प्रति
यावत्	जहांतक	ब्रवीतु	उपदेश करें
नाम्नः	नाम की	+ नारद	हे नारद!
गतम्	गति	नाम्नः	नाम से
+ अस्ति	है	वाव	निश्चय करके
तत्र	तहांतक	+ अन्यः	और भी
अस्य	इसका	भूयः	श्रेष्ठ
यथाकामचारः	स्वेच्छागमन	अस्ति	है

भावार्थ।

हे सौम्य! जो नाम ब्रह्म की उपासना करता है वह यावत् नाम का विषय है, उस बिषे जैसी कामना करता है सोई उसको प्राप्त होता है। हे सौम्य! जब इस प्रकार सनत्कुमार ने कहा तब नारदऋषि ने

प्रश्न किया कि हे भगवन् ! यह नाम ही ब्रह्म है किंवा इस नाम का भी और कोई दूसरा ब्रह्म है ? इस प्रकार पूछे जाने पर सनत्कुमार ऋषि ने कहा कि नाम का भी कोई अधिकतर ब्रह्म है । तब नारद ऋषि ने कहा कि हे भगवन् ! ऐसे श्रेष्ठ ब्रह्म का मुझको उपदेश करिए ॥ ५ ॥

इति प्रथमः खण्डः ।

अथ सप्तमाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः ।

मूलम् ।

वाग्वाव नाम्नो भूयसी वाग्वा ऋग्वेदं विज्ञापयति यजुर्वेदꣳ सामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदं पित्र्यꣳ राशिं दैवं निधिं वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्यां ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां क्षत्रविद्यां नक्षत्रविद्याꣳ सर्पदेवजनविद्यां दिवञ्च पृथिवीञ्च वायुञ्चाकाशञ्चापश्च तेजश्च देवाँश्च मनुष्याँश्च पशूꣳश्च वयाꣳसि च तृण-वनस्पतीञ्श्वापदान्याकीटपतङ्गपिपीलकं धर्मं चाधर्मं च सत्यञ्चानृतञ्च साधु चासाधु च हृदयज्ञं चाहृदयज्ञञ्च यद्वै वाङ् नाभविष्यन्न धर्मो नाधर्मो व्यज्ञापयिष्यन्न सत्यं नानृतं न साधु नासाधु न हृदयज्ञो नाहृदयज्ञो वागेवैत-त्सर्वं विज्ञापयति वाचमुपास्वेति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

वाक्, वाव, नाम्नः, भूयसी, वाक्, वै, ऋग्वेदम्, विज्ञापयति, यजु-र्वेदम्, सामवेदम्, आथर्वणम्, चतुर्थम्, इतिहासपुराणम्, पञ्चमम्, वेदानाम्, वेदम्, पित्र्यम्, राशिम्, दैवम्, निधिम्, वाकोवाक्यम्, एका-यनम्, देवविद्याम्, ब्रह्मविद्याम्, भूतविद्याम्, क्षत्रविद्याम्, नक्षत्रविद्याम्,

सर्पदेवजनविद्याम्, दिवम्, च, पृथिवीम्, च, वायुम्, च, आकाशम्, च, आपः, च, तेजः, च, देवान्, च, मनुष्यान्, च, पशून्, च, वयांसि, च, तृणवनस्पतीन्, श्वापदानि, आकीटपतङ्गपिपीलकम्, धर्मम्, च, अधर्मम्, च, सत्यम्, च, अनृतम्, च, साधु, च, असाधु, च, हृदयज्ञम्, च, अहृदयज्ञम्, च, यत्, वै, वाक्, न, अभविष्यत्, न, धर्मः, न, अधर्मः, व्यज्ञापयिष्यत्, न, सत्यम्, न, अनृतम्, न, साधु, न, असाधु, न, हृदयज्ञः, न, अहृदयज्ञः, वाक्, एव, एतत्, सर्वम्, विज्ञापयति, वाचम्, उपास्व, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
वाक्	वाणी
नाम्नः	नाम से
वाव	अवश्य
भूयसी	श्रेष्ठ है
+ हि	क्योंकि
वाक्	वाणी
वै	ही
ऋग्वेदम्	ऋग्वेद
यजुर्वेदम्	यजुर्वेद
सामवेदम्	सामवेद
चतुर्थम्	चौथे
आथर्वणम्	अथर्ववेद
पञ्चमम्	पांचवें
इतिहासपुराणं	इतिहास पुराण
वेदानाम्	विद्याओं की
वेदम्	विद्या व्याकरण को
विज्ञापयति	बताती है
च	और
पित्र्यम्	श्राद्धकल्प

अन्वयः	पदार्थ
राशिम्	गणित
दैवम्	फलितविद्या
निधिम्	निधिविद्या
वाकोवाक्यम्	तर्कविद्या
एकायनम्	नीतिशास्त्र
देवविद्याम्	निरुक्तशास्त्र
ब्रह्मविद्याम्	शिक्षा कल्प छन्दादि
भूतविद्याम्	भूततंत्रशास्त्र
क्षत्रविद्याम्	धनुर्वेदविद्या
नक्षत्रविद्याम्	ज्योतिर्विद्या
सर्पदेवजनविद्याम्	सर्पदेवजन विद्या को
+ अपि	भी
+ विज्ञापयति	बताती है
च	और
दिवम्	स्वर्ग
च	और
पृथिवीम्	पृथिवी
च	और

वायुम्=वायु
च=और
आकाशम्=आकाश
च=और
आपः=जल
च=और
देवान्=देवताओं
च=और
मनुष्यान्=मनुष्यों
च=और
पशून्=पशु
च=और
वयांसि=पक्षी
च=और
तृणवनस्पतीन्=तृणवनस्पति
श्वापदानि=हिंसक जन्तु
आकीटपतङ्गपिपीलकम्=कीट पतङ्ग चींटी पर्यन्त
धर्मम्=धर्म
च=और
अधर्मम्=अधर्म
च=और
सत्यम्=सत्य
च=और
अनृतम्=असत्य
च=और
साधु=साधु
च=और
असाधु=असाधु
च=और
हृदयज्ञम्=प्रिय
च=और
अहृदयज्ञम्=अप्रिय
एतत्=इन
सर्वम्=सबको
वाक्=वाणी
एव=ही
विज्ञापयति=बतलाती है
यत्=जो
वाक्=वाणी
न=न
अभविष्यत्=होती तो
न=न
धर्मः=धर्म
न=न
अधर्मः=अधर्म
न=न
सत्यम्=सत्य
न=न
अनृतम्=असत्य
न=न
साधु=सज्जन
न=न
असाधु=दुर्जन
हृदयज्ञम्=प्रिय
न=न
अहृदयज्ञम्=अप्रिय
वै=निश्चय करके
व्यज्ञापयिष्यत्=जाना जाता
इति=इसलिये
वाचम्=वाणी को
+ब्रह्मबुद्ध्या=ब्रह्मबुद्धि से
उपास्व=उपासना करो

भावार्थ ।

हे सौम्य! वाणी नाम से अधिक श्रेष्ठ है; क्योंकि वाणी ही करके लोग ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, इतिहासपुराण, व्याकरण, श्राद्धकल्प, गणितविद्या, उत्पत्तिविद्या, नीतिविद्या, तर्कविद्या, नीतिशास्त्र, निरुक्तशास्त्र, शिक्षा कल्पछन्दादि, भूततंत्रशास्त्र, धनुर्वेदविद्या, ज्योतिषविद्या, सर्प देव जन विद्या को पढ़ते और समझते हैं। एवं वाणी ही करके स्वर्ग, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, देव, मनुष्य, पशु, पक्षी, वनस्पति, हिंसक जीव, कीट, पतंग, धर्म, अधर्म, सत्य, असत्य, साधु, असाधु, प्रिय और अप्रिय को मनुष्य जानता और समझता है। यदि वाणी न होती तो न धर्म, न अधर्म, न सत्य, न असत्य, न प्रिय और न अप्रिय जाना जाता। इसलिये हे नारद! तुम वाणी की उपासना ब्रह्मबुद्धि करके करो ॥ १ ॥

मूलम् ।

स यो वाचं ब्रह्मेत्युपास्ते यावद्वाचो गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यो वाचं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवो वाचो भूय इति वाचो वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति ॥ २ ॥

इति द्वितीयः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

सः, यः, वाचम्, ब्रह्म, इति, उपास्ते, यावत्, वाचः, गतम्, तत्र अस्य, यथाकामचारः, भवति, यः, वाचम्, ब्रह्म, इति, उपास्ते, अस्ति, भगवः, वाचः, भूयः, इति, वाचः, वाव, भूयः, अस्ति, इति, तत्, मे, भगवान्, ब्रवीतु, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
सः=वह		वाचम्=वाणी द्वारा	
यः=जो		ब्रह्म=ब्रह्म को	

अन्वयः पदार्थ	अन्वयः पदार्थ
उपास्ते=उपासता है	भूयः=श्रेष्ठ
यः=जो	+ कश्चित्=कोई
वाचम्=वाणी	+ अन्यः=दूसरा
इति=करके	अस्ति=है
ब्रह्म=ब्रह्म को	इति=ऐसा
उपास्ते=उपासता है तो	+ श्रुत्वा=सुनकर
यावत्=जहां तक	+ सनत्कुमारः=सनत्कुमार ऋषि ने
वाचः=वाणी का	+ प्रत्युवाच=उत्तर दिया कि हां
गतम्=विषय है	वाचः=वाणी से
तत्र=तहां तक	वाव=भी
अस्य=उसका	भूयः=श्रेष्ठ
यथाकामचारः=स्वेच्छानुसार गमन	अस्ति=है
भवति=होता है	इति=तब
इति=ऐसा	+ नारदः=नारद ने
+ श्रुत्वा=सुनकर	+ आह=कहा कि
+ नारदः=नारदजी ने	भगवान्=आप
+ उवाच=कहा कि	तत्=उसको
भगवः=हे भगवन् !	मे=मेरे प्रति
वाचः=वाणी से	ब्रवीतु=कहें

भावार्थ ।

जो वाणी करके ब्रह्म की उपासना करता है, तो जहाँ तक वाणी का विषय है वहाँ तक उसका गमन, उसकी इच्छानुसार होता है। जब ऐसा नारद ने सुना तब सनत्कुमार ऋषि से कहा कि हे भगवन्! कोई और भी दूसरी वस्तु है जो वाणी से श्रेष्ठ हो ? ऐसा सुनकर सनत्कुमार ने कहा कि हां, ऐसा है । तब नारद ने कहा कि हे भगवन् ! आप कृपा करके मेरे प्रति उसका उपदेश करें ॥ २ ॥

इति द्वितीयः खण्डः ।

अथ सप्तमाध्यायस्य तृतीयः खण्डः ।

मूलम् ।

मनो वाव वाचो भूयो यथा वै द्वे वाऽऽमलके द्वे वा कोले द्वौ वाऽक्षौ मुष्टिरनुभवत्येवं वाचं च नाम च मनोऽनुभवति स यदा मनसा मनस्यति मन्त्रानधीयीयेत्यथाधीते कर्माणि कुर्वीयेत्यथ कुरुते पुत्रांश्च पशूंश्चेच्छेयेत्यथेच्छत इमं च लोकममुं चेच्छेयेत्यथेच्छते मनो ह्यात्मा मनो हि लोको मनो हि ब्रह्म मन उपास्स्वेति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

मनः, वाव, वाचः, भूयः, यथा, वै, द्वे, वा, आमलके, द्वे, वा, कोले, द्वौ, वा, अक्षौ, मुष्टिः, अनुभवति, एवम्, वाचम्, च, नाम, च, मनः, अनुभवति, सः, यदा, मनसा, मनस्यति, मन्त्रान् , अधि-इयीय, इति, अथ, अधीते, कर्माणि, कुर्वीय, इति, अथ, कुरुते, पुत्रान्, च, पशून्, च, इच्छेय, इति, अथ, इच्छते, इमम् , च, लोकम्, अमुम्, च, इच्छेय, इति, अथ, इच्छते, मनः, हि, आत्मा, मनः, हि, लोकः, मनः, हि, ब्रह्म, मनः, उपास्स्व, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
मनः	मन
वाचः	वाणी से
वाव	अवश्य
भूयः	श्रेष्ठ है
यथा	जिस प्रकार
वै	निश्चय करके
द्वे	दो
आमलके	आंवलों
वा	अथवा
द्वे	दो
कोले	बेरों
वा	अथवा
द्वौ	दो
अक्षौ	बहेरों को
+ पुरुषस्य	पुरुष की
मुष्टिः	मुट्ठी में
अनुभवति	मन अनुभव करता है

एवम्=इसी प्रकार
मनः=मन
वाचम्=वाणी
च=और
नाम=नाम को
+ स्वस्मिन्=अपने में स्थित
अनुभवति=अनुभव करता है
यदा=जब
सः=वह अर्थात् पुरुष
मनसा=मन करके
इति=ऐसा
मनस्यति=मनन करता है कि
+ अहम्=मैं
मन्त्रान्=मन्त्रों को
अधीयीय=पढ़ूं
अथ=तब
अधीते=वह पढ़ता है
कर्माणि=कर्मों को
कुर्वीय=करूं
इति=ऐसा
+ संचिन्त्य=चिंतवन करके
अथ=फिर
कुरुते=कर्म करता है
पुत्रान्=पुत्रों को
च=और
पशून्=पशुओं को
इच्छेय=इच्छापूर्वक प्राप्त होऊं
इति=ऐसा
+ संचिन्त्य=चिंतवन करके
अथ=फिर
इच्छते=पुत्रादिकों को पाता है
इमम्=इस
लोकम्=लोक
च=और
अमुम्=परलोक को
इच्छेय=इच्छापूर्वक प्राप्त होऊं
इति=ऐसा
+ संचिन्त्य=चिंतवन करके
अथ=फिर
+ सः=वह
इच्छते=प्राप्त होता है
हि=क्योंकि
मनः=मन
+ एव=ही
आत्मा=आत्मा है
मनः=मन
हि=ही
लोकः=लोक है
च=और
मनः=मन
हि=ही
ब्रह्म=ब्रह्म है
इति=इस प्रकार
मनः=मन की
उपास्व=उपासना करो

भावार्थ ।

हे नारद ! मन वाणी से अवश्य श्रेष्ठ है, जैसे दो आँवलों अथवा

दो बेरों अथवा दो बहेरों को मुट्ठी में रखकर उनका अनुभव मन द्वारा पुरुष करता है, इसी प्रकार वाणी और नाम को पुरुष अपने मनबिषे अनुभव करता है। जब पुरुष मन करके चाहता है कि मैं मंत्रों को पढूं, तब वह मंत्रों को पढ़ता और समझता है। जब चाहता है कि कर्मों को करूं, तब कर्मों को करता है। जब चाहता है कि पुत्र और पशुओं को प्राप्त होऊं, तब मन करके उनको पाता है। जब इच्छा करता है कि इस लोक और परलोक को प्राप्त होऊं, तब उनको मन करके पाता है। यह मन ही आत्मा है, मन ही लोक है और यह मन ही ब्रह्म है। इस प्रकार मन को ब्रह्म जानकर उपासना करो ॥ १ ॥

मूलम्।

स यो मनो ब्रह्मेत्युपास्ते यावन्मनसो गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यो मनो ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवो मनसो भूय इति मनसो वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान् ब्रवीत्विति ॥ २ ॥

इति तृतीयः खण्डः।

पदच्छेदः।

सः, यः, मनः, ब्रह्म, इति, उपास्ते, यावत्, मनसः, गतम्, तत्र, अस्य, यथाकामचारः, भवति, यः, मनः, ब्रह्म, इति, उपास्ते, अस्ति, भगवः, मनसः, भूयः, इति, मनसः, वाव, भूयः, अस्ति, इति, तत्, मे, भगवान्, ब्रवीतु, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
सः	वह
यः	जो
मनः	मनरूप
ब्रह्म	ब्रह्म को
इति	इस प्रकार
उपास्ते	उपासता है
यः	जो
मनः	मनरूप

ब्रह्म=ब्रह्म को
उपासते=उपासता है तो
यावत्=जहां तक
मनसः=मन की
गतम्=गति है
तत्र=वहां तक
यथाकामचारः=उसकी इच्छानुसार गमन
अस्य=उसका
भवति=होता है
इति=ऐसा
+ श्रुत्वा=सुनकर
+ नारदः=नारद ने
+ उवाच=कहा कि
भगवः=हे भगवन्!
मनसः=मन से भी
+ कश्चित्=कोई
+ अन्यः=दूसरा
भूयः=श्रेष्ठ
अस्ति=है
+ सनत्कुमारः=सनत्कुमार ने
इति=ऐसा
+ प्रत्युवाच=उत्तर दिया कि हां
मनसः=मन से भी
वाव=निस्सन्देह
+ कश्चित्=कोई
भूयः=श्रेष्ठ
अस्ति=है
+ तदा=तब
+ नारदः=नारद ने
+ आह=कहा कि
भगवान्=आप
तत्=उसको
मे=मेरे प्रति
ब्रवीतु=कहें

भावार्थ ।

हे सौम्य! जो कोई मनरूप ब्रह्म की उपासना करता है तो जहां तक मन की गति है वहां तक उसका गमन उसकी इच्छानुसार होता है। यह सुनकर नारद ने कहा कि हे भगवन्! मन से भी कोई अधिक श्रेष्ठ है? इसके उत्तर में सनत्कुमारऋषि ने कहा कि हां, हैं। तब नारदजी ने कहा कि हे भगवन्! आप कृपा करके उसको मेरे प्रति कहें ॥ २ ॥

इति तृतीयः खण्डः ।

अथ सप्तमाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः ।

मूलम् ।

सङ्कल्पो वाव मनसो भूयान्यदा वै सङ्कल्पयतेऽथ मनस्यत्यथ वाचमीरयति तामु नाम्नीरयति नाम्नि मन्त्रा एकं भवन्ति मन्त्रेषु कर्माणि ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

सङ्कल्पः, वाव, मनसः, भूयान्, यदा, वै, सङ्कल्पयते, अथ, मनस्यति, अथ, वाचम्, ईरयति, ताम्, उ, नाम्नि, ईरयति, नाम्नि, मन्त्राः, एकम्, भवन्ति, मन्त्रेषु, कर्माणि ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
सङ्कल्पः	संकल्प	ताम्	उस वाणी को
वाव	निस्सन्देह	उ	निश्चय करके
मनसः	मन से	नाम्नि	नाम की ओर
भूयान्	श्रेष्ठ है	ईरयति	प्रेरणा करता है
यदा	जब	+ च	और
+ पुरुषः	पुरुष	नाम्नि	नाम में
वै	निश्चय करके	मन्त्राः	सब मन्त्र
सङ्कल्पयते	संकल्प करता है	एकम् भवन्ति	लीन रहते हैं
अथ	तब	+ च	और
मनस्यति	मनन करता है	मन्त्रेषु	मन्त्रों में
अथ	इसके पीछे	कर्माणि	सम्पूर्ण कर्म
वाचम्	वाणी को	+ एकम्भवन्ति	लीन रहते हैं
ईरयति	उच्चारण करता है		

भावार्थ ।

सनत्कुमार ऋषि कहते हैं कि हे नारद ! संकल्प मन से श्रेष्ठ है, क्योंकि पुरुष पहिले संकल्प करता है, फिर मनन करता है, इसके पीछे वाणी को उच्चारण करता है । उस वाणी को किसी वस्तु के नाम से संयुक्त करता है और नाम में मन्त्र गुप्तभाव से स्थित रहते हैं और मन्त्रों में सब कर्म स्थित रहते हैं ॥ १ ॥

मूलम् ।

तानि ह वा एतानि संकल्पैकायनानि संकल्पात्मकानि संकल्पे प्रतिष्ठितानि समक्लृपतां द्यावापृथिवी समकल्पेतां वायुश्चाकाशं च समकल्पन्तापश्च तेजश्च तेषाᳬं संक्लृप्त्यै वर्षᳬं संकल्पते वर्षस्य संक्लृप्त्या अन्नᳬं संकल्पतेऽन्नस्य संक्लृप्त्यै प्राणाः संकल्पन्ते प्राणानाᳬं संक्लृप्त्यै मन्त्राः संकल्पन्ते मन्त्राणाᳬं संक्लृप्त्यै कर्माणि संकल्पन्ते कर्मणाᳬं संक्लृप्त्यै लोकः संकल्पते लोकस्य संक्लृप्त्यै सर्वᳬं संकल्पते स एष संकल्पः संकल्पमुपास्वेति ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

तानि, ह, वा, एतानि, संकल्पैकायनानि, संकल्पात्मकानि, संकल्पे, प्रतिष्ठितानि, सम्, अक्लृपताम्, द्यावापृथिवी, सम्, अकल्पेताम्, वायुः, च, आकाशम्, च, समकल्पन्त, आपः, च, तेजः, च, तेषाम्, संक्लृप्त्यै, वर्षम्, संकल्पते, वर्षस्य, संक्लृप्त्यै, अन्नम्, संकल्पते, अन्नस्य, संक्लृप्त्यै, प्राणाः, संकल्पन्ते, प्राणानाम्, संक्लृप्त्यै, मन्त्राः, संकल्पन्ते, मन्त्राणाम्, संक्लृप्त्यै, कर्माणि, संकल्पन्ते, कर्मणाम्, संक्लृप्त्यै, लोकः, संकल्पते, लोकस्य, संक्लृप्त्यै, सर्वम्, संकल्पते, सः, एषः, संकल्पः, संकल्पम्, उपास्व, इति ।

अन्वयः	पदार्थ
संकल्पैकायनानि	संकल्प ही है स्थान जिनका
संकल्पात्मकानि	संकल्प ही है स्वरूप जिनका
च	और
संकल्पे	संकल्प में जो
प्रतिष्ठितानि	स्थित हैं ऐसे
तानि	वे
एतानि	ये नाम आदि हैं
वा	और

द्यावापृथिवी=द्यु और पृथ्वी
ह=निश्चय करके
समक्लृपताम्=संकल्पकृत हैं
च=और
वायुः=वायु
च=और
आकाशम्=आकाश
समकल्पेताम्=संकल्पकृत हैं
च=तथा
आपः=जल
च=और
तेजः=अग्नि
समकल्पन्त=संकल्पकृत हैं
तेषाम्=उनका
संक्लृप्त्यै=संकल्प करके
+ पुरुषः=पुरुष
वर्षम्=वर्षा को
संकल्पते=संकल्प करता है
वर्षस्य=वर्षा को
संक्लृप्त्यै=संकल्प करके
अन्नम्=अन्न को
संकल्पते=संकल्प करता है
अन्नस्य=अन्न को
संक्लृप्त्यै=संकल्प करके
प्राणाः=प्राण
संकल्पन्ते=संकल्प किये जाते हैं
प्राणानाम्=प्राणों को
संक्लृप्त्यै=संकल्प करके
मन्त्राः=मन्त्र
संकल्पन्ते=संकल्प किये जाते हैं
मन्त्राणाम्=मन्त्रों को
संक्लृप्त्यै=संकल्प करके
कर्माणि=कर्म
संकल्पन्ते=संकल्प किये जाते हैं
कर्मणाम्=कर्मों को
संक्लृप्त्यै=संकल्प करके
लोकः=लोक
संकल्पते=संकल्प किया जाता है
लोकस्य=लोक को
संक्लृप्त्यै=संकल्प करके
सर्वम्=सब जगत्
संकल्पते=संकल्प किया जाता है
सः=वह
एषः=यह सब
संकल्पः=संकल्प ही है
इति=इस कारण
+ नारद=हे नारद !
संकल्पम्=संकल्प की
उपास्व=उपासना करो

भावार्थ ।

हे नारद ! संकल्प ही है स्थान जिनका, संकल्प ही है स्वरूप जिनका, संकल्प ही में है स्थिति जिनकी, ऐसे वे ये नामादिक हैं ॥

द्यौ और पृथ्वी संकल्पकृत हैं, वायु और आकाश संकल्पकृत हैं, जल और अग्नि संकल्पकृत हैं । इनको संकल्प करके पुरुष वर्षा का संकल्प करता है, वर्षा को संकल्प करके अन्न को संकल्प करता है, अन्न को संकल्प करके प्राण को संकल्प करता है, प्राणों को संकल्प करके मंत्रों को संकल्प करता है, मंत्रों को संकल्प करके कर्मों को संकल्प करता है, कर्मों को संकल्प करके लोक को संकल्प करता है और लोक को संकल्प करके सब जगत् को संकल्प करता है । इस कारण यह सब जगत् संकल्परूप ही है । हे नारद ! अब तुम संकल्प की उपासना करो ॥ २ ॥

मूलम् ।

स यः संकल्पं ब्रह्मेत्युपास्ते क्लृप्तान्वै स लोकान् ध्रुवान्ध्रुवः प्रतिष्ठितान् प्रतिष्ठितोऽव्यथमानानव्यथमानोऽभिसिध्यति यावत्संकल्पस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यः संकल्पं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवः संकल्पाद्भूय इति संल्पाद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति ॥ ३ ॥

इति चतुर्थः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

सः, यः, संकल्पम्, ब्रह्म, इति, उपास्ते, क्लृप्तान्, वै, सः, लोकान्, ध्रुवान्, ध्रुवः, प्रतिष्ठितान्, प्रतिष्ठितः, अव्यथमानान्, अव्यथमानः, अभिसिध्यति, यावत्, संकल्पस्य, गतम्, तत्र, अस्य, यथाकामचारः, भवति, यः, संकल्पम्, ब्रह्म, इति, उपास्ते, अस्ति, भगवः, संकल्पात्, भूयः, इति, संकल्पात्, वाव, भूयः, अस्ति, इति, तत्, मे, भगवान्, ब्रवीतु, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
सः	वह
यः	जो
संकल्पम्	संकल्परूप
ब्रह्म	ब्रह्म को
इति	इस प्रकार
उपास्ते	उपासता है
यः	जो
संकल्पम्	संकल्परूप
ब्रह्म	ब्रह्म को
उपास्ते	उपासता है तो
सः	वह
वै	निश्चय करके
ध्रुवः	निश्चल
प्रतिष्ठितः	प्रतिष्ठित
अव्यथमानः	भयरहित
+ सन्	होता हुआ
क्लृप्तान्	समर्थित
ध्रुवान्	अचल
प्रतिष्ठितान्	प्रतिष्ठित
अव्यथमानान्	भयरहित
लोकान्	लोकों को
अभिसिध्यति	प्राप्त होता है
+ च	और
यावत्	जहां तक
संकल्पस्य	संकल्प का
गतम्	गमन है
तत्र	वहां तक
अस्य	इस उपासक की
यथाकामचारः	इच्छानुसार गमन
भवति	होता है
इति	ऐसा
+ श्रुत्वा	सुनकर
+ नारदः	नारद ने
+ उवाच	कहा कि
भगवः	हे भगवन् !
संकल्पात्	संकल्प से
भूयः	श्रेष्ठ
+ कश्चित्	कोई
+ अन्यः	दूसरा भी
अस्ति	है
+ नारद	हे नारद !
संकल्पात्	संकल्प से
वाव	भी
भूयः	श्रेष्ठ
अस्ति	है
+ तदा	तब
+ नारदः	नारद ने
इति	ऐसा
+ उवाच	कहा कि
भगवान्	आप
तत्	उसको
मे	मेरे प्रति
ब्रवीतु	कहें

भावार्थ ।

हे नारद ! वह जो संकल्पद्वारा ब्रह्म की उपासना करता है वह निस्सन्देह निश्चल प्रतिष्ठित भयरहित होता हुआ अचल प्रतिष्ठित भय-

रहित लोकों को प्राप्त होता है और जहांतक संकल्प का गमन है वहांतक उस उपासक की इच्छानुसार गमन होता है । ऐसा सुनकर सनत्कुमार ऋषि से नारद ऋषि ने कहा कि हे भगवन् ! क्या संकल्प से भी कोई दूसरा श्रेष्ठ है ? इसके उत्तर में सनत्कुमार ऋषि ने कहा कि हां, है । तब नारद ने कहा कि हे भगवन् ! आप उसको मेरे प्रति उपदेश करें ॥ ३ ॥

इति चतुर्थः खण्डः ।

अथ सप्तमाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः ।

मूलम् ।

चित्तं वाव संकल्पाद्भूयो यदा वै चेतयतेऽथ संकल्पयतेऽथ मनस्यत्यथ वाचमीरयति तामु नाम्नीरयति नाम्नि मन्त्रा एकं भवन्ति मन्त्रेषु कर्माणि ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

चित्तम्, वाव, संकल्पात्, भूयः, यदा, वै चेतयते, अथ, संकल्पयते, अथ, मनस्यति, अथ, वाचम्, ईरयति, ताम्, उ, नाम्नि, ईरयति, नाम्नि, मन्त्राः, एकम्, भवन्ति, मन्त्रेषु, कर्माणि ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
चित्तम्	चित्त	संकल्पयते	संकल्प करता है
संकल्पात्	संकल्प से	अथ	फिर
वाव	निस्सन्देह	मनस्यति	मनन करता है =अर्थात् विचार करता है
भूयः	श्रेष्ठ है	अथ	फिर
यदा	जब	वाचम्	वाणी को
+ पुरुषः	पुरुष	ईरयति	उच्चारण करता है
चेतयते	चिंतन करता है	उ	और
अथ	तब		
वै	ही		

ताम्=उस वाणी को	एकम् भवन्ति=लीन रहते हैं
नाम्नि=नाम प्रति	+ च=और
ईरयति=प्रेरणा करता है	मन्त्रेषु=मन्त्रों में
नाम्नि=नाम में	कर्माणि=सब कर्म
मन्त्राः=मन्त्र	+ एकम् भवन्ति=लीन रहते हैं

भावार्थ ।

सनत्कुमार ऋषि कहते हैं कि हे नारद ! संकल्प से चित्त श्रेष्ठ है; क्योंकि चिंतन करने के पीछे पुरुष संकल्प करता है और बाद को मनन अर्थात् विचार करता है और तत्पश्चात् वाणी को उच्चारण करता है तथा फिर वाणी को वस्तुओं के नाम से संयुक्त करता है । वस्तुओं के नामों में मंत्र लीन रहते हैं और मंत्रों में कर्म लीन रहते हैं ॥ १ ॥

मूलम् ।

तानि ह वा एतानि चित्तैकायनानि चित्तात्मानि चित्ते प्रतिष्ठितानि तस्माद्यद्यपि बहुविदचित्तो भवति नायमस्तीत्येवैनमाहुर्यदयं वेद यद्वा अयं विद्वान्नेत्थमचित्तः स्यादित्यथ यद्यल्पविच्चित्तवान् भवति तस्मा एवोत शुश्रूषन्ते चित्तꣳह्येवैषामेकायनं चित्तमात्मा चित्तं प्रतिष्ठा चित्तमुपास्स्वेति ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

तानि, ह, वा, एतानि, चित्तैकायनानि, चित्तात्मानि, चित्ते, प्रतिष्ठितानि, तस्मात्, यदि, अपि, बहुवित्, अचित्तः, भवति, न, अयम्, अस्ति, इति, एव, एनम्, आहुः, यत्, अयम्, वेद, यत्, वै, अयम्, विद्वान्, न, इत्थम्, अचित्तः, स्यात्, इति, अथ, यदि, अल्पवित्, चित्तवान्, भवति, तस्मै, एव, उत, शुश्रूषन्ते, चित्तम्, हि, एव, एषाम्, एकायनम्, चित्तम्, आत्मा, चित्तम्, प्रतिष्ठा, चित्तम्, उपास्व, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
चित्तैकायनानि	चित्त ही है स्थान जिनका
चित्तात्मानि	चित्त ही है स्वरूप जिनका
+ च	और
चित्ते	चित्त में ही है
प्रतिष्ठितानि	स्थिति जिनकी
+ एवम्	ऐसे
तानि	वे
एतानि	ये नामादिक हैं
तस्मात्	इस लिये
यद्यपि	यद्यपि
+ पुरुषः	पुरुष
बहुवित्	बहुत विद्वान् अर्थात् वेद का ज्ञाता है
+ परम्	पर
अचित्तः	चित्तरहित
भवति	है तो
अयम्	यह विद्वान्
न	नहीं
अस्ति	है
इति	ऐसा
एनम्	उसको
+ पुरुषाः	लोग
आहुः	कहते हैं
+ च	और
यत्	जो कुछ
अयम्	वह
वेद	जानता है

अन्वयः	पदार्थ
+ तत्	वह सब
+ वृथा	वृथा
ह वा	ही है
यद्वै	यदि
अयम्	वह पुरुष
विद्वान्	विद्वान्
+ स्यात्	होता तो
इत्थम्	ऐसा
अचित्तः	चित्तरहित
न	नहीं
स्यात्	होता
अथ	और
यदि	अगर
अल्पवित्	थोड़ा जानने-वाला है
+ परम्	परन्तु
चित्तवान्	चित्तसम्पन्न
भवति	है
उत	तो
तस्मै	उसको
एव	ही
+ जनाः	लोग
शुश्रूषन्ते	पूजते हैं
हि	क्योंकि
चित्तम्	चित्त
एव	ही
एषाम्	इन सबोंका
एकायनम्	केन्द्रस्थान है
चित्तम्	चित्त
एव	ही

आत्मा=आत्मा है
चित्तम्=चित्त ही
प्रतिष्ठा=प्रतिष्ठा है
इति=इस प्रकार
+ नारद=हे नारद !
चित्तम्=चित्त की
उपास्व=उपासना करो

भावार्थ ।

हे नारद ! चित्त ही है स्थान जिनका, चित्त ही है स्वरूप जिनका और चित्त में ही है स्थिति जिनकी, ऐसे वे ये नामादिक हैं अर्थात् नामादिक सब चित्त बिषे ही स्थित हैं। इसलिये यदि कोई पुरुष बहुत विद्वान् अर्थात् वेदादिकों का ज्ञाता है परन्तु चित्तरहित है अर्थात् चित्त उसका ठीक नहीं है, तो वास्तव में वह विद्वान् नहीं है और जो कुछ वह जानता है वह सब वृथा ही है; क्योंकि यदि वह पुरुष विद्वान् होता, तो ऐसा चित्तरहित न होता और यदि कोई पुरुष थोड़ा भी विद्वान् है परन्तु चित्तसम्पन्न है, अर्थात् उसका चित्त ठीक है, तो लोग उसको ही पूजते हैं; क्योंकि चित्त ही सब वस्तुओं का केन्द्रस्थान है, चित्त ही आत्मा है और चित्त ही प्रतिष्ठा है। हे नारद ! ऐसे चित्त की उपासना ब्रह्मबुद्धि से करो ॥ २ ॥

मूलम् ।

स यश्चित्तं ब्रह्मेत्युपास्ते चितान्वै स लोकान् ध्रुवान् ध्रुवः प्रतिष्ठितान्प्रतिष्ठितोऽव्यथमानानव्यथमानोऽभिसिद्ध्यति यावच्चित्तस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यश्चित्तं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवश्चित्ताद्भूय इति चित्ताद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान् ब्रवीत्विति ॥ ३ ॥

इति पञ्चमः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

सः, यः, चित्तम्, ब्रह्म, इति, उपास्ते, चितान्, वै, सः, लोकान्, ध्रुवान्, ध्रुवः, प्रतिष्ठितान्, प्रतिष्ठितः, अव्यथमानान्, अव्यथमानः,

अभिसिद्धयति, यावत्, चित्तस्य, गतम्, तत्र, अस्य, यथाकामचारः, भवति, यः, चित्तम्, ब्रह्म, इति, उपास्ते, अस्ति, भगवः, चित्तात्, भूयः, इति, चित्तात्, वाव, भूयः, अस्ति, इति, तत्, मे, भगवान्, ब्रवीतु, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
सः	वह
यः	जो
चित्तम्	चित्त
ब्रह्म	ब्रह्म को
उपास्ते	उपासता है
यः	जो
चित्तम्	चित्त
ब्रह्म	ब्रह्म को
उपास्ते	उपासता है तो
यावत्	जहां तक
चित्तस्य	चित्त का
गतम्	गमन है
तत्र	जहां तक
अस्य	उसका
यथाकामचारः	इच्छानुसार गमन
भवति	होता है
+ च	और
सः	वह
ध्रुवः	निश्चल
प्रतिष्ठितः	प्रतिष्ठित
अव्यथमानः	भयरहित होता हुआ
चितान्	चिंतन किये हुए
ध्रुवान्	अचल
प्रतिष्ठितान्	प्रतिष्ठित
अव्यथमानान्	पीडारहित

अन्वयः	पदार्थ
लोकान्	लोकों को
वै	निस्संदेह
अभिसिद्धयति	प्राप्त होता है
इति	ऐसा
+ श्रुत्वा	सुनकर
+ नारदः	नारद ने
+ उवाच	कहा कि
भगवः	हे भगवन् !
चित्तात्	चित्त से
+ अपि	भी
+ कश्चित्	कोई
+ अन्यः	दूसरा
भूयः	श्रेष्ठ है
इति	ऐसा
+ श्रुत्वा	सुनकर
+ सनत्कुमारः	सनत्कुमार ने
+ आह	कहा कि हां
चित्तात्	चित्त से
वाव	निश्चय करके
+ कश्चित्	और भी
भूयः	श्रेष्ठ
अस्ति	है
+ तदा	तब
+ नारदः	नारद ने

इति=ऐसा
+ आह=कहा कि
भगवान्=आप
तत्=उसको
मे=मेरे प्रति
ब्रवीतु=कहें

भावार्थ ।

हे सौम्य ! वह जो चित्तद्वारा ब्रह्म की उपासना करता है तो जहां तक चित्त का गमन होता है वहां तक उसकी इच्छानुसार उसका गमन होता है और वह निश्चल प्रतिष्ठित भयरहित होता हुआ चिंतन किये हुए अचल प्रतिष्ठित भयरहित लोकों को प्राप्त होता है । ऐसा सुनकर नारद बोले कि हे भगवन् ! क्या चित्त से भी श्रेष्ठ कोई दूसरा है ? इसके उत्तर में सनत्कुमार ऋषि ने कहा कि हां, चित्त से भी श्रेष्ठ है । तब नारद ने कहा कि हे भगवन् ! आप कृपाकर उसको मेरे प्रति कहें ॥ ३ ॥

इति पञ्चमः खण्डः ।

अथ सप्तमाध्यायस्य षष्ठः खण्डः ।

मूलम् ।

ध्यानं वाव चित्ताद्भूयो ध्यायतीव पृथिवी ध्यायतीवान्तरिक्षं ध्यायतीव द्यौर्ध्यायन्तीवापो ध्यायन्तीव पर्वता ध्यायन्तीव देवमनुष्यास्तस्माद्य इह मनुष्याणां महत्तां प्राप्नुवन्ति ध्यानपादांशा इवैव ते भवन्त्यथ येऽल्पाः कलहिनः पिशुना उपवादिनस्तेऽथ ये प्रभवो ध्यानपादांशा इवैव ते भवन्ति ध्यानमुपास्स्वेति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

ध्यानम्, वाव, चित्तात्, भूयः, ध्यायति, इव, पृथिवी, ध्यायति, इव, अन्तरिक्षम्, ध्यायति, इव, द्यौः, ध्यायन्ति, इव, आपः, ध्यायन्ति, इव, पर्वताः, ध्यायन्ति, इव, देवमनुष्याः, तस्मात्, ये, इह, मनुष्याणाम्,

महत्ताम्, प्राप्नुवन्ति, ध्यानपादांशाः, इव, एव, ते, भवन्ति, अथ, ये, अल्पाः, कलहिनः, पिशुनाः, उपवादिनः, ते, अथ, ये, प्रभवः, ध्यानपादांशाः, इव, एव, ते, भवन्ति, ध्यानम्, उपास्स्व, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
वाव	निश्चय करके
ध्यानम्	ध्यान
चित्तात्	चित्त से
भूयः	श्रेष्ठ है
पृथिवी	पृथ्वी
ध्यायति इव	ध्यान करती हुई सी
अन्तरिक्षम्	आकाश
ध्यायति	ध्यान करता हुआ
इव	सा
द्यौः	द्युलोक
ध्यायतिइव	ध्यान करता हुआसा
आपः	जल
ध्यायन्ति	ध्यान करते हुए
इव	से
पर्वताः	पर्वत
ध्यायन्ति	ध्यान करते हुए
इव	से
देवमनुष्याः	देवता और मनुष्य
ध्यायन्ति	ध्यान करते हुए
इव	से
+ प्रतीयन्ते	प्रतीत होते हैं
तस्मात्	इसलिये
ध्यानपादांशाः	ध्यान की एक भी कला है जिनमें
इव	ऐसे
ये	जो पुरुष

अन्वयः	पदार्थ
भवन्ति	हैं
ते	वे
इह	इस संसार विषे
मनुष्याणाम्	मनुष्यों में
महत्ताम्	श्रेष्ठता को
प्राप्नुवन्ति	प्राप्त होते हैं
अथ	और
ते	वे
ये	जो
अल्पाः	ध्यानकला से रहित हैं
ते	वे
कलहिनः	द्वेषी
पिशुनाः	निन्दक
+ च	और
उपवादिनः	लड़ाके हैं
अथ	और
ध्यानपादांशाः	ध्यान की एक कला है जिनमें
इव	ऐसे
ये	जो मनुष्य हैं
+ ते	वे
+ अपि	भी
प्रभवः	स्वामित्वभाव को प्राप्त हुए हैं
इति	इस कारण

+ नारद=हे नारद !
ध्यानम्=ध्यान को
+ ब्रह्मबुद्ध्या=ब्रह्मबुद्धि से
उपास्स्व=उपासना करो

भावार्थ ।

सनत्कुमार ऋषि कहते हैं कि हे नारद ! ध्यान चित्त से श्रेष्ठ है। देखो पृथ्वी, आकाश, अग्नि, जल, स्वर्ग, पर्वत, देवता और मनुष्य आदि सब ध्यान करते हुए से प्रतीत होते हैं और जो वे ऐसे महत्त्व को प्राप्त हुए हैं सो ध्यान ही द्वारा प्राप्त हुए हैं । जिन पुरुषों में ध्यान की एक कला भी है वे निस्संदेह इस संसार बिषे मनुष्यों में प्रतिष्ठा को प्राप्त होते हैं और जो ध्यान की कला से रहित हैं वे दुष्ट, द्वेषी और लड़ाके होते हैं । हे नारद ! यह ध्यान ही है जिस करके पुरुष स्वामित्वभाव को प्राप्त होते हैं, इसलिये हे नारद ! तुम ब्रह्मबुद्धि करके ध्यान की उपासना करो ॥ १ ॥

मूलम् ।

स यो ध्यानं ब्रह्मेत्युपास्ते यावद्ध्यानस्य गतं तत्रास्य यथा कामचारो भवति यो ध्यानं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवो ध्यानाद्भूय इति ध्यानाद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति ॥ २ ॥

इति षष्ठः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

सः, यः, ध्यानम्, ब्रह्म, इति, उपास्ते, यावत्, ध्यानस्य, गतम्, तत्र, अस्य, यथा, कामचारः, भवति, यः, ध्यानम्, ब्रह्म, इति, उपास्ते, अस्ति, भगवः, ध्यानात्, भूयः, इति, ध्यानात्, वाव, भूयः, अस्ति, इति, तत्, मे, भगवान्, ब्रवीतु, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
सः	=वह	ध्यानम्	=ध्यानरूप
यः	=जो	ब्रह्म	=ब्रह्म को

उपास्ते=उपासता है
+ सः=वह
यः=जो
ध्यानम्=ध्यानरूप
ब्रह्म=ब्रह्म को
उपास्ते=उपासता है तो
यावत्=जहां तक
ध्यानस्य=ध्यान की
गतम्=गति है
तत्र=वहां तक
अस्य=उस उपासक की
यथाकामचारः=इच्छानुसार गमन
भवति=होता है
इति=ऐसा
+ श्रुत्वा=सुनकर
+ नारदः=नारद ने
+ उवाच=कहा कि
भगवः=हे भगवन् !
ध्यानात्=ध्यान से भी
+ कश्चित्=कोई
भूयः=श्रेष्ठ
अस्ति=है
इति=ऐसा
+ श्रुत्वा=सुनकर
+ सनत्कुमारः=सनत्कुमार ऋषि ने
+ उवाच=कहा कि हां
ध्यानात्=ध्यान से भी
वाव=निश्चय करके
भूयः=श्रेष्ठ
अस्ति=है
+ तदा=तब
+ नारदः=नारद ने
+ आह=कहा कि
+ भगवान्=आप
तत्=उसको
मे=मेरे प्रति
ब्रवीतु=कहें

भावार्थ ।

वह जो ध्यानस्वरूप ब्रह्म को उपासता है तो जहां तक ध्यान की गति है वहां तक उस उपासक की इच्छानुसार गमन होता है । ऐसा सुनकर नारद ने कहा कि हे भगवन् ! क्या ध्यान से भी कोई दूसरा श्रेष्ठ है ? सनत्कुमार ने कहा कि हां, है । तब नारद ने कहा कि आप कृपा करके उसको मेरे प्रति कहें ॥ २ ॥

इति षष्ठः खण्डः ।

अथ सप्तमाध्यायस्य सप्तमः खण्डः ।

मूलम् ।

विज्ञानं वाव ध्यानाद्भूयो विज्ञानेन वा ऋग्वेदं

विजानाति यजुर्वेदꣳसामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदं पित्र्यꣳराशिं दैवं निधिं वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्यां ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां क्षत्रविद्यां नक्षत्रविद्याꣳसर्पदेवजनविद्यां दिवं च पृथिवीं च वायुं चाकाशं चापश्च तेजश्च देवाꣳश्च मनुष्याꣳश्च पशूꣳश्च वयाꣳसि च तृणवनस्पतीञ्छ्वापदान्याकीटपतङ्गपिपीलकं धर्मं चाधर्मं च सत्यं चानृतं च साधु चासाधु च हृदयज्ञं चाहृदयज्ञं चान्नं च रसं चेमं च लोकममुं च विज्ञानेनैव विजानाति विज्ञानमुपास्स्वेति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

विज्ञानम्, वाव, ध्यानात्, भूयः, विज्ञानेन, वै, ऋग्वेदम्, विजानाति, यजुर्वेदम्, सामवेदम्, आथर्वणम्, चतुर्थम्, इतिहासपुराणम्, पञ्चमम्, वेदानाम्, वेदम्, पित्र्यम्, राशिम्, दैवम्, निधिम्, वाकोवाक्यम्, एकायनम्, देवविद्याम्, ब्रह्मविद्याम्, भूतविद्याम्, क्षत्रविद्याम्, नक्षत्रविद्याम्, सर्पदेवजनविद्याम्, दिवम्, च, पृथिवीम्, च, वायुम्, च, आकाशम्, च, आपः, च, तेजः, च, देवान्, च, मनुष्यान्, च, पशून्, च, वयांसि, च, तृणवनस्पतीन्, श्वापदानि, आकीटपतङ्गपिपीलकम्, धर्मम्, च, अधर्मम्, च, सत्यम्, च, अनृतम्, च, साधु, च, असाधु, च, हृदयज्ञम्, च, अहृदयज्ञम्, च, अन्नम्, च, रसम्, च, इमम्, च, लोकम्, अमुम्, च, विज्ञानेन, एव, विजानाति, विज्ञानम्, उपास्स्व, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
विज्ञानम्	विज्ञान
वाव	निस्संदेह
ध्यानात्	ध्यान से
भूयः	श्रेष्ठ है
विज्ञानेन	विज्ञान से
वै	ही
ऋग्वेदम्	ऋग्वेद
यजुर्वेदम्	यजुर्वेद

सामवेदम्=सामवेद
चतुर्थम्=चौथे
आथर्वणम्=अथर्ववेद
पञ्चमम्=पांचवें
इतिहासपुराणम्=इतिहासपुराण
वेदानाम्=वेदों के
वेदम्=वेद अर्थात् व्याकरण
पित्र्यम्=श्राद्धकल्प
राशिम्=गणित
दैवम्=फलितविद्या
निधिम्=निधिविद्या
वाकोवाक्यम्=तर्कविद्या
एकायनम्=नीतिविद्या
देवविद्याम्=निरुक्तविद्या
ब्रह्मविद्याम्=शिक्षा कल्प छन्द आदि
भूतविद्याम्=भूतविद्या
क्षत्रविद्याम्=धनुर्वेद
नक्षत्रविद्याम्=ज्योतिषशास्त्र
सर्पदेवजनविद्याम्=सर्प, देव और मनुष्य विद्या को
+ पुरुषः=पुरुष
विजानाति=जानता है
च=और
दिवम्=देवलोक
च=और
पृथिवीम्=पृथ्वी
च=और
वायुम्=वायु
च=और
आकाशम्=आकाश

च=और
आपः=जल
च=और
तेजः=अग्नि
च=और
देवान्=देव
च=और
मनुष्यान्=मनुष्य
च=और
पशून्=पशु
च=और
वयांसि=पक्षी
च=और
तृणवनस्पतीन्=तृण वनस्पति
श्वापदानि=हिंसक जीव
आकीटपतङ्गपिपीलकम्=कीड़े पतिंगे चींटी आदि
धर्मम्=धर्म
च=और
अधर्मम्=अधर्म
च=और
सत्यम्=सत्य
च=और
अनृतम्=असत्य
च=और
साधु=साधु
च=और
असाधु=असाधु
च=और
हृदयज्ञम्=प्रिय
च=और

अहृदयज्ञम्=अप्रिय
च=और
अन्नम्=अन्न
च=और
रसम्=रस
च=और
इमम्=इस
च=और
अमुम्=उस पर
लोकम्=लोक को
विज्ञानेन=विज्ञान से
एव=ही
विजानाति=जानता है
इति=इस कारण
विज्ञानम्=विज्ञान की
+ब्रह्मबुद्ध्या=ब्रह्मबुद्धि करके
उपास्स्व=उपासना करो

भावार्थ ।

हे सौम्य ! ध्यान से विज्ञान अतिश्रेष्ठ है क्योंकि विज्ञान से ही ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, इतिहासपुराण, व्याकरण, श्राद्धकल्प, गणित, फलितविद्या, निधिविद्या, तर्कविद्या, नीतिविद्या, निरुक्तविद्या, शिक्षाकल्प छन्द आदि, भूततंत्र विद्या, ज्योतिषविद्या, धनुर्वेद तथा सर्पदेवमनुष्यविद्या को पुरुष जानता है और स्वर्गलोक, पृथ्वी, आकाश, जल, तेज, देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी, तृण, वनस्पति, हिंसकजंतु, कीड़े मकोड़े, चींटी पर्यन्त, धर्म अधर्म, सत्य असत्य, साधु असाधु, प्रिय अप्रिय, अन्नरस, इस लोक और परलोक को भी पुरुष विज्ञान से ही जानता है, इसलिये हे नारद ! विज्ञान की उपासना करो ॥ १ ॥

मूलम् ।

स यो विज्ञानं ब्रह्मेत्युपास्ते विज्ञानवतो वै लोकान् ज्ञानवतोऽभिसिद्ध्यति यावद्विज्ञानस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यो विज्ञानं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवो विज्ञानाद्भूय इति विज्ञानाद्वाव भूयोस्तीति तन्मे भगवान् ब्रवीत्विति ॥ २ ॥

इति सप्तमः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

सः, यः, विज्ञानम्, ब्रह्म, इति, उपास्ते, विज्ञानवतः, वै, लोकान्, ज्ञानवतः, अभि, सिद्ध्यति, यावत्, विज्ञानस्य, गतम्, तत्र, अस्य, यथाकामचारः, भवति, यः, विज्ञानम्, ब्रह्म, इति, उपास्ते, अस्ति, भगवः, विज्ञानात्, भूयः, इति, विज्ञानात्, वाव, भूयः, अस्ति, इति, तत्, मे, भगवान्, ब्रवीतु, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
सः	वह
यः	जो
विज्ञानम्	विज्ञानस्वरूप
ब्रह्म	ब्रह्म को
उपास्ते	उपासता है
+ सः	वह
यः	जो
विज्ञानम्	विज्ञानस्वरूप
ब्रह्म	ब्रह्मको
उपास्ते	उपासता है तो
यावत्	जहां तक
विज्ञानस्य	विज्ञान की
गतम्	गति है
तत्र	वहां तक
अस्य	इस उपासक की
यथाकामचारः	इच्छानुसार गमन
भवति	होता है
+ च सः	और वह
वै	निश्चय करके
ज्ञानवतः	ज्ञानवान्
+ च	और
विज्ञानवतः	विज्ञानवान्

अन्वयः	पदार्थ
लोकान्	लोकों को
अभिसिद्ध्यति	प्राप्त होता है
इति	ऐसा
+ श्रुत्वा	सुनकर
+ नारदः	नारद ने
+ उवाच	कहा कि
भगवः	हे भगवन् !
विज्ञानात्	विज्ञान से भी
+ कश्चित्	कोई
भूयः	श्रेष्ठ
अस्ति	है
+ सनत्कुमारः	सनत्कुमार ऋषि
इति	ऐसा
+ उवाच	कहते भये कि
+ नारद	हे नारद !
विज्ञानात्	विज्ञान से भी
वाव	निस्सन्देह
भूयः	श्रेष्ठ
अस्ति	है
+ तदा	तब
+ नारदः	नारदऋषि
+ आह	बोले कि

भगवान्=आप	मे=मेरे प्रति
तत्=उसको	ब्रवीतु=कहें

भावार्थ ।

वह जो विज्ञानस्वरूप ब्रह्म की उपासना करता है, तो जहां तक विज्ञान की गति है वहां तक उस उपासक की इच्छानुसार गमन होता है और वह निश्चय करके विज्ञानवान् और ज्ञानवान् लोकों को प्राप्त होता है । ऐसा सुनकर नारद ने कहा कि हे भगवन् ! क्या विज्ञान से भी कोई श्रेष्ठ है ? यह सुनकर सनत्कुमार ऋषि ने कहा कि हे नारद ! विज्ञान से भी श्रेष्ठ है । तब नारद ने कहा कि हे भगवन् ! आप कृपा कर उसको मेरे प्रति उपदेश करें ॥ २ ॥

इति सप्तमः खण्डः ।

अथ सप्तमाध्यायस्याष्टमः खण्डः ।

मूलम् ।

बलं वाव विज्ञानाद्भूयोऽपि ह शतं विज्ञानवतामेको बलवानाकम्पयते स यदा बली भवत्यथोत्थाता भवत्युत्तिष्ठन्परिचरिता भवति परिचरन्नुपसत्ता भवत्युपसीदन्द्रष्टा भवति श्रोता भवति मन्ता भवति बोद्धा भवति कर्ता भवति विज्ञाता भवति बलेन वै पृथिवी तिष्ठति बलेनान्तरिक्षं बलेन द्यौर्बलेन पर्वता बलेन देवमनुष्या बलेन पशवश्च वयांꣳसि च तृणवनस्पतयश्श्वापदान्याकीटपतङ्गपिपीलकं बलेन लोकस्तिष्ठति बलमुपास्स्वेति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

बलम्, वाव, विज्ञानात्, भूयः, अपि, ह, शतम्, विज्ञानवताम्, एकः, बलवान्, आकम्पयते, सः, यदा, बली, भवति, अथ, उत्थाता,

भवति, उत्तिष्ठन्, परिचरिता, भवति, परिचरन्, उपसत्ता, भवति, उपसीदन्, द्रष्टा, भवति, श्रोता, भवति, मन्ता, भवति, बोद्धा, भवति, कर्ता, भवति, विज्ञाता, भवति, बलेन, वै, पृथिवी, तिष्ठति, बलेन, अन्तरिक्षम्, बलेन, द्यौः, बलेन, पर्वताः, बलेन, देवमनुष्याः, बलेन, पशवः, च, वयांसि, च, तृणवनस्पतयः, श्वापदानि, आकीटपतङ्गपिपीलकम्, बलेन, लोकः, तिष्ठति, बलम्, उपास्स्व, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
बलम्=	बल
वाव=	निश्चय करके
विज्ञानात्=	विज्ञान से
भूयः=	श्रेष्ठ है
हि=	क्योंकि
ह=	यह प्रत्यक्ष है कि
एकः=	एक
बलवान्=	बलवान्
शतम्=	सौ
विज्ञानवताम्=	विज्ञानियों को
आकम्पते=	कँपा देता है
यदा=	अगर
सः=	वह पुरुष
बली=	बलवान्
भवति=	है
अथ=	तो
+ सः=	वह
उत्थाता=	उत्पद को
भवति=	प्राप्त होता है
उत्तिष्ठन्=	उत्पद को प्राप्त होता हुआ
परिचरिता=	सेवा करनेवाला
भवति=	होता है
परिचरन्=	सेवा करता हुआ
उपसत्ता=	गुरु के समीप बैठनेवाला
भवति=	होता है अर्थात् आचार्य को प्रिय होता है
उपसीदन्=	समीप बैठता और प्रिय होता हुआ
द्रष्टा=	देखनेवाला अर्थात् आचार्य को एकाग्रता से देखनेवाला
भवति=	होता है
+ पुनः=	फिर
श्रोता=	गुरूपदेश सुननेवाला
भवति=	होता है
+ ततः=	तत्पश्चात्
मन्ता=	मनन करनेवाला
भवति=	होता है
+ ततः=	तत्पश्चात्

बोद्धा=समझनेवाला
भवति=होता है
+ पुनः=फिर
कर्ता=अनुष्ठान करने-वाला
भवति=होता है
+ पुनः=फिर
विज्ञाता=विशेषरूप से जाननेवाला
भवति=होता है
बलेन=बल करके
वै=ही
पृथिवी=पृथ्वी
तिष्ठति=स्थित है
बलेन=बल करके ही
अन्तरिक्षम्=अन्तरिक्ष लोक
बलेन=बल करके ही
द्यौः=देवलोक
बलेन=बल करके ही
पर्वताः=पर्वत
बलेन=बल करके
देवमनुष्याः=देव मनुष्य
बलेन=बल करके ही
पशवः=पशु
च=और
वयांसि=पक्षी
च=और
तृणवनस्पतयः=तृणवनस्पति
च=और
श्वापदानि=हिंसक जीव जन्तु
आकीटपतङ्गपि-पीलकम्=कीड़े पतिंगे चींटी पर्यन्त
तिष्ठन्ति=स्थित हैं
च=और
बलेन=बल करके ही
लोकः=लोक और लोक विषे पदार्थ
तिष्ठति=स्थित है
इति=इसलिये
+ नारद=हे नारद !
बलम्=बल को
+ ब्रह्मबुद्ध्या=ब्रह्मबुद्धि से
उपास्स्व=उपासना करो

भावार्थ।

सनत्कुमार ऋषि कहते हैं कि हे नारद ! विज्ञान से बल श्रेष्ठ है, क्योंकि यह प्रत्यक्ष देखने में आता है कि एक बलवान सौ विज्ञानियों को कँपा देता है और वही उच्चपद को प्राप्त होता है। उस पद को प्राप्त होता हुआ सेवा करनेवाला होता है, सेवा करने के कारण गुरु को प्यारा होता है, गुरु के समीप बैठता हुआ और गुरु को प्रिय होता हुआ एकाग्रचित्त से गुरु की तरफ़ देखनेवाला होता है और फिर गुरु के कहे हुए उपदेश को सुननेवाला होता है। फिर मनन

करता है, फिर समझता है और फिर अनुष्ठान को करता है और बाद को विशेष ज्ञानवान् होता है । हे नारद ! सुनो पृथ्वी, अन्तरिक्ष और देवलोक बल करके ही स्थित हैं और पर्वत, देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी, तृण, वनस्पति, हिंसक जीवजन्तु, कीड़े, पतिंगे और चींटी पर्यन्त सब बल करके ही स्थित हैं तथा यह लोक और लोक बिषे सब पदार्थ बल करके ही स्थित हैं, इसलिये हे नारद ! तुम ब्रह्मबुद्धि करके बल की उपासना करो ॥ १ ॥

मूलम् ।

स यो बलं ब्रह्मेत्युपास्ते यावद्बलस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यो बलं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवो बलाद्भूय इति बलाद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति ॥ २

इत्यष्टमः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

सः, यः, बलम्, ब्रह्म, इति, उपास्ते, यावत्, बलस्य, गतम्, तत्र, अस्य, यथाकामचारः, भवति, यः, बलम्, ब्रह्म, इति, उपास्ते, अस्ति, भगवः, बलात्, भूयः, इति, बलात्, वाव, भूयः, अस्ति, इति, तत्, मे, भगवान्, ब्रवीतु, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
सः	वह	ब्रह्म	ब्रह्म
यः	जो	इति	करके
बलम्	बल को	उपास्ते	उपासता है तो
ब्रह्म	ब्रह्म	यावत्	जहां तक
इति	करके	बलस्य	बल की
उपास्ते	उपासता है	गतम्	गति है
यः	जो	तत्र	तहां तक
बलम्	बल को	अस्य	इस उपासक की

यथाकामचारः=इच्छानुसार गमन
भवति=होता है
इति=ऐसा
+ श्रुत्वा=सुनकर
+ नारदः=नारद ने
+ उवाच=कहा कि
भगवः=हे भगवन् !
बलात्=बल से भी
+ कश्चित्=कोई
भूयः=श्रेष्ठ
अस्ति=है
+ सनत्कुमारः=सनत्कुमार ने
+ उवाच=कहा कि
बलात्=बल से
वाव=निस्संदेह
भूयः=श्रेष्ठ
अस्ति=है
+ तद्=तब
+ नारदः=नारद ने
+ आह=कहा कि
भगवान्=आप
तत्=उसको
मे=मेरे प्रति
ब्रवीतु=कहें

भावार्थ ।

हे नारद ! वह जो बल को ब्रह्म करके उपासता है तो जहां तक बल की गति है वहांतक उस उपासक की इच्छानुसार गमन होता है। ऐसा सुनकर नारद ऋषि ने कहा कि हे भगवन् ! क्या बल से भी श्रेष्ठ कोई दूसरा है ? सनत्कुमार ने कहा कि हाँ बल से भी श्रेष्ठ है। तब नारद ने कहा कि आप कृपा करके उसको मेरे प्रति कहें ॥ २ ॥

इत्यष्टमः खण्डः ।

अथ सप्तमाध्यायस्य नवमः खण्डः ।

मूलम् ।

अन्नं वाव बलाद्भूयस्तस्माद्यद्यपि दशरात्रीर्नाश्नीयाद्यद्यु ह जीवेदथवाऽद्रष्टाऽश्रोताऽमन्ताऽबोद्धाऽकर्ताऽविज्ञाता भवत्यथान्नस्याऽऽयै द्रष्टा भवति श्रोता भवति मन्ता भवति बोद्धा भवति कर्ता भवति विज्ञाता भवत्यन्नमुपास्स्वेति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

अन्नम्, वाव, बलात्, भूयः, तस्मात्, यदि, अपि, दशरात्रीः, न, अश्नीयात्, यदि, उ, ह, जीवेत्, अथवा, अद्रष्टा, अश्रोता, अमन्ता, अबोद्धा, अकर्ता, अविज्ञाता, भवति, अन्नस्य, आयै, द्रष्टा, भवति, श्रोता, भवति, मन्ता, भवति, बोद्धा, भवति, कर्ता, भवति, विज्ञाता, भवति, अन्नम्, उपास्स्व, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अन्नम्=अन्न		अकर्ता=न कार्य करनेवाला	
वाव=निश्चय करके		अविज्ञाता=न विशेष ज्ञान-वाला	
बलात्=बल से		भवति=होता है	
भूयः=श्रेष्ठ है		+ परम्=पर	
तस्मात्=इसलिये		+ अथ=अगर	
यदि=अगर		अन्नस्य=अन्न को	
अपि=कोई		आयै=भोजन करता है तो	
+ पुरुषः=पुरुष		द्रष्टा=देखनेवाला	
दशरात्रीः=दशरात्रि तक		भवति=होता है	
न=न		श्रोता=सुननेवाला	
अश्नीयात्=भोजन करे		भवति=होता है	
+ तर्हि=तो		मन्ता=मनन करनेवाला	
यदि=यद्यपि		भवति=होता है	
+ सः=वह		बोद्धा=समझनेवाला	
ह=निस्संदेह		भवति=होता है	
जीवेत्=जीवता भी रहे		कर्ता=कार्य का करनेवाला	
अथवा=तौ भी		भवति=होता है	
अद्रष्टा=न देखनेवाला		उ=और	
अश्रोता=न सुननेवाला		विज्ञाता=विशेष ज्ञानवाला	
अमन्ता=न मनन करने-वाला		भवति=होता है	
अबोद्धा=न समझनेवाला		इति=इसलिये	

+ नारद=हे नारद !	+ ब्रह्मबुद्धया=ब्रह्मबुद्धि से
अन्नम्=अन्न को	उपास्स्व=उपासना करो

भावार्थ ।

हे नारद ! बल से अन्न अतिश्रेष्ठ है, अगर कोई पुरुष दशरात्रि तक भोजन न करे, तो यद्यपि वह जीता रहे, तो भी वह न देखनेवाला, न सुननेवाला, न मनन करनेवाला, न समझनेवाला और न कार्य करनेवाला होता है । परन्तु यदि अन्न को खाता रहे तो देखनेवाला, सुननेवाला, मनन करनेवाला, समझनेवाला, कार्य का करनेवाला और विशेष ज्ञान का जाननेवाला होता है । इसलिये हे नारद ! अन्न की ब्रह्मबुद्धि से उपासना करो ॥ १ ॥

मूलम् ।

स योऽन्नं ब्रह्मेत्युपास्तेऽन्नवतो वै स लोकान्पानवतोऽभिसिद्ध्यति यावदन्नस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति योऽन्नं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवोऽन्नाद्भूय इत्यन्नाद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति ॥ २ ॥

इति नवमः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

सः, यः, अन्नम्, ब्रह्म, इति, उपास्ते, अन्नवतः, वै, सः, लोकान्, पानवतः, अभिसिद्ध्यति, यावत्, अन्नस्य, गतम्, तत्र, अस्य, यथाकामचारः, भवति, यः, अन्नम्, ब्रह्म, इति, उपास्ते, अस्ति, भगवः, अन्नात्, भूयः, इति, अन्नात्, वाव, भूयः, अस्ति, इति, तत्, मे, भगवान्, ब्रवीतु, इति ॥

अन्वयः पदार्थ	अन्वयः पदार्थ
सः=वह	ब्रह्म=ब्रह्म
यः=जो	इति=करके
अन्नम्=अन्न को	उपास्ते=उपासता है

यः=जो
अन्नम्=अन्न को
ब्रह्म=ब्रह्म
इति=करके
उपास्ते=उपासता है तो
यावत्=जहांतक
अन्नस्य=अन्न की
गतम्=गति है
तत्र=तहांतक
अस्य=उपासक की
यथाकामचारः=इच्छानुसार गमन
भवति=होता है
+ च=और
सः=वह
वै=निश्चय करके
अन्नवतः=अन्नवाले
+ च=और
पानवतः=जलवाले
लोकान्=लोकों को
अभिसिद्ध्यति=प्राप्त होता है
इति=ऐसा

+ श्रुत्वा=सुनकर
+ नारदः=नारद ने
+ उवाच=कहा कि
भगवः=हे भगवन् !
अन्नात्=अन्न से
+ कश्चित्=कोई दूसरा
भूयः=श्रेष्ठ
अस्ति=है
+ सनत्कुमारः=सनत्कुमार ऋषि ने
+ उवाच=कहा कि
अन्नात्=अन्न से
वाव=निस्संदेह
भूयः=श्रेष्ठ
अस्ति=है
+ तदा=तब
+ नारदः=नारद ने
+ आह=कहा कि
भगवान्=आप
तत्=उसको
मे=मेरे प्रति
ब्रवीतु=कहें

भावार्थ ।

हे नारद ! जो वह अन्न को ब्रह्मबुद्धि से उपासता है तो जहांतक अन्न की गति है वहाँतक उसकी इच्छानुसार उसका गमन होता है और जहां अन्न और जल की बाहुल्यता है वहाँ के लोकों को प्राप्त होता है । ऐसा सुनकर नारद ने कहा कि हे भगवन् ! क्या अन्न से और कोई वस्तु श्रेष्ठ है ? सनत्कुमार ने कहा कि हाँ, अन्न से भी श्रेष्ठ है । तब नारद ने कहा कि आप कृपा करके उसको मेरे प्रति कहें ॥ २ ॥

इति नवमः खण्डः ।

अथ सप्तमाध्यायस्य दशमः खण्डः ।

मूलम् ।

आपो वावान्नाद्भूयस्तस्माद्यदा सुवृष्टिर्न भवति व्याधीयन्ते प्राणा अन्नं कनीयो भविष्यतीत्यथ यदा सुवृष्टिर्भवत्यानन्दिनः प्राणा भवन्त्यन्नं बहु भविष्यतीत्याप एवेमा मूर्ता येयं पृथिवी यदन्तरिक्षं यद् द्यौर्यत्पर्वता यद् देवमनुष्या यत् पशवश्च वयांꣳसि च तृणवनस्पतयः श्वापदान्याकीटपतङ्गपिपीलकमाप एवेमा मूर्ता अप उपास्स्वेति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

आपः, वाव, अन्नात्, भूयः, तस्मात्, यदा, सुवृष्टिः, न, भवति, व्याधीयन्ते, प्राणाः, अन्नम्, कनीयः, भविष्यति, इति, अथ, यदा, सुवृष्टिः, भवति, आनन्दिनः, प्राणाः, भवन्ति, अन्नम्, बहु, भविष्यति, इति, आपः, एव, इमाः, मूर्ताः, या, इयम्, पृथिवी, यत्, अन्तरिक्षम्, यत्, द्यौः, यत्, पर्वताः, यत्, देवमनुष्याः, यत्, पशवः, च, वयांसि, च, तृणवनस्पतयः, श्वापदानि, आकीटपतङ्गपिपीलकम्, आपः, एव, इमाः, मूर्ताः, अपः, उपास्स्व, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
आपः	जल	+ तदा	तब
वाव	निश्चय करके	प्राणाः	सब प्राणी
अन्नात्	अन्न से	व्याधीयन्ते	दुःखित होते हैं
भूयः	श्रेष्ठ है	इति	ऐसा
तस्मात्	इसलिये	+ संचिन्त्य	चिंतन करके कि
यदा	जब	अन्नम्	अन्न
सुवृष्टिः	अच्छी वर्षा	कनीयः	बहुत थोड़ा
न	नहीं	भविष्यति	होगा
भवति	होती है	अथ	और

यदा=जब
सुवृष्टिः=अच्छी वर्षा
भवति=होती है
+ तदा=तब
प्राणाः=सब प्राणी
आनन्दिनः=आनन्दित
भवन्ति=होते हैं
इति=ऐसा
+ संचित्य=सोचकर कि
बहु=बहुत
अन्नम्=अन्न
भविष्यति=होगा
इति=इसलिये
इमाः=यह सब
मूर्ताः=मूर्तियां
एव=निश्चय करके
आपः=जलरूप ही हैं
या=जो
इयम्=यह
पृथिवी=पृथ्वी
यत्=जो
अन्तरिक्षम्=अन्तरिक्ष
यत्=जो
द्यौः=द्युलोक
यत्=जो
पर्वताः=पर्वत
यत्=जो
देवमनुष्याः=देवता और मनुष्य
यत्=जो
पशवः=पशु
च=और
वयांसि=पक्षी
च=और
तृणवनस्पतयः=तृणवनस्पति
च=और
श्वापदानि=हिंसक जीव जन्तु
आकीटपतङ्गपिपीलकम्=कीड़े पतिंगे चींटी पर्यन्त
मूर्ताः=मूर्तियां हैं
इमाः=वे सब
आपः=जलरूप
एव=ही
+ सन्ति=हैं
+ इति=इसलिये
+ नारद=हे नारद !
अपः=जल को
+ ब्रह्मबुद्ध्या=ब्रह्मबुद्धि से
उपास्स्व=उपासना करो

भावार्थ ।

सनत्कुमार ऋषि कहते हैं कि हे नारद ! जल अन्न से श्रेष्ठ है, क्योंकि जब अच्छी वर्षा नहीं होती तब यह अनुमान करके कि अन्न बहुत कम होगा, सब प्राणी दुःखित होते हैं और जब अच्छी वर्षा होती है तब ऐसा सोचकर कि अन्न अच्छा पैदा होगा, सब प्राणी

आनन्दित होते हैं, इसलिये ये सब मूर्तियां जलरूप ही हैं। हे नारद ! जो यह पृथ्वी, अन्तरिक्ष, देवलोक, पर्वत, देवता, मनुष्य, तृण-वनस्पति, हिंसक जीवजन्तु, कीड़े पतंगे और चींटी पर्यन्त मूर्तियां हैं वे सब जलरूप ही हैं, इसलिये हे नारद ! तुम ब्रह्मबुद्धि करके जल की उपासना करो ॥ १ ॥

मूलम् ।

स योऽपो ब्रह्मेत्युपास्त आप्नोति सर्वान्कामाꣳस्तृप्तिमान्भवति यावदपां गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति योऽपो ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवोऽद्भ्यो भूय इत्यद्भ्यो वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति ॥ २ ॥

इति दशमः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

सः, यः, अपः, ब्रह्म, इति, उपास्ते, आप्नोति, सर्वान्, कामान्, तृप्तिमान्, भवति, यावत्, अपाम्, गतम्, तत्र, अस्य, यथाकामचारः, भवति, यः, अपः, ब्रह्म, इति, उपास्ते, अस्ति, भगवः, अद्भ्यः, भूयः, इति, अद्भ्यः, वाव, भूयः, अस्ति, इति, तत्, मे, भगवान्, ब्रवीतु, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
सः	वह
यः	जो
अपः	जल को
ब्रह्म	ब्रह्म
इति	करके
उपास्ते	उपासता है
यः	जो
अपः	जल को
ब्रह्म इति	ब्रह्म करके
उपास्ते	उपासता है तो
यावत्	जहाँ तक
अपाम्	जल की
गतम्	गति है
तत्र	वहाँ तक
अस्य	उस उपासक की
यथाकामचारः	इच्छानुसार गमन

भवति=होता है
+ च=और
+ सः=वह
सर्वान्=सब
कामान्=कामनाओं को
आप्नोति=प्राप्त होता है
+ च=और
तृप्तिमान्=तृप्त
भवति=होता है
इति=ऐसा
+ श्रुत्वा=सुन करके
+ नारदः=नारद ने
+ उवाच=कहा कि
भगवः=हे भगवन्
अद्भ्यः=जल से भी
+ कश्चित्=कोई
भूयः=श्रेष्ठ
अस्ति=है
इति=ऐसा
+ श्रुत्वा=सुनकर
+ सनत्कुमारः=सनत्कुमार ने
+ उवाच=कहा कि
अद्भ्यः=जल से भी
वाव=निस्संदेह
भूयः=श्रेष्ठ
अस्ति=है
+ तदा=तब
+ नारदः=नारद ने
+ आह=कहा कि
भगवान्=आप
तत्=उसको
मे=मेरे प्रति
ब्रवीतु=कहें

भावार्थ ।

हे नारद ! वह जो जल को ब्रह्म बुद्धि करके उपासता है तो जहाँ तक जल की गति है वहाँ तक उसकी इच्छानुसार उसका गमन होता है और वह सब कामनाओं को प्राप्त होता है और तृप्त होता है । ऐसा सुनकर नारद ने कहा कि हे भगवन् ! जल से भी कोई श्रेष्ठ है ? सनत्कुमार ने उत्तर दिया कि हाँ, जल से भी श्रेष्ठ है । तब नारद ने कहा कि आप उसको कृपा करके मेरे प्रति कहें ॥ २ ॥

इति दशमः खण्डः ।

अथ सप्तमाध्यायस्यैकादशः खण्डः ।

मूलम् ।

तेजो वावाद्भ्यो भूयस्तद्वा एतद्वायुमागृह्याकाशम-

भितपति तदाहुर्निशोचति नितपति वर्षिष्यति वा इति तेज एव तत्पूर्वं दर्शयित्वाऽथापः सृजते तदेतदूर्ध्वाभिश्च तिरश्चीभिश्च विद्युद्भिराह्लादाश्चरन्ति तस्मादाहुर्विद्योतते स्तनयति वर्षिष्यति वा इति तेज एव तत्पूर्वं दर्शयित्वाऽथापः सृजते तेज उपास्स्वेति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

तेजः, वाव, अद्भ्यः, भूयः, तत्, वै, एतत्, वायुम्, आगृह्य, आकाशम्, अभितपति, तत्, आहुः, निशोचति, नितपति, वर्षिष्यति, वै, इति, तेजः, एव, तत्, पूर्वम्, दर्शयित्वा, अथ, आपः, सृजते, तत्, एतत्, ऊर्ध्वाभिः, च, तिरश्चीभिः, च, विद्युद्भिः, आह्लादाः, चरन्ति, तस्मात्, आहुः, विद्योतते, स्तनयति, वर्षिष्यति, वै, इति, तेजः, एव, तत्पूर्वम्, दर्शयित्वा, अथ, आपः, सृजते, तेजः, उपास्स्व, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
तेजः	अग्नि
वाव	निस्सन्देह
अद्भ्यः	जल से
भूयः	श्रेष्ठ है
तत्	सोई
एतत्	यह अग्नि
वै	निश्चय करके
वायुम्	वायु को
आगृह्य	निग्रह कर अर्थात् अपने साथ लेकर
आकाशम्	आकाश को
अभितपति	भली प्रकार संतप्त करता है
तत्	तब
+ जनाः	मनुष्य
आहुः	कहते हैं कि
निशोचति	संसार गर्मी करके दुःखित होरहा है
+ च	और
नितपति	संतप्त होरहा है
इति	इसलिये
वै	निस्सन्देह
वर्षिष्यति	वर्षा होगी
अथ	फिर
तेजः	अग्नि
एव	ही

तत्पूर्वम्=उस पूर्वदृश्य को
दर्शयित्वा=दिखला कर
अथ=फिर
आपः=जल को
सृजते=उत्पन्न करती है
च=और
तत्=तबही
एतत्=यह
ऊर्ध्वाभिः=ऊपर जानेवाली
च=और
तिरश्चीभिः=तिरछी चलनेवाली
विद्युद्भिः=बिजुलियों के
+ सह=साथ
आह्लादाः=मेघ गर्जन शब्द
चरन्ति=करते हैं
तस्मात्=इसलिये
+ जनाः=मनुष्य
आहुः=कहते हैं कि

+ अथ=अब
विद्योतते=बिजुली चमकती है
स्तनयति=मेघ गर्जता है
इति=इस कारण
वै=निस्सन्देह
वर्षिष्यति=वर्षा होगी
तेजः=अग्नि
एव=ही
तत्पूर्वम्=उस पूर्व दृश्य को
दर्शयित्वा=देखाकर
+ अथ=फिर
आपः=जल को
सृजते=उत्पन्न करती है
इति=इसलिये
+ नारद=हे नारद !
तेजः=अग्नि की
+ ब्रह्मबुद्ध्या=ब्रह्मबुद्धि से
उपास्स्व=उपासना करो

भावार्थ ।

हे नारद ! अग्नि निस्सन्देह जल से श्रेष्ठ है। वही यह अग्नि वायु से मिलकर आकाश को भली प्रकार संतप्त करती है और जब संसार गर्मी करके संतप्त होता है तब मनुष्य कहते हैं कि निस्सन्देह वर्षा होगी और तब अग्नि उस पूर्व दृश्य को दिखा कर जल को उत्पन्न करती है और तभी ऊपर अन्तरिक्ष में जानेवाली बिजुलियों करके मेघ गर्जन शब्द को करता है । तब मनुष्य कहते हैं कि अब बिजुली चमकती है, मेघ गर्जता है, इस कारण अब वर्षा अवश्य होगी । अग्नि ही उस पूर्वदृश्य को दिखाकर जल को उत्पन्न करती है, इसलिये हे नारद ! अग्नि की ब्रह्मबुद्धि करके उपासना करो ॥ १ ॥

मूलम् ।

स यस्तेजो ब्रह्मेत्युपास्ते तेजस्वी वै स तेजस्वतो लोकान्भास्वतोऽपहततमस्कानभिसिद्ध्यति यावत्तेजसो गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यस्तेजो ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवस्तेजसो भूय इति तेजसो वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति ॥ २ ॥

इत्येकादशः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

सः, यः, तेजः, ब्रह्म, इति, उपास्ते, तेजस्वी, वै, सः, तेजस्वतः, लोकान्, भास्वतः, अपहततमस्कान्, अभि, सिद्ध्यति, यावत्, तेजसः, गतम्, तत्र, अस्य, यथाकामचारः, भवति, यः, तेजः, ब्रह्म, इति, उपास्ते, अस्ति, भगवः, तेजसः, भूयः, इति, तेजसः, वाव, भूयः, अस्ति, इति, तत्, मे, भगवान्, ब्रवीतु, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
सः	वह
यः	जो
तेजः	अग्नि की
ब्रह्म	ब्रह्म
इति	करके
उपास्ते	उपासना करता है
यः	जो
तेजः	अग्नि की
ब्रह्म	ब्रह्म
इति	करके
उपास्ते	उपासना करता है तो
यावत्	जहाँ तक
तेजसः	अग्नि की
गतम्	गति है
तत्र	वहाँ तक
अस्य	उस उपासक का
यथाकामचारः	इच्छानुसार गमन
भवति	होता है
+ च	और
तेजस्वी	तेजवाला होता हुआ
तेजस्वतः	तेजस्वी
भास्वतः	प्रकाशमय
अपहत-तमस्कान्	अंधकार रहित
लोकान्	लोकों को
अभिसिद्ध्यति	प्राप्त होता है
इति	ऐसा
+ श्रुत्वा	सुनकर

+ नारदः=नारद ने
+ उवाच=कहा कि
भगवः=हे भगवन् !
तेजसः=अग्नि से
+ कश्चित्=कोई
भूयः=श्रेष्ठ
अस्ति=है
+ सनत्कुमारः=सनत्कुमार ने
इति=ऐसा
+ प्रत्युवाच=उत्तर दिया कि
तेजसः=अग्नि से
वाव=निस्सन्देह
भूयः=श्रेष्ठ
अस्ति=है
+ तदा=तब
+ नारदः=नारद ने
+ आह=कहा कि
भगवान्=आप
तत्=उसको
मे=मेरे प्रति
ब्रवीतु=कहें

भावार्थ ।

हे नारद ! जो अग्नि की उपासना ब्रह्मबुद्धि करके करता है तो जहाँ तक अग्नि की गति है वहाँ तक उसका इच्छानुसार गमन होता है और तेजस्वी होता हुआ वह उपासक अन्धकार रहित प्रकाशमय लोकों को प्राप्त होता है । ऐसा सुनकर नारद ने कहा कि हे भगवन् ! क्या अग्नि से भी कोई श्रेष्ठ है ? सनत्कुमार ने कहा कि हाँ, अग्नि से भी श्रेष्ठ है । तब नारद ने कहा कि आप कृपा करके उसको मेरे प्रति कहें ॥ २ ॥

इत्येकादशः खण्डः ।

अथ सप्तमाध्यायस्य द्वादशः खण्डः ।

मूलम् ।

आकाशो वाव तेजसो भूयानाकाशे वै सूर्याचन्द्रमसावुभौ विद्युन्नक्षत्राण्यग्निराकाशेनाह्वयत्याकाशेन शृणोत्याकाशेन प्रति शृणोत्याकाशे रमत आकाशे न रमत आकाशे जायत आकाशमभिजायत आकाशमुपास्स्वेति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

आकाशः, वाव, तेजसः, भूयान्, आकाशे, वै, सूर्याचन्द्रमसौ, उभौ, विद्युत्, नक्षत्राणि, अग्निः, आकाशेन, आह्वयति, आकाशेन, शृणोति, आकाशेन, प्रति, शृणोति, आकाशे, रमते, आकाशे, न, रमते, आकाशे, जायते, आकाशम्, अभिजायते, आकाशम्, उपास्स्व, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
आकाशः	आकाश
वाव	निश्चय करके
तेजसः	अग्नि से
भूयान्	श्रेष्ठ है
आकाशे	आकाश में
वै	ही
उभौ	दोनों
सूर्याचन्द्रमसौ	सूर्य चन्द्रमा
विद्युत्	बिजुली
नक्षत्राणि	नक्षत्र
अग्निः	अग्नि
+ विद्यन्ते	विद्यमान हैं
आकाशेन	आकाश करके ही
आह्वयति	एक दूसरे को पुकारता है
आकाशेन	आकाश के द्वारा ही
शृणोति	एक दूसरे की सुनता है
आकाशेन	आकाश करके ही
प्रतिशृणोति	जवाब देता है
आकाशे	आकाश में
रमते	रमण करता है
आकाशे	आकाश में ही
न	नहीं
रमते	रमण करता है
आकाशे	आकाश में
जायते	सब पदार्थ उत्पन्न होता है
आकाशम्	आकाश में ही
अभिजायते	पुष्ट होता है
इति	इसलिये
+ नारद	हे नारद !
आकाशम्	आकाश की
उपास्स्व	उपासना करो

भावार्थ ।

हे नारद ! अग्नि से आकाश श्रेष्ठ है । आकाश में ही सूर्य, चन्द्रमा, बिजुली, तारागण और अग्नि रहते हैं । आकाश ही करके जीव एक दूसरे को पुकारता है, आकाश ही करके एक दूसरे की सुनता है और जवाब देता है, आकाश में ही पुरुष रमण करता है,

आकाश में ही पुरुष नहीं रमण करता है, आकाश में ही सब पदार्थ उत्पन्न होते हैं और पुष्ट होते हैं । इसलिये हे नारद ! आकाश की ब्रह्मबुद्धि करके उपासना करो ॥ १ ॥

मूलम् ।

स य आकाशं ब्रह्मेत्युपास्त आकाशवतो वै स लोकान् प्रकाशवतोऽसंबाधानुरुगायवतोभिसिद्ध्यति यावदाकाशस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति य आकाशं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवो आकाशाद्भूय इत्याकाशाद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान् ब्रवीत्विति ॥ २ ॥

इति द्वादशः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

सः, यः, आकाशम्, ब्रह्म, इति, उपास्ते, आकाशवतः, वै, सः, लोकान्, प्रकाशवतः, असंबाधान्, उरुगायवतः, अभिसिद्ध्यति, यावत्, आकाशस्य, गतम्, तत्र, अस्य, यथाकामचारः, भवति, यः, आकाशम्, ब्रह्म, इति, उपास्ते, अस्ति, भगवः, आकाशात्, भूयः, इति, आकाशात्, वाव, भूयः, अस्ति, इति, तत्, मे, भगवान्, ब्रवीतु, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
सः	वह
यः	जो
आकाशम्	आकाश को
ब्रह्म	ब्रह्म
इति	करके
उपास्ते	उपासता है
यः	जो
आकाशम्	आकाश को
ब्रह्म	ब्रह्म

अन्वयः	पदार्थ
इति	करके
उपास्ते	उपासता है तो
यावत्	जहाँतक
आकाशस्य	आकाश की
गतम्	गति है
तत्र	तहाँतक
अस्य	उसका
यथाकामचारः	इच्छानुसार गमन
भवति	होता है

+ च=और
सः=वह
वै=निश्चय करके
आकाशवतः=विस्तीर्ण
प्रकाशवतः=प्रकाशमय
असंबाधान्=पीड़ारहित
उरुगायवतः=देवसम्बन्धी
लोकान्=लोकों को
अभिसिध्यति=प्राप्त होता है
इति=ऐसा
+ श्रुत्वा=सुनकर
+ नारदः=नारद ने
+ उवाच=कहा कि
भगवः=हे भगवन् !
आकाशात्=आकाश से भी
+ कश्चित्=कोई
भूयः=श्रेष्ठ
अस्ति=है
+ सनत्कुमारः=सनत्कुमार ऋषि ने
+ उवाच=कहा कि
आकाशात्=आकाश से
वाव=निस्सन्देह
भूयः=श्रेष्ठ
अस्ति=है
+ तदा=तब
+ नारदः=नारद ने
+ आह=कहा कि
भगवान्=आप
तत्=उसको
मे=मेरे प्रति
ब्रवीतु=कहें

भावार्थ ।

हे नारद ! वह जो आकाश को ब्रह्म करके उपासना है तो जहाँ तक आकाश की गति है वहाँ तक उसका इच्छानुसार गमन होता है और विस्तीर्ण, प्रकाशमान, पीड़ारहित देवसम्बन्धी लोकों को प्राप्त होता है । ऐसा सुनकर नारद ने कहा कि हे भगवन् ! क्या आकाश से भी कोई श्रेष्ठ है ? सनत्कुमार ने कहा कि हाँ, आकाश से भी श्रेष्ठ है । तब नारद ने कहा कि आप कृपाकर उसको मेरे प्रति कहें ॥२॥

इति द्वादशः खण्डः ।

अथ सप्तमाध्यायस्य त्रयोदशः खण्डः ।

मूलम् ।

स्मरो वावाकाशाद्भूयस्तस्माद्यद्यपि बहव आसीर-न्न स्मरन्तो नैव ते कञ्चन शृणुयुर्न मन्वीरन्न विजानी-

रन्यदा वाव ते स्मरेयुरथ शृणुयुरथ मन्वीरन्नथ विजानीरन्स्मरेण वै पुत्रान्विजानाति स्मरेण पशून् स्मरमुपास्स्वेति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

स्मरः, वाव, आकाशात्, भूयः, तस्मात्, यदि, अपि, बहवः, आसीरन्, न, स्मरन्तः, न, एव, ते, कञ्चन, शृणुयुः, न, मन्वीरन्, न, विजानीरन्, यदा, वाव, ते, स्मरेयुः, अथ, शृणुयुः, अथ, मन्वीरन्, अथ, विजानीरन्, स्मरेण, वै, पुत्रान्, विजानाति, स्मरेण, पशून्, स्मरम्, उपास्स्व, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
स्मरः=स्मृति		न=न	
वाव=निश्चय करके		विजानीरन्=समझेंगे	
आकाशात्=आकाश से		+ तु=परन्तु	
भूयः=श्रेष्ठ है		यदा=जब	
तस्मात्=इसलिये		ते=वे	
यदि=अगर		स्मरेयुः=स्मरण करें	
+ क्वचित्=किसी स्थान में		अथ=तब	
बहवः=बहुत मनुष्य		वाव=ही	
आसीरन्=बैठे हैं		शृणुयुः=सुनेंगे	
अपि=पर		अथ=तब	
न=न		+ एव=ही	
स्मरन्तः=स्मरण करें		मन्वीरन्=मनन करेंगे	
एव=तो		अथ=तब	
ते=वे		+ एव=ही	
कञ्चन=कुछ		विजानीरन्=समझेंगे	
न=न		+ च=और	
शृणुयुः=सुनेंगे		स्मरेण=स्मरणशक्ति से	
न=न		+ एव=ही	
मन्वीरन्=मनन करेंगे		वै=निस्सन्देह	

+ पुरुषः=पुरुष	+ विजानाति=जानता है
पुत्रान्=पुत्रों को	इति=इसलिये
विजानाति=जानता है	+ नारद=हे नारद !
स्मरेण=स्मरण करके ही	स्मरम्=स्मरण की
पशून्=पशुओं को	उपास्स्व=उपासना करो

भावार्थ ।

हे नारद ! आकाश से स्मृति श्रेष्ठ है, क्योंकि किसी स्थान में बहुत मनुष्य बैठे हों पर स्मरणशक्तिरहित हों अर्थात् स्मरण न करते हों तो वे न कुछ सुनेंगे और न समझेंगे, न मनन करेंगे । यदि वे स्मरणशक्ति से युक्त हैं तो वे सुनेंगे, मनन करेंगे, समझेंगे । स्मरणशक्ति करके ही पुरुष पुत्रों को और पशुओं को जानता है, इसलिये हे नारद ! स्मृति की ब्रह्मबुद्धि करके उपासना करो ॥ १ ॥

मूलम् ।

स यः स्मरं ब्रह्मेत्युपास्ते यावत्स्मरस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यः स्मरं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवः स्मराद्भूय इति स्मराद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति ॥ २ ॥

इति त्रयोदशः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

सः, यः, स्मरम्, ब्रह्म, इति, उपास्ते, यावत्, स्मरस्य, गतम्, तत्र, अस्य, यथाकामचारः, भवति, यः, स्मरम् , ब्रह्म, इति, उपास्ते, अस्ति, भगवः, स्मरात्, भूयः, इति, स्मरात्, वाव, भूयः, अस्ति, इति, तत् , मे, भगवान्, ब्रवीतु, इति ॥

अन्वयः पदार्थ	अन्वयः पदार्थ
सः=वह	ब्रह्म=ब्रह्म
यः=जो	इति=करके
स्मरम्=स्मृति को	उपास्ते=उपासता है

यः=जो	कश्चित्=कोई
स्मरम्=स्मृति को	भूयः=श्रेष्ठ
ब्रह्म=ब्रह्म	अस्ति=है
इति=करके	+ सनत्कुमारः=सनत्कुमार ने
उपास्ते=उपासता है तो	इति=ऐसा
यावत्=जहाँ तक	+ प्रत्युवाच=उत्तर दिया कि
स्मरस्य=स्मृति की	स्मरात्=स्मृति से
गतम्=गति है	वाव=निस्सन्देह
तत्र=तहाँ तक	भूयः=श्रेष्ठ
अस्य=उसका	अस्ति=है
यथाकामचारः=स्वेच्छानुसार गमन	+ तदा=तब
भवति=होता है	+ नारदः=नारद ने
इति=ऐसा	इति=इस प्रकार
+ श्रुत्वा=सुनकर	+ आह=कहा कि
+ नारदः=नारद ने	भगवान्=आप
+ उवाच=कहा कि	तत्=उसको
भगवः=हे भगवन् !	मे=मेरे प्रति
स्मरात्=स्मृति से	ब्रवीतु=कहें

भावार्थ ।

हे नारद ! वह जो स्मृति को ब्रह्मबुद्धि करके उपासता है तो जहाँतक स्मृति का विषय है वहाँ तक उसका इच्छानुसार गमन होता है । ऐसा सुनकर नारद ने कहा कि हे भगवन् ! क्या स्मृति से भी कोई श्रेष्ठ है ? सनत्कुमार ऋषि ने कहा कि हाँ, स्मृति से भी श्रेष्ठ है । तब नारदजी ने कहा कि आप कृपा करके उसको मेरे प्रति उपदेश करें ॥ २ ॥

इति त्रयोदशः खण्डः ।

अथ सप्तमाध्यायस्य चतुर्दशः खण्डः ।

मूलम् ।

आशा वाव स्मराद्भूयस्याशेद्धो वै स्मरो मन्त्रानधीते कर्माणि कुरुते पुत्रांश्च पशूंश्चेच्छत इमं च लोकममुं चेच्छत आशामुपास्स्वेति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

आशा, वाव, स्मरात्, भूयसी, आशेद्धः, वै, स्मरः, मन्त्रान्, अधीते, कर्माणि, कुरुते, पुत्रान्, च, पशून्, च, इच्छते, इमम्, च, लोकम्, अमुम्, च, इच्छते, आशाम्, उपास्स्व, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
आशा	आशा	पुत्रान्	पुत्रों को
वाव	निस्संदेह	च	और
स्मरात्	स्मृति से	पशून्	पशुओं की
भूयसी	श्रेष्ठ है	इच्छते	इच्छा करता है
वै	क्योंकि	च	फिर
आशेद्धः	आशा करके जगा हुआ	इमम्	इस लोक
स्मरः	स्मृतियुक्त पुरुष	च	और
मन्त्रान्	मन्त्रों को	अमुम्	परलोक को
अधीते	अध्ययन करता है	इच्छते	इच्छा करता है
+ ततः	तत्पश्चात्	इति	इसलिये
कर्माणि	कर्मों को	+ नारद	हे नारद !
कुरुते	करता है	आशाम्	आशा को
च	और	+ ब्रह्मबुद्ध्या	ब्रह्मबुद्धि करके
		उपास्स्व	उपासना करो

भावार्थ ।

हे नारद ! आशा स्मृति से श्रेष्ठ है, क्योंकि आशा अर्थात् उम्मेद करके जगा हुआ पुरुष स्मृतियुक्त होता है, फिर मन्त्रों का ध्यान करता है, ध्यान के अनुसार कर्मों को करता है और पुत्र तथा पशुओं के पाने

की इच्छा करता है, फिर इस लोक और परलोक के पाने की इच्छा करता है, इसलिये हे नारद ! आशा की ब्रह्मबुद्धि करके उपासना करो ॥ १ ॥

मूलम् ।

स य आशां ब्रह्मेत्युपास्त आशयाऽस्य सर्वे कामाः समृध्यन्त्यमोघा हास्याशिषो भवन्ति यावदाशाया गतं तत्राऽस्य यथाकामचारो भवति य आशां ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगव आशाया भूय इत्याशाया वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति ॥ २ ॥

इति चतुर्दशः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

सः, यः, आशाम्, ब्रह्म, इति, उपास्ते, आशया, अस्य, सर्वे, कामाः, सम्, ऋध्यन्ति, अमोघाः, ह, अस्य, आशिषः, भवन्ति, यावत्, आशायाः, गतम्, तत्र, अस्य, यथाकामचारः, भवति, यः, आशाम्, ब्रह्म, इति, उपास्ते, अस्ति, भगवः, आशायाः, भूयः, इति, आशायाः, वाव, भूयः, अस्ति, इति, तत्, मे, भगवान्, ब्रवीतु, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
सः=वह		उपास्ते=उपासता है तो	
यः=जो		यावत्=जहाँ तक	
आशाम्=आशा को		आशायाः=आशा की	
ब्रह्म=ब्रह्म		गतम्=गति है	
इति=करके		तत्र=तहाँ तक	
उपास्ते=उपासता है		अस्य=उसका	
यः=जो		यथाकामचारः=स्वेच्छानुसार गमन	
आशाम्=आशा को		भवति=होता है	
ब्रह्म=ब्रह्म		+ च=और	
इति=करके		अस्य=उसकी	

सर्वे=सब
कामाः=कामनाएँ
आशया=आशा करके
समृध्यन्ति=पूरी होती हैं
+ च=और
अस्य=उसके
आशिषः=आशीर्वाद
ह=निस्सन्देह
अमोघाः=सफल
भवन्ति=होते हैं
इति=ऐसा
+ श्रुत्वा=सुनकर
+ नारदः=नारद ने
+ उवाच=कहा कि
भगवः=हे भगवन्!
आशायाः=आशा से
+ कश्चित्=कोई
भूयः=श्रेष्ठ
अस्ति=है
सनत्कुमारः=सनत्कुमार ने
इति=ऐसा
+ प्रत्युवाच=जवाब दिया कि
आशायाः=आशा से
वाव=निस्सन्देह
भूयः=श्रेष्ठ
अस्ति=है
+ तदा=तब
+ नारदः=नारद ने
+ आह=कहा कि
भगवान्=आप
तत्=उसको
मे=मेरे प्रति
ब्रवीतु=कहें

भावार्थ ।

हे नारद ! वह जो कोई आशा को ब्रह्मबुद्धि करके उपासता है तो जहाँ तक आशा की गति है वहाँ तक उसका स्वेच्छानुसार गमन होता है और आशा करके उसकी सब कामनाएँ पूर्ण होती हैं और उसके आशीर्वाद सफल होते हैं । ऐसा सुनकर नारद ने कहा कि हे भगवन्! क्या आशा से भी कोई अधिकतर है ? सनत्कुमार ने कहा कि हाँ, आशा से भी अधिकतर है । तब नारद ने कहा कि आप कृपा करके उसको मेरे प्रति कहें ॥ २ ॥

इति चतुर्दशः खण्डः ।

अथ सप्तमाध्यायस्य पञ्चदशः खण्डः ।

मूलम् ।

प्राणो वा आशाया भूयान्यथा वा अरा नाभौ सम-

पिता एवमस्मिन्प्राणे सर्वंँसमर्पितं प्राणः प्राणेन याति प्राणः प्राणं ददाति प्राणाय ददाति प्राणो ह पिता प्राणो माता प्राणो भ्राता प्राणः स्वसा प्राणो आचार्यः प्राणो ब्राह्मणः ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

प्राणः, वै, आशायाः, भूयान्, यथा, वै, अराः, नाभौ, समर्पिताः, एवम्, अस्मिन्, प्राणे, सर्वम्, समर्पितम्, प्राणः, प्राणेन, याति, प्राणः, प्राणम्, ददाति, प्राणाय, ददाति, प्राणः, ह, पिता, प्राणः, माता, प्राणः, भ्राता, प्राणः, स्वसा, प्राणः, आचार्यः, प्राणः, ब्राह्मणः ॥

अन्वयः	पदार्थ
प्राणः	प्राण
वै	निश्चय करके
आशायाः	आशा से
भूयान्	श्रेष्ठ है
यथा	जैसे
नाभौ	पहिये की नाभि विषे
अराः	अरे
समर्पिताः	लगे रहते हैं
एवम्	उसी तरह
वै	निस्संदेह
अस्मिन् प्राणे	इस प्राण में
सर्वम्	सब कुछ
समर्पितम्	संबद्ध है
प्राणः	प्राण
प्राणेन	प्राण करके ही
याति	व्यवहार करता है
प्राणः	प्राण
प्राणम्	प्राण को अर्थात् जीवन को
ददाति	देता है
प्राणः	प्राण
प्राणाय	प्राण के लिये
ददाति	देता है
प्राणः	प्राण
ह	ही
पिता	पिता है
प्राणः	प्राण ही
माता	माता है
प्राणः	प्राण ही
भ्राता	भाई है
प्राणः	प्राण ही
स्वसा	भगिनी है
प्राणः	प्राण ही
आचार्यः	आचार्य है
+ च	और
प्राणः	प्राण ही
ब्राह्मणः	ब्राह्मण है

भावार्थ ।

हे नारद ! आशा से प्राण बढ़कर है । जैसे रथचक्र में नाभि होती है और उसमें अरे और नेमि लगे रहते हैं, उनके द्वारा रथचक्र का व्यवहार होता है और नाभि के गिरजाने से सारा व्यवहार नष्ट हो जाता है, रथ भी गिरजाता है, उसी तरह प्राण नाभि के तुल्य है । इन्द्रियादि अरों के तुल्य हैं और शरीर रथ के तुल्य है । जब प्राण शरीर से निकल जाता है तो इन्द्रियाँ और शरीर नष्ट भ्रष्ट हो जाते हैं, अतएव ये सब प्राण ही के आश्रय हैं । प्राण स्वतंत्र है, इन्द्रियाँ परतंत्र हैं और प्राण बिषे गमनादि क्रिया प्राण ही करके होती है । प्राण प्राण ही को देता है और प्राण ही करके लेता है । प्राण ही पिता, माता, भ्राता, भगिनी, आचार्य और ब्राह्मण है । जब तक प्राण शरीर बिषे स्थित है, तभी तक यह संबन्ध है, प्राण निकला और संबन्ध टूटा; क्योंकि मृतक शरीर को न कोई पिता, न माता, न भ्राता, न भगिनी, न आचार्य और न ब्राह्मणादि के नाम से कहते हैं तथा न कोई उसके रखने की इच्छा करता है, इसलिये सब वस्तु प्राण ही है ॥ १ ॥

मूलम् ।

स यदि पितरं वा मातरं वा भ्रातरं वा स्वसारं वाऽऽचार्यं वा ब्राह्मणं वा किञ्चिद्भृशमिव प्रत्याह धिक्त्वाऽस्त्वित्येवैनमाहुः पितृहा वै त्वमसि मातृहा वै त्वमसि भ्रातृहा वै त्वमसि स्वसृहा वै त्वमस्याचार्यहा वै त्वमसि ब्राह्मणहा वै त्वमसीति ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

सः, यदि, पितरम्, वा, मातरम्, वा, भ्रातरम्, वा, स्वसारम्, वा, आचार्यम्, वा, ब्राह्मणम्, वा, किञ्चित्, भृशम्, इव,

प्रति, आह, धिक्, त्वा, अस्तु, इति, एव, एनम्, आहुः, पितृहा, वै, त्वम्, असि, मातृहा, वै, त्वम्, असि, भ्रातृहा, वै, त्वम्, असि, स्वसृहा, वै, त्वम्, असि, आचार्यहा, वै, त्वम्, असि, ब्राह्मणहा, वै, त्वम्, असि, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यदि	अगर	पितृहा	पिता का मारनेवाला
सः	वह	असि	है
पितरम्	पिता को	त्वम्	तू
वा	अथवा	वै	निस्सन्देह
मातरम्	माता को	मातृहा	माता का मारनेवाला
वा	अथवा	असि	है
स्वसारम्	भगिनी को	त्वम्	तू
वा	अथवा	वै	निस्सन्देह
भ्रातरम्	भ्राता को	भ्रातृहा	भ्राता का मारनेवाला
वा	अथवा	असि	है
आचार्यम्	आचार्य को	त्वम्	तू
वा	अथवा	वै	निस्सन्देह
ब्राह्मणम्	ब्राह्मण को	स्वसृहा	भगिनी का मारनेवाला
किञ्चित्	कोई	असि	है
भृशम् इव	अनुचित सी बात	त्वम्	तू
प्रत्याह	कहता है तो	वै	निस्सन्देह
+ पार्श्वस्थाः	समीपस्थ पुरुष	आचार्यहा	आचार्य का मारनेवाला
एनम्	उसको	असि	है
इति	ऐसा	त्वम्	तू
आहुः	कहते हैं कि	वै	निस्सन्देह
त्वा	तुझ को	ब्राह्मणहा	ब्राह्मण का मारनेवाला
धिक्	धिक्कार	असि	है
अस्तु	हो		
त्वम्	तू		
वै	निस्सन्देह		

भावार्थ ।

हे नारद ! अगर कोई पिता, माता, भ्राता, आचार्य अथवा ब्राह्मण को दुर्वाक्य कहता है तो समीपस्थ पुरुष उससे कहते हैं कि तूने बड़ा निन्दित काम किया है, तुझको धिक्कार है । तू इन दुर्वाक्यों करके पिता, माता, भ्राता, भगिनी, आचार्य और ब्राह्मण का हनन करनेवाला है अर्थात् ऐसा जो इन विषे उपकार करनेवाला प्राण है उसको तू अपने वाक्यों करके दुःख देता है, इसलिये तू पापकर्म का करनेवाला है ॥ २ ॥

मूलम् ।

अथ यद्यप्येनानुत्क्रान्तप्राणाञ्छूलेन समासं व्यतिसंदहेन्नैवैनं ब्रूयुः पितृहाऽसीति न मातृहाऽसीति न भ्रातृहाऽसीति न स्वसृहाऽसीति नाचार्यहाऽसीति न ब्राह्मणहाऽसीति ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यदि, अपि, एनान्, उत्क्रान्तप्राणान्, शूलेन, समासम्, व्यतिसंदहत्, न, एव, एनम्, ब्रूयुः, पितृहा, असि, इति, न, मातृहा, असि, इति, न, भ्रातृहा, असि, इति, न, स्वसृहा, असि, इति, न, आचार्यहा, असि, इति, न, ब्राह्मणहा, असि, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
अथ	और
यद्यपि	अगर
उत्क्रान्तप्राणान्	निकल गए हैं प्राण जिनके
एनान्	ऐसे इन पिता आदिकों को
शूलेन	शूल से
समासम्	एकत्रित करके
व्यतिसंदहत्	अच्छी प्रकार जला देवे
+ तथापि	तौभी
पितृहा	पिता का मारनेवाला
असि	है
इति	ऐसा
एनम्	उसको

नैव=नहीं
ब्रूयुः=कहते हैं
मातृहा=माता का मारने-वाला
असि=है
इति=ऐसा
न=नहीं कहते हैं
भ्रातृहा=भाई का मारने-वाला
असि=है
इति=ऐसा
न=नहीं कहते हैं
स्वसृहा=भगिनी का मारने-वाला
असि=है
इति=ऐसा
न=नहीं कहते हैं
आचार्यहा=आचार्य का मारने-वाला
असि=है
इति=ऐसा
न=नहीं कहते हैं
ब्राह्मणहा=ब्राह्मण का मारने-वाला
असि=है
इति=ऐसा
न=नहीं
+ ब्रूयुः=कहते हैं

भावार्थ ।

हे नारद ! जब शरीर से प्राण निकल जाता है तब उसके संबन्धी उसको दाह कर देते हैं और उसके कपाल को तोड़ देते हैं। तब उसको कोई पापी या बुरा नहीं कहते हैं, क्योंकि उसके अन्दर प्राण स्थित नहीं है। इससे यही सिद्ध होता है कि प्राण ही को दुःख होता है, शरीर को नहीं। ऐसा जानकर किसी प्राणधारी को किसी प्रकार का दुःख नहीं देना चाहिए ॥ ३ ॥

मूलम् ।

प्राणो ह्येवैतानि सर्वाणि भवति स वा एष एवं पश्यन्नेवं मन्वान एवं विजानन्नतिवादी भवति तं चेद्ब्रूयुरतिवाद्यसीत्यतिवाद्यस्मीति ब्रूयान्नापह्नुवीत ॥ ४ ॥

इति पञ्चदशः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

प्राणः, हि, एव, एतानि, सर्वाणि, भवति, सः, वै, एषः, एवम्, पश्यन्, एवम्, मन्वानः, एवम्, विजानन्, अतिवादी, भवति, तम्, चेत्, ब्रूयुः, अतिवादी, असि, इति, अतिवादी, अस्मि, इति, ब्रूयात्, न, अपह्नुवीत ।

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
प्राणः	प्राण	+ च	और
हि	है	चेत्	यदि
एव	निश्चय करके	तम्	उससे
एतानि	इन	+ जनाः	लोग
सर्वाणि	सबमें	ब्रूयुः	कहैं कि
भवति	स्थित है	त्वम्	तू
एवम्	इस प्रकार	अतिवादी	अतिवादी
सः	वह	असि	है तो
एषः	यह उपासक	+ सः	वह
वै	निश्चय करके	इति	ऐसा
पश्यन्	देखता हुआ	ब्रूयात्	कहै कि
एवम्	इस प्रकार	+ अहम्	मैं
मन्वानः	मनन करता हुआ	अतिवादी	अतिवादी
एवम्	इस प्रकार	अस्मि	हूँ
विजानन्	समझता हुआ	इति	इस प्रकार
अतिवादी	अतिवादी	न	न
भवति	होता है	अपह्नुवीत	छिपावे

भावार्थ ।

हे नारद ! जो नाम से लेकर आशा पर्यन्त एक दूसरे को उत्तरोत्तर अधिक बढ़कर जानता हुआ प्राण के महत्त्व को भलीप्रकार जाननेवाला होता है वह अतिवादी कहा जाता है । प्राण के महत्त्व से सबका माहात्म्य नीचा है: ऐसा देखता हुआ, मनन करता हुआ और

समझता हुआ निश्चय करता है कि संसार विषे जो कुछ है वह सब प्राण ही में है और यदि लोग उससे कहें कि तू अतिवादी है तो वह कहे कि हाँ, मैं अतिवादी हूँ और छिपावे नहीं, क्योंकि उसको ख्याल रखना चाहिए कि सब जगत् का प्राणरूप आत्मा मैं ही हूँ ॥ ४ ॥

इति पञ्चदशः खण्डः ।

अथ सप्तमाध्यायस्य षोडशः खण्डः ।

मूलम् ।

एष तु वा अतिवदति यः सत्येनातिवदति सोऽहं भगवः सत्येनातिवदानीति सत्यं त्वेव विजिज्ञासितव्य-मिति सत्यं भगवो विजिज्ञास इति ॥ १ ॥

इति षोडशः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

एषः, तु, वै, अतिवदति, यः, सत्येन, अतिवदति, सः, अहम्, भगवः, सत्येन, अतिवदानि, इति, सत्यम्, तु, एव, विजिज्ञासितव्यम्, इति, सत्यम्, भगवः, विजिज्ञासे, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
तु	=परन्तु	अहम्	=मैं
यः	=जो	सत्येन	=ब्रह्मज्ञान करके ही
एषः	=यह	अतिवदानि	=अतिवादी होना चाहता हूँ
अतिवदति	=अतिवादी होता है	इति	=ऐसा
वै	=तो	+ श्रुत्वा	=सुनकर
सः	=वह	+ सनत्कुमारः	=सनत्कुमार ने
सत्येन	=सत्ब्रह्म करके	+ उवाच	=कहा कि
एव	=ही	तु	=प्रथम
अतिवदति	=अतिवादी होता है	सत्यम्	=सत्य को
भगवः	=हे भगवन् !		

विजिज्ञासितव्यम् =जानना चाहिए
+ तदा=तब
+ नारदः=नारद ने
+ उवाच=कहा कि
भगवः=हे भगवन् !
सत्यम्=सत् ब्रह्म को
विजिज्ञासे=जानना चाहता हूँ

भावार्थ ।

हे सौम्य ! जब सनत्कुमार ऋषि ने नारद ऋषि को प्राणविद्या का उपदेश किया, तब नारद प्राण को सब नामादिकों से श्रेष्ठ पाकर और उसीको ब्रह्म समझकर तूष्णीं होता भया, तब सनत्कुमार ऋषि ने समझा कि जिस कल्याण के निमित्त नारद मेरे पास आया था उसको न पाकर तूष्णीं हो गया अर्थात् प्रश्न करने से उपराम हो गया और मिथ्या ब्रह्मज्ञान से संतुष्ट होता भया । यह कृतार्थ जभी होगा जब सत्य को प्राप्त होगा, इसलिये विना पूछे ही इसको परंतत्त्व का उपदेश करना चाहिए ऐसा विचार कर सनत्कुमार कहते भये कि हे नारद ! अतिवादी वह होता है जो सत्यभाषण आदि साधनसम्पन्न होता हुआ परमार्थ सत्यवस्तु को सम्यक् प्रकार जाननेवाला होता है, इसलिये हे नारद ! तू अतिवादी बन । तब नारद ने कहा कि हे भगवन् ! मैं अतिवादी बनना चाहता हूँ, आप मुझको अतिवादी बनावें । तब सनत्कुमार भगवान् ने कहा कि हे नारद ! प्रथम तुझको जानना चाहिए कि सत्य परमार्थ वस्तु क्या है ? उसके ज्ञान करके ही पुरुष अतिवादी होता है । तब नारद ने कहा कि मैं विशेष करके सत्य जानना चाहता हूँ, आप मुझको बतावें ॥ १ ॥

इति षोडशः खण्डः ।

अथ सप्तमाध्यायस्य सप्तदशः खण्डः ।

मूलम् ।

यदा वै विजानात्यथ सत्यं वदति नाविजानन् सत्यं

वदति विजानन्नेव सत्यं वदति विज्ञानं त्वेव विजिज्ञासितव्यमिति विज्ञानं भगवो विजिज्ञास इति ॥ १ ॥

इति सप्तदशः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

यदा, वै, विजानाति, अथ, सत्यम्, वदति, न, अविजानन्, सत्यम्, वदति, विजानन्, एव, सत्यम्, वदति, विज्ञानम्, तु, एव, विजिज्ञासितव्यम्, इति, विज्ञानम्, भगवः, विजिज्ञासे, इति ।

अन्वयः	पदार्थ
यदा	जब कोई
वै	निश्चय करके
विजानाति	सत्य को जानता है
अथ	तब
सत्यम्	सत्य को ही
वदति	कहता है
अविजानन्	सत्य को न जानता हुआ
सत्यम्	सत्य ब्रह्म को
न	नहीं
वदति	कह सक्ता है
विजानन्	सत्य को जानने वाला
एव	ही
सत्यम्	सत्य को
वदति	कहता है
तु	परन्तु
विज्ञानम्	विज्ञान
विजिज्ञासितव्यम्	जानने योग्य है
इति	ऐसा
+ श्रुत्वा	सुनकर
+ नारदः	नारद ने
+ उवाच	कहा कि
भगवः	हे भगवन्!
विज्ञानम्	विज्ञान को
एव	ही
विजिज्ञासे	मैं जानना चाहता हूँ

भावार्थ ।

सनत्कुमार ऋषि कहते हैं कि हे नारद ! सत्य को वही कह सक्ता है जो सत्य को जानता है, जो सत्य को नहीं जानता है वह परमार्थ सत्य को नहीं कह सक्ता है । परमार्थ सत्य को मुमुक्षु केवल विज्ञान के द्वारा ही जान सक्ता है, सो विज्ञान जानने योग्य है । हे नारद ! जैसे

नामरूपात्मक घटरूप उपाधि का सत्य एक मृत्तिका ही है औ जो सत्यरूप मृत्तिका से बने हुए घट सरावादिक हैं वे केवल वाचा रम्भणमात्र ही हैं, सत्यरूप मृत्तिका से अलग करके देखो तो कहीं उनका पता नहीं है। प्राण को जो सत्य कहा है वह नामादिकों की अपेक्षा से सत्य कहा है, क्योंकि प्राण भी और विकारों की तरह उत्पत्ति और नाशवान् है। यह घटता बढ़ता है, चलता है, ठहरता है अर्थात् निकल जाता है। इसका जो अधिष्ठान है, जिसकी सत्ता लेकर यह अनेक प्रकार के व्यवहार करने में समर्थ होता है, वह वास्तव में सत्य है। सोई विज्ञान करके उपनिषदों द्वारा जानने योग्य है। हे नारद जो उपनिषदों के विचार से यथार्थ ज्ञान होता है, वही विज्ञान कहलाता है वही तुम्हारे जानने योग्य है। तब नारद ने कहा कि हे प्रभो ऐसे विज्ञान को मैं जानना चाहता हूँ ॥ १ ॥

इति सप्तदशः खण्डः ।

अथ सप्तमाध्यायस्याष्टादशः खण्डः ।

मूलम् ।

यदा वै मनुतेऽथ विजानाति नामत्वा विजानाति मत्वैव विजानाति मतिस्त्वेव विजिज्ञासितव्येति मतिं भगवो विजिज्ञास इति ॥ १ ॥

इत्यष्टादशः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

यदा, वै, मनुते, अथ, विजानाति, न, अमत्वा, विजानाति, मत्वा, एव, विजानाति, मतिः, तु, एव, विजिज्ञासितव्या, इति, मतिम्, भगवः, विजिज्ञासे, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यदा=जब कोई		मनुते=मनन करता है	
वै=निश्चय करके		अथ=तब	

विजानाति=सत्यासत्य को जानता है
अमत्वा=न मनन करके
+ कश्चित्=कोई
न=नहीं
विजानाति=जानता है
मत्वा=मनन करके
एव=ही
विजानाति=विज्ञानवाला होता है
इति=इसलिये
मतिः=मननशक्ति
एव=निश्चय करके
विजिज्ञासितव्या=जानने योग्य है
इति=ऐसा
+ श्रुत्वा=सुनकर
+ नारदः=नारद ने
+ उवाच=कहा कि
भगवः=हे भगवन् !
मतिम्=मननशक्ति को
विजिज्ञासे=जानना चाहता हूँ

भावार्थ ।

हे नारद ! जब जिज्ञासु मनन करता है तब विज्ञान को प्राप्त होता है, विना मनन किए हुए विज्ञान को प्राप्त नहीं होता है । जो जिज्ञासु आचार्य से सुनता है उसको विचार करके, तर्क करके और युक्तियों से दृढ़ करके मनन करता है । तब नारद ने कहा कि हे भगवन् ! मैं मनन के जानने की इच्छा करता हूँ ॥ १ ॥

इत्यष्टादशः खण्डः ।

अथ सप्तमाध्यायस्यैकोनविंशतितमः खण्डः ।

मूलम् ।

यदा वै श्रद्दधात्यथ मनुते नाश्रद्दधन्मनुते श्रद्दधदेव मनुते श्रद्धात्वेव विजिज्ञासितव्येति श्रद्धां भगवो विजिज्ञास इति ॥ १ ॥

इत्येकोनविंशतितमः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

यदा, वै, श्रद्दधाति, अथ, मनुते, न, अश्रद्दधन्, मनुते, श्रद्दधत्, एव, मनुते, श्रद्धा, तु, एव, विजिज्ञासितव्या, इति, श्रद्धाम्, भगवः, विजिज्ञासे, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यदा	जब	इति	इसलिये
वै	निश्चय करके	श्रद्धा	श्रद्धा
श्रद्धाति	श्रद्धा करता है	एव	निश्चय करके
अथ	तब	विजिज्ञासितव्या	जानने योग्य है
तु	ही	इति	ऐसा
मनुते	मनन करता है	+ श्रुत्वा	सुनकर
अश्रद्दधन्	श्रद्धारहित पुरुष	+ नारदः	नारद ने
न	नहीं	+ उवाच	कहा कि
मनुते	मनन कर सक्ता है	भगवः	हे भगवन् !
श्रद्दधत्	श्रद्धा करता हुआ	श्रद्धाम्	श्रद्धा को
एव	ही	विजिज्ञासे	जानना चाहता हूँ
मनुते	मनन करता है		

भावार्थ ।

हे नारद ! जब जिज्ञासु अपने गुरु के वाक्यों में श्रद्धा करता है तब ही उसको मननशक्ति प्राप्त होती है और जो वेदोक्त है उसी को गुरु उपदेश करता है । जो जिज्ञासु गुरु के वाक्यों में विश्वास नहीं करता है, वह मननशक्ति को नहीं प्राप्त होता है, इसलिये श्रद्धा को जानना योग्य है । ऐसा सुनकर नारद ने कहा कि हे भगवन् ! मैं श्रद्धा को जानना चाहता हूँ ॥ १ ॥

इत्येकोनविंशतितमः खण्डः ।

अथ सप्तमाध्यायस्य विंशतितमः खण्डः ।

मूलम् ।

यदा वै निस्तिष्ठत्यथ श्रद्दधाति नानिस्तिष्ठञ्छ्रद्दधाति निस्तिष्ठन्नेव श्रद्दधाति निष्ठा त्वेव विजिज्ञासितव्येति निष्ठां भगवो विजिज्ञास इति ॥ १ ॥

इति विंशतितमः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

यदा, वै, निः, तिष्ठति, अथ, श्रद्दधाति, न, अनिस्तिष्ठन्, श्रद्दधाति, निस्तिष्ठन्, एव, श्रद्दधाति, निष्ठा, तु, एव, विजिज्ञासितव्या, इति, निष्ठाम्, भगवः, विजिज्ञासे, इति ।

अन्वयः	पदार्थ
यदा	जब
वै	निश्चय के साथ
निस्तिष्ठति	गुरु की सेवादि में तत्पर होता है
अथ	तब
तु	ही
श्रद्दधाति	श्रद्धासम्पन्न होता है
अनिस्तिष्ठन्	गुरु की सेवा न करता हुआ पुरुष
न	नहीं
श्रद्दधाति	श्रद्धालु होता है
निस्तिष्ठन्	सेवा में तत्पर होता हुआ पुरुष
श्रद्दधाति	श्रद्धासम्पन्न होता है
इति	इसलिये
निष्ठा	गुरुसेवा अर्थात् गुरु में निष्ठा
एव	निश्चय करके
विजिज्ञासितव्या	जानने योग्य है
इति	ऐसा
+ श्रुत्वा	सुनकर
+ नारदः	नारद ने
+ उवाच	कहा कि
भगवः	हे भगवन् !
निष्ठाम्	निष्ठा को
एव	ही
विजिज्ञासे	मैं जानना चाहता हूँ

भावार्थ ।

हे नारद ! पहिले निष्ठा के अर्थ को सुनो । गुरु की सेवा और गुरु के कहे हुए वाक्यों में ब्रह्मचर्यादि साधनपूर्वक मनन और विचार करके दृढ़ अभ्यास करना निष्ठा है । जब ऐसी निष्ठा जिज्ञासु गुरु में करता है, तब उसको पारमार्थिक श्रद्धा प्राप्त होती है । इसलिये हे नारद ! निष्ठा जानने योग्य है । ऐसा सुनकर नारद ने कहा कि हे भगवन् ! मैं निष्ठा ही के जानने की इच्छा करता हूँ ॥ १ ॥

इति विंशतितमः खण्डः ।

अथ सप्तमाध्यायस्यैकविंशः खण्डः ।

मूलम् ।

यदा वै करोत्यथ निस्तिष्ठति नाकृत्वा निस्तिष्ठति कृत्वैव निस्तिष्ठति कृतिस्त्वेव विजिज्ञासितव्येति कृतिं भगवो विजिज्ञास इति ॥ १ ॥

इत्येकविंशः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

यदा, वै, करोति, अथ, निः, तिष्ठति, न, अकृत्वा, निः, तिष्ठति, कृत्वा, एव, निः, तिष्ठति, कृतिः, तु, एव, विजिज्ञासितव्या, इति, कृतिम्, भगवः, विजिज्ञासे, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
यदा	जब
वै	निश्चय के साथ
करोति	एकाग्रता से संयम करता है
अथ	तब
तु	ही
निस्तिष्ठति	निष्ठावाला होता है
अकृत्वा	संयम न करने से
न	नहीं
निस्तिष्ठति	निष्ठावाला होता है
कृत्वा	संयम करके
एव	ही
निस्तिष्ठति	निष्ठासम्पन्न होता है
इति	इसलिये
कृतिः	संयमरूपी क्रिया
एव	निश्चय करके
विजिज्ञासितव्या	जानने योग्य है
इति	ऐसा
+ श्रुत्वा	सुनकर
+ नारदः	नारद ने
+ उवाच	कहा कि
भगवः	हे भगवन् !
कृतिम्	कृति अर्थात् इन्द्रियों का रोकना और चित्त को एकाग्र करना
विजिज्ञासे	जानना चाहता हूँ

भावार्थ ।

हे नारद ! जब जिज्ञासु इन्द्रियों को विषयों से रोकता है और चित्त को एकाग्र करता है, तब वह निष्ठावाला होता है, अगर वह

... नहीं करता और निष्ठा करता है तो उसकी निष्ठा पारमार्थिक नहीं हो सक्ता, ... कृति जानने योग्य है, तब नारद ने कहा कि हे भगवन्! मैं कृति को जानना ... हूँ ॥ १ ॥

इत्येकविंशः खण्डः ।

अथ सप्तमाध्यायस्य द्वाविंशः खण्डः ।

मूलम् ।

यदा वै सुखं लभतेऽथ करोति नासुखं लब्ध्वा करोति सुखमेव लब्ध्वा करोति सुखं त्वेव विजिज्ञासितव्यमिति सुखं भगवो विजिज्ञास इति ॥ १ ॥

इति द्वाविंशः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

यदा, वै, सुखम्, लभते, अथ, करोति, न, असुखम्, लब्ध्वा, करोति, सुखम्, एव, लब्ध्वा, करोति, सुखम्, तु, एव, विजिज्ञासितव्यम्, इति, सुखम्, भगवः, विजिज्ञासे, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
यदा	जब पुरुष
वै	निश्चय करके
सुखम्	सुख को
लभते	प्राप्त होता है
अथ	तब
तु	ही
करोति	क्रिया को करता है
असुखम्	सुख को न
लब्ध्वा	प्राप्त होकर
न करोति	क्रिया को नहीं करता है
सुखम्	सुख को
लब्ध्वा	पा करके
एव	ही
करोति	क्रिया को करता है
इति	इसलिये
सुखम्	सुख
एव	ही
विजिज्ञासितव्यम्	जानना योग्य है
इति	ऐसा
+ श्रुत्वा	सुनकर
+ नारदः	नारद ने
+ उवाच	कहा कि
भगवः	हे भगवन्!
सुखम्	सुख को
विजिज्ञासे	मैं जानना चाहता हूँ

भावार्थ ।

हे नारद ! कृति तभी होती है जब सुख [illegible] जाता है अर्थात् जब जिज्ञासु निरतिशय [illegible] की इच्छा करता है तब कृति को अर्थात [illegible] का निग्रह और चित्त की एकाग्रता को करता है, इसलिये परमार्थ सत्य सुख जानने योग्य है । उस सत्य विज्ञान का कारण मनन है, मनन का कारण विश्वास है, क्योंकि जब गुरु के वाक्य में विश्वास होता है तभी मनन होता है । फिर श्रद्धा का कारण निष्ठा है, निष्ठा का कारण कृति अर्थात् इन्द्रियों का संयम और चित्त की एकाग्रता है । कृति आदि से सत्य की प्राप्ति होती है और सत्य की प्राप्ति से निरतिशय सुख होता है । निरतिशय सुख तब होता है जब वह ऊपर कहे हुए साधनों से अपने आपको प्रकाशता है । ऐसा सुनकर नारद ने कहा कि हे भगवन् ! मैं सुख को जानना चाहता हूँ ॥ १ ॥

इति द्वाविंशः खण्डः ।

अथ सप्तमाध्यायस्य त्रयोविंशः खण्डः ।

मूलम् ।

यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति भूमैव सुखं भूमा त्वेव विजिज्ञासितव्य इति भूमानं भगवो विजिज्ञास इति ॥ १ ॥

इति त्रयोविंशः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

यः, वै, भूमा, तत्, सुखम्, न, अल्पे, सुखम्, अस्ति, भूमा, एव, सुखम्, भूमा, तु, एव, विजिज्ञासितव्यः, इति, भूमानम्, भगवः, विजिज्ञासे, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
यः	जो
वै	निश्चय करके
भूमा	भूमा है
तत्	वही
सुखम्	सुखरूप है
अल्पे	अल्पवस्तु
सुखम्	सुखरूप
न	नहीं
अस्ति	है
इति	इसलिये
भूमा	भूमा
एव	निश्चय करके
विजिज्ञासितव्यः	जानने योग्य है

अन्वयः	पदार्थ
तु	क्योंकि
भूमा	भूमा
एव	ही
सुखम्	सुखरूप है
इति	ऐसा
+श्रुत्वा	सुनकर
+ नारदः	नारद ने
+ उवाच	कहा कि
भगवः	हे भगवन् !
भूमानम्	भूमा को
विजिज्ञासे	मैं जानना चाहता हूँ

भावार्थ ।

सनत्कुमार ऋषि कहते हैं कि हे नारद ! जो भूमा है वही सुखरूप है । निरतिशय सुख परिपूर्णता में होता है, अल्पज्ञता में नहीं । भूमा अर्थात् ब्रह्म सर्वत्र व्यापक है, अतिमहान् है, सब कामनाओं से परिपूर्ण है अतएव अचल है । अल्पज्ञता में तृष्णा होती है, तृष्णा से दुःख होता है अतः तुम अल्पज्ञता को त्याग कर सर्वज्ञता का आश्रय करो और भूमाख्य आत्म बिषे स्थित होने का पुरुपार्थ करो । तब नारद ने कहा कि हे भगवन् ! जो सबसे अधिक निरतिशय भूमाख्य सुख है, उसको मैं जानना चाहता हूँ ॥ १ ॥

इति त्रयोविंशः खण्डः ।

अथ सप्तमाध्यायस्य चतुर्विंशः खण्डः ।

मूलम् ।

यत्र नान्यत्पश्यति नान्यच्छृणोति नान्यद्विजानाति स भूमाथ यत्रान्यत्पश्यत्यन्यच्छृणोत्यन्यद्विजानाति

तदल्पं यो वै भूमा तदमृतमथ यदल्पं तन्मर्त्यꣳ स भगवः कस्मिन्प्रतिष्ठित इति स्वे महिम्नि यदि वा न महिम्नीति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

यत्र, न, अन्यत्, पश्यति, न, अन्यत्, शृणोति, न, अन्यत्, विजानाति, सः, भूमा, अथ, यत्र, अन्यत्, पश्यति, अन्यत्, शृणोति, अन्यत्, विजानाति, तत्, अल्पम्, यः, वै, भूमा, तत्, अमृतम्, अथ, यत्, अल्पम्, तत्, मर्त्यम्, सः, भगवः, कस्मिन्, प्रतिष्ठितः, इति, स्वे, महिम्नि, यदि, वा, न, महिम्नि, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
यत्र	जिस भूमा ब्रह्म में
अन्यत्	अन्य वस्तु को
न	नहीं
पश्यति	देखता है
अन्यत्	अन्य वस्तु को
न	नहीं
शृणोति	सुनता है
अन्यत्	अन्य वस्तु को
न	नहीं
विजानाति	जानता है
सः	वही वस्तु
भूमा	भूमा है
अथ	और
यत्र	जिसमें
अन्यत्	अन्य वस्तु को
पश्यति	देखता है
अन्यत्	अन्य वस्तु को
शृणोति	सुनता है
अन्यत्	अन्य वस्तु को
विजानाति	जानता है
तत्	वह वस्तु
अल्पम्	अल्प है
यः	जो
वै	निश्चय करके
भूमा	भूमा है
तत्	वही
अमृतम्	अमृत है
अथ	और
यत्	जो
अल्पम्	अल्प है
तत्	वही
मर्त्यम्	मृत्यु योग्य है
भगवः	हे भगवन् !
सः	वह भूमा
कस्मिन्	किसमें
प्रतिष्ठितः	प्रतिष्ठित है

वा=अथवा	इति=ऐसा
यदि=जो अपनी	+ श्रुत्वा=सुन करके
महिम्नि=महिमा में	+ सनत्कुमारः=सनत्कुमार ने
न=नहीं	+ उवाच=कहा कि
प्रतिष्ठितः=प्रतिष्ठित है	स्वे=अपने
	महिम्नि=महिमा में

भावार्थ ।

हे नारद ! उस एक अद्वैत निर्विशेष आत्मतत्त्व विषे उपासक न अन्य वस्तु को देखता है, न अन्य वस्तु को सुनता है, न अन्य वस्तु को जानता है, ऐसा यह भूमा है अर्थात् महाप्रभाववाला प्रमाणरहित व्यापक ब्रह्म है और जिसमें उपासक अन्य वस्तु को देखता है, अन्य वस्तु को सुनता है, अन्य वस्तु को जानता है, वह अल्प है, भूमा नहीं है और जो अल्प है, वही मरणयोग्य है । यह सुनकर नारद ने कहा कि हे भगवन् ! भूमा किसमें प्रतिष्ठित है ? तब सनत्कुमार ऋषि ने उत्तर दिया कि वह अपनी निज महिमा में ही प्रतिष्ठित है । भूमाख्य आत्मज्ञानस्वरूप है । न वह ज्ञानक्रिया का कर्ता है और न वह ज्ञान का विषय है, इसलिये महिमा से पृथक् भी है ॥ १ ॥

मूलम् ।

गो अश्वमिह महिमेत्याचक्षते हस्तिहिरण्यं दासभार्यं क्षेत्राण्यायतनानीति नाहमेवं ब्रवीमि ब्रवीमीति होवाचान्यो ह्यन्यस्मिन्प्रतिष्ठित इति ॥ २ ॥

इति चतुर्विंशः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

गो, अश्वम्, इह, महिमा, इति, आचक्षते, हस्तिहिरण्यम्, दासभार्यम्, क्षेत्राणि, आयतनानि, इति, न, अहम्, एवम्, ब्रवीमि, ब्रवीमि, इति, ह, उवाच, अन्यः, हि, अन्यस्मिन्, प्रतिष्ठितः, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
इह	इस संसार में	+ एषः	यह महिमा
गो अश्वम्	गाय घोड़ा	अन्यः	अन्य
हस्तिहिरण्यम्	हस्ति सुवर्ण	अन्यस्मिन्	अन्य विषे
दासभार्यम्	दास स्त्री	प्रतिष्ठितः	प्रतिष्ठित है
क्षेत्राणि	क्षेत्र	+ अहम्	मैं
आयतनानि	गृह आदिकों को	+ तु	तो
महिमा	महिमा	+ वक्ष्यमाणम्	आगे कहे हुए प्रकार
इति	करके	इति	करके
आचक्षते	कहते हैं	+ तस्य	उस भूमाख्य ब्रह्मकी
इति	ऐसी	+ महिमानम्	महिमा को
एवम्	महिमा को	ब्रवीमि	कहता हूं
अहम्	मैं	इति	इस प्रकार
न	नहीं	ह	स्पष्ट
ब्रवीमि	कहता हूं	+ सनत्कुमारः	सनत्कुमार ऋषि
हि	क्योंकि	उवाच	कहते भये

भावार्थ ।

हे नारद ! गौ, घोड़ा, हस्ती, सुवर्ण, दास, स्त्री, ग्राम और राज्य आदि जो महिमा करके प्रसिद्ध हैं वह दूसरे के आश्रय हैं । ऐसी महिमा को मैं भूमा की महिमा नहीं कहता हूं, क्योंकि परमार्थ दृष्टि से भूमा पूर्ण होने के कारण कहीं नहीं रहता है । जो अन्य के आश्रय रहता है वह अल्प परिच्छिन्न विकारी नाशवान् होता है, भूमा ऐसा नहीं है । सर्वाधिष्ठान भूमा विषे सारा ब्रह्माण्ड भास रहा है, सोई वाचारम्भणमात्र अल्प नाशवान् है ॥ २ ॥

इति चतुर्विंशः खण्डः ।

अथ सप्तमाध्यायस्य पञ्चविंशः खण्डः ।

मूलम् ।

स एवाधस्तात्स उपरिष्टात्स पश्चात्स पुरस्तात्स दक्षिणतः स उत्तरतः स एवेदꣳ सर्वमित्यथातोऽहंकारादेश एवाहमेवाधस्तादहमुपरिष्टादहं पश्चादहं पुरस्तादहं दक्षिणतोऽहमुत्तरतोऽहमेवेदꣳसर्वमिति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

सः, एव, अधस्तात्, सः, उपरिष्टात, सः, पश्चात्, सः, पुरस्तात्, सः, दक्षिणतः, सः, उत्तरतः, सः, एव, इदम्, सर्वम्, इति, अथ, अतः, अहंकारादेशः, एव, अहम्, एव, अधस्तात्, अहम्, उपरिष्टात्, अहम्, पश्चात्, अहम्, पुरस्तात्, अहम्, दक्षिणतः, अहम्, उत्तरतः, अहम्, एव, इदम, सर्वम्, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
सः एव	वही ब्रह्म	अतः	इसलिये
अधस्तात्	नीचे स्थित है	अथ	अब आगे
सः	वही	अहंकारादेशः	अहंकारयुक्त उपदेश
उपरिष्टात्	ऊपर स्थित है	+ एवम्	इस प्रकार
सः	वही	+ भवति	होता है कि
पश्चात्	पश्चिम में स्थित है	अहम् एव	मैं ही
सः	वही	अधस्तात्	नीचे स्थित हूँ
पुरस्तात्	पूर्व में स्थित है	अहम् एव	मैं ही
सः	वही	उपरिष्टात्	ऊपर स्थित हूँ
दक्षिणतः	दक्षिण में स्थित है	अहम्	मैं ही
सः	वही	पश्चात्	पश्चिम हूँ
उत्तरतः	उत्तर में स्थित है	अहम्	मैं ही
सः एव	वही	पुरस्तात्	पूर्व हूँ
इदम्	यह	अहम्	मैं ही
सर्वम्	सब है	दक्षिणतः	दक्षिण हूँ

अहम्=मैं ही	इदम्=यह
उत्तरतः=उत्तर हूँ	सर्वम्=सब
इति=इस कारण	अहम् एव=मैं ही हूँ

भावार्थ ।

हे सौम्य ! सनत्कुमार नारद से कहते हैं कि हे नारद ! नीचे, ऊपर, पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण सब भूमा ही रूप है, उससे पृथक् कुछ नहीं है और न कोई ऐसी वस्तु है जिसमें भूमा स्थित न हो अर्थात् यह जो नामरूपात्मक जगत् दिखाई देता है सो सब अद्वैत भूमा ही है । ऐसा उपदेश करके सनत्कुमार विचार करते भये कि इस मेरे परोक्ष उपदेश को श्रवण करके शायद नारद को शंका उत्पन्न हो कि इस जीवतत्त्व से इतर कोई भूमानामवाला और तत्त्व है, जो सर्व रूप से सर्व ओर स्थित होगा । इस शंका के निवारणार्थ सनत्कुमार अहंपूर्वक उपदेश करते हैं ताकि उसकी ओर किसी मुमुक्षु की बुद्धि विषे द्वैत की भ्रान्ति न हो । हे नारद ! मैं ही नीचे हूँ, मैं ही ऊपर हूँ, मैं ही उत्तर हूँ, मैं ही दक्षिण हूँ, मैं ही पूर्व हूँ, मैं ही पश्चिम हूँ, मैं ही मध्य हूँ, मैं ही दहिने हूँ, मैं ही बायें हूँ, जो कुछ शब्द का विषय है सो सब मैं ही हूँ, मुझसे इतर कुछ नहीं है । मैं ही ब्रह्म हूँ, मैं ही भूमा हूँ अर्थात् सब शरीरों विषे जो जीवात्मा है वही भूमा है, वही ब्रह्म है, वही यह सब जगत् है, उससे पृथक् कोई दूसरा ब्रह्म नहीं है, सोई मैं हूँ । हे नारद ! इसप्रकार तुम अपने आपको अनुभव करो ॥ १ ॥

मूलम् ।

अथात आत्मादेश एवात्मैवाधस्तादात्मोपरिष्टादात्मा पश्चादात्मा पुरस्तादात्मा दक्षिणत आत्मोत्तरत आत्मैवेदꣳ सर्वमिति स वा एष एवं पश्यन्नेवं मन्वान एवं विजानन्नात्मरतिरात्मक्रीड आत्म-

मिथुन आत्मानन्दः स स्वराड् भवति तस्य सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति अथ येऽन्यथातो विदुरन्यराजानस्ते क्षय्यलोका भवन्ति तेषाᳬ सर्वेषु लोकेष्वकामचारो भवति ॥ २ ॥

इति पञ्चविंशः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

अथ, अतः, आत्मादेशः, एव, आत्मा, एव, अधस्तात्, आत्मा, उपरिष्टात्, आत्मा, पश्चात्, आत्मा, पुरस्तात्, आत्मा, दक्षिणतः, आत्मा, उत्तरतः, आत्मा, एव, इदम्, सर्वम्, इति, सः, वै, एषः, एवम्, पश्यन्, एवम्, मन्वानः, एवम्, विजानन्, आत्मरतिः, आत्मक्रीडः, आत्ममिथुनः, आत्मानन्दः, सः, स्वराट्, भवति, तस्य, सर्वेषु, लोकेषु, कामचारः, भवति, अथ, ये, अन्यथा, अतः, विदुः, अन्यराजानः, ते, क्षय्यलोकाः, भवन्ति, तेषाम्, सर्वेषु, लोकेषु, अकामचारः, भवति ॥

अन्वयः	पदार्थ
अतः	इसके पश्चात्
अथ	अब
आत्मादेशः	आत्मा का उपदेश
एव	ऐसा है
आत्मा एव	आत्मा ही
अधस्तात्	नीचे है
आत्मा एव	आत्मा ही
उपरिष्टात्	ऊपर है
आत्मा	आत्मा ही
पश्चात्	पीछे है
आत्मा	आत्मा ही
पुरस्तात्	आगे है
आत्मा	आत्मा ही
दक्षिणतः	दक्षिण है
आत्मा	आत्मा ही
उत्तरतः	उत्तर है
इति	इस प्रकार
इदम्	यह
सर्वम्	सब
आत्मा एव	आत्मा ही है
सः वै एषः	वही यह आत्मदर्शी
एवम्	इस प्रकार
पश्यन्	देखता हुआ
एवम्	इस प्रकार

मन्वानः=मनन करता हुआ
एवम्=इस प्रकार
विजानन्=जानता हुआ
+एवम्=इस प्रकार
आत्मरतिः=आत्मा में रति करता हुआ
आत्मक्रीडः=आत्मा में क्रीड़ा करता हुआ
आत्ममिथुनः=आत्मा से युक्त होता हुआ
आत्मानन्दः=आत्मा में आनन्द करता हुआ
सः=वह
स्वराट्=सुख का राजा
भवति=होता है
तस्य=उसका
कामचारः=इच्छानुसार गमन
सर्वेषु=सब
लोकेषु=लोकों के विषे
भवति=होता है
अथ=और
ये=जो
अतः=उससे
अन्यथा=विपरीत
विदुः=जानते हैं
ते=वे
अन्यराजानः=पराधीन होते हुए
क्षय्यलोकाः=नाशवान् लोकवाले
भवन्ति=होते हैं
+च=और
तेषाम्=उनका
अकामचारः=इच्छाविरुद्ध गमन
सर्वेषु=सब
लोकेषु=लोकों के विषे
भवति=होता है

भावार्थ।

सनत्कुमार नारद से कहते हैं कि हे नारद! जो आत्मानुभवशून्य बहिर्मुख बुद्धिवाले अविवेकी होते हैं उनको अहंकार का विषय देह आदि अनात्मा भासता है आत्मा नहीं भासता है, जैसा कि मैं तुम्हारे प्रति उपदेश कर चुका हूँ। यदि तुमको देहादिक अनात्मा की शंका मेरे उपदेश से हुई हो तो फिर मेरे उपदेश को सुनो और शंका को दूर करो। संशय रञ्चकमात्र न रक्खो "संशयात्मा विनश्यति"। यह सुनकर नारद ने कहा कि हे प्रभो! मेरे प्रति सविस्तार आत्मा का उपदेश करो। इस पर सनत्कुमार कहते हैं कि हे नारद! जो सजातीय और विजातीय स्वगत भेद से रहित एक, अद्वितीय, परमशुद्ध, निर्विशेष, सत्, चैतन्य, परमानन्दस्वरूप आत्मा है वही नीचे ऊपर,

पूर्व पश्चिम, उत्तर दक्षिण, दहिने बायें और अज, अविनाशी, अखंड तथा आकाशवत् परिपूर्ण स्थित है, उससे पृथक् कुछ नहीं है । इस प्रकार जो अपने को देखता है, श्रवण करता है, मनन करता है और विचारता है, वही आत्मा विषे रमण करता है, वही आत्मा के साथ क्रीड़ा करता है । जैसे पति का चित्त अपनी प्रिय प्यारी भार्या में लगा रहता है और फिर उसके साथ क्रीड़ा और रति करके क्षणिक विषयानन्द को प्राप्त होता है वैसे ही जब आत्मवेत्ता का मन एकाग्र होकर अपने आत्मा के साथ क्रीड़ा और रति सविकल्प अथवा निर्विकल्प समाधि एकांतस्थान विषे करता है, तो अखंडानंद को प्राप्त हो कर अवाच्य मग्न होता हुआ तृप्त होजाता है, और जो ऐसे विचार से रहित हैं, वे पराधीन होते हुए नाशवान् लोकों को प्राप्त होते हैं और उनका आवागमन उनकी इच्छाविरुद्ध अनेक दुःख से परिपूर्ण योनियों में होता है ॥ २ ॥

इति पञ्चविंशः खण्डः ।

अथ सप्तमाध्यायस्य षड्विंशः खण्डः ।

मूलम् ।

तस्य ह वा एतस्यैवं पश्यत एवं मन्वानस्यैवं विजानत आत्मतः प्राण आत्मत आशात्मतः स्मर आत्मत आकाश आत्मतस्तेज आत्मत आप आत्मत आविर्भावतिरोभावावात्मतोऽन्नमात्मतो बलमात्मतो विज्ञानमात्मतो ध्यानमात्मतश्चित्तमात्मतः संकल्प आत्मतो मन आत्मतो वागात्मतो नामात्मतो मन्त्रा आत्मतः कर्माण्यात्मत एवेदꣳसर्वमिति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

तस्य, ह, वा, एतस्य, एवम्, पश्यतः, एवम्, मन्वानस्य, एवम्, विजानतः, आत्मतः, प्राणः, आत्मतः, आशा, आत्मतः, स्मरः, आत्मतः, आकाशः, आत्मतः, तेजः, आत्मतः, आपः, आत्मतः, आविर्भावतिरोभावौ, आत्मतः, अन्नम्, आत्मतः, बलम्, आत्मतः, विज्ञानम्, आत्मतः, ध्यानम्, आत्मतः, चित्तम्, आत्मतः, संकल्पः, आत्मतः, मनः, आत्मतः, वाक्, आत्मत, नाम, आत्मतः, मन्त्राः, आत्मतः, कर्माणि, आत्मतः, एव, इदम्, सर्वम्, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
एवम्	इस प्रकार
पश्यतः	ब्रह्म को साक्षात् करते हुए
+ च	और
एवम्	इस प्रकार ब्रह्म को
विजानतः	जानते हुए
इति	ऐसे
तस्य	उस
एतस्य	इस विद्वान् के
हवा	ही
आत्मतः	आत्मा से
प्राणः	प्राण
+ तस्य	उसके ही
आत्मतः	आत्मा से
आशा	आशा
+ तस्य	उसके ही
आत्मतः	आत्मा से
स्मरः	स्मृति
+ तस्य	उसके ही
आत्मतः	आत्मा से

अन्वयः	पदार्थ
आकाशः	आकाश
+ तस्य	उसके ही
आत्मतः	आत्मा से
तेजः	तेज
+ तस्य	उसके ही
आत्मतः	आत्मा से
आपः	जल
+ तस्य	उसके ही
आत्मतः	आत्मा से
आविर्भावतिरोभावौ	आविर्भाव और तिरोभाव
+ तस्य	उसके ही
आत्मतः	आत्मा से
अन्नम्	अन्न
+ तस्य	उसके ही
आत्मतः	आत्मा से
बलम्	बल
+ तस्य	उसके ही
आत्मतः	आत्मा से
विज्ञानम्	विज्ञान

+ तस्य=उसके ही
आत्मतः=आत्मा से
ध्यानम्=ध्यान
+ तस्य=उसके ही
आत्मतः=आत्मा से
चित्तम्=चित्त
+ तस्य=उसके ही
आत्मतः=आत्मा से
संकल्पः=संकल्प
+ तस्य=उसके ही
आत्मतः=आत्मा से
मनः=मन
+ तस्य=उसके ही
आत्मतः=आत्मा से
वाक्=वाणी

+ तस्य=उसके ही
आत्मतः=आत्मा से
नाम=नाम
+ तस्य=उसके ही
आत्मतः=आत्मा से
मन्त्राः=मन्त्र
+ तस्य=उसके ही
आत्मतः=आत्मा से
कर्माणि=कर्म
+ तस्य एव=उसके ही
आत्मतः=आत्मा से
इदम्=यह
सर्वम्= सब नामरूपात्मक जगत् उत्पन्न हुआ है

भावार्थ ।

सनत्कुमार नारद से कहते हैं कि हे नारद ! जो आत्मवेत्ता विद्वान् अपने आपको ही देखता है, अपने को ही जानता है, अपने में ही अपने को निश्चय करता है, अपने में ही रमण करता है, अपने में ही क्रीड़ा करता है, अपने में ही आनंदित रहता है उसी के आत्मा से प्राण उत्पन्न हुआ है, उसके आत्मा से आशा और उसी के आत्मा से स्मृति उत्पन्न हुई है । उसी के आत्मा से आकाश उत्पन्न होता है, उसी के आत्मा से तेज उत्पन्न हुआ है, उसी के आत्मा से जल और उसी के आत्मा से आविर्भाव और तिरोभाव अर्थात् उत्पत्ति और लय होते हैं । उसी के आत्मा से अन्न होता है, उसी के आत्मा से बल होता है, उसी के आत्मा से विज्ञान और ध्यान होता है, उसी के आत्मा से चित्त होता है, उसी के आत्मा से संकल्प होता है । उसी के आत्मा से मन होता है, उसी के आत्मा से वाणी होती है, उसी के आत्मा से नाम

होता है और उसी के आत्मा से संपूर्ण कर्म होता है । हे नारद ! कहाँ तक कहा जाय, उसी विद्वान् के ही आत्मा से यह सब नाम रूपात्मक जगत् उत्पन्न होता है । उसी के आत्मा में ही लय होता है; क्योंकि जिस आत्मपद को वह विद्वान् प्राप्त हुआ है, वही सब जगत् का मूल कारण सर्वात्मा है ॥ १ ॥

मूलम् ।

तदेष श्लोको न पश्यो मृत्युं पश्यति न रोगं नोत दुःखताꣳ सर्वꣳ ह पश्यः पश्यति सर्वमाप्नोति सर्वश इति ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

तत्, एषः, श्लोकः, न, पश्यः, मृत्युम्, पश्यति, न, रोगम्, न, उत, दुःखताम्, सर्वम्, ह, पश्यः, पश्यति, सर्वम्, आप्नोति, सर्वशः, इति ।

अन्वयः	पदार्थ
तत्=	उस विद्वान् के विषे
एषः=	यह आगेवाला
श्लोकः=	मंत्र
+ प्रमाणम्=	प्रमाण है
पश्यः=	उस भूमा ब्रह्म का देखनेवाला
मृत्युम्=	मरणजन्य भय को
न=	नहीं
पश्यति=	देखता है
रोगम्=	रोगों को
न=	नहीं
पश्यति=	देखता है
उत=	और
दुःखताम्=	तीनों प्रकार के दुःखों को
+ न=	नहीं
+ पश्यति=	देखता है
पश्यः=	वह ब्रह्मदर्शी
सर्वम्=	ब्रह्म को
ह=	ही
+ पश्यति=	देखता है
इति=	इस कारण
सर्वशः=	सब प्रकार से
सर्वम्=	ब्रह्म को ही
आप्नोति=	प्राप्त होता है

भावार्थ ।

सनत्कुमार कहते हैं कि हे नारद ! जो विद्वान् अपने आत्मा बिषे स्थित है, वह मृत्यु के भय से, रोगों से और तीन प्रकार के दुःखों से रहित होता है । वह ब्रह्मदर्शी अंत में ब्रह्म को ही प्राप्त होता है । इस विषय में आगेवाला मंत्र प्रमाण है ॥ २ ॥

मूलम् ।

स एकधा भवति त्रिधा भवति पञ्चधा सप्तधा नवधा चैव पुनश्चैकादशः स्मृतः शतं च दश चैकश्च सहस्राणि च विंशतिः ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

सः, एकधा, भवति, त्रिधा, भवति, पञ्चधा, सप्तधा, नवधा, च, एव, पुनः, च, एकादशः, स्मृतः, शतम्, च, दश, च, एकः, च, सहस्राणि, च, विंशतिः ॥

अन्वयः	पदार्थ
सः	वह परमात्मा
+ प्रथमम्	पहिले
एकधा	अद्वितीय
भवति	होता है
च	और
+ पुनः	फिर
त्रिधा	तीन रूपवाला
भवति	होता है
च	और
+ पुनः	फिर
पञ्चधा	पाँच रूपवाला
+ भवति	होता है
च	और
+ पुनः	फिर
सप्तधा	सात रूपवाला
+ भवति	होता है
+ पुनः	फिर
नवधा	नौ रूपवाला
+ भवति	होता है
च	और
पुनः	फिर
एव	निश्चय करके
एकादशः	ग्यारह रूपवाला
स्मृतः	कहा जाता है
च	और
+ पुनः	फिर

है और उस पके हुए अन्न से बलिवैश्वदेवादि भूतयज्ञ किया जाता है और अतिथि को भोजन दिया जाता है, उसके पीछे बचे हुए अन्न के भोजन के खाने से अन्तःकरण शुद्ध होता है, उसमें शुभ अशुभ कर्तृत्व अकर्तृत्व आदिकों का विवेक होता है, तब उस विवेक करके अशुभ व्यापार से मन उपराम हो शुभ व्यापार में प्रवृत्त होता है और तभी सब इन्द्रियाँ विषयों से उपराम होकर अन्तर्मुख होती हैं अर्थात् पुरुष को विषयों में राग-द्वेष नहीं होता है और इसलिये काम क्रोधादि दोषों का अभाव होता है और उनके अभाव से विद्वान् किसी पदार्थ में भी आसक्त न होकर बद्ध नहीं होता है, "लिप्यते न स पापेभ्यः पद्मपत्रमिवाम्भसा" इस प्रकार शुद्ध चित्तवृत्ति होने का कारण शुद्ध आहार है । जब भगवान् सनत्कुमार ने देखा कि नारदजी का अन्तःकरण अतिशुद्ध है तब उनको अपने उपदेश का सहारा देकर भूमाख्य विद्यारूप दृढ़ नौका पर सवार कराकर आप श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ आचार्य कैवर्तक बनकर अविद्यात्मक अथाह अपार शोकसागर से पार कर दिया ॥ ४ ॥

इति सप्तमोऽध्यायः ।

अथाष्टमाध्यायस्य प्रथमः खण्डः ।

मूलम् ।

ॐ अथ यदिदमस्मिन्ब्रह्मपुरे दहरं पुण्डरीकं वेश्म दहरोऽस्मिन्नन्तराकाशस्तस्मिन्यदन्तस्तदन्वेष्टव्यं तद्वाव विजिज्ञासितव्यमिति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यत्, इदम्, अस्मिन्, ब्रह्मपुरे, दहरम्, पुण्डरीकम्, वेश्म, दहरः, अस्मिन्, अन्तः, आकाशः, तस्मिन्, यत्, अन्तः, तत्, अन्वेष्टव्यम्, तत्, वाव, विजिज्ञासितव्यम्, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ	अब	अस्मिन्	इसमें
यत्	जो	अन्तः	अन्तर्वर्ती
अस्मिन्	इस	आकाशः	आकाश है
ब्रह्मपुरे	ब्रह्मपुर में अर्थात् शरीर बिषे	तस्मिन् अन्तः	उसके अन्दर
इदम्	यह	यत्	जो
दहरम्	सूक्ष्म	दहरः	ब्रह्म स्थित है
पुण्डरीकम्	कमलाकार	तत्	वह
वेश्म	महल है	अन्वेष्टव्यम्	अन्वेषण करने के योग्य है
+च	और	तत् वाव	वही
+ यत्	जो	इति	ऐसा
		विजिज्ञासितव्यम्	जानने योग्य है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! सातवें प्रपाठक में भूमा विद्या कही गई है । अब इस आठवें प्रपाठक में चित्तवृत्तिनिरोधार्थ दहराकाश विद्या का आरम्भ किया जाता है । इस शरीर बिषे ब्रह्म का पुर कहा जाता है । उसके अन्दर हृदयाकाश है, उस हृदयाकाश में एक सूक्ष्म कमलाकार मन्दिर है, उसमें जो अन्तर्वर्ती वस्तु है वह अन्वेषण करने योग्य है और जानने योग्य है । यहाँ सगुण ब्रह्म की उपासना का व्याख्यान है, निर्गुण ब्रह्म का नहीं । जो अति शुद्धबुद्ध श्वेत कमलवत् है, उसमें जो चैतन्य और चैतन्य का प्रतिबिंब है, वही सगुण ब्रह्म है । उसी की उपासना मन्दबुद्धि जिज्ञासुओं द्वारा करने योग्य है ॥ १ ॥

मूलम् ।

तं चेद् ब्रूयुर्यदिदमस्मिन्ब्रह्मपुरे दहरं पुण्डरीकं वेश्म दहरोऽस्मिन्नन्तराकाशः किं तदत्र विद्यते यदन्वेष्टव्यं यद्वाव विजिज्ञासितव्यमिति स ब्रूयात् ॥ २ ॥

पदच्छेदः।

तम्, चेत्, ब्रूयुः, यत्, इदम्, अस्मिन्, ब्रह्मपुरे, दहरम्, पुण्डरीकम्, वेश्म, दहरः, अस्मिन्, अन्तः, आकाशः, किम्, तत्, अत्र, विद्यते, यत्, अन्वेष्टव्यम्, यत्, वाव, विजिज्ञासितव्यम्, इति, सः, ब्रूयात्॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
चेत्	यदि कोई	आकाशः	आकाश है
तम्	उस उपदेष्टा से	अत्र	उस दहराकाश में
ब्रूयुः	पूछे कि	किम्	कौन-सी
अस्मिन् ब्रह्मपुरे	इस ब्रह्मपुर में	तत्	वह वस्तु
यत्	जो	विद्यते	वर्तमान है
इदम्	यह	+ यत्	जो
दहरम्	अल्प	अन्वेष्टव्यम्	अन्वेषण करने-योग्य है
पुण्डरीकम्	कमलसदृश	यत्	जो
वेश्म	गृह है	वाव	निश्चय करके
+ च	और	विजिज्ञासितव्यम्	जानने योग्य है
यत्	जो	इति	ऐसा तब
अस्मिन्	इस कमलाकार गृह में	सः	वह उपदेष्टा
दहरः	सूक्ष्म	ब्रूयात्	कहे
अन्तः	अन्तर्वर्ती		

भावार्थ।

हे सौम्य! यह जो स्थूल शरीर है इसको ब्रह्मपुर कहते हैं, क्योंकि इसमें ब्रह्म का निवास है। इस शरीर के अंदर एक सूक्ष्म कमलाकार गृह है, उस गृह के बिषे अंतराकाश है और फिर उसके अंतर एक वस्तु स्थित है, वह खोजने और जानने योग्य है। यहाँ सगुण ब्रह्म की उपासना का व्याख्यान है, निर्गुणब्रह्म का नहीं। निर्गुण ब्रह्म का जानना मन्दबुद्धि जिज्ञासुओं द्वारा नहीं हो सक्ता है, इनको अपने कल्याणार्थ गुणविशिष्ट ब्रह्म की उपासना करना योग्य है॥ २॥

मूलम् ।

यावान्वा अयमाकाशस्तावानेषोऽन्तर्हृदय आकाश उभे अस्मिन्द्यावापृथिवी अन्तरेव समाहिते उभावग्निश्च वायुश्च सूर्याचन्द्रमसावुभौ विद्युन्नक्षत्राणि यच्चास्येहास्ति यच्च नास्ति सर्वं तदस्मिन्समाहितमिति ॥३॥

पदच्छेदः ।

यावान्, वा, अयम्, आकाशः, तावान्, एषः, अन्तर्हृदयः, आकाशः, उभे, अस्मिन्, द्यावापृथिवी, अन्तः, एव, समाहिते, उभौ, अग्निः, च, वायुः, च, सूर्याचन्द्रमसौ, उभौ, विद्युन्नक्षत्राणि, यत्, च, अस्य, इह, अस्ति, यत्, च, न, अस्ति, सर्वम्, तत्, अस्मिन्, समाहितम्, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
यावान्	जितना
वा	निश्चय करके
अयम्	यह बाह्य
आकाशः	आकाश है
तावान्	उतना ही
एषः	यह
अन्तर्हृदयः	हृदय के अंदर
आकाशः	आकाश है
अन्तः अस्मिन्	उसी के अन्दर
उभे	दोनों
द्यावापृथिवी	देवलोक और मृत्युलोक
एव	निश्चय करके
समाहिते	स्थित हैं
च	और
उभौ	दोनों
अग्निः	अग्नि
च	और
वायुः	वायु
उभौ	दोनों
सूर्याचन्द्रमसौ	सूर्य और चंद्र
च	और
+ उभौ	दोनों
विद्युन्नक्षत्राणि	बिजली और नक्षत्र गण
अस्य + अन्तः	हृदयाकाश विषे
+ स्थितानि	स्थित हैं
च	और
यत्	जो कुछ
इह	इस लोक में
अस्ति	है
+ च	और

यत्=जो कुछ	सर्वम्=सब
न=नहीं	अस्मिन्=इस आकाशरूपी ब्रह्म बिषे
अस्ति=है अर्थात् होनेवाला है	समाहितम्=स्थित है
तत्=वह	

भावार्थ ।

हे सौम्य ! अन्तःकरण के आकाश की अवधि नहीं है । इसी के अंदर सारा बाहर का आकाश, अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्रमा और नक्षत्र गणादि सब स्थित हैं । जो कुछ दिखाई देता है, जो कुछ अनुभव में आता है, जो कुछ वर्तमान है और जो कुछ होनेवाला है, सब इसी के अंदर स्थित है ॥ ३ ॥

मूलम् ।

तं चेद् ब्रूयुरस्मिꣳश्चेदिदं ब्रह्मपुरे सर्वꣳ समाहितꣳ सर्वाणि च भूतानि सर्वे च कामा यदैतज्जरावाप्नोति प्रध्वꣳसते वा किं ततोऽतिशिष्यत इति ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

तम्, चेत्, ब्रूयुः, अस्मिन्, चेत्, इदम्, ब्रह्मपुरे, सर्वम्, समाहितम, सर्वाणि, च, भूतानि, सर्वे, च, कामाः, यदा, एतत्, जरा, अवाप्नोति, प्रध्वंसते, वा, किम्, ततः, अतिशिष्यते, इति ॥

अन्वयः पदार्थ	अन्वयः पदार्थ
चेत्=यदि	सर्वम्=सब
तम्=उस उपदेष्टा से	समाहितम्=स्थित है
+ शिष्यः=शिष्य	च=और
ब्रूयुः=पूछे कि	सर्वाणि=सब
चेत्=जब	भूतानि=प्राणी
अस्मिन्=इस	च=और
ब्रह्मपुरे=ब्रह्मपुर में	सर्वे=संपूर्ण
इदम्=यह	कामाः=कामनाएँ भी स्थित हैं तो

यदा=जब
जरा=वृद्धावस्था
एतत्=इस शरीर को
अवाप्नोति=प्राप्त होती है
+ तदा=तब
+ इदम्=यह
+ शरीरम्=शरीर
वा=अवश्य
प्रध्वंसते=नष्ट हो जाता है
इति=तब
ततः=उसके पीछे
किम्=क्या
अतिशिष्यते=अवशेष रहता है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! यदि संशययुक्त शिष्य आचार्य से ऐसा पूछे कि हे भगवन् ! जब इस शरीर में जो कुछ इन्द्रियों का विषय है या होनेवाला है अथवा मन करके गृहीत है और जब इसके अन्तःकरण में सब प्राणी और सब कामनाएँ समावेशित हैं, तो जिस समय यह शरीर वृद्धावस्था को प्राप्त होकर नष्ट हो जाता है तब इसमें क्या अवशेष रह जाता है ? ॥ ४ ॥

मूलम् ।

स ब्रूयान्नास्य जरयैतज्जीर्यति न वधेनास्य हन्यत एतत्सत्यं ब्रह्मपुरमस्मिन्कामाः समाहिता एष आत्मापहतपाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोको विजिघत्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसङ्कल्पो यथा ह्येवेह प्रजा अन्वाविशन्ति यथानुशासनं यं यमन्तमभिकामा भवन्ति यं जनपदं यं क्षेत्रभागं तं तमेवोपजीवन्ति ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ।

सः, ब्रूयात्, न, अस्य, जरया, एतत्, जीर्यति, न, वधेन, अस्य, हन्यते, एतत्, सत्यम्, ब्रह्मपुरम्, अस्मिन्, कामाः, समाहिताः, एषः, आत्मा, अपहतपाप्मा, विजरः, विमृत्युः, विशोकः, विजिघत्सः, अपिपासः, सत्यकामः, सत्यसङ्कल्पः, यथा, हि, एव, इह, प्रजाः, अन्वा-

विशन्ति, यथा, अनुशासनम्, यम्, यम्, अन्तम्, अभिकामाः, भवन्ति, यम्, जनपदम्, यम्, क्षेत्रभागम्, तम्, तम्, एव, उपजीवन्ति ॥

अन्वयः	पदार्थ
सः	वह उपदेष्टा
+ तम्	उस शिष्य से
ब्रूयात्	कहे कि
अस्य	इस शरीर के
जरया	जीर्ण होने से
न	न
एतत्	यह ब्रह्म
जीर्यति	जीर्ण होता है
न	न
अस्य	इसके
वधेन	वध होने से
+ तत्	वह ब्रह्म
हन्यते	हत होता है
हि	क्योंकि
एतत्	यह
ब्रह्मपुरम्	ब्रह्मपुर
सत्यम्	अविनाशी है
अस्मिन्	इस ब्रह्मपुर में
कामाः	सब कामनाएँ
समाहिताः	स्थित हैं
एषः	यह
आत्मा	आत्मा
अपहतपाप्मा	विशुद्ध है
विजरः	जरावस्थारहित है
विमृत्युः	मृत्युरहित है
विशोकः	शोकरहित है

अन्वयः	पदार्थ
विजिघत्सः	भूखरहित है
अपिपासः	प्यासरहित है
सत्यकामः	सच्ची कामनावाला है
सत्यसङ्कल्पः	सत्य संकल्पवाला है
यथा	जैसे
इह	इस संसार में
प्रजाः	प्रजा
एव	निश्चय करके
यथा अनुशासनम्	राजा की आज्ञानुकूल
अन्वाविशन्ति	बर्तती हैं
+ च	और
यम् यम्	जिस जिस
अन्तम्	स्थान को
+ च	और
यम्	जिस
जनपदम्	देश को
+ च	और
यम्	जिस
क्षेत्रभागम्	क्षेत्रभाग को
अभिकामाः	चाहनेवाली
भवन्ति	होती हैं
तम् तम्	उस उसको
एव	अवश्य
उपजीवन्ति	प्राप्त होकर अपनी जीविका करती हैं

भावार्थ ।

हे सौम्य ! यदि शिष्य अपने गुरु से ऐसा पूछे कि हे भगवन् ! जब ब्रह्म जो इस शरीर विषे रहता है तो शरीर के नाश होने पर वह भी नष्ट हो जाता होगा ? इसके उत्तर में आचार्य उससे ऐसा कहे कि हे प्रिय शिष्य ! शरीर के जीर्ण होने पर आत्मा जो उसके अन्दर आकाशवत् स्थित है जीर्ण नहीं होता है, न उसके नाश से उसका नाश होता है । नाश साकार वस्तु का होता है, निराकार का नहीं । इस शरीर के अन्तःकरण विषे जो ब्रह्म स्थित है, वही समस्त ब्रह्माण्ड भर में व्यापक है । वही अभय, निरंजन, अमर और अजर है । वही सब कामनाओं से भरा है, उसी में से हर एक प्रकार की कामनाएँ निकलती हैं, वही यह जीवात्मा कहलाता है, वही शुद्ध है, वही मृत्यु से रहित है और वही जरा, मरण, राग, द्वेष, शोक, भूख तथा प्यास से रहित है । वही सत्यसंकल्पवाला है अर्थात् जो कुछ वह चाहता है वही कर डालता है, उसको रोकनेवाला कोई नहीं है । जैसे इस लोक में राजा की आज्ञा के अनुकूल प्रजा चलती है और जैसे जिस-जिस देश या स्थान अथवा क्षेत्र को राजा प्रजा को भेजता है, उस-उस देशादिकों को वे जाती हैं और अपने जीवन का निर्वाह करती हैं, वैसे ही सब प्राणी भी ब्रह्म की आज्ञानुसार बर्तते हैं ॥ ५ ॥

मूलम् ।

तद्यथेह कर्मजितो लोकः क्षीयत एवमेवामुत्र पुण्यजितो लोकः क्षीयते तद्य इहात्मानमननुविद्य व्रजन्त्येतांश्च सत्यान्कामांस्तेषां सर्वेषु लोकेष्वकामचारो भवत्यथ य इहात्मानमनुविद्य व्रजन्त्येतांश्च सत्यान्कामांस्तेषां सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति ॥ ६ ॥

इति प्रथमः खण्डः ।

पदच्छेदः।

तत्, यथा, इह, कर्मजितः, लोकः, क्षीयते, एवम्, एव, अमुत्र, पुण्यजितः, लोकः, क्षीयते, तत्, ये, इह, आत्मानम्, अननुविद्य, व्रजन्ति, एतान्, च, सत्यान्, कामान्, तेषाम्, सर्वेषु, लोकेषु, अकामचारः, भवति, अथ, ये, इह, आत्मानम्, अनुविद्य, व्रजन्ति, एतान्, च, सत्यान्, कामान्, तेषाम्, सर्वेषु, लोकेषु, कामचारः, भवति॥

अन्वयः	पदार्थ
यथा	जैसे
इह	इस संसार में
कर्मजितः	सेवा करके प्राप्त हुआ
लोकः	भोग्यवस्तु
क्षीयते	भोगने के पीछे नष्ट हो जाती है
तत् एवम् एव	उसी प्रकार
अमुत्र	परलोक में भी
पुण्यजितः लोकः	पुण्य करके प्राप्त हुई भोग्य सामग्री
क्षीयते	नष्ट हो जाती है
तत्	इसलिये
ये	जो
इह	इस लोक में
आत्मानम्	अपने आत्मा को
च	और
एतान्	उन
सत्यान्	सत्य
कामान्	कामनाओं को
अननुविद्य	न जान करके
व्रजन्ति	जाते हैं अर्थात् शरीर त्यागते हैं
तेषाम्	उन अविद्वानों का
सर्वेषु	सब
लोकेषु	लोकों में
अकामचारः	स्वच्छंद गमन नहीं
भवति	होता है
च	और
ये	जो
इह	इसी लोक में
आत्मानम्	अपने आत्मा को
+ च	और
एतान्	उन
सत्यान्	सत्य
कामान्	कामनाओं को
अनुविद्य	जानकर
व्रजन्ति	शरीर त्यागते हैं
तेषाम्	उनका
कामचारः	स्वेच्छागमन
सर्वेषु	सब
लोकेषु	लोकों बिषे
भवति	होता है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! जैसे इस लोक में भोग्यसामग्री सेवा करके प्राप्त की हुई नष्ट हो जाती है, वैसे ही परलोक में भी पुण्य करके प्राप्त की हुई भोग्यसामग्री नाश को प्राप्त होती है और इसी कारण जो पुरुष इस लोक में अपने आत्मा को और उन सत्यकामनाओं को न जानकर शरीर त्यागते हैं वे अपनी इच्छानुसार सब लोकों में गमन नहीं कर सकते हैं, पर जो अपने आत्मा को और उन सत्यकामनाओं को जानकर शरीर त्यागते हैं वे सब लोकों में स्वेच्छा से स्वतंत्र होकर विचरते हैं ॥ ६ ॥

इति प्रथमः खण्डः ।

अथाष्टमाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः ।

मूलम् ।

स यदि पितृलोककामो भवति सङ्कल्पादेवास्य पितरः समुत्तिष्ठन्ति तेन पितृलोकेन सम्पन्नो महीयते ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

सः, यदि, पितृलोककामः, भवति, सङ्कल्पात्, एव, अस्य, पितरः, समुत्तिष्ठन्ति, तेन, पितृलोकेन, सम्पन्नः, महीयते ।

अन्वयः	पदार्थ
यदि	अगर
सः	वह योगी
पितृलोककामः	पितृलोगों का दर्शनाभिलाषी
भवति	होता है तो
अस्य	उसके
पितरः	पितर
सङ्कल्पात्	उसके संकल्प से
एव	ही
समुत्तिष्ठन्ति	उसके सामने उपस्थित होजाते हैं
+ च	और
तेन	उन
पितृलोकेन	पितृलोगों करके
सम्पन्नः	संपन्न होता हुआ
महीयते	वह अपने महत्त्व को प्राप्त होता है अर्थात् पूज्य होता है

भावार्थ।

यदि वह योगी समाधिदशा में पितृलोगों के देखने की इच्छा करता है तो संकल्प करते ही पितृलोग उसके सामने आ जाते हैं और उन पितरों से मिलकर अपने महत्त्व को अनुभव करता है अर्थात् पूज्य होजाता है ॥ १ ॥

मूलम्।

अथ यदि मातृलोककामो भवति सङ्कल्पादेवास्य मातरः समुत्तिष्ठन्ति तेन मातृलोकेन सम्पन्नो महीयते ॥ २ ॥

पदच्छेदः।

अथ, यदि, मातृलोककामः, भवति, सङ्कल्पात्, एव, अस्य, मातरः, समुत्तिष्ठन्ति, तेन, मातृलोकेन, सम्पन्नः, महीयते ॥

अन्वयः	पदार्थ
अथ	और
यदि	अगर
+ सः	वह योगी
मातृलोककामः	मातृदर्शनाभिलाषी
भवति	होता है तो
सङ्कल्पात्	संकल्प से
एव	ही
अस्य	उसकी
मातरः	माताएँ
समुत्तिष्ठन्ति	उसके सामनेउपस्थित हो जाती हैं
+ च	और
तेन	उन
मातृलोकेन	मातृलोगों से
सम्पन्नः	संपन्न होता हुआ
महीयते	वह अपनी महिमा का अनुभव करता है अर्थात् पूज्य होता है

भावार्थ।

यदि वह समाधिदशा में अपनी मातृलोगों का दर्शनाभिलाषी होता है, तो संकल्प करते ही सब मातृलोग उसके सामने उपस्थित हो जाती हैं, उनसे मिलकर वह अपनी महिमा का अनुभव करता है अर्थात् बड़ा पूज्य हो जाता है ॥ २ ॥

मूलम् ।

अथ यदि भ्रातृलोककामो भवति सङ्कल्पादेवास्य भ्रातरः समुत्तिष्ठन्ति तेन भ्रातृलोकेन सम्पन्नो महीयते॥३॥

पदच्छेदः ।

अथ, यदि, भ्रातृलोककामः, भवति, संकल्पात्, एव, अस्य, भ्रातरः, समुत्तिष्ठन्ति, तेन, भ्रातृलोकेन, सम्पन्नः, महीयते ॥

अन्वयः	पदार्थ
अथ	और
यदि	अगर
+ सः	वह योगी
भ्रातृलोककामः	भ्रातृदर्शनाभिलाषी
भवति	होता है तो
सङ्कल्पात्	संकल्प से
एव	ही
अस्य	उसके
भ्रातरः	भ्रातृलोग
समुत्तिष्ठन्ति	उसके सामने उपस्थित हो जाते हैं
+ च	और
तेन	उन
भ्रातृलोकेन	भ्रातृलोगों से
संपन्नः	मिलता हुआ
महीयते	अपनी महिमा को प्राप्त होजाता है अर्थात् पूज्य होता है

भावार्थ ।

यदि वह योगी अपनी समाधि की अवस्था में अपने भाइयों के दर्शन की इच्छा करता है, तो उसके सब भाई उसके सामने उपस्थित होजाते हैं और उनसे मिलकर वह बड़े आनन्द को प्राप्त होता है और पूज्य भी होता है ॥ ३ ॥

मूलम् ।

अथ यदि स्वसृलोककामो भवति सङ्कल्पादेवास्य स्वसारः समुत्तिष्ठन्ति तेन स्वसृलोकेन सम्पन्नो महीयते ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यदि, स्वसृलोककामः, भवति, सङ्कल्पात्, एव, अस्य, स्वसारः, समुत्तिष्ठन्ति, तेन, स्वसृलोकेन, सम्पन्नः, महीयते ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ=और		समुत्तिष्ठन्ति=उपस्थित होजाती हैं	
यदि=अगर		तेन=उन	
+ सः=वह योगी		स्वसृलोकेन=बहिनों से	
स्वसृलोककामः=स्वसृदर्शनाभिलाषी		सम्पन्नः=मिलकर	
भवति=होता है तो		महीयते=अपनी महिमा को अनुभव करता है अर्थात् सब का पूज्य होता है	
अस्य=उसके			
सङ्कल्पात्=संकल्पमात्र से			
एव=ही			
स्वसारः=सब बहिनें			

भावार्थ ।

यदि वह योगी बहिनलोक की इच्छा करता है, तो उसके संकल्पमात्र से ही सब बहिनें उसको दर्शन देती हैं और वह उनसे मिलकर बड़े आनन्द को प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

मूलम् ।

अथ यदि सखिलोककामो भवति सङ्कल्पादेवास्य सखायः समुत्तिष्ठन्ति तेन सखिलोकेन सम्पन्नो महीयते ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यदि, सखिलोककामः, भवति, सङ्कल्पात्, एव, अस्य, सखायः, समुत्तिष्ठन्ति, तेन, सखिलोकेन, सम्पन्नः, महीयते ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ=और		सखायः=सब मित्र	
यदि=यदि		समुत्तिष्ठन्ति=उसके सामने उपस्थित हो-जाते हैं	
+ सः=वह योगी		तेन=उन	
सखिलोककामः=मित्रलोक की इच्छावाला		सखिलोकेन=मित्रों से	
भवति=होता है तो		सम्पन्नः=मिलकर	
सङ्कल्पात् एव=संकल्प से ही		महीयते=महिमा को प्राप्त होता है अर्थात् आनन्द करता है	
अस्य=उसके			

भावार्थ ।

यदि वह योगी मित्रलोक की इच्छा करता है, तो उसके इच्छा करते ही उसके सामने उसके मित्र आकर उपस्थित होजाते हैं उन मित्रों से मिलकर वह पूजनीय बन जाता है ॥ ५ ॥

मूलम् ।

अथ यदि गन्धमाल्यलोककामो भवति सङ्कल्पादेवास्य गन्धमाल्ये समुत्तिष्ठतस्तेन गन्धमाल्यलोकेन सम्पन्नो महीयते ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यदि, गन्धमाल्यलोककामः, भवति, सङ्कल्पात्, एव, अस्य गन्धमाल्ये, समुत्तिष्ठतः, तेन, गन्धमाल्यलोकेन, सम्पन्नः, महीयते ॥

अन्वयः	पदार्थ
अथ	और
यदि	अगर
+ सः	वह योगी
गन्धमाल्यलोककामः	गन्धमाल्यलोक की कामनावाला
भवति	होता है तो
अस्य	उसके
सङ्कल्पात्	संकल्प से
एव	ही
गन्धमाल्ये	सुगन्धि और प्रियमालाएँ
समुत्तिष्ठतः	उसके सामने उपस्थित हो जाती हैं
तेन	उन
गन्धमाल्यलोकेन	सुगन्धि और मालाओं से
सम्पन्नः	संपन्न होता हुआ
महीयते	अपनी महिमा को प्राप्त होता है अर्थात् पूज्य होता है

भावार्थ ।

यदि वह योगी गन्ध और मालाओं की कामनावाला होता है तो उसके संकल्प से ही उसके सामने अनेक प्रकार की गन्ध और मालाएँ उपस्थित होजाती हैं और उन गन्धों और मालाओं से संपन्न होता हुआ वह अपनी महिमा को प्राप्त होता है अर्थात् वह अति-आनन्दित होता है ॥ ६ ॥

मूलम् ।

अथ यद्यन्नपानलोककामो भवति सङ्कल्पादेवास्यान्नपाने समुत्तिष्ठतस्तेनान्नपानलोकेन सम्पन्नो महीयते ॥ ७ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यदि, अन्नपानलोककामः, भवति, सङ्कल्पात्, एव, अस्य, अन्नपाने, समुत्तिष्ठतः, तेन, अन्नपानलोकेन, सम्पन्नः, महीयते ॥

अन्वयः	पदार्थ
अथ	और
यदि	अगर
+ सः	वह योगी
अन्नपानलोककामः	अन्न और पानलोक की कामनावाला
भवति	होता है तो
अस्य	उसके
सङ्कल्पात्	संकल्प से
एव	ही
अन्नपाने	अन्न और जल
समुत्तिष्ठतः	उसके सामने उपस्थित होजाते हैं
तेन	उन
अन्नपानलोकेन	अन्नपान से
सम्पन्नः	संपन्न होता हुआ
महीयते	अपनी महिमा को प्राप्त होता है अर्थात् पूज्य होता है

भावार्थ ।

यदि वह योगी अन्नपान लोकों की कामनावाला होता है, तो उसके संकल्पमात्र से ही अन्नपान उसके सामने उपस्थित होजाते हैं और फिर वह उस अन्न-जल से संपन्न होता हुआ बड़े आनन्द को प्राप्त होता है ॥ ७ ॥

मूलम् ।

अथ यदि गीतवादित्रलोककामो भवति सङ्कल्पादेवास्य गीतवादित्रे समुत्तिष्ठतस्तेन गीतवादित्रलोकेन सम्पन्नो महीयते ॥ ८ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यदि, गीतवादित्रलोककामः, भवति, सङ्कल्पात्, एव, अस्य, गीतवादित्रे, समुत्तिष्ठतः, तेन, गीतवादित्रलोकेन, सम्पन्नः, महीयते ॥

अन्वयः	पदार्थ
अथ	और
यदि	अगर
+ सः	वह योगी
गीतवादित्रलोककामः	गीत बाजावाले लोक की कामनावाला
भवति	होता है तो
अस्य	उसके
सङ्कल्पात्	संकल्प से
एव	ही
गीतवादित्रे	गीत और बाजे
समुत्तिष्ठतः	उसके सामने उपस्थित हो॰ जाते हैं
तेन	उन
गीतवादित्रलोकेन	गीतबाजों से
सम्पन्नः	संपन्न होता हुआ
महीयते	बड़े आनंद को प्राप्त होता है

भावार्थ ।

यदि वह योगी गीत बाजेवाले लोकों की कामना करनेवाला होता है, तो वे गीत और बाजे उसके सामने उसके संकल्प से ही उपस्थित होजाते हैं और वह उन गीत बाजों से संपन्न होता हुआ बड़े आनन्द को प्राप्त होता है ॥ ८ ॥

मूलम् ।

अथ यदि स्त्रीलोककामो भवति सङ्कल्पादेवास्य स्त्रियः समुत्तिष्ठन्ति तेन स्त्रीलोकेन सम्पन्नो महीयते ॥ ९ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यदि, स्त्रीलोककामः, भवति, सङ्कल्पात्, एव, अस्य, स्त्रियः, समुत्तिष्ठन्ति, तेन, स्त्रीलोकेन, सम्पन्नः, महीयते ॥

अन्वयः	पदार्थ
अथ	और
यदि	अगर
+ सः	वह योगी
स्त्रीलोककामः	स्त्रीलोक की कामनावाला
भवति	होता है, तो
अस्य	उसके
सङ्कल्पात्	संकल्प से
एव	ही
स्त्रियः	स्त्रियाँ
समुत्तिष्ठन्ति	उपस्थित होजाती हैं
तेन	उन
स्त्रीलोकेन	स्त्रियों करके
सम्पन्नः	संपन्न होता हुआ
महीयते	आनन्द को प्राप्त होता है

भावार्थ ।

यदि वह योगी स्त्रीलोक की कामनावाला होता है, तब उसके संकल्पमात्र से ही सब स्त्रियाँ उसके सामने उपस्थित होजाती हैं और वह उन करके संपन्न होता हुआ बड़े आनन्द को प्राप्त होता है ॥ ९ ॥

मूलम् ।

यं यमन्तमभिकामो भवति यं कामं कामयते सोऽस्य सङ्कल्पादेव समुत्तिष्ठति तेन संपन्नो महीयते ॥ १० ॥

इति द्वितीयः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

यम्, यम्, अन्तम्, अभिकामः, भवति, यम्, कामम्, कामयते, सः, अस्य, सङ्कल्पात्, एव, समुत्तिष्ठति, तेन, सम्पन्नः, महीयते ॥

अन्वयः	पदार्थ
+ यम् यम्	जिस जिस
अन्तम्	देश की
अभिकामः	कामनावाला
भवति	होता है
+ अथवा	या
यम् यम्	जिस जिस
कामम्	कामना को
सः	वह योगी
कामयते	चाहता है
अस्य	उसके
सङ्कल्पात्	संकल्प से
एव	ही
समुत्तिष्ठति	उसके सामने वह काम उपस्थित होजाता है
तेन	उस काम करके
सम्पन्नः	संपन्न होता हुआ
महीयते	बड़े आनन्द को प्राप्त होता है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! योगी जिस जिस देश की कामना करता है या इसके अलावा और जिस जिस वस्तु की इच्छा करता है वह सब उसके संकल्पमात्र से ही उसके सामने आकर मौजूद हो जाते हैं और वह उन सब से संपन्न होता हुआ बड़े आनन्द को प्राप्त होता है ॥ १० ॥

इति द्वितीयः खण्डः ।

अथाष्टमाध्यायस्य तृतीयः खण्डः ।

मूलम् ।

त इमे सत्याः कामा अनृतापिधानास्तेषाᳬं सत्यानाᳬं सतामनृतमपिधानं यो यो ह्यस्येतः प्रैति न तमिह दर्शनाय लभते ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

ते, इमे, सत्याः, कामाः, अनृतापिधानाः, तेषाम्, सत्यानाम्, सताम्, अनृतम्, अपिधानम्, यः, यः, हि, अस्य, इतः, प्रैति, न, तम्, इह, दर्शनाय, लभते ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
ते	वे	अनृतम्	अविद्या है
इमे	ये	अस्य	इसके अर्थात् इस योगी के
कामाः	कामनाएँ	यः यः	जो जो संबन्धी
सत्याः	सत्य हैं	इतः	इस मृत्युलोक से
+ परन्तु	पर	प्रैति	जाता है
अनृतापिधानाः	अविद्या से ढकी हैं	हि	निश्चय करके
तेषाम्	उन	+ सः	वह
सताम्	हृदयस्थित	इह	इस लोक में
सत्यानाम्	सत्य कामनाओं का	तम्	उस पुरुष को
अपिधानम्	ढकना		

दर्शनाय=दर्शन के लिये	न=नहीं
+ पुनः=फिर	लभते=प्राप्त होता है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! इस योगी के हृदय में जो जो कामनाएँ हैं वह सब सत्य हैं, पर कभी कभी पूर्णता को प्राप्त नहीं होती हैं, कारण इसका यह है कि वे सत्यकामनाएँ अविद्यारूपी ढक्कन से ढकी हैं और इसीलिये जो जो उसके प्रियसंबन्धी मर जाते हैं और उनको वह देखना चाहता है, पर उनका मिलाप उनसे नहीं होता है ॥ १ ॥

मूलम् ।

अथ ये चास्येह जीवा ये च प्रेता यच्चान्यदिच्छन्न लभते सर्वं तदत्र गत्वा विन्दतेऽत्र ह्यस्यैते सत्याः कामा अनृतापिधानास्तद्यथापि हिरण्यनिधिं निहितमक्षेत्रज्ञा उपर्युपरि संचरन्तो न विन्देयुरेवमेवेमाः सर्वाः प्रजा अहरहर्गच्छन्त्य एतं ब्रह्मलोकं न विन्दन्त्यनृतेन हि प्रत्यूढाः ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, ये, च, अस्य, इह, जीवाः, ये, च, प्रेताः, यत्, च, अन्यत्, इच्छन्, न, लभते, सर्वम्, तत्, अत्र, गत्वा, विन्दते, अत्र, हि, अस्य, एते, सत्याः, कामाः, अनृतापिधानाः, तत्, यथा, अपि, हिरण्यनिधिम्, निहितम्, अक्षेत्रज्ञाः, उपरि, उपरि, संचरन्तः, न, विन्देयुः, एवम्, एव, इमाः, सर्वाः, प्रजाः, अहरहः, गच्छन्त्यः, एतम्, ब्रह्मलोकम्, न, विन्दन्ति, अनृतेन, हि, प्रत्यूढाः ।

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ=और		जीवाः=सम्बन्धी इष्टमित्र जीते हैं	
ये=जो		च=और	
अस्य=इस विद्वान् के			

ये=जो
प्रेताः=मर गये हैं
च=और
यत्=जो कुछ
अन्यत्= { इन दोनों के अतिरिक्त अन्य पदार्थ हैं
+ तान्=उनको
इच्छन्=इच्छा करता हुआ भी
इह=इस संसार में
न=नहीं
लभते=पाता है
तत्=उन
सर्वम्=सबको
+ योगी=योगी
अत्र=हृदयस्थ ब्रह्मविषे
गत्वा=जाकर
विन्दते=पाता है
हि=क्योंकि
अस्य=इसके
एते=ये
सत्याः=सत्य
कामाः=कामनाएँ
अनृतापिधानाः= { अविद्यारूपी ढक्कन से ढकी हैं
तत्=इसलिये
यथा=जैसे
अक्षेत्रज्ञाः= { अपने खेत को न जाननेवाले पुरुष
उपरि उपरि=ऊपर ऊपर
संचरन्तः= { जोतना बोना आदि व्यापार करते हुए
निहितम्=गड़े हुए
हिरण्यनिधिम्=सुवर्ण कोष को
न=नहीं
विन्देयुः=पाते हैं
एवमेव=वैसे ही
इमाः=ये
सर्वाः=सब
प्रजाः=प्रजाएँ
अहरहः=प्रतिदिन
गच्छन्त्यः=ब्रह्मलोक को प्राप्त होती हुई
अपि=भी
एतम्=इस
ब्रह्मलोकम्=ब्रह्मलोक को
न=नहीं
विन्दन्ति=प्राप्त होती हैं
हि=क्योंकि
+ इमाः= ये
+ सर्वाः=सब प्राणी
अनृतेन=अविद्या से
प्रत्यूढाः=ढके हुए हैं

भावार्थ ।

हे सौम्य ! जो जो इष्टमित्र पुत्रादिक इस विद्वान् के जीते हैं और जो मर गए हैं और जो जो वस्तु इनके अतिरिक्त और हैं और

जिनको वह इस संसार में नहीं पाता है उन सबको हृदयाकाश में जहाँ ब्रह्मलोक स्थित है वहाँ पहुँचकर पाता है, अर्थात् जितनी उसकी सत्यकामनाएँ हैं वे सब उसके हृदय बिषे स्थित रहती हैं पर अविद्या से ढकी रहती हैं इस कारण उसकी वे कामनाएँ पूर्ण नहीं होती हैं। जैसे क्षेत्रविद्या को न जानता हुआ पुरुष खेत के ऊपर ऊपर हल चलाता है और बीज बोता है पर उसके अन्दर जहाँ सुवर्ण का कोष गड़ा है न जान करके उसको नहीं पाता है, उसी तरह सब प्राणी सुषुप्ति की अवस्था में ब्रह्मरूपी सुवर्णकोष को प्राप्त होकर भी उसका ज्ञान उनको नहीं होता है। कारण यह है कि वह ब्रह्म हृदयाकाश में अविद्या से ढका है ॥ २ ॥

मूलम् ।

स वा एष आत्मा हृदि तस्यैतदेव निरुक्तꣳ हृद्यय-मिति तस्माद्धृदयमहरहर्वा एवंवित्स्वर्गं लोकमेति ॥३॥

पदच्छेदः ।

सः, वै, एषः, आत्मा, हृदि, तस्य, एतत्, एव, निरुक्तम्, हृदि, अयम्, इति, तस्मात्, हृदयम्, अहरहः, वै, एवंवित्, स्वर्गम्, लोकम्, एति ॥

अन्वयः	पदार्थ
सः	वह
एषः	यह
वै	निश्चय करके
आत्मा	परमात्मा
हृदि	हृदय कमल बिषे स्थित है
तस्य	उस हृदय का
एतत्	यह
एव	ही
निरुक्तम्	अर्थ है
इति	चूंकि
अयम्	वह परमात्मा
हृदि	हृदय में रहता है
तस्मात्	इसलिये
हृदयम्	वह हृदय
+ कथ्यते	कहा जाता है
एवंवित्	ऐसा विद्वान्
अहरहः	प्रतिदिन

वै=अवश्य
स्वर्गम्=स्वर्ग अर्थात् ब्रह्म
लोकम्=लोक को
एति=प्राप्त होता है

भावार्थ ।

वह सत्य परमात्मा सबके हृदयकमल में स्थित है, इसलिये उसको हृदय कहते हैं, ऐसा जानकर विद्वान् दिन दिन सुषुप्ति अवस्था बिषे ब्रह्मलोक को प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

मूलम् ।

अथ य एष संप्रसादोऽस्माच्छरीरात्समुत्थाय परं ज्योतिरुपसंपद्य स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यत एष आत्मेति होवाचैतदमृतमभयमेतद्ब्रह्मेति तस्य ह वा एतस्य ब्रह्मणो नाम सत्यमिति ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यः, एषः, संप्रसादः, अस्मात्, शरीरात्, समुत्थाय, परम्, ज्योतिः, उपसंपद्य, स्वेन, रूपेण, अभिनिष्पद्यते, एषः, आत्मा, इति, ह, उवाच, एतत्, अमृतम्, अभयम्, एतत्, ब्रह्म, इति, तस्य, ह, वै, एतस्य, ब्रह्मणः, नाम, सत्यम्, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ=और		ज्योतिः=ज्योति को	
यः=जो		उपसंपद्य=पहुँचकर	
एषः=यह		स्वेन=अपने	
संप्रसादः=जीव है		रूपेण=रूप करके	
+ सः=वह		अभिनिष्पद्यते=चारों तरफ़ विच-रता है	
ह=ही			
अस्मात्=इस		+ हे शिष्याः=हे शिष्यो !	
शरीरात्=शरीर से		एषः=यही	
समुत्थाय=निकल करके		आत्मा=परमात्मा है	
परम्=परम		एतत्=यही	

अमृतम्=अमृत है	ब्रह्मणः=ब्रह्म का
अभयम्=अभय है	नाम=नाम
एतत्=यही	सत्यम्=सत्य है
ब्रह्म=ब्रह्म है	इति इति इति=ऐसा
वै=निश्चय करके	ह=स्पष्ट
तस्य=उस	+ आचार्यः=आचार्य
एतस्य=इस	उवाच=कहता भया

भावार्थ ।

हे सौम्य ! जब जीवात्मा इस स्थूल शरीर से निकल कर परम ज्योति में मिलता है, तब वही परमात्मा कहलाने लगता है-यही अमृतरूप है, यही अभय है, यही ब्रह्म है, इसी ब्रह्म का नाम सत्य है, ऐसा आचार्य अपने शिष्यों के प्रति कहता भया ॥ ४ ॥

मूलम् ।

तानि ह वा एतानि त्रीण्यक्षराणि स ती यमिति तद्यत्सत्तदमृतमथ यत्ति तन्मर्त्यमथ यद्यं तेनोभे यच्छति यदनेनोभे यच्छति तस्माद्यमहरहर्वा एवं वित्स्वर्गं लोकमेति ॥ ५ ॥

इति तृतीयः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

तानि, ह, वै, एतानि, त्रीणि, अक्षराणि, स, ती, यम्, इति, तत्, यत्, सत्, तत्, अमृतम्, अथ, यत्, ति, तत्, मर्त्यम्, अथ, यत्, यम्, तेन, उभे, यच्छति, यत्, अनेन, उभे, यच्छति, तस्मात्, यम्, अहरहः, वै, एवं, वित्, स्वर्गम्, लोकम्, एति ॥

अन्वयः पदार्थ	अन्वयः पदार्थ
ब्रह्मणः=ब्रह्म के	त्रीणि=तीन
तानि=वे	अक्षराणि=अक्षर
एतानि=ये	स ती यम्=स, ती, यम्

इति=करके
ह=प्रसिद्ध हैं
स=(स) अमृत है
त=(त) मर्त्य है
यम्=(यम्) वश करना है
यत्=जो
सत्=सकार अक्षर है
तत्=वही
अमृतम्=अमृत है
अथ=और
यत्=जो
ति=तकार अक्षर है
तत्=वही
मर्त्यम्=मर्त्य है
अथ=और
यत्=जो
तत्=वह
यम्=यकार अक्षर है
तेन=उसी
एतेन=इस करके
उभे=दोनों अक्षर
यच्छति=वश में होते हैं
तस्मात्=इसलिये
यम्=यम् कहलाता है
एवम्=इस प्रकार
+ यः=जो
वित्=जाननेवाला है
+ सः=वह
अहरहः=प्रतिदिन
वै वै=निश्चय करके
स्वर्गम्=स्वर्ग
लोकम्=लोक को
एति=प्राप्त होता है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! ब्रह्म का दूसरा नाम सत्य है, इस पद में तीन अक्षर स, त, य हैं । स अक्षर का अर्थ अमृत अर्थात् अविनाशी के है, जिससे मतलब जीवात्मा का होता है । त का अर्थ मरने के योग्य के है, जिससे मतलब प्रकृति से है, जीवात्मा की अपेक्षा प्रकृति विकृति होने के कारण नाशिनी समझी जाती है । य का अर्थ नियम में रखने का है अर्थात् जो प्रकृति और जीवात्मा दोनों को वश में रक्खे उसे सत्य कहते हैं, वही ब्रह्म है । जो पुरुष इस प्रकार सत्यपद का अर्थ जानता है वह प्रतिदिन ब्रह्म को सुषुप्ति अवस्था में प्राप्त होता है और आनन्द उठाता है, यही उसके लिये स्वर्ग है ॥ ५ ॥

इति तृतीयः खण्डः ।

अथाष्टमाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः ।

मूलम् ।

अथ य आत्मा स सेतुर्विधृतिरेषां लोकानामसंभेदाय नैतꣳ सेतुमहोरात्रे तरतो न जरा न मृत्युर्न शोको न सुकृतं न दुष्कृतꣳ सर्वे पाप्मानोऽतो निवर्तन्तेऽपहतपाप्मा ह्येष ब्रह्मलोकः ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यः, आत्मा, सः, सेतुः, विधृतिः, एषाम्, लोकानाम्, असंभेदाय, न, एतम्, सेतुम्, अहोरात्रे, तरतः, न, जरा, न, मृत्युः, न, शोकः, न, सुकृतम्, न, दुष्कृतम्, सर्वे, पाप्मानः, अतः, निवर्तन्ते, अपहतपाप्मा, हि, एषः, ब्रह्मलोकः ॥

अन्वयः	पदार्थ
अथ	और
यः	जो
आत्मा	आत्मा है
सः	वही
एषाम्	इन
लोकानाम्	लोकों के
असंभेदाय	सदा स्थितिके लिये
सेतुः	सेतु है
+ सः	वही
विधृतिः	आश्रय है
एतम्	इस
सेतुम्	सेतु को
न अहोरात्रे	न दिन न रात
न जरा	न जरा
न मृत्युः	न मृत्यु
न शोकः	न शोक
न सुकृतम्	न सुकृति
न दुष्कृतम्	न दुष्कृति
तरतः	पार कर सक्ती है अर्थात् हानि को नहीं पहुँचा सक्ती है
हि	क्योंकि
एषः	यह
ब्रह्मलोकः	ब्रह्मलोक
अपहतपाप्मा	पापरहित है
अतः	इसलिये
तेन	इस करके
सर्वे	सब
पाप्मानः	पाप
निवर्तन्ते	निवृत्त होजाते हैं

भावार्थ ।

हे सौम्य ! लोगों के पार उतारने में यह जीवात्मा सेतु की तरह है, यही सबका आश्रय है, इसी करके लोक भवसागर को पार कर जाते हैं, पर इस सेतु को न दिन, न रात, न जरा, न मृत्यु, न शोक, न धर्म, न अधर्म छू सक्ता ह अर्थात् हानि नहीं पहुँचा सक्ता है, न इसके ऊपर कोई आक्रमण कर सक्ता है, यह सेतु निडर नाशरहित निरन्तर अपनी महिमा में स्थित है, यही पूजने योग्य है ॥ १ ॥

मूलम् ।

तस्माद्वा एतꣳ सेतुं तीर्त्वान्धः सन्ननन्धो भवति विद्धः सन्नविद्धो भवत्युपतापी सन्ननुपतापी भवति तस्माद्वा एतꣳ सेतुं तीर्त्वापि नक्तमहरेवाभिनिष्पद्यते सकृद्विभातो ह्येवैष ब्रह्मलोकः ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

तस्मात्, वै, एतम्, सेतुम् , तीर्त्वा, अन्धः, सन् , अनन्धः, भवति, विद्धः, सन्, अविद्धः, भवति, उपतापी, सन्, अनुपतापी, भवति, तस्मात्, वै, एतम्, सेतुम्, तीर्त्वा, अपि, नक्तम्, अहः, एव, अभिनिष्पद्यते, सकृत्, विभातः, हि, एव, एषः, ब्रह्मलोकः ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
तस्मात् एव	इसी कारण	सन्	होता हुआ
एतम्	इस	अविद्धः	अदुःखी
सेतुम्	सेतुरूप ब्रह्म को	भवति	होजाता है
तीर्त्वा	पार करके	उपतापी	रोगी
अन्धः	अन्धा	सन्	होता हुआ
सन्	होता हुआ	अनुपतापी	अरोगी
अनन्धः	नेत्रवाला	भवति	होजाता है
भवति	होजाता है	+ च	और
विद्धः	दुःखी	तस्मात् एव	इसी कारण

एतम्=इस	अभिनिष्पद्यते=हो जाती है
सेतुम्=सेतु को	हि=क्योंकि
तीर्त्वा=पार करके	एषः=यह
नक्तम्=रात्रि	ब्रह्मलोकः=ब्रह्मलोक
अपि=भी	सकृत्=निरन्तर
अहः=दिन	विभातः एव=प्रकाशस्वरूप ही है
एव=निस्संदेह	

भावार्थ ।

हे सौम्य ! यह हृदयाकाश ब्रह्मलोक सेतुवत् इस स्थूल शरीर बिषे स्थित है, यह शुद्ध है, पापरहित है, इस सेतु को पाकर अन्धा नेत्रवाला होजाता है, दुःखी सुखी होजाता है, रोगी अरोगी होजाता है । इसी सेतु को पाकर रात्रि भी दिन हो जाती है अर्थात् मुमुक्षु के अन्तःकरण में जो अन्धकार भरा रहता है वह सब नष्ट होकर उसका हृदय प्रकाश करने लगता है, क्योंकि ब्रह्म जो उसके अन्तर स्थित है वह प्रकाशस्वरूप है, उसके प्रकाश करके सब प्रकाशित होजाते हैं ॥ २ ॥

मूलम् ।

तद्य एवैतं ब्रह्मलोकं ब्रह्मचर्येणानुविन्दन्ति तेषा-मेवैष ब्रह्मलोकस्तेषाᳪं सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति ॥ ३ ॥

इति चतुर्थः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

तत्, ये, एव, एतम्, ब्रह्मलोकम्, ब्रह्मचर्येण, अनुविन्दन्ति, तेषाम्, इव, एषः, ब्रह्मलोकः, तेषाम्, सर्वेषु, लोकेषु, कामचारः, भवति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
तत्=इसलिये		ब्रह्मलोकः=ब्रह्मलोक	
ये=जो विद्वान्		+भवति=होता है	
एतम्=इस		तेषाम्=उनका	
ब्रह्मलोकम्=ब्रह्मलोक को		इव=ही	
ब्रह्मचर्येण=ब्रह्मचर्य करके		कामचारः=इच्छानुसार गमन	
अनुविन्दन्ति=प्राप्त करते हैं		सर्वेषु=सब	
तेषाम्=उनको		लोकेषु=लोकों में	
एषः=यह		भवति एव=होता है	

भावार्थ ।

हे सौम्य ! जो विद्वान् हृदयस्थ ब्रह्मलोक को प्राप्त होता है उसका गमन उसकी इच्छानुसार सब लोकों में होता है । ऐसे इस ब्रह्म को विद्वान् ब्रह्मचर्य करके ही प्राप्त होता है और कोई उपाय उसकी प्राप्ति के लिये नहीं है ॥ ३ ॥

इति चतुर्थः खण्डः ।

अथाष्टमाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः ।

मूलम् ।

अथ यद्यज्ञ इत्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव तद्ब्रह्मचर्येण ह्येव यो ज्ञाता तं विन्दतेऽथ यदिष्टमित्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव तद्ब्रह्मचर्येण ह्येवेष्ट्वात्मानमनुविन्दते ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यत्, यज्ञः, इति, आचक्षते, ब्रह्मचर्यम्, एव, तत्, ब्रह्मचर्येण, हि, एव, यः, ज्ञाता, तम्, विन्दते, अथ, यत्, इष्टम्, इति, आचक्षते, ब्रह्मचर्यम्, एव, तत्, ब्रह्मचर्येण, हि, एव, इष्ट्वा, आत्मानम्, अनुविन्दते ॥

अन्वयः	पदार्थ
अथ	इसके उपरांत
यत्	जो
यज्ञः इति	यज्ञ के नाम से
आचक्षते	कहा जाता है
तत् एव	सोई
ब्रह्मचर्यम्	ब्रह्मचर्य है
हि	क्योंकि
ब्रह्मचर्येण एव	ब्रह्मचर्य साधन करके ही
यः	जो
ज्ञाता	विद्वान्
+ भवति	होता है
+ सः	वही
तम्	उस ब्रह्मलोक को
विन्दते	प्राप्त होता है
अथ	और
यत्	जो
इष्टम् इति	इष्ट के नाम से
आचक्षते	कहा जाता है
तत् एव	वह भी
ब्रह्मचर्यम्	ब्रह्मचर्य ही है
हि	क्योंकि
ब्रह्मचर्येण एव	ब्रह्मचर्य साधन से ही
इष्ट्वा	ब्रह्म को पूज करके
आत्मानम्	परम आत्मा को
अनुविन्दते	प्राप्त होता है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! जो ब्रह्मचर्य है वही यज्ञ है, क्योंकि ब्रह्मचर्य करके ही पुरुष विद्वान् होता है और विद्वान् ही हृदयस्थ ब्रह्म का ज्ञाता होता है। ब्रह्मचर्य का अर्थ यहाँ आत्मविद्या है, यही इष्ट शब्द का भी अर्थ है। बिना आत्मविद्या के ब्रह्मलोक को, जो अपने हृदयाकाश विषे स्थित है, कोई नहीं प्राप्त होता है। यही गुरु से जानने योग्य है ॥ १ ॥

मूलम् ।

अथ यत्सत्रायणमित्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव तद्ब्रह्मचर्येण ह्येव सत आत्मनस्त्राणं विन्दतेऽथ यन्मौनमित्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव तद्ब्रह्मचर्येण ह्येवात्मानमनुविद्य मनुते ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यत्, सत्रायणम्, इति, आचक्षते, ब्रह्मचर्यम्, एव,

तत्, ब्रह्मचर्येण, हि, एव, सतः, आत्मनः, त्राणम्, विन्दते, अथ, यत्, मौनम्, इति, आचक्षते, ब्रह्मचर्यम्, एव, तत्, ब्रह्मचर्येण, हि, एव, आत्मानम्, अनुविद्य, मनुते ॥

अन्वयः पदार्थ

अथ=और
यत्=जिसको
सत्रायणम्=सत्रायण नामक यज्ञ
इति=करके
आचक्षते=विद्वान् लोग कहते हैं
तत् एव=सोई
ब्रह्मचर्यम्=ब्रह्मचर्य है
हि=क्योंकि
ब्रह्मचर्येण एव=ब्रह्मचर्य करके ही
सतः=सर्वदा
आत्मनः=जीवात्मा की
त्राणम्=रक्षा
विन्दते=करता है

अन्वयः पदार्थ

अथ=और
यत्=जिसको
मौनम्=मौन
इति=करके
आचक्षते=विद्वान् लोग कहते हैं
तत्=सो भी
एव=निश्चय करके
ब्रह्मचर्यम्=ब्रह्मचर्य है
हि=क्योंकि
ब्रह्मचर्येण=ब्रह्मचर्य करके
एव=ही
आत्मानम्=अपने आत्मा को
अनुविद्य=भली प्रकार जानकर
मनुते=फिर मनन करता है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! जो सत्रायण नामक यज्ञ है सोई निश्चय करके ब्रह्मचर्य है, क्योंकि ब्रह्मचर्य करके ही मुमुक्षु अपने जीवात्मा की सदा रक्षा करता है और जिसको विद्वान् लोग मौन कहते हैं वह भी ब्रह्मचर्य ही है, क्योंकि ब्रह्मचर्य करके ही मुमुक्षु जीवात्मा को जानकर फिर परमात्मा का अनुभव करता है, विना आत्मज्ञान के जीव अपनी रक्षा नहीं कर सक्ता है और न अपने को परमात्मा से अभिन्न जानकर विचारवान् होता है ॥ २ ॥

मूलम् ।

अथ यदनाशकायनमित्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव तदेष

ह्यात्मा न नश्यति यं ब्रह्मचर्येणानुविन्दतेऽथ यदरण्या-यनमित्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव तत्तदरश्च ह वैण्यश्चा-र्णवौ ब्रह्मलोके तृतीयस्यामितो दिवि तदैरं मदीयꣳ सर-स्तदश्वत्थः सोमसवनस्तदपराजिता पूर्ब्रह्मणः प्रभुवि-मितꣳ हिरण्मयम् ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यत्, अनाशकायनम्, इति, आचक्षते, ब्रह्मचर्यम्, एव, तत्, एषः, हि, आत्मा, न, नश्यति, यम्, ब्रह्मचर्येण, अनुविन्दते, अथ, यत्, अरण्यायनम्, इति, आचक्षते, ब्रह्मचर्यम्, एव, तत्, तत्, अरः, च, ह, वै, एयः, च, अर्णवौ, ब्रह्मलोके, तृतीयस्याम्, इतः, दिवि, तत्, ऐरम्, मदीयम्, सरः, तत्, अश्वत्थः, सोमस-वनः, तत, अपराजिता, पूः, ब्रह्मणः, प्रभुविमितम्, हिरण्मयम् ॥

अन्वयः	पदार्थ
अथ	और
यत्	जिसको
अनाशकायनम्	अनाशकायन व्रत
इति	करके
आचक्षते	कहते हैं
तत्	वही
एषः	यह
एव	निश्चय करके
ब्रह्मचर्यम्	ब्रह्मचर्य है
हि	क्योंकि
यम्	जिस आत्मा को
+ सः	वह विद्वान्
ब्रह्मचर्येण	ब्रह्मचर्य करके
अनुविन्दते	प्राप्त करता है
+ सः	सो

अन्वयः	पदार्थ
आत्मा	आत्मा
न	नहीं
नश्यति	नष्ट होता है
अथ	और
यत्	जिसको
अरण्यायनम्	अरण्यायन व्रत
इति	करके
आचक्षते	कहते हैं
तत् एव	सो भी
ब्रह्मचर्यम्	ब्रह्मचर्य है
+ हि	क्योंकि
तत्	वह
वै	ही
ह	स्पष्ट
अरः	अर

च=और
एयः=एय नाम करके
ब्रह्मलोके=ब्रह्मलोक में
अर्णवौ=दो समुद्र हैं
च=और
इतः=यहाँ से
तृतीयस्याम्=तृतीय
दिवि=द्युलोक में
तत्=वह
ऐरम् मदीयम्=ऐरम्मदीय
सरः=तालाब है

तत्=वहाँ
अश्वत्थः=अश्वत्थ वृक्ष है
+ च=और
सोमसवनः=अमृत का झरना है
तत्=वहां
अपराजिता=ब्रह्म की अपराजिता
पूः=पुरी है
+ च=और
ब्रह्मणः=ब्रह्म का
प्रभुविमितम्=बनाया हुआ
हिरण्मयम्=ज्योतिर्मय स्थान है

भावार्थ ।

और जिसको विद्वान् लोग अनाशकायन नाम करके यज्ञ कहते है वही ब्रह्मचर्य है, क्योंकि जो जीवात्मा ब्रह्मचर्य साधन करके प्राप्त होता है वह नष्ट नहीं होता है और जिसको विद्वान् लोग अरण्यायन नामक यज्ञ करके कहते हैं वह भी ब्रह्मचर्य ही है, क्योंकि ब्रह्म की प्राप्ति के लिये अर अर्थात् कर्मकाण्ड और एय अर्थात् ज्ञानकाण्ड ये दो समुद्र हैं । मृत्युलोक से तीसरा स्थान स्वर्ग है, वहाँ ऐरम्मदीय नामक हर्ष का देनेवाला एक सरोवर है और वहीं पर अमृत रस को चुआता हुआ एक अश्वत्थ वृक्ष है और वहीं पर अपराजिता ब्रह्म की पुरी है और वहीं परमात्मा का ज्योतिर्मय स्थान है । यहाँ पर अलंकार युक्त उपदेश है, दो समुद्र से मतलब कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्ड से है । स्वर्ग से मतलब उपासनाकाण्ड से है, स्वर्ग के पास १ सरोवर अर्थात् ताल है और क्योंकि ताल और सरोवर नाशवान् होता है, इसलिये यह कर्मकाण्ड का फल कहा गया है । उसीके पास एक अश्वत्थ का वृक्ष है । क्योंकि यह गति और वृद्धि से रहित होता है और सदा एकरस रहता है, इसलिये इसको ज्ञान का

फल कहा है, इसी में से अमृत झरा करता है, उस अमृत को ज्ञानी ब्रह्मपुरी में, जो उस के पास है, पहुँचकर पान किया करते हैं। यह ब्रह्मपुरी तेजोमय है। इस स्थान की प्राप्ति केवल ब्रह्मचर्य द्वारा ही होती है॥ ३॥

मूलम्।

तद्य एवैतावरं च ण्यं चार्णवौ ब्रह्मलोके ब्रह्मचर्येणानुविन्दन्ति तेषामेवैष ब्रह्मलोकस्तेषाᳬं सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति॥ ४॥

इति पञ्चमः खण्डः।

पदच्छेदः।

तत्, ये, एव, एतौ, अरम्, च, ण्यम्, च, अर्णवौ, ब्रह्मलोके, ब्रह्मचर्येण, अनुविन्दन्ति, तेषाम्, एव, एषः, ब्रह्मलोकः, तेषाम्, सर्वेषु, लोकेषु, कामचारः, भवति॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
तत्	इसलिये	अनुविन्दन्ति	जानते हैं
ब्रह्मलोके	ब्रह्मलोक में	तेषाम्	उन ज्ञानियों का
एतौ	इन दोनों	एव	ही
अरम्	अर	एषः	यह
च	और	ब्रह्मलोकः	ब्रह्मलोक है
ण्यम्	ण्य नामक	च	और
अर्णवौ	समुद्रों को	तेषाम्	उन ज्ञानियों का
ये	जो	सर्वेषु	सब
एव	भली प्रकार	लोकेषु	लोकों में
ब्रह्मचर्येण	ब्रह्मचर्य करके	कामचारः	यथेच्छागमन
		भवति	होता है

भावार्थ।

हे सौम्य! इस कारण जो कोई ब्रह्मचर्य-साधन-संपन्न विद्वान् पुरुष ब्रह्म की प्राप्ति के लिये अर अर्थात् कर्मकाण्ड, ण्य अर्थात्

ज्ञानकाण्ड जो महासमुद्र के नाम से कहे गए हैं प्राप्त करते हैं, उन्हीं ब्रह्मचर्य-साधन-संपन्न पुरुषों को यह ब्रह्मलोक प्राप्त होता है और उन्हीं का स्वेच्छानुसार गमन सब लोकों में होता है और जो लोग स्त्री आदि विषय भोग में फँसे हैं और ब्रह्मचर्य के माहात्म्य को नहीं जानते हैं तथा न उसका पालन करते हैं, वे ब्रह्म को कदापि प्राप्त नहीं होते हैं और न उनका स्वेच्छागमन किसी लोक या योनियों में होता है ॥ ४ ॥

इति पञ्चमः खण्डः ।

अथाष्टमाध्यायस्य षष्ठः खण्डः ।

मूलम् ।

अथ या एता हृदयस्य नाडयस्ताः पिङ्गलस्याणिम्नस्तिष्ठन्ति शुक्लस्य नीलस्य पीतस्य लोहितस्येत्यसौ वा आदित्यः पिङ्गल एष शुक्ल एष नील एष पीत एष लोहितः ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, याः, एताः, हृदयस्य, नाडयः, ताः, पिङ्गलस्य, अणिम्नः, तिष्ठन्ति, शुक्लस्य, नीलस्य, पीतस्य, लोहितस्य, इति, असौ, वै, आदित्यः, पिङ्गलः, एषः, शुक्लः, एषः, नीलः, एषः, पीतः, एषः, लोहितः ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ	और	नाडयः	नाड़ियाँ हैं
याः	जो	ताः	वे
एताः	ये	पिङ्गलस्य	पीतवर्ण
हृदयस्य	हृदय से चारों ओर निकली हुई	अणिम्नः	सूर्य के सूक्ष्म
		+ रसेन	रस करके

+ पूर्णाः=पूर्ण
तिष्ठन्ति=रहती हैं
+ तथा=वैसे ही
शुक्लस्य=श्वेतवर्ण
नीलस्य=नीलवर्ण
पीतस्य=पीतवर्ण
लोहितस्य=लालवर्ण
अणिम्नः=सूर्य के सूक्ष्म
+ रसेन=रस करके
+ पूर्णाः=पूर्ण रहती हैं
इति=इसी लिये
वै=निश्चय करके

असौ=यह
आदित्यः=सूर्य
पिङ्गलः=कपिलवर्ण है
एषः=यह सूर्य
शुक्लः=श्वेत है
एषः=यह सूर्य
नीलः=नीला है
एषः=यह सूर्य
पीतः=पीला है
एषः=यह सूर्य
लोहितः=लाल है

भावार्थ ।

इस खण्ड में योग के माहात्म्य को कहते हैं । जब जीवात्मा स्थूलशरीर को त्यागता है तब त्यागते वक्त उसको अतिक्लेश होता है, पर कोई मार्ग इस स्थूल शरीर में ऐसा भी है जिससे निकलते हुए जीवात्मा को सुख होता है । यह मार्ग ब्रह्मरन्ध्र है, जो विद्वान् ब्रह्मचर्यादि साधन-संपन्न, जितेन्द्रिय, बाह्यविषयत्यागी और अन्तर्मुखदृष्टि हृदय-पुण्डरीकगत ब्रह्म की उपासना करनेवाला होता है वह मरते समय उस मार्ग से जाता है । इसलिये जो ये हृदयस्थ कमलाकार ब्रह्म की उपासना के स्थान नाड़ियाँ हैं और जो हृदय के मांसपिण्ड से निकलकर सूर्यमण्डलस्थ किरण की नाई संपूर्ण शरीर में विस्तृत हैं वे पिङ्गलवर्णवाले सूर्य के रस से पूर्ण हैं और उसी तरह श्वेत, कृष्ण, पीत और रक्तवर्णवाले सूर्य के सूक्ष्म रस से भी परिपूर्ण हैं । ये नाड़ियों के वर्ण सूर्य के सम्बन्ध करके होते हैं, क्योंकि सूर्य स्वतः पिङ्गल, शुक्ल, कृष्ण, पीत और रक्तवर्णवाला है । उसके किरण शरीर में [illegible] हृदय की नाड़ियाँ भी वैसे ही वर्णवाली होजाती हैं ॥ १ ॥

मूलम् ।

तद्यथा महापथ आतत उभौ ग्रामौ गच्छतीमं चामुं चैवमेवैता आदित्यस्य रश्मय उभौ लोकौ गच्छन्तीमं चामुं चामुष्मादादित्यात्प्रतायन्ते ता आसु नाडीषु सृप्ता आभ्यो नाडीभ्यः प्रतायन्ते तेऽमुष्मिन्नादित्ये सृप्ताः ॥२॥

पदच्छेदः ।

तत, यथा, महापथः, आततः, उभौ, ग्रामौ, गच्छति, इमम्, च, अमुम्, च, एवम्, एव, एताः, आदित्यस्य, रश्मयः, उभौ, लोकौ, गच्छति, इमम्, च, अमुम्, च, अमुष्मात्, आदित्यात्, प्रतायन्ते, ताः, आसु, नाडीषु, सृप्ताः, आभ्यः, नाडीभ्यः, प्रतायन्ते, ते, अमुष्मिन्, आदित्ये, सृप्ताः ॥

अन्वयः	पदार्थ
तत्	इस पर
+ दृष्टान्तः	दृष्टान्त देते हैं कि
यथा	जैसे
आततः	दूर जानेवाला
महापथः	बड़ा मार्ग
इमम्	इस (समीप)
च	और
अमुम्	उस (दूर) के
उभौ	दो
ग्रामौ	गावों को
गच्छति	जाता है
एवम् एव	इसी प्रकार
आदित्यस्य	सूर्य की
एताः	ये
रश्मयः	किरणें
उभौ	दोनों
लोकौ	लोकों को अर्थात्
इमम्	इस पुरुष के शरीर में
च	और
अमुम्	दूरस्थ सूर्य के मण्डल में
च	भी
+ गच्छन्ति	प्रवेश होती हैं
+ च	और
+ यथा	जैसे
अमुष्मात् आदित्यात्	उस दूरस्थ सूर्य से किरणें निकलकर
प्रतायन्ते	चारों ओर फैल जाती हैं
+ तथा	उसी तरह
ताः	वे

आसु=इन
नाडीषु=नाड़ियों में
सृप्ताः=प्रविष्ट होकर
च=और फिर
आभ्यः=इन्हीं
नाडीभ्यः=नाड़ियों से
प्रतायन्ते=शरीर में चारों ओर फैल जाती हैं
+ च=और
+ पुनः=फिर
ते=वे ही किरणें
अमुष्मिन्=उसी दूरस्थ
आदित्ये=सूर्य में
सृप्ताः=प्रवेश
+ भवन्ति=कर जाती हैं

भावार्थ ।

हे सौम्य ! दूरस्थ आदित्य का सम्बन्ध इन हृदयस्थ नाड़ियों से कैसे है इसको दिखलाते हैं जैसे बहुत दूर जानेवाला बड़ा मार्ग समीप और दूर दो गाँव में होकर जाता है इसी प्रकार सूर्य की ये किरणें सूर्यलोक बिषे और इस पुरुष के शरीर बिषे प्रविष्ट होती हैं इस कारण सूर्य की किरणें सूर्य से निकलकर चारों ओर विस्तीर्ण होकर इस पुरुष की नाड़ियों में भी प्रविष्ट होती हैं और फिर वे ही किरणें इन नाड़ियों से निकलकर सूर्य में प्रवेश कर जाती हैं ॥ २ ॥

मूलम् ।

तद्यत्रैतत्सुप्तः समस्तः संप्रसन्नः स्वप्नं न विजानात्यासु तदा नाडीषु सृप्तो भवति तं न कश्चन पाप्मा स्पृशति तेजसा हि तदा संपन्नो भवति ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

तत्, यत्र, एतत्, सुप्तः, समस्तः, संप्रसन्नः, स्वप्नम्, न, विजानाति, आसु, तदा, नाडीषु, सृप्तः, भवति, तम्, न, कश्चन, पाप्मा, स्पृशति, तेजसा, हि, तदा, संपन्नः, भवति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
तत्	तत्पश्चात्	एतत्	यह जीव
यत्र	जिस समय	समस्तः	अच्छी तरह

सुप्तः=सुषुप्ति अवस्था को	+ च=और
+ भवति=प्राप्त होता है	+ तदा=तब
+ तत्र=उस विषे	तम्=उस जीव को
संप्रसन्नः=आनन्दभोगताहुआ	कश्चन=कोई भी
स्वप्नम्=स्वप्न को	पाप्मा=पाप
न=नहीं	न=नहीं
विजानाति=अनुभव करता है	स्पृशति=स्पर्श करता है
+ च=और	हि=क्योंकि
तदा=तभी	तदा=उस समय
आसु=इन	+ सः=वह जीव
नाडीषु=नाड़ियों में	तेजसा=अपने तेज से
सृप्तः=प्रविष्ट	संपन्नः=संपन्न
भवति=होता है	भवति=रहता है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! ऐसा होनेपर जब यह जीवात्मा अच्छी तरह सुषुप्ति अवस्था को प्राप्त होता है तब यह आनन्द भोगता हुआ स्वप्न को नहीं देखता है और जब इन नाड़ियों में से निकलकर पुरीतत् नामक नाड़ी में प्रविष्ट होता है तो उस समय यह जीव अपने संपूर्ण तेज से संपन्न रहता है ॥ ३ ॥

मूलम् ।

अथ यत्रैतदबलिमानं नीतो भवति तमभित आसीना आहुर्जानासि मां जानासि मामिति स यावदस्माच्छ-रीरादनुत्क्रान्तो भवति तावज्जानाति ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यत्र, एतत्, अबलिमानम्, नीतः, भवति, तम्, अभितः, आसीनाः, आहुः, जानासि, माम्, जानासि, माम्, इति, सः, यावत्, अस्मात्, शरीरात्, अनुत्क्रान्तः, भवति, तावत्, जानाति ॥

अन्वयः	पदार्थ
अथ	इसके उपरान्त मरण समय
यत्र	जब
एतत्	यह जीव
अबलिमानम्	रोगादिक से दुर्बलता को
नीतः	प्राप्त
भवति	होता है
+ तदा	तब
तम्	उस मुमूर्षु पुरुष के
अभितः	चारों ओर
आसीनाः	बैठे हुए
+ ज्ञातयः	जाति बान्धव
इति	इस प्रकार
आहुः	कहते हैं कि
माम्	मुझको
जानासि	तू जानता है
माम्	मुझको
जानासि	तू जानता है
+ तदा	तब
यावत्	जब तक
सः	वह मुमूर्षु पुरुष
अस्मात्	इस
शरीरात्	शरीर से
अनुत्क्रान्तः	उत्क्रमण नहीं
भवति	कर जाता है
तावत्	तब तक
जानाति	पुत्रादिकों को जानता है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! जब कोई पुरुष मरते समय रोगादिक से ग्रसित हुआ दुर्बलता को प्राप्त होता है तब उसके चारों ओर उसके सम्बन्धी लोग बैठकर पूछते हैं कि क्या तू मुझको जानता है ? क्या तू मुझको जानता है ? तब जब तक उसका जीवात्मा उसके शरीर से निकल नहीं जाता है, तब तक वह कहता है हाँ, मैं जानता हूँ । हाँ, मैं जानता हूँ ॥४॥

मूलम् ।

अथ यत्रैतदस्माच्छरीरादुत्क्रामत्यथैतैरेव रश्मिभिरूर्ध्वमाक्रमते स ओमिति वाहोद्वा मीयते स यावत्क्षिप्येन्मनस्तावदादित्यं गच्छत्येतद्वै खलु लोकद्वारं विदुषां प्रपदनं निरोधो विदुषाम् ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यत्र, एतत्, अस्मात्, शरीरात्, उत्क्रामति, अथ, एतैः,

एव, रश्मिभिः, ऊर्ध्वम्, आक्रमते, सः, ॐ, इति, वा, ह, उत्, वा, मीयते, सः, यावत्, क्षिप्येत्, मनः, तावत्, आदित्यम्, गच्छति, एतत्, वै, खलु, लोकद्वारम्, विदुषाम्, प्रपदनम्, निरोधः, अविदुषाम्॥

अन्वयः	पदार्थ
अथ	तदनन्तर
यत्र	जब
एतत्	यह साधारण जीवात्मा
अस्मात्	इस
शरीरात्	शरीर से
उत्क्रामति	निकलता है
अथ	तब
एतैः एव	इन्हीं
रश्मिभिः	हृदयस्थ किरणों द्वारा
ऊर्ध्वम्	ऊपर को
आक्रमते	जाता है
+ परन्तु	परन्तु
+ यदा	जब
सः	वह
+ विद्वान्	विद्वान्
ॐ	ॐ
इति	ऐसा
हवा	निश्चय करके
+ ध्यायन्	ध्यान करता हुआ
मीयते	जाता है
+ तदा	तब
यावत्	जितनी देर में
मनः	मन
आदित्यं क्षिप्येत्	सूर्य के पास पहुँचता है
तावत्	उतनी ही देर में
सः	वह विद्वान्
उत् वा	सूर्य के पार
गच्छति	चला जाता है
एतत्	यही सूर्य
खलु वै	निश्चय करके
लोकद्वारम्	ब्रह्मलोक का द्वार है
+ एतत्	यही
विदुषाम्	विद्वानों के
प्रपदनम्	जाने का मार्ग है
+ च	और
अविदुषाम्	अविद्वानों के जाने की
निरोधः	रुकावट है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! जब साधारण मनुष्यों का जीवात्मा इस शरीर को त्यागकर ऊपर को निकल जाता है तब सूर्य की किरणें, जो हृदय की नाड़ियों में स्थित हैं, उन्हींके द्वारा वह ऊपर को जाता है

परन्तु जब विद्वान् ॐ ॐ ऐसा कहता हुआ और उसके लक्ष्य परमात्मा का ध्यान करता हुआ ऊपर को जाता है, तब जितनी देर में मन सूर्य के पास पहुँचता है, उतनी ही देर में वह विद्वान् सूर्य को पार करके ब्रह्मलोक को प्राप्त होता है । हे सौम्य ! यही सूर्य निश्चय करके ब्रह्मलोक का द्वार है; यही ब्रह्मलोक के जाने के लिये विद्वानों का मार्ग है । और अविद्वानों के लिये रुकावट है ॥ ५ ॥

मूलम् ।

तदेष श्लोकः । शतं चैका च हृदयस्य नाड्यस्तासां मूर्धानमभिनिःसृतैका । तयोर्ध्वमायन्नमृतत्वमेति विष्वङ्ङन्या उत्क्रमणे भवन्त्युत्क्रमणे भवन्ति ॥ ६ ॥

इति षष्ठः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

तत्, एषः, श्लोकः, शतम्, च, एका, च, हृदयस्य, नाड्यः, तासाम्, मूर्धानम्, अभिनिःसृता, एका, तया, ऊर्ध्वम्, आयन्, अमृतत्वम्, एति, विष्वङ्, अन्याः, उत्क्रमणे, भवन्ति, उत्क्रमणे, भवन्ति ॥

अन्वयः	पदार्थ
तत्=ऊपर कहे हुए विषय में	
एषः=यह आगेवाला	
श्लोकः=मंत्र प्रमाण है	
शतं च एका=एक सौ एक	
हृदयस्य=हृदय की	
नाड्यः=नाड़ियाँ हैं	
तासाम्=उनमें से	
एका=एक नाड़ी	
मूर्धानम्=मस्तक को	

अन्वयः	पदार्थ
अभिनिःसृता=हृदय से चली गई है	
तया=मस्तकगामिनी नाड़ी से	
ऊर्ध्वम्=ब्रह्मलोक को	
आयन्=जाता हुआ योगी	
अमृतत्वम्=मोक्ष को	
एति=प्राप्त होता है	
च=और	

विष्वङ्= { मस्तक को छोड़ कर इधर-उधर फैली हुई	भवन्ति=होती हैं
अन्याः=और नाड़ियाँ	उत्क्रमणे=प्राण निकलने के निमित्त ही
उत्क्रमणे=प्राण निकलने के निमित्त ही	भवन्ति=होती हैं

भावार्थ ।

हे सौम्य ! जो कुछ ऊपर कहा गया है उसके विषय में आगेवाला मन्त्र प्रमाण है । सुनो, मैं कहता हूँ । हे सौम्य ! हृदय में एक सौ एक नाड़ियाँ प्रधान हैं । उनमें से एक नाड़ी मस्तक तक चली गई है । उस नाड़ी के द्वारा योगी ब्रह्मलोक को जाकर मोक्ष को प्राप्त होता है । इस नाड़ी के अतिरिक्त और बहुत-सी नाड़ियाँ इधर-उधर फैली हैं, उन नाड़ियों के द्वारा साधारण पुरुषों का प्राण निकलता है और वे भिन्न-भिन्न गति को प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥

इति षष्ठः खण्डः ।

अथाष्टमाध्यायस्य सप्तमः खण्डः ।

मूलम् ।

य आत्माऽपहतपाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोको विजिघत्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसङ्कल्पः सोऽन्वेष्टव्यः स विजिज्ञासितव्यः स सर्वांश्च लोकानाप्नोति सर्वांश्च कामान्यस्तमात्मानमनुविद्य विजानातीति ह प्रजापतिरुवाच ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

यः, आत्मा, अपहतपाप्मा, विजरः, विमृत्युः, विशोकः, विजिघत्सः अपिपासः, सत्यकामः, सत्यसङ्कल्पः, सः, अन्वेष्टव्यः, सः, विजिज्ञासितव्यः, सः, सर्वान्, च, लोकान्, आप्नोति, सर्वान्, च, कामान्,

यः, तम्, आत्मानम्, अनुविद्य, विजानाति, इति, ह, प्रजापतिः, उवाच ॥

अन्वयः पदार्थ	अन्वयः पदार्थ
यः=जो	यः=जो
आत्मा=आत्मा	तम्=उस
अपहतपाप्मा=निष्पाप है	आत्मानम्=आत्मा को
विजरः=जरा-रहित है	अनुविद्य=शास्त्रद्वारा जानकर
विमृत्युः=अमर है	विजानाति=साक्षात् करता है
विशोकः=शोकरहित है	सः=वह
विजिघत्सः=क्षुधा की इच्छा से रहित है	सर्वान्=संपूर्ण
अपिपासः=तृषा की इच्छा से रहित है	लोकान्=लोकों को
सत्यकामः=सत्यकाम है	च=और
सत्यसङ्कल्पः=सत्यसंकल्प है	सर्वान्=संपूर्ण
सः=वही आत्मा	कामान्=कामनाओं को
अन्वेष्टव्यः=शास्त्र और गुरु के उपदेश करके खोजने योग्य है	आप्नोति=प्राप्त होता है
सः=वही आत्मा	इति=इस प्रकार
विजिज्ञासितव्यः=विशेष करके जानने योग्य है	ह=स्पष्ट
	+ इति=ऐसा
	प्रजापतिः=ब्रह्मा ने अपने शिष्यों से
	उवाच=कहा

भावार्थ ।

हे सौम्य ! जो आत्मा निष्पाप है, जरारहित है, शोकरहित है, क्षुधारहित है, तृषारहित है, अमर है, सत्यकाम है, सत्यसंकल्प है, वही शास्त्र और आचार्य द्वारा खोजने योग्य है, वही साक्षात्कार करने योग्य है, जो योगी ऐसे आत्मा को साक्षात् करता है वह सम्पूर्ण लोकों को और सम्पूर्ण कामों को प्राप्त होता है, इस प्रकार किसी समय ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ प्रजापति (ब्रह्मा) शिष्यों से उपदेश किया ॥ १ ॥

मूलम् ।

तद्धोभये देवासुरा अनुबुबुधिरे ते होचुर्हन्त तमात्मानमन्विच्छामो यमात्मानमन्विष्य सर्वांश्च लोकानाप्नोति सर्वांश्च कामानितीन्द्रो हैव देवानामभिप्रवव्राज विरोचनोऽसुराणां तौ हासंविदानावेव समित्पाणी प्रजापतिसकाशमाजग्मतुः ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

तत्, ह, उभये, देवासुराः, अनुबुबुधिरे, ते, ह, ऊचुः, हन्त, तम्, आत्मानम्, अन्विच्छामः, यम्, आत्मानम्, अन्विष्य, सर्वान्, च, लोकान्, आप्नोति, सर्वान्, च, कामान्, इति, इन्द्रः, ह, एव, देवानाम्, अभिप्रवव्राज, विरोचनः, असुराणाम्, तौ, ह, असंविदानौ, एव, समित्पाणी, प्रजापतिसकाशम्, आजग्मतुः ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
ह	इतिहास सूचक है कि	ऊचुः	कहते भये कि
तत्	प्रजापति के कहे हुए उस वचन को	हन्त	चलो
उभये	दोनों अर्थात्	तम्	उस
देवासुराः	देवता और असुरों ने	आत्मानम्	आत्मा को
ह	भली प्रकार	ह	अच्छी तरह
अनुबुबुधिरे	जानने का प्रयत्न किया	अन्विच्छामः	ढूँढ़ें
+ पुनः	तत्पश्चात्	यम्	जिस
ते	देवता और असुर	आत्मानम्	आत्मा को
+ मिथः	आपस में	अन्विष्य	ढूँढ़कर
ह	स्पष्ट	+ विद्वान्	विद्वान्
		सर्वान्	सब
		लोकान्	लोकों को
		च	और
		सर्वान्	सब

कामान्=कामनाओं को
एव=अवश्य
आप्नोति=प्राप्त होता है
इति=इसके बाद
देवानाम्=देवों का
+ राजा=राजा
इन्द्रः=इन्द्र
+ च=और
असुराणाम्=असुरों का
+ राजा=राजा
विरोचनः=विरोचन
तौ एव=दोनों ही
असंविदानौ=विद्या के विषय में
अभिप्रवव्राज=परस्पर ईर्ष्या करते हुए चले
च=और
समित्पाणी=समिधा हाथ में लिए
प्रजापतिसकाशम्=प्रजापति के पास
आजग्मतुः=आये

भावार्थ ।

हे सौम्य ! किसी समय ब्रह्मा देवताओं और असुरों को आत्मा-विषयक उपदेश करता था, परन्तु उन दोनों में से किसी को आत्मा का बोध न हुआ, वे अपने-अपने घर उठकर चले गये । बहुत काल के पीछे जब ब्रह्मा के पहिले उपदेश का स्मरण हो आया, तब वे दोनों अपनी-अपनी सभा में लोगों से कहने लगे कि अगर आपलोगों की इच्छा हो तो हम आत्मा का अन्वेषण करें जिसको जानकर लोग समस्त लोकों को और समस्त कामनाओं को प्राप्त होते हैं । जब सबकी राय हुई कि ऐसा करना चाहिए तब देवताओं में इन्द्र और असुरों में विरोचन ने ब्रह्मविद्याप्राप्त्यर्थ प्रजापति के स्थान को प्रस्थान किया और आपस में ईर्ष्या करते हुए और सामिधा को हाथ में लिए हुए प्रजापति के समीप गये ॥ २ ॥

मूलम् ।

तौ ह द्वात्रिंशतं वर्षाणि ब्रह्मचर्यमूषतुस्तौ ह प्रजापतिरुवाच किमिच्छन्तावचास्तमिति तौ होचतुर्य आत्मापहतपाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोको विजिघत्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसङ्कल्पः सोऽन्वेष्टव्यः स

विजिज्ञासितव्यः सर्वांश्च लोकानाप्नोति सर्वांश्च कामान्यस्तमात्मानमनुविद्य विजानातीति भगवतो वचो वेदयन्ते तमिच्छन्ताववास्तमिति ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

तौ, ह, द्वात्रिंशतम्, वर्षाणि, ब्रह्मचर्यम्, ऊषतुः, तौ, ह, प्रजापतिः, उवाच, किम्, इच्छन्तौ, अवास्तम्, इति, तौ, ह, ऊचतुः, यः, आत्मा, अपहतपाप्मा, विजरः, विमृत्युः, विशोकः, विजिघत्सः, अपिपासः, सत्यकामः, सत्यसङ्कल्पः, सः, अन्वेष्टव्यः, सः, विजिज्ञासितव्यः, सर्वान्, च, लोकान्, आप्नोति, सर्वान्, च, कामान्, यः, तम्, आत्मानम्, अनुविद्य, विजानाति, इति, भगवतः, वचः, वेदयन्ते, तम्, इच्छन्तौ, अवास्तम्, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
तौ	वे दोनों इन्द्र और विरोचन
ह	निश्चय करके
द्वात्रिंशतम्	बत्तीस
वर्षाणि	वर्ष तक
ब्रह्मचर्यम्	ब्रह्मचर्य व्रत को
ऊषतुः	ब्रह्मा के पास सेवन करते भये
ह	तब
प्रजापतिः	ब्रह्मा
तौ	उन दोनों
उवाच	कहता भया कि
+ युवाम्	तुम दोनों
किम्	किस वस्तु की
इच्छन्तौ	इच्छा करते हुए
अवास्तम्	मेरे निकट वास करते भये
इति	ऐसे
+ प्रश्नोत्तरम्	पूछे जाने पर
तौ	वे दोनों अर्थात् इन्द्र और विरोचन
ह	स्पष्ट
ऊचतुः	कहते भये कि
यः	जो
आत्मा	आत्मा
अपहतपाप्मा	निष्पाप है
विजरः	जरारहित है
विमृत्युः	अमर है
विशोकः	शोकरहित है
विजिघत्सः	क्षुधा की इच्छा से रहित है
अपिपासः	तृषा की इच्छा से रहित है

सत्यकामः=सत्यकाम है
सत्यसङ्कल्पः=सत्यसङ्कल्प है
सः=वह
अन्वेष्टव्यः=शास्त्र और गुरूपदेश से खोजने योग्य है
च=और
सः=वही
विजिज्ञासितव्यः=विशेष करके जानने योग्य है
इति=इस प्रकार
तम्=उस
आत्मानम्=आत्मा को
अनुविद्य=जानकर
यः=जो
विजानाति=साक्षात् करता है
+ सः=वह
सर्वान्=सब
लोकान्=लोकों को
च=और
सर्वान्=सब
कामान्=कामनाओं को
आप्नोति=प्राप्त होता है
इति=इस प्रकार
भगवतः=आपके
वचः=वचन को
+ शिष्टाः=यथार्थवक्ता विद्वान्
वेदयन्ते=बताते हैं
+ इति=इसलिये
तम्=उसी की
इच्छन्तौ=इच्छा करनेवाले हम दोनों
अवास्तम्=आपके पास आकर रहे

भावार्थ ।

हे सौम्य ! वे दोनों अर्थात् इन्द्र और विरोचन जब प्रजापति के पास पहुँचे, तब ३२ वर्ष तक ब्रह्मचर्य व्रत को करते भये । उन दोनों से प्रजापति ने पूछा कि किस प्रयोजन की इच्छा से तुम दोनों ने इतने काल तक मेरे निकट निवास किया ? तब उन दोनों ने जवाब दिया कि जिन विद्वानों ने आपके उपदेश को सुना है वे कहते हैं कि आत्मा निष्पाप है, जरारहित है, अमर है, शोकरहित है, क्षुधा और तृषा की इच्छा से रहित है, सत्यकाम है, सत्यसंकल्प है, इसलिये वह खोजने और जानने योग्य है और इसी कारण जो आत्मा को जानकर साक्षात् करता है वह सब लोकों और सब कामनाओं को प्राप्त होता है । हम लोग भी उस आत्मा के जानने की इच्छा करके आपके पास आए हैं ॥ ३ ॥

मूलम् ।

तौ ह प्रजापतिरुवाच य एषोऽक्षिणि पुरुषो दृश्यत एष आत्मेति होवाचैतदमृतमभयमेतद्ब्रह्मेत्यथ योऽयं भगवोऽप्सु परिख्यायते यश्चायमादर्शे कतम एष इत्येष उ एवैषु सर्वेष्वन्तेषु परिख्यायत इति होवाच ॥ ४ ॥

इति सप्तमः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

तौ, ह, प्रजापतिः, उवाच, यः, एषः, अक्षिणि, पुरुषः, दृश्यते, एषः, आत्मा, इति, ह, उवाच, एतत्, अमृतम्, अभयम्, एतत्, ब्रह्म, इति, अथ, यः, अयम्, भगवः, अप्सु, परिख्यायते, यः, च, अयम्, आदर्शे, कतमः, एषः, इति, एषः, उ, एव, एषु, सर्वेषु, अन्तेषु, परिख्यायते, इति, ह, उवाच ॥

अन्वयः	पदार्थ
तौ	उन दोनों से
प्रजापतिः	ब्रह्मा
इति	इस प्रकार
उवाच	कहता भया कि
यः	जो
एषः	यह
अक्षिणि	नेत्र विषे
पुरुषः	पुरुष
दृश्यते	दिखाई देता है
एषः ह	यही
आत्मा	आत्मा है
ह	फिर
उवाच	ब्रह्मा कहता भया कि
एतत्	यही आत्मा
अमृतम्	अमृत है
एतत्	यही
अभयम्	निर्भय है
ब्रह्म	सर्वत्र व्यापक है
इति	इस प्रकार उपदेश होने पर
अथ	वे दोनों प्रश्न करते भये कि
भगवः	हे भगवन् !
यः	जो
अयम्	यह
अप्सु	जल में
परिख्यायते	देखा जाता है
च	और
यः	जो

अयम्=यह
आदर्शे=दर्पण में
+ परिख्यायते=देखा जाता है
कतमः=इनमें से कौन-सा
एषः=यह आत्मा है
इति=इस प्रकार
+ श्रुत्वा=सुनकर
+ प्रजापतिः=ब्रह्मा
ह=साफ़ साफ़
इति=ऐसा
उवाच=कहता भया कि
एषः उ एव=यही आत्मा निश्चय करके है
+ यः=जो
एषु=इन
सर्वेषु=सबके
अन्तेषु=अन्तर
परिख्यायते=दिखाई देता है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! प्रजापति ने उन दोनों अर्थात् इन्द्र और विरोचन से ऐसा कहा कि जो पुरुष नेत्र विषे दिखाई देता है वही आत्मा है, वही अमृत है, वही निर्भय है, वही सर्वत्र व्यापक है । ऐसा सुनकर दोनों ने पूछा कि हे भगवन् ! जो प्रतिबिम्ब जल में दिखाई देता है और जो दर्पण में दिखाई देता है उसमें से कौन-सा आत्मा है ? ब्रह्मा ने उत्तर दिया कि जो सबके अंदर दिखाई देता है वही आत्मा है ॥ ४ ॥

इति सप्तमः खण्डः ।

अथाष्टमाध्यायस्याष्टमः खण्डः ।

मूलम् ।

उदशराव आत्मानमवेक्ष्य यदात्मनो न विजानीथस्तन्मे प्रब्रूतमिति तौ होदशरावेऽवेक्षाञ्चक्राते तौ ह प्रजापतिरुवाच किं पश्यथ इति तौ होचतुः सर्वमेवेदमावां भगव आत्मानं पश्याव आलोमभ्य आनखेभ्यः प्रतिरूपमिति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

उदशरावे, आत्मानम्, अवेक्ष्य, यदा, आत्मनः, न, विजानीथः, तत्, मे, प्रब्रूतम्, इति, तौ, ह, उदशरावे, अवेक्षाञ्चक्राते, तौ, ह, प्रजापतिः, उवाच, किम्, पश्यथः, इति, तौ, ह, ऊचतुः, सर्वम्, एव, इदम्, आवाम्, भगवः, आत्मानम्, पश्यावः, आलोमभ्यः, आनखेभ्यः, प्रतिरूपम्, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
यदा	जब
उदशरावे	जल से भरे हुए मिट्टी के बर्तन में
आत्मनः	अपने
आत्मानम्	आत्मा को अर्थात् अपने शरीर के प्रतिबिम्ब को
अवेक्ष्य	तुम देखकर
न	न
विजानीथः	जानो
तत्	तब
मे	मुझे
प्रब्रूतम्	कहो
इति	इस प्रकार कहे जाने पर
तौ	वे दोनों
उदशरावे	जल से भरे हुए मिट्टी के बर्तन में
अवेक्षाञ्चक्राते	अपने को देखते भये
ह	तब
प्रजापतिः	ब्रह्मा
तौ	उन दोनों से
उवाच	कहता भया कि
किम्	क्या
पश्यथः	देखते हो
इति	तब
तौ	वे दोनों
ह	स्पष्ट
ऊचतुः	कहते भये कि
भगवः	हे भगवन् !
आवाम्	हम दोनों
आनखेभ्यः	नख सहित
आलोमभ्यः	लोम सहित
सर्वम्	संपूर्ण
इदम्	इस शरीर के
प्रतिरूपम्	प्रतिरूप
आत्मा	आत्मा को
एव	निश्चय करके
ह	स्पष्ट
पश्यावः	देखते हैं

भावार्थ ।

हे सौम्य ! प्रजापति ने इन्द्र और विरोचन से कहा कि तुम दोनों

मिट्टी के बर्तन में जो जल से भरा हो उसमें अपने आत्मा को देखो और बताओ कि वह क्या है। यदि उसे न जान सको तो मुझसे कहो। जब ऐसा उनसे कहा गया तब उन दोनों ने जल से भरे हुए मिट्टी के बर्तन में अपने को देखा। ब्रह्मा ने उनसे पूछा कि तुम क्या देखते हो? तब उन्होंने उत्तर दिया कि हम दोनों नख से शिख तक संपूर्ण इस अपने शरीर के प्रतिबिम्बरूप आत्मा को देखते हैं ॥ १ ॥

मूलम्।

तौ ह प्रजापतिरुवाच साध्वलङ्कृतौ सुवसनौ परिष्कृतौ भूत्वोदशरावेऽवेक्षेथामिति तौ ह साध्वलङ्कृतौ सुवसनौ परिष्कृतौ भूत्वोदशरावेऽवेक्षाञ्चक्राते तौ ह प्रजापतिरुवाच किं पश्यथ इति ॥ २ ॥

पदच्छेदः।

तौ, ह, प्रजापतिः, उवाच, साधु, अलङ्कृतौ, सुवसनौ, परिष्कृतौ, भूत्वा, उदशरावे, अवेक्षेथाम्, इति, तौ, ह, साधु, अलङ्कृतौ, सुवसनौ, परिष्कृतौ, भूत्वा, उदशरावे, अवेक्षाञ्चक्राते, तौ, ह, प्रजापतिः, उवाच, किम्, पश्यथः, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
प्रजापतिः	ब्रह्मा
तौ	उन दोनों से
ह	साफ़ साफ़
उवाच	कहता भया कि
+ युवाम्	तुम दोनों
साधु	अच्छी तरह
अलङ्कृतौ	अलंकृत हो
सुवसनौ	सुंदर वस्त्र पहन
ह	और
परिष्कृतौ	स्वच्छ
भूत्वा	होकर
उदशरावे	जल से भरे बर्तन में
अवेक्षेथाम्	अपने को देखो
इति	ऐसा सुन करके
तौ	वे दोनों
साधु	अच्छी तरह
अलङ्कृतौ	अलंकृत हो
सुवसनौ	सुंदर वस्त्र पहिन
परिष्कृतौ	स्वच्छ
भूत्वा	होकर

उदशरावे=जल से भरे बर्तन में	इति=ऐसा
अवेक्षाञ्चक्राते=देखते भये	उवाच=पूछता भया कि
ह=तब	किम्=क्या
प्रजापतिः=ब्रह्मा	पश्यथः=देखते हो
तौ=उनसे	

भावार्थ ।

हे सौम्य ! ब्रह्मा ने उन दोनों से कहा कि तुम दोनों अच्छी तरह अलंकृत होकर, सुंदर वस्त्र पहिनकर और स्वच्छ होकर जल से भरे हुए बर्तन में अपने को देखो । ऐसा सुनकर वे दोनों अर्थात् इन्द्र और विरोचन अलंकृत हो, सुंदर वस्त्र पहिन और स्वच्छ होकर जल से भरे हुए वर्तन में अपने को देखते भये । तब ब्रह्मा ने उनसे पूछा कि तुम दोनों क्या देखते हो ? ॥ २ ॥

मूलम् ।

तौ होचतुर्यथैवेदमावां भगवः साध्वलङ्कृतौ सुवसनौ परिष्कृतौ स्व एवमेवेमौ भगवः साध्वलङ्कृतौ सुवसनौ परिष्कृतावित्येष आत्मेति होवाचैतदमृतमभयमेतद्ब्रह्मेति तौ ह शान्तहृदयौ प्रवव्रजतुः ॥३॥

पदच्छेदः ।

तौ, ह, ऊचतुः, यथा, एव, इदम्, आवाम्, भगवः, साधु, अलङ्कृतौ, सुवसनौ, परिष्कृतौ, स्वः, एवम्, एव, इमौ, भगवः, साधु, अलङ्कृतौ, सुवसनौ, परिष्कृतौ, इति, एषः, आत्मा, इति, ह, उवाच, एतत्, अमृतम्, अभयम्, एतत्, ब्रह्म, इति, तौ, ह, शान्तहृदयौ, प्रवव्रजतुः ॥

अन्वयः पदार्थ	अन्वयः पदार्थ
इति=इस प्रकार	तौ=वे दोनों
+ उक्ता=कहे गए	ह=निश्चयपूर्वक

ऊचतुः=कहते भये कि
यथा एव=जैसे ही
इदम्=यह शरीर
+ आसीत्=पहिले था
+ तथैवाधुना=वैसे ही अब भी है
भगवः=हे भगवन् !
+ यथा=जैसे
आवाम्=हम दोनों
साधु अलङ्कृतौ=अच्छे प्रकार अलंकृत
सुवसनौ=सुंदर वस्त्र पहिने हुए
परिष्कृतौ=स्वच्छ
स्वः=हैं
एवम् एव=वैसे ही
भगवः=हे भगवन् !
इमौ=हम दोनों के ये दोनों छायात्मा
+ एव=भी
साधु अलङ्कृतौ=अच्छी तरह अलंकृत
सुवसनौ=अच्छे वस्त्र पहिने हुए
परिष्कृतौ=स्वच्छ
+ दृश्येते=दिखाई पड़ते हैं
इति=यह सुनकर
ह=स्पष्ट
उवाच=प्रजापति कहता भया कि
आत्मा एषः ह=यही आत्मा है
एतत्=यही
अमृतम्=अमृत है
अभयम्=अभय है
+ एतत्=यही
ब्रह्म=ब्रह्म है
इति=ऐसा सुनकर
तौ=वे दोनों
शान्तहृदयौ=शान्त हृदय होते हुए
प्रवव्रजतुः=वहाँ से चले गए

भावार्थ ।

हे सौम्य ! तब उन दोनों ने कहा कि जैसे यह शरीर हम लोगों का था वैसे अब भी दिखाई देता है और जैसे हम दोनों अच्छे प्रकार अलंकृत हुए, सुन्दर वस्त्र पहिने हुए स्वच्छ हैं वैसे ही हम दोनों के छाया-आत्मा भी अच्छी तरह अलंकृत, वस्त्र पहिने हुए स्वच्छ दिखाई देते हैं । यह सुनकर प्रजापति ने कहा कि तुम दोनों ठीक कहते हो, यही शरीर आत्मा है, यही अमृतरूप है, यही अभय है, यही ब्रह्म है । ऐसा सुनकर वे दोनों शान्तहृदय होते हुए वहाँ से वापस चले ॥ ३ ॥

मूलम् ।

तौ हान्वीक्ष्य प्रजापतिरुवाचाऽनुपलभ्यात्मानमननुविद्य व्रजतो यतर एतदुपनिषदो भविष्यन्ति देवा वाऽसुरा वा ते पराभविष्यन्तीति स ह शान्तहृदय एव विरोचनोऽसुराञ्जगाम तेभ्यो हैतामुपनिषदं प्रोवाचात्मैवेह महय्य आत्मा परिचर्य आत्मानमेवेह महयन्नात्मानं परिचरन्नुभौ लोकाववाप्नोतीमं चामुं चेति ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

तौ, ह, अन्वीक्ष्य, प्रजापतिः, उवाच, अनुपलभ्य, आत्मानम्, अननुविद्य, व्रजतः, यतरे, एतत्, उपनिषदः, भविष्यन्ति, देवाः, वा, असुराः, वा, ते, पराभविष्यन्ति, इति, सः, ह, शान्तहृदयः, एव, विरोचनः, असुरान्, जगाम, तेभ्यः, ह, एताम्, उपनिषदम्, प्रोवाच, आत्मा, एव, इह, महय्यः, आत्मा, परिचर्यः, आत्मानम्, एव, इह, महयन्, आत्मानम्, परिचरन्, उभौ, लोकौ, अवाप्नोति, इमम्, च, अमुम्, च, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
तौ	उन दोनों को
ह	भली प्रकार
अन्वीक्ष्य	देखकर
प्रजापतिः	ब्रह्मा
उवाच	कहता भया कि
आत्मानम्	आत्मा को
अनुपलभ्य	न पाकर
च	और
अननुविद्य	न जानकर
व्रजतः	ये दोनों जाते हैं
+ अतः	इस कारण
+ यदि	जो
यतरे	दोनों में से
देवाः	देवता
वा	या
असुराः	असुर
एतदुपनिषदः	इस विपरीत ज्ञानवाले
भविष्यन्ति	होंगे
वा	तो
ते	वे
पराभविष्यन्ति	परास्त होंगे

+एतत् न श्रुत्वा=इसको न सुनकर
सः=वह
विरोचनः=विरोचन
शान्तहृदयः=शांतहृदय होता हुआ
असुरान्=असुरों के पास
ह एव=निश्चय करके
जगाम=जाता भया
+च=और
तेभ्यः=उन असुरों से
इति=इस प्रकार
ह=स्पष्ट
एताम्=इस
उपनिषदम्=देहात्मज्ञान को
प्रोवाच=कहने लगा कि
इह=इस संसार में
आत्मा=शरीर
एव=ही
महय्यः=पूजने योग्य है
आत्मा=शरीर ही
परिचर्यः=सेवने योग्य है
इति=इस प्रकार
एव=ऐसे
आत्मानम्=आत्मा को
इह=संसार में
महयन्=पूजता हुआ
च=और
+एव=ऐसे
आत्मानम्=आत्मा को
परिचरन्=सेवन करता हुआ
+पुरुषः=पुरुष
इमम्=इस
च=और
अमुम्=उस
उभौ=दोनों
लोकौ=लोकों को
अवाप्नोति=प्राप्त होता है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! जब उन दोनों को ब्रह्मा ने जाते हुए देखा तब बहुत धीरे से कहने लगा कि ये दोनों आत्मा को न पाकर और न जानकर जाते हैं, इस कारण ये दोनों और इनके साथी देवता और असुर विपरीत ज्ञान को प्राप्त होकर परास्त होंगे । प्रजापति के इस वचन को न सुनकर विरोचन शान्तहृदय होता हुआ अपने साथी असुरों के पास गया और उनसे इस देहात्मक ज्ञान को इस प्रकार कहने लगा कि इस संसार में शरीर ही पूजने योग्य आत्मा है, यही शरीर सेवन करने योग्य है और जो पुरुष ऐसे आत्मा को पूजता है और जानता है, वह इस लोक और परलोक दोनों को प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

मूलम् ।

तस्मादप्यद्येहाददानमश्रद्दधानमयजमानमाहुरासुरो बतेत्यसुराणाꣳ ह्येषोपनिषत्प्रेतस्य शरीरं भिक्षया वसनेनालङ्कारेणेति सꣳस्कुर्वन्त्येतेन ह्यमुं लोकं जेष्यन्तो मन्यन्ते ॥ ५ ॥

इत्यष्टमः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

तस्मात्, अपि, अद्य, इह, आददानम्, अश्रद्दधानम्, अयजमानम्, आहुः, आसुरः, बत, इति, असुराणाम्, हि, एषा, उपनिषत्, प्रेतस्य, शरीरम्, भिक्षया, वसनेन, अलङ्कारेण, इति, संस्कुर्वन्ति, एतेन, हि, अमुम्, लोकम्, जेष्यन्तः, मन्यन्ते ॥

अन्वयः	पदार्थ
तस्मात्	इसलिये
अद्य	आजकल
अपि	भी
इह	इस संसार में
आददानम्	दान को न देते हुए
अश्रद्दधानम्	परलोक विषे श्रद्धा को न करते हुए
+ च	और
अयजमानम्	यज्ञ को न करते हुए
+ पुरुषम्	पुरुष को
+ दृष्ट्वा	देखकर
बत	खेद के साथ
आहुः	लोग कहते हैं कि
आसुर इति	यह असुर है

अन्वयः	पदार्थ
हि	क्योंकि
एषा	यह
उपनिषत्	विपरीत ज्ञान
असुराणाम्	असुरों का है
+ एते पुरुषाः	ऐसे स्वभाववाले पुरुष
प्रेतस्य	मरे हुए पुरुष के
शरीरम्	शरीर को
भिक्षया	गंधमाल्यादि से
वसनेन	वस्त्र से
अलङ्कारेण	विविध प्रकार के भूषण से
संस्कुर्वन्ति	सुसज्जित करते हैं
हि	क्योंकि
मन्यते इति	विरोचन संप्रदाय के लोग ऐसा मानते हैं कि

एतेन=इस प्रकार शवसंस्कार करने से	+ ते=वे अर्थात् मरे हुए पुरुष
अमुम् लोकम्=परलोक को	जेष्यन्तः=जीत लेवेंगे

भावार्थ ।

हे सौम्य ! आजकल भी संसार में दान को न देते हुए, परलोक विषे श्रद्धा न करते हुए और यज्ञ को न करते हुए पुरुष को देखकर लोक खेद के साथ ऐसा कहते हैं कि यह असुर है, क्योंकि धर्मविरुद्ध ज्ञान असुरों का होता है, वे मरे हुए पुरुष को गंध माल्यादि से, अच्छे वस्त्र से और विविध प्रकार के आभूषण से आभूषित करते हैं, क्योंकि विरोचनसंप्रदायवाले मानते हैं कि इस प्रकार शवसंस्कार करने से मरे हुए का जीव स्वर्गलोक को पहुँचता है और वहाँ सुखपूर्वक रहता है ॥ ५ ॥

इत्यष्टमः खण्डः ।

अथाष्टमाध्यायस्य नवमः खण्डः ।

मूलम् ।

अथ हेन्द्रोऽप्राप्यैव देवानेतद्भयं ददर्श यथैव खल्वयमस्मिञ्छरीरे साध्वलङ्कृते साध्वलङ्कृतो भवति सुवसने सुवसनः परिष्कृते परिष्कृत एवमेवायमस्मिन्नन्धेऽन्धो भवति स्रामे स्रामः परिवृक्णे परिवृक्णोऽस्यैव शरीरस्य नाशमन्वेष नश्यति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, ह, इन्द्रः, अप्राप्य, एव, देवान्, एतत्, भयम्, ददर्श, यथा, एव, खलु, अयम्, अस्मिन्, शरीरे, साधु, अलङ्कृते, साधु अलङ्कृतः, भवति, सुवसने, सुवसनः, परिष्कृते, परिष्कृतः, एवम्, एव, अयम्, अस्मिन्, अन्धे, अन्धः, भवति, स्रामे, स्रामः, परिवृक्णे, परिवृक्णः, अस्य, एव, शरीरस्य, नाशम्, अनु, एषः, नश्यति ॥

अन्वयः	पदार्थ
अथ	विरोचन के चले जाने पर
ह	प्रसिद्ध
इन्द्रः	इन्द्र
देवान्	देवताओं के पास
अप्राप्य	न पहुँच कर मार्ग में
एव	ही
+ स्मृत्वा	गुरुवचनस्मरण करके
एतत्	इस
भयम्	देहात्मक ज्ञानजन्य भय को
ददर्श	देखता भया
+ च	और
+ उवाच	कहता भया कि
खलु	निश्चय करके
यथा	जैसे
एव	ही
अस्मिन्	इस
शरीरे	शीर्यमाण शरीर के
साधु	अच्छी प्रकार
अलंकृते	अलंकृत
+ सति	होने पर
अयम्	वह छायात्मा भी
साधु	अच्छी तरह
अलंकृतः	अलंकृत
भवति	होता है
सुवसने	सुंदर वस्त्र पहिरने पर

अन्वयः	पदार्थ
सुवसनः	वह भी सुन्दर वस्त्र-वाला होता है
परिष्कृते	स्वच्छ
+ सति	होने पर
परिष्कृतः	वह भी स्वच्छ दिखाई देता है
एवम् एव	इसी प्रकार
अयम्	यह छायात्मा
अस्मिन्	इस शरीर के
अन्धे	अन्धा
+ सति	होने पर
अन्धः	अंधा
भवति	होता है
स्रामे	काना
+ सति	होने पर
स्रामः	काना
+ भवति	होता है
परिवृक्णे	छिन्नहस्त
+ सति	होने पर
परिवृक्णः	छिन्नहस्त होता है
+ च	और
अस्य	इस
शरीरस्य	शरीर के
नाशम्	नाश के
अनु	पीछे
एषः	यह छायात्मा
एव	भी
नश्यति	नष्ट हो जाता है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! ब्रह्मा से उपदेश पाकर इन्द्र और विरोचन दोनों अपने-

अपने स्थान को चले । विरोचन विना विचार किए हुए असुरों के पास पहुँच गया, पर इन्द्र राह में सोचने लगा कि जो उपदेश प्रजापति ने हम दोनों को किया है वह कहाँ तक ठीक है और अपने मन में कहता भया कि जैसे शरीर के अलंकृत होने पर छायात्मा भी अलंकृत दिखाई देता है, सुन्दर वस्त्र पहिरने पर वह भी सुंदर वस्त्र पहिने दिखाई देता है और स्वच्छ होने पर स्वच्छ दिखाई देता है और शरीर अंधा होने पर अंधा दिखाई देता है, काना होने पर काना दिखाई देता है, छिन्नहस्त होने पर छिन्नहस्त दिखाई देता है, जब यह शरीर नष्ट हो जाता है तब छायात्मा भी नष्ट हो जाता है । पर मैंने सुना है कि आत्मा अविनाशी, अंगभंगरहित है, इस कारण शरीर की छाया, जो जल में दिखाई देती है वह, आत्मा नहीं हो सक्ती है, आत्मा कोई और ही वस्तु है ॥ १ ॥

मूलम् ।

स समित्पाणिः पुनरेयाय तँ ह प्रजापतिरुवाच मघवन्यच्छान्तहृदयः प्राव्राजीः सार्द्धं विरोचनेन किमिच्छन्पुनरागम इति स होवाच यथैव खल्वयं भगवोऽस्मिञ्छरीरे साध्वलंकृते साध्वलंकृतो भवति सुवसने सुवसनः परिष्कृते परिष्कृत एवमेवायमस्मिन्नन्धेऽन्धो भवति स्रामे स्रामः परिवृक्णे परिवृक्णोऽस्यैव शरीरस्य नाशमन्वेष नश्यति नाहमत्र भोग्यं पश्यामीति ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

सः, समित्पाणिः, पुनः, एयाय, तम्, ह, प्रजापतिः, उवाच, मघवन्, यत्, शान्तहृदयः, प्राव्राजीः, सार्द्धम्, विरोचनेन, किम्, इच्छन्, पुनः, आगमः, इति, सः, ह, उवाच, यथा, एव, खलु, अयम्, भगवः, अस्मिन्, शरीरे, साधु, अलंकृते, साधु, अलंकृतः,

भवति, सुवसने, सुवसनः, परिष्कृते, परिष्कृतः, एवम्, एव, अयम्, अस्मिन्, अन्धे, अन्धः, भवति, स्रामे, स्रामः, परिवृक्णे, परिवृक्णः, अस्य, एव, शरीरस्य, नाशम्, अनु, एषः, नश्यति, न, अहम्, अत्र, भोग्यम्, पश्यामि, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
सः	वह जिज्ञासु इन्द्र
समित्पाणिः	समिधा हाथ में लिये
पुनः	फिर
एयाय	प्रजापति के पास गया
ह	तब
प्रजापतिः	प्रजापति
तम्	उस इन्द्र से
उवाच	पूछता भया कि
मघवन्	हे इन्द्र !
यत्	जब
शान्तहृदयः	तू शान्तचित्त
+ सन्	होता हुआ
विरोचनेन	विरोचन के
सार्धम्	साथ
प्राव्राजीः	चला गया तो
पुनः	फिर
किम्	क्या
इच्छन्	इच्छा करता हुआ
आगमः	लौट आया
+ तदा	तब
इति	आगे कहे हुए प्रकार
सः	वह इन्द्र

अन्वयः	पदार्थ
उवाच ह	कहता भया कि
यथा	जैसे
अयम्	यह छायात्मा
खलु	निश्चय करके
भगवः	हे भगवन् !
अस्मिन्	इस
शरीरे	शरीर के
साधु	अच्छी प्रकार
अलंकृते	अलंकृत
+ सति	होने पर
साधु	अच्छी तरह
अलंकृतः	अलंकृत
भवति	होता है
सुवसने	सुन्दर वस्त्र पहनने पर
सुवसनः	सुन्दर वस्त्रवाला होता है
परिष्कृते	स्वच्छ
+ सति	होने पर
परिष्कृतः	स्वच्छ होता है
एवम् एव	इसी तरह
अयम्	यह छायात्मा
एव	भी
अस्मिन्	इस
+ शरीरे	शरीर के

अन्धे=अन्धे
+ सति=होने पर
अन्धः=अन्धा
भवति=होता है
स्रामे=काने
+ सति=होने पर
स्रामः=काना होता है
परिवृक्णे=छिन्नहस्त
+ सति=होने पर
परिवृक्णः=छिन्नहस्त होता है
अस्य=इस ही
शरीरस्य=शरीर के
नाशम्=नाश के
अनु=पीछे
एषः=यह छायात्मा
एव=भी
नश्यति=नष्ट होता है
अत्र=इस देहात्मज्ञान के विषय में
+ तस्मात्=इसलिये
अहम्=मैं
भोग्यम्=कोई फल
न=नहीं
पश्यामि=देखता हूँ
इति=इस प्रकार इन्द्र ने कहा

भावार्थ ।

हे सौम्य ! इन्द्र ऐसा सोचता हुआ हाथ में समिध लिये हुए, प्रजापति के पास फिर वापस आया । तब प्रजापति ने उसको देखकर पूछा कि हे इन्द्र ! तू शान्तचित्त होता हुआ विरोचन के साथ चला गया था फिर क्या इच्छा करके मेरे पास लौट आया ? तब इन्द्र ने कहा, हे भगवन् ! जैसे यह छायात्मा इस शरीर के अलंकृत होने पर अलंकृत होता है, सुन्दर वस्त्र पहिनने पर सुन्दर वस्त्रवाला होता है, स्वच्छ होने पर स्वच्छ होता है, शरीर के अन्धे होने पर अन्धा होता है, काना होने पर काना होता है, छिन्नहस्त होने पर छिन्नहस्त होता है और नाश होने पर नाश हो जाता है । इसलिये उस बिषे जो आपने मुझको उपदेश किया है उसमें कोई फल मैं नहीं देखता हूँ ॥ २ ॥

मूलम् ।

एवमेवैष मघवन्निति होवाचैतं त्वेव ते भूयोऽनुव्या-

ख्यास्यामि वसापराणि द्वात्रिंशतं वर्षाणीति स हाप-राणि द्वात्रिंशतं वर्षाण्युवास तस्मै होवाच ॥ ३ ॥

इति नवमः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

एवम्, एव, एषः, मघवन्, इति, ह, उवाच, एतम्, तु, एव, ते, भूयः, अनुव्याख्यास्यामि, वस, अपराणि, द्वात्रिंशतम्, वर्षाणि, इति, सः, ह, अपराणि, द्वात्रिंशतम्, वर्षाणि, उवास, तस्मै, ह, उवाच ॥

अन्वयः	पदार्थ
मघवन्	हे इन्द्र !
एवम् एव	ऐसा ही
एषः	यह आत्मा है
इति	ऐसा कहकर
तु	फिर
उवाच	प्रजापति कहता भया कि
+ इन्द्र	हे इन्द्र !
एतम् एव	इसी छायात्मा को
ते	तेरे लिये
भूयः	फिर
ह	भली प्रकार
अनुव्याख्यास्यामि	मैं कहूँगा
+ परन्तु	परन्तु
अपराणि	फिर भी
द्वात्रिंशतम्	बत्तीस
वर्षाणि	वर्ष तक
+ त्वम्	तू
वस	मेरे निकट वास कर
इति	तब
सः ह	वह इन्द्र श्रद्धापूर्वक
अपराणि	दुबारा
द्वात्रिंशतम्	बत्तीस
वर्षाणि	वर्ष तक
उवास	प्रजापति के समीप ब्रह्मचर्य के लिये वास करता भया
ह	तब
+ प्रजापतिः	प्रजापति
तस्मै	उस इन्द्र को
उवाच	उपदेश करता भया

भावार्थ ।

हे सौम्य ! ऐसा सुनकर प्रजापति ने कहा कि हे इन्द्र ! ऐसा ही यह आत्मा है, मैं तेरे लिये उस आत्मा का उपदेश फिर करूँगा, परन्तु तुझको मेरे पास फिर बत्तीस वर्ष तक रहना होगा । तब वह इन्द्र

श्रद्धापूर्वक फिर बत्तीस वर्ष तक प्रजापति के पास रहा और तब प्रजापति ने इन्द्र को दूसरी बार आत्मा का उपदेश किया ॥ ३ ॥

इति नवमः खण्डः ।

अथाष्टमाध्यायस्य दशमः खण्डः ।

मूलम् ।

य एष स्वप्ने महीयमानश्चरत्येष आत्मेति होवाचैतदमृतमभयमेतद्ब्रह्मेति स ह शान्तहृदयः प्रवव्राज स हाऽप्राप्यैव देवानेतद्भयं ददर्श तद्यद्यपीदꣳ शरीरमन्धं भवत्यनन्धः स भवति यदि स्राममस्रामो नैवैषोऽस्य दोषेण दुष्यति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

यः, एषः, स्वप्ने, महीयमानः, चरति, एषः, आत्मा, इति, ह, उवाच, एतत्, अमृतम्, अभयम्, एतत्, ब्रह्म, इति, सः, ह, शान्तहृदयः, प्रवव्राज, सः, ह, अप्राप्य, एव, देवान्, एतत्, भयम्, ददर्श, तत्, यदि, अपि, इदम, शरीरम्, अन्धम्. भवति, अनन्धः, सः, भवति, यदि, स्रामम्, अस्रामः, न, एव, एषः, अस्य, दोषेण, दुष्यति॥

अन्वयः	पदार्थ
एषः	यह
यः	जो
स्वप्ने	स्वप्न विषे
महीयमानः	स्त्री पुत्रादि करके पूज्य होता हुआ
चरति	विचरता है
एषः	वही यह
आत्मा	आत्मा है
एतत्	यही
अमृतम्	अमर है
एतत्	यही
अभयम्	अभय है
ब्रह्म	यही सर्वत्र व्यापक है
इति	ऐसा
ह	जब
उवाच	प्रजापति ने कहा
इति	तब

सः ह=वह इन्द्र निश्चय करके
शान्तहृदयः=शान्तचित्त
+ भूत्वा=होकर
प्रवव्राज=प्रजापति के पास से जाता भया
+ परम्=पर
सः ह=वह
देवान्=देवों के पास
अप्राप्य एव=न पहुँचकर
एतत्=आगे कहे हुए इस
भयम्=भय को
ददर्श=देखता भया अर्थात् विचारता भया कि
यद्यपि=अगर
इदम्=यह
शरीरम्=शरीर
अन्धम्=अन्धा है
तत्=तो
सः=वह आत्मा
अनन्धः=अन्धा नहीं
भवति=होता है
यदि=अगर
स्रामम्=यह शरीर काना है
+ परम्=तो
अस्रामः=वह आत्मा काना नहीं
भवति=होता है
एषः=यह आत्मा
अस्य=इस शरीर के
दोषेण=दोष से
न एव=नहीं
दुष्यति=दूषित होता है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! जब प्रजापति ने कहा, हे इन्द्र ! जो स्वप्न बिषे स्त्री पुत्रादिकों करके पूज्य होता हुआ विचरता है वही यह आत्मा है, जिसको तू जानने की इच्छा करता है । यही अमर है, यही अभय है, यही सर्वत्र व्यापक है । तब ऐसा सुनकर वह इन्द्र शान्तचित्त होता हुआ प्रजापति के पास से अपने देवगणों की ओर चलता भया, पर वहाँ न पहुँचकर राह में ही विचारता भया कि जब यह शरीर अन्धा दिखाई देता है तब स्वप्नात्मा अन्धा नहीं दिखाई देता है, जब यह शरीर काना दिखाई देता है तब स्वप्नात्मा काना नहीं दिखाई देता है । जो जो दोष जाग्रत् शरीर के अन्दर दिखाई देता है वह स्वप्नात्मा में दिखाई नहीं देता है ॥ १ ॥

मूलम् ।

न वधेनास्य हन्यते नास्य स्राम्येण स्रामो घ्नन्ति त्वेवैनं विच्छादयन्तीवाप्रियवेत्तेव भवत्यपि रोदितीव नाहमत्र भोग्यं पश्यामीति ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

न, वधेन, अस्य, हन्यते, न, अस्य, स्राम्येण, स्रामः, घ्नन्ति, तु, एव, एनम्, विच्छादयन्ति, इव, अप्रियवेत्ता, इव, भवति, अपि, रोदिति, इव, न, अहम्, अत्र, भोग्यम्, पश्यामि, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
अस्य	इस शरीर के
वधेन	वध से
+ अयम्	यह स्वप्नात्मा
न हन्यते	हत नहीं होता है
अस्य	इस शरीर के
स्राम्येण	काना होने से
न स्रामः	वह काना नहीं होता है
तु	परन्तु
+ इति प्रतीयते	ऐसा प्रतीत होता है कि
एनम्	इसको
एव	मानो
+ केचन	कोई
घ्नन्ति	मार रहे हैं
इव	मानो
+ एनम्	इसको
विच्छादयन्ति	कोई काट रहे हैं
इव	मानो
+ अयम्	यह
अप्रियवेत्ता	दुःखी
भवति	हो रहा है
अपि	और
इव	मानो
रोदिति	रोता है
अत्र	इसके ऐसी दशा में
+ भगवन्	हे भगवन्!
अहम्	मैं
भोग्यम्	कोई फल
न	नहीं
पश्यामि	देखता हूँ
इति	ऐसा विचार करके

भावार्थ ।

हे सौम्य ! इन्द्र फिर भी विचारता है कि इस शरीर के वध से स्वप्नात्मा हत नहीं होता है, इस शरीर के काना होने से स्वप्नात्मा

काना नहीं होता है, परन्तु ऐसा अवश्य प्रतीत होता है कि मानो कोई इसको स्वप्न में मार रहे हैं, मानो इसको कोई काट रहे हैं, मानो यह अति दुःखी हो रहा है, मानो यह रो रहा है । इसके ऐसी दशा में हे भगवन् ! मैं कोई फल नहीं देखता हूँ अर्थात् मेरा कार्य सिद्ध नहीं होता है ॥ २ ॥

मूलम् ।

स समित्पाणिः पुनरेयाय तꣳ ह प्रजापतिरुवाच मघवन् यच्छान्तहृदयः प्राव्राजीः किमिच्छन्पुनरागम इति स होवाच तद्यद्यपीदं भगवः शरीरमन्धं भवत्यनन्धः स भवति यदि स्राममस्रामो नैवैषोऽस्य दोषेण दुष्यति ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

सः, समित्पाणिः, पुनः, एयाय, तम्, ह, प्रजापतिः, उवाच, मघवन्, यत्, शान्तहृदयः, प्राव्राजीः, किम्, इच्छन्, पुनः, आगमः, इति, सः, ह, उवाच, तत्, यदि, अपि, इदम्, भगवः, शरीरम्, अन्धम्, भवति, अनन्धः, सः, भवति, यदि, स्रामम्, अस्रामः, न, एव, एषः, अस्य, दोषेण, दुष्यति ॥

अन्वयः	पदार्थ
सः	वह इन्द्र
समित्पाणिः	समिधा हाथ में लेकर
पुनः	फिर
एयाय	प्रजापति के पास गया
ह	तब
प्रजापतिः	प्रजापति
तम्	उस इन्द्र से
उवाच	कहता भया कि
मघवन्	हे इन्द्र !
यत्	जब
शान्तहृदयः	तू शान्तहृदय
+ सन्	होता हुआ
प्राव्राजीः	चला गया था तो
पुनः	फिर
किम्	क्या
इच्छन्	इच्छा करता हुआ

आगमः=मेरे पास आया
इति=ऐसा सुनकर
सः=वह इन्द्र
उवाच=उत्तर देता भया कि
भगवः=हे भगवन्!
यदि=जब
इदम्=यह
शरीरम्=शरीर
अन्धम्=अन्धा
भवति=होता है
तत्=तब
सः=वह स्वप्नदर्शी आत्मा
अनन्धः=अन्धा नहीं
भवति=होता है
यदि=जब
स्रामम्=यह शरीर काना होता है
अपि=तब
अस्रामः=स्वप्नद्रष्टा काना नहीं होता है
ह=स्पष्ट है कि
एषः=यह स्वप्नात्मा
अस्य=शरीर के
दोषेण=दोष करके
एव=कभी
न=नहीं
दुष्यति=दूषित होता है

भावार्थ।

हे सौम्य! ऐसा विचार करके वह इन्द्र हाथ में समिधा लिये हुए फिर प्रजापति के पास गया। प्रजापति उसको देखकर कहता भया कि जब तू शान्तचित्त होता हुआ चला गया, तो फिर क्या इच्छा करके मेरे पास लौट आया? तब इन्द्र ने उत्तर दिया कि हे भगवन्! मैं देखता हूँ कि जब ये जाग्रत्वाला शरीर अन्धा होता है तब स्वप्नवाला शरीर अन्धा नहीं दिखाई देता है और जब जाग्रत्वाला शरीर काना होता है तब स्वप्नात्मा काना नहीं होता है। इससे स्पष्ट है कि स्वप्नात्मा जाग्रत् शरीर के दोष से दूषित नहीं होता है॥ २॥

मूलम्।

न वधेनास्य हन्यते नाऽस्य स्राम्येण स्रामो घ्नन्ति त्वेवैनं विच्छादयन्तीवाप्रियवेत्तेव भवत्यपि रोदितीव नाहमत्र भोग्यं पश्यामीत्येवमेवैष मघवन्निति होवाचैतं त्वेव ते भूयोऽनुव्याख्यास्यामि वसाऽपराणि द्वात्रिंशं-

शतं वर्षाणीति स हाऽपराणि द्वात्रिंशतं वर्षाण्युवास तस्मै होवाच ॥ ४ ॥

इति दशमः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

न, वधेन, अस्य, हन्यते, न, अस्य, स्राम्येण, स्रामः, घ्नन्ति, तु, एव, एनम्, विच्छादयन्ति, इव, अप्रियवेत्ता, इव, भवति, अपि, रोदिति, इव, न, अहम्, अत्र, भोग्यम्, पश्यामि, इति, एवम्, एव, एषः, मघवन्, इति, ह, उवाच, एतम्, तु, एव, ते, भूयः, अनुव्याख्यास्यामि, वस, अपराणि, द्वात्रिंशतम्, वर्षाणि, इति, सः, ह, अपराणि, द्वात्रिंशतम्, वर्षाणि, उवास, तस्मै, ह, उवाच ॥

अन्वयः	पदार्थ
अस्य=इस शरीर के	
वधेन=वध से	
+ सः=वह स्वप्नात्मा	
न=नहीं	
हन्यते=हत होता है	
अस्य=इसके	
स्राम्येण=काना होने से	
स्रामः=वह काना	
न=नहीं होता है	
तु=परन्तु	
+ इति प्रतीयते=ऐसा प्रतीत होता है कि	
एव=मानो	
एनम्=इस स्वप्नात्मा को	
+ केचन=कोई	
घ्नन्ति=मार रहे हैं	
इव=मानो	

अन्वयः	पदार्थ
+ केचन=कोई	
विच्छादयन्ति=काट रहे हैं	
इव=मानो	
+ सः=वह आत्मा	
अप्रियवेत्ता=दुःखी	
भवति=हो रहा है	
अपि=और	
इव=मानो	
+ सः=वह	
रोदिति=रोता है	
अत्र=ऐसी दशा में	
+ भगवः=हे भगवन् !	
अहम्=मैं	
भोग्यम्=कोई फल	
न=नहीं	
पश्यामि=देखता हूँ	
इति=इस प्रकार इन्द्र के कहने पर	

ह=निश्चय करके
+ प्रजापतिः=प्रजापति ब्रह्मा
इति=ऐसा
उवाच=कहता भया कि
मघवन्=हे इन्द्र !
एवम् एव=इसी तरह का
एषः=यह स्वप्नात्मा है
तु=परन्तु
एव=निश्चय करके
एतम्=इस आत्मा को
+ अहम्=मैं
ते=तेरे लिये
भूयः=फिर
अनुव्याख्यास्यामि=कहूँगा
अपराणि=फिर भी
द्वात्रिंशतम्=बत्तीस
वर्षाणि=वर्ष तक
वस=मेरे पास वास कर
इति=तब
सः=वह इन्द्र
ह=निश्चय करके
अपराणि=फिर
द्वात्रिंशतम्=बत्तीस
वर्षाणि=वर्ष तक
उवास=रहता भया
तस्मै=उस इन्द्र से
ह=स्पष्ट
उवाच=ब्रह्मा कहता भया

भावार्थ ।

हे सौम्य ! इन्द्र कहता है कि इस शरीर के वध से वह स्वप्नात्मा हत नहीं होता है और न इसके काना होने से वह काना होता है, परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि मानो कोई इस स्वप्नात्मा को मार रहे हैं, मानो कोई काट रहे हैं, मानो वह स्वप्नात्मा दुःखी हो रहा है और रो रहा है, ऐसी हालत में हे भगवन् ! मैं कोई फल नहीं देखता हूँ अर्थात् मेरा कार्य सिद्ध नहीं हो सक्ता है । ऐसा सुनकर ब्रह्मा कहता भया कि हे इन्द्र ! जैसा तू कहता है वैसे ही यह स्वप्नात्मा है, परन्तु मैं तेरे लिये इस आत्मा को फिर कहूँगा; तू बत्तीस वर्ष तक मेरे पास रहकर फिर तप कर । तब वह इन्द्र फिर बत्तीस वर्ष रहता भया और ब्रह्मा उस इन्द्र को उपदेश करता भया ॥ ४ ॥

इति दशमः खण्डः ।

अथाष्टमाध्यायस्यैकादशः खण्डः ।

मूलम् ।

तद्यत्रैतत्सुप्तः समस्तः संप्रसन्नः स्वप्नं न विजानात्येष आत्मेति होवाचैतदमृतमभयमेतद्ब्रह्मेति स ह शान्तहृदयः प्रवव्राज स हाप्राप्यैव देवानेतद्भयं ददर्श नाह खल्वयमेवꣳ संप्रत्यात्मानं जानात्ययमहमस्मीति नो एवेमानि भूतानि विनाशमेवापीतो भवति नाहमत्र भोग्यं पश्यामीति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

तत्, यत्र, एतत्, सुप्तः, समस्तः, संप्रसन्नः, स्वप्नम्, न, विजानाति, एषः, आत्मा, इति, ह, उवाच, एतत्, अमृतम्, अभयम्, एतत्, ब्रह्म, इति, सः, ह, शान्तहृदयः, प्रवव्राज, सः, ह, अप्राप्य, एव, देवान्, एतत्, भयम्, ददर्श, नाह, खलु, अयम्, एवं, संप्रति, आत्मानम्, जानाति, अयम्, अहम्, अस्मि, इति, नो, एव, इमानि, भूतानि, विनाशम्, एव, अपीतः, भवति, न, अहम्, अत्र, भोग्यम्, पश्यामि, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
तत्	सो
एतत्	यह आत्मा
यत्र	जिस सुषुप्ति अवस्था में
सुप्तः	सोया हुआ
समस्तः	सम्यक् प्रकार
संप्रसन्नः	निजानन्द का अनुभव करता हुआ
स्वप्नम्	स्वप्न को
न	नहीं
विजानाति	देखता है
एषः	यही
आत्मा	(पापरहित) आत्मा है
एतत्	यही
अमृतम्	अमर है
+ एतत्	यही
अभयम्	अभय है
एतत्	यही
ब्रह्म	व्यापक ब्रह्म है
इति ह	ऐसा निश्चय करके जब
+ प्रजापतिः	ब्रह्मा

उवाच=कहता भया
+ तदा=तब
इति=ऐसा सुनकर
सः=वह इन्द्र
ह=भली प्रकार
शान्तहृदयः=शान्तहृदय होता हुआ
प्रवव्राज=चला गया
ह=पर
सः=वह
देवान्=देवताओं के पास
अप्राप्य=न जाकर राह में
एव=ही
एतत्=आगे कहे हुए
भयम्=भय अर्थात् दोष को
ददर्श=देखता भया कि
+ यः=जो
अयम्=यह सुषुप्तात्मा है
अयम् एव=वही
अहम्=मैं
अस्मि=हूँ
एवम्=इस प्रकार
संप्रति=अच्छी तरह से
आत्मानम्=अपने को
खलु=निश्चयपूर्वक
+ पुरुषः=पुरुष
नाह=नहीं
जानाति=जानता है
+ च=और
इमानि=इन
भूतानि=प्राणियों को भी
नो=नहीं
+ जानाति=जानता है
+ तस्मात्=इस कारण
+ अयम्=यह आत्मा
एव=मानो
विनाशम्=विनाश को
अपीतः=प्राप्त
भवति=है
अत्र=ऐसी दोष युक्त अवस्था में
अहम्=मैं
भोग्यम्=कोई फल गुरु के उपदेश विषे
न=नहीं
पश्यामि=देखता हूँ
इति=इस प्रकार संशय युक्त होता हुआ इन्द्र ब्रह्मा के पास लौट आया

भावार्थ ।

हे सौम्य ! ब्रह्मा ने इन्द्र से कहा कि जब सुषुप्ति में सोया हुआ पुरुष अपने आनन्द को अनुभव करता है और स्वप्न को नहीं देखता है वही पापरहित आत्मा है, यही अमर है, यही अभय है और यही व्यापक ब्रह्म है । ऐसा सुनकर वह इन्द्र भली प्रकार शान्तहृदय होता

हुआ ब्रह्मा के पास से चला गया, परन्तु रास्ते में विचारने लगा और आगे कहे हुए दोष को इस प्रकार देखता भया कि जो सुषुप्त आत्मा है वही मैं हूँ, ऐसा मैं अपने को सुषुप्ति अवस्था में निश्चयपूर्वक नहीं जानता हूँ और न इन स्थित हुए भूतों को वहाँ पर जानता हूँ, इसलिये यह आत्मा ऐसा मालूम होता है कि मानो यह नष्ट हो गया है, ऐसी दोषयुक्त अवस्था में प्रजापति के उपदेश बिषे कोई फल नहीं देखता हूँ, इस प्रकार संदिग्ध होता हुआ इन्द्र देवताओं के पास न जाकर ब्रह्मा के पास लौट आया ॥ १ ॥

मूलम् ।

स समित्पाणिः पुनरेयाय तꣳ ह प्रजापतिरुवाच मघवन्यच्छान्तहृदयः प्राव्राजीः किमिच्छन्पुनरागम इति स होवाच नाह खल्वयं भगव एवꣳ संप्रत्यात्मानं जानात्ययमहमस्मीति नो एवेमानि भूतानि विनाशमेवापीतो भवति नाहमत्र भोग्यं पश्यामीति ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

सः, समित्पाणिः, पुनः, एयाय, तम्, ह, प्रजापतिः, उवाच, मघवन्, यत्, शान्तहृदयः, प्राव्राजीः, किम्, इच्छन्, पुनः, आगमः, इति, सः, ह, उवाच, नाह, खलु, अयम्, भगवः, एवम्, संप्रति, आत्मानम्, जानाति, अयम्, अहम्, अस्मि, इति, नो, एव, इमानि, भूतानि, विनाशम्, एव, अपीतः, भवति, न, अहम्, अत्र, भोग्यम्, पश्यामि, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
सः	वह इन्द्र
समित्पाणिः	समिधा हाथ में लेकर
पुनः	फिर
एयाय	प्रजापति के पास गया

ह=तब
प्रजापतिः=प्रजापति
तम्=उससे
उवाच=बोला कि
मघवन्=हे इन्द्र !
यत्=जो तू
शान्तहृदयः=शान्तचित्त
+ सन्=होता हुआ
प्राव्राजीः=चला गया था
पुनः=फिर
किम्=क्या
इच्छन्=इच्छा करता हुआ
आगमः=आया है
इति=ऐसा सुनकर
सः ह=वह इन्द्र
उवाच=कहता भया कि
भगवः=हे भगवन् !
+ यः=जो
अयम्=यह सुपुप्तात्मा है
अयम्=वही
अहम्=मैं
अस्मि=हूँ
एवम्=इस प्रकार
+ सः=वह सुपुप्तात्मा

आत्मानम्=अपने को
खलु=निश्चय करके
संप्रति=अच्छी तरह
नाह=नहीं
जानाति=जानता है
+ च=और
न=न
इमानि=इन
भूतानि=प्राणियों को ही
जानाति=जानता है
अतः=इसलिये
एव=मानो
+ सः=वह सुपुप्तात्मा
विनाशम्=नाश को
अपीतः=प्राप्त
भवति=है
अत्र=इस अवस्था में
अहम्=मैं
+ फलम्=कोई फल इस उपदेश विषे
न=नहीं
पश्यामि=देखता हूँ
इति=ऐसा इन्द्र ने कहा

भावार्थ ।

हे सौम्य ! जब वह इन्द्र हाथ में समिधा लिये हुए फिर प्रजापति के पास आया, तब प्रजापति ने उससे पूछा कि हे इन्द्र ! तू शान्तचित्त होता हुआ चला गया था, अब फिर क्या इच्छा करके मेरे पास लौट आया है? वह इन्द्र ऐसा सुनकर कहता भया कि हे भगवन् ! जो यह सुपुप्तात्मा है वही मैं हूँ, इस प्रकार वह सुपुप्ति अवस्था

को प्राप्त हुआ आत्मा नहीं जानता है और न सामने स्थित हुए प्राणियों को जानता है, इसलिये सुपुप्तात्मा नष्ट हुआ-सा मालूम होता है। जब आत्मा का ऐसा हाल है तब मैं कोई फल आपके उपदेश में नहीं देखता हूँ ॥ २ ॥

मूलम् ।

एवमेवैष मघवन्निति होवाचैतं त्वेव ते भूयोऽनुव्याख्यास्यामि नो एवान्यत्रैतस्माद्वसापराणि पञ्च वर्षाणीति स हापराणि पञ्च वर्षाण्युवास तान्येकशतꣳ संपेदुरेतत्तद्यदाहुरेकशतꣳ ह वै वर्षाणि मघवान् प्रजापतौ ब्रह्मचर्यमुवास तस्मै होवाच ॥ ३ ॥

इत्येकादशः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

एवम्, एव, एषः, मघवन्, इति, ह, उवाच, एतम्, तु, एव, ते, भूयः, अनुव्याख्यास्यामि, नो, एव, अन्यत्र, एतस्मात्, वस, अपराणि, पञ्च, वर्षाणि, इति, सः, ह, अपराणि, पञ्च, वर्षाणि, उवास, तानि, एकशतम्, संपेदुः, एतत्, तत्, यत्, आहुः, एकशतम्, ह, वै, वर्षाणि, मघवान्, प्रजापतौ, ब्रह्मचर्यम्, उवास, तस्मै, ह, उवाच ॥

अन्वयः	पदार्थ
मघवन्	हे इन्द्र !
एषः	यह आत्मा
एवम् एव	ऐसा ही है जैसा तैंने कहा है
इति	इस प्रकार
ह	स्पष्ट
उवाच	ब्रह्मा कहता भया
तु	परन्तु
ते	तेरे लिये
एतम्	इसी आत्मा को
एव	निश्चय करके
भूयः	फिर
अनुव्याख्यास्यामि	मैं कहूँगा
एतस्मात्	इस कहे हुए सुपुप्तात्मा से
अन्यत्र	पृथक्
+ आत्मा	कोई दूसरा आत्मा

नो=नहीं है
+ त्वम्=तू
अपराणि=और
पञ्च=पाँच
वर्षाणि=वर्ष
वस=मेरे पास रह
इति=ऐसा कहे जाने पर
सः=वह इन्द्र
अपराणि=और
पञ्च=पाँच
वर्षाणि=वर्ष
उवास=प्रजापति के पास वास करता भया
+ च=और
यत्=जब
मघवान्=इन्द्र
एकशतम्=एक सौ एक
वर्षाणि=वर्षतक
प्रजापतौ=प्रजापति के पास
ह वै=निश्चय करके
ब्रह्मचर्यम्=ब्रह्मचर्य के निमित्त
उवास=वास करता भया
+ च=और
तानि=वे
एकशतम्=एक सौ एक वर्ष
संपेदुः=व्यतीत हुए
तत्=तब
तस्मै=उस इन्द्र के लिये
एतत्=इस उपदेश को
ह=साफ़ साफ़
+ प्रजापतिः=ब्रह्मा
एव=निश्चय के साथ
उवाच=कहता भया
+ इति=इसी प्रकार
+ शिष्टाः=यथार्थ वक्ता
आहुः=कहते हैं

भावार्थ ।

हे सौम्य ! ब्रह्मा कहता है कि हे इन्द्र ! जैसा तैंने कहा है वैसा ही यह आत्मा है, परन्तु मैं तेरे लिये इसी आत्मा को फिर से कहूँगा, सुन । इस कहे हुए सुषुप्ति आत्मा से पृथक् कोई दूसरा आत्मा नहीं है, तू पाँच वर्ष और मेरे पास ब्रह्मचर्य व्रत करके रह । जब ऐसा कहा गया तब वह इन्द्र फिर पाँच वर्ष रहता भया और जब इन्द्र एक सौ एक वर्ष प्रजापति के पास ब्रह्मचर्य व्रत करते हुए रहा और जब एक सौ एक वर्ष व्यतीत हो गए, तब उस इन्द्र को ब्रह्मा इस आत्मविषयक उपदेश को साफ़ साफ़ कहता भया । इस प्रकार यथार्थ-वक्ता कहते हैं ॥ ३ ॥

इत्येकादशः खण्डः ।

अथाष्टमाध्यायस्य द्वादशः खण्डः ।

मूलम् ।

मघवन्मर्त्यं वा इदꣳ शरीरमात्तं मृत्युना तदस्यामृतस्याशरीरस्यात्मनोऽधिष्ठानमात्तो वै सशरीरः प्रियाप्रियाभ्यां न वै सशरीरस्य सतः प्रियाप्रिययोरपहृतिरस्त्यशरीरं वाव सन्तं न प्रियाप्रिये स्पृशतः ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

मघवन्, मर्त्यम्, वा, इदम्, शरीरम्, आत्तम्, मृत्युना, तत्, अस्य, अमृतस्य, अशरीरस्य, आत्मनः, अधिष्ठानम्, आत्तः, वै, सशरीरः, प्रियाप्रियाभ्याम्, न, वै, सशरीरस्य, सतः, प्रियाप्रिययोः, अपहृतिः, अस्ति, अशरीरम्, वाव, सन्तम्, न, प्रियाप्रिये, स्पृशतः ॥

अन्वयः	पदार्थ
मघवन्	हे इन्द्र !
इदम्	यह
शरीरम्	शरीर
मर्त्यम्	मरणधर्मवाला है
वा	और
मृत्युना	मृत्यु करके
आत्तम्	गृहीत है
तत्	वह शरीर
अस्य	इस
अमृतस्य	अमर
अशरीरस्य	शरीररहित
आत्मनः	जीवात्मा के
अधिष्ठानम्	भोगने का अधिष्ठान है
+ च	और
वै	निश्चय करके
सशरीरः	शरीरसम्बन्धी
+ आत्मा	आत्मा
प्रियाप्रियाभ्याम्	सुख दुःख करके
आत्तः	गृहीत है
+ हि	क्योंकि
वै	निश्चय करके
सशरीरस्य सतः	शरीरोपाधिविशिष्ट विद्यमान आत्मा के
प्रियाप्रिययोः	सुख दुःख का
अपहृतिः	नाश
न	नहीं
अस्ति	होता है
+ च	और
अशरीरम्	अशरीरी
सन्तम्	आत्मा अर्थात् ब्रह्म को

प्रियाप्रिये=सुख दुःख
वाव=कभी
न=नहीं
स्पृशतः=स्पर्श करते हैं

भावार्थ ।

हे सौम्य ! जब सत्चित् आनन्दरूप ब्रह्म, सर्वाधिष्ठान, निराकार और निरवयव में जीवों के अदृष्ट फल देने की फुरना होती है तब शुद्ध विमल उस ब्रह्म में इच्छा प्रकट हो आती है। उसी इच्छा को माया भी कहते हैं। जब ब्रह्म का मेल माया के साथ होता है तब ब्रह्म की संज्ञा ईश्वर कहलाती है अर्थात् मायाविशिष्ट ब्रह्म का नाम ईश्वर है, यही सृष्टि का कर्ता कहा जाता है। शुद्ध ब्रह्मसृष्टि का कर्ता नहीं होता है। उस माया या प्रकृति में तीन गुण हैं—सत्, रज और तम, इस कारण यह त्रिगुणात्मक माया कहलाती है। इसी से सांख्यशास्त्रा-नुसार महत्तत्त्व, अहङ्कार, पञ्चतन्मात्रा (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध), पञ्चमहाभूत (आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी), पाँच कर्मेन्द्रिय (हस्त, पाद, लिङ्ग, गुदा, वाणी), पाँच, ज्ञानेन्द्रिय (नेत्र, श्रोत्र, नासिका, जिह्वा, त्वचा) और मन, इन चौबीस तत्त्वों के समुदाय को अविद्या अर्थात् मलिन माया कहते हैं। इसी अविद्याविशिष्टचैतन्य को समष्टि जीव कहते हैं और एकादश इन्द्रिय अर्थात् (पाँच कर्मेन्द्रिय, पाँच ज्ञानेन्द्रिय) और एक मन (अथवा अन्तःकरणचतुष्टय) विशिष्ट चैतन्य व्यष्टिजीव कहा जाता है। इसलिये जो सत्चित् आनन्द ब्रह्म में है वही सत्चित् आनन्द माया में भी है, वही अविद्या में है, वही सत्चित् आनन्द माया और अविद्या के कार्यों में भी है, इस कारण सत्चित् आनन्द की एकता छोटे उपाधिव्यष्टि-शरीर और बड़े उपाधि समष्टि में बराबर है और सूक्ष्म और निराकार होने के कारण आकाशवत् सबमें व्यापक है। प्रकृति या माया का कोई कार्य छोटे से छोटा ऐसा नहीं है जिसमें ब्रह्म स्थित न हो।

माया में दो शब्द हैं—मा और या । मा के माने नहीं और या के माने जो अर्थात् जो नहीं है परन्तु प्रतीत होता है, वह माया है । जैसे रज्जु बिषे सर्प । रज्जु में सर्प तीन काल में भी नहीं हुआ है, परन्तु द्रष्टा में भ्रान्ति के कारण सर्प प्रतीत होता है, वैसे ही माया असत्य है, कभी न हुई है, न है, न होगी, परन्तु जीवों के भ्रान्ति के कारण अधिष्ठान चैतन्य ब्रह्म में प्रतीत होती है । भ्रान्ति के दूर होने पर माया का कहीं पता नहीं लगता है और न उसके कार्य का कहीं पता लगता है । जब माया का लोप हो गया, तब केवल अधिष्ठान चैतन्य रह गया, जो सूक्ष्म अन्तरदृष्टि से सबमें कारण ब्रह्म को देखता है वह शरीर रहते हुए भी मुक्त है, क्योंकि वह माया और माया के कार्य से अपने को पृथक् देखता है और जिस तरह से वह अपने को पृथक् पाता है सो सुनो । हे इन्द्र ! मैं कहता हूँ— पुरुष का स्थूल शरीर अर्थात् अन्नमयकोश तमोगुण से बनता है और सूक्ष्म शरीर रजोगुण के कार्य पाँच कर्मेन्द्रिय, सतोगुण के कार्य पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच प्राण और मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार (अन्तःकरण चतुष्टय) से बनता है । जब सूक्ष्म शरीर में सत् चित् आनन्द ब्रह्म और उसके प्रतिबिम्ब का मेल होता है, तब वह जीव कहलाता है, वही सुख दुःख का भोक्ता होता है, वही कर्मानुसार लोक लोकान्तर में जाता है, उसी के अन्तःकरण में कर्मों के संस्कार स्थित रहते हैं, वही उसके शरीर के उत्पत्ति का कारण बनता है ॥

हे इन्द्र ! जब स्थूल शरीर और सूक्ष्म शरीर का मेल होता है, तब जीव की उत्पत्ति होती है और जब स्थूल शरीर का वियोग सूक्ष्म शरीर से होता है तब मृतक होता है । स्थूल शरीर बार बार जन्मता मरता है, ऐसी गति सूक्ष्म शरीर की नहीं होती है । यह स्थूल शरीर की अपेक्षा अमर होता है । यही बार बार आता और जाता है, यही

कर्मानुसार लोक लोकान्तर में घूमता है और दुःख सुख उठाता है। इसका नाश तब होता है, जब इसके अन्दर रहनेवाले अविनाशी चैतन्य जीवात्मा को ज्ञान प्राप्त होता है, क्योंकि अज्ञान जो सूक्ष्म शरीर का कारण है, ज्ञान ही करके नाश होता है, कर्म या उपासना करके नहीं। जब ज्ञान करके अज्ञान नाश होता है तब उसके साथ ही उसका कार्य अर्थात् सूक्ष्म शरीर भी नाश हो जाता है और सूक्ष्म शरीर के नाश होते ही जिससे जीवात्मा बद्ध रहता है, वह मुक्त हो जाता है और फिर वह जीवात्मा ईश्वर या ब्रह्म में ही लीन हो जाता है।

हे इन्द्र! तेरे समझाने के वास्ते स्थूलदृष्टि करके मैंने तुझे आत्मा को नेत्र, दर्पण और जल में बताया था, परन्तु वह नेत्रस्थ, दर्पणस्थ और जलस्थ छायात्मा आत्मा नहीं है, वह केवल स्थूलनाशी इस शरीर का प्रतिबिम्ब है। जैसे यह नाशवान् है वैसे ही वह भी नाशवान् है और जब तप करने के पश्चात् अन्तःकरण के शुद्ध होने पर तैंने विचार करते-करते देखा कि यह छायात्मा आत्मा के लक्षण से विपरीत है तब तू संदिग्ध होकर मेरे पास लौट आया और आत्मा के बारे में तैंने प्रश्न किया तब तेरी उत्कृष्ट जिज्ञासा देखकर, पहिले की अपेक्षा सूक्ष्म विचार के साथ तुझको फिर उपदेश किया गया; यह कहते हुए कि जो स्वप्न विषे पुरुष है वही आत्मा है, क्योंकि वह वहाँ पर अनेक प्रकार की सृष्टि को देखता है और उससे पृथक् रहता है, परन्तु जब विचार करने पर तैंने उसको दोषयुक्त पाया और समझा कि इस आत्मा को स्वप्न में भी दुःख सुख होता है; क्योंकि वह अपने को कभी मरता हुआ और कभी पैदा होता हुआ देखता है और जो-जो उसकी अवस्था जाग्रत् में होती है, वही-वही स्वप्न में भी होती है। जब उसको आत्मा के लक्षण से विपरीत पाया तो फिर

संदिग्ध होता हुआ और आत्मा के जानने की इच्छा करता हुआ, तू मेरे पास लौट आया ।

हे इन्द्र ! मैं तेरी जिज्ञासा देखकर अति प्रसन्न हूँ । जो आत्मा अजर, अमर, ज्ञानस्वरूप, आनन्दस्वरूप, एकरस और अविनाशी है वही तेरा रूप है, उससे तू पृथक् नहीं है । जो कुछ तू जाग्रत् और स्वप्न में देखता है वह सब तेरे मन का कार्य है । मन के लय होते ही उन सबका लय हो जाता है । जब तू सुषुप्ति अवस्था को प्राप्त होता है तो मन लय हो जाता है; अर्थात् कार्यरहित हो जाता है, उसके लय होते ही सब सृष्टि लय हो जाती है और उसके साथ ही भय, सुख और दुःख आदि सब लय हो जाते हैं अर्थात् उनका कहीं पता नहीं रहता है । फिर तू कैसा निडर अपने आनन्दस्वरूप की प्राप्ति में हो जाता है कि वहाँ न ईश्वर का भय है और न ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश का भय है और न देवता आदि का भय है, न राजा का । तू तीनों "आधिभौतिक, आधिदैविक, आध्यात्मिक" तापों से रहित सुखपूर्वक अपने वास्तविक रूप में स्थित रहता है ।

हे इन्द्र ! जो वस्तु वहाँ होती है, उसका तू ज्ञाता भी होता है, वहाँ पर, दो वस्तु रहती हैं, एक तो अज्ञान और दूसरा आनन्द, इन दोनों को तू सुषुप्ति अवस्था में अनुभव करता है, परन्तु मन आदि करण के लीन होने के कारण प्रकट नहीं कर सका है, जब तू जाग्रत् अवस्था में प्राप्त होता है और तेरे करण मन, बुद्धि आदि तेरे साथ हो जाते हैं, तब तू उनके द्वारा उस अनुभव किए हुए अज्ञान और आनन्द को प्रकट करता है, यह कहते हुए कि हे मित्रो ! मैं ऐसे आनन्द से सोया कि खबर न रही । यह ज्ञान जो तुझे जाग्रत् में होता है वह स्मृतिज्ञान है, विना साक्षात्कार ज्ञान के स्मृतिज्ञान नहीं होता है, इस कारण यह सिद्ध होता है कि सुषुप्ति को प्राप्त हुआ आत्मा

अज्ञान (जिस करके वह आच्छादित रहता है) और आनन्द (जो उसका स्वरूप है) इन दोनों को वहाँ अनुभव करता है ।

हे इन्द्र ! जब तेरा मन, जोकि सूक्ष्म शरीर का सर्दार है, नाश हो जायगा तब तू अपने वास्तविक रूप को प्राप्त होगा और यदि तू अभी विचार करते-करते समझ जाय कि तू अपने सूक्ष्म शरीर से पृथक् है, तो अब भी मुक्त है । "यदि देहं पृथक्कृत्य चिति विश्रम्य तिष्ठसि । अधुनैव सुखी शान्तो बन्धमुक्तो भविष्यसि" क्योंकि तेरा चैतन्य आत्मा, चैतन्य आत्मा ईश्वर से पृथक् नहीं है । भेद केवल इतना ही है कि माया ईश्वर के अधीन है और तू माया के अधीन है । जैसे ईश्वर चाहता है वैसे माया रचती है और जैसे माया चाहती है वैसे तू रचता है अथवा जैसे माया नचाती है वैसे ही तू नाचता है । जब तू समझेगा कि मैं ही ब्रह्म हूँ, मैं ही ईश्वर हूँ, मैं ही चैतन्यात्मा हूँ, तो ईश्वरवत् अपने को अभय, अमर, अविनाशी, आनन्दस्वरूप पावेगा । "मुक्ताभिमानी मुक्तो हि बद्धो बद्धाभिमान्यपि । किं वदन्तीह सत्येयं या मतिः सा गतिर्भवेत्" । हे इन्द्र ! हे सौम्य ! सुषुप्ति आत्मा से पृथक् कोई दूसरा आत्मा नहीं है, यही ईश्वर है, यही ब्रह्म है और सोई तू है ॥ १ ॥

मूलम् ।

अशरीरो वायुरभ्रं विद्युत्स्तनयित्नुरशरीराण्येतानि तद्यथैतान्यमुष्मादाकाशात्समुत्थाय परं ज्योतिरुपसंपद्य स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यन्ते ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

अशरीरः, वायुः, अभ्रम्, विद्युत्, स्तनयित्नुः, अशरीराणि, एतानि, तत्, यथा, एतानि, अमुष्मात्, आकाशात्, समुत्थाय, परम्, ज्योतिः, उप-संपद्य, स्वेन, रूपेण, अभिनिष्पद्यन्ते ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
वायुः=वायु		अमुष्मात्=उस	
अशरीरः=शरीररहित है		आकाशात्=आकाश से	
+ च=और		समुत्थाय=निकल करके	
अभ्रम्=बादल		परम्=परम	
विद्युत्=बिजुली		ज्योतिः=ज्योति में	
स्तनयित्नुः=मेघध्वनि		उपसंपद्य=प्राप्त होकर	
एतानि=ये भी		स्वेन=अपने	
अशरीराणि=शरीररहित हैं		रूपेण=रूप से	
तत्=सो		अभिनिष्पद्यन्ते=अपने कारण में लीन होते हैं	
यथा=जैसे			
एतानि={ये सब अर्थात् वायु, बादल, बिजुली, मेघध्वनि			

भावार्थ ।

हे सौम्य ! यह मन्त्र आधा है, इसका आधा भाग आगेवाला मन्त्र है । जैसे वायु, बादल, बिजुली, मेघध्वनि शरीररहित हैं और आकाश से निकल कर आकाश में ही प्राप्त होकर अपने कारण में लीन होते हैं । इस मन्त्र में जो "अशरीराणि" कहा है अर्थात् शरीररहित कहा है वह उपाधि दृष्टि से अलग करके कहा है । जैसे वायु शरीररहित है पर जब वृक्षादिकों का सम्बन्ध होता है तब वृक्ष कम्पायमान होता है, उस समय उसकी अर्थात् वायु की गति नयन-गोचर होती है । ऐसे ही औरों के विषय में भी जान लेना ॥ २ ॥

मूलम् ।

एवमेवैष संप्रसादोस्माच्छरीरात्समुत्थाय परं ज्योति-रुपसंपद्य स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यते स उत्तमपुरुषः स तत्र पर्येति जक्षत्क्रीडन् रममाणः स्त्रीभिर्वा यानैर्वा

ज्ञातिभिर्वा नोपजनꣳ स्मरन्निदꣳ शरीरꣳ स यथा प्रयोग्य आचरणे युक्त एवमेवायमस्मिञ्छरीरे प्राणो युक्तः ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

एवम्, एव, एषः, संप्रसादः, अस्मात्, शरीरात्, समुत्थाय, परम्, ज्योतिः, उपसंपद्य, स्वेन, रूपेण, अभिनिष्पद्यते, सः, उत्तम-पुरुषः, सः, तत्र, पर्येति, जक्षत्, क्रीडन्, रममाणः, स्त्रीभिः, वा, यानैः, वा, ज्ञातिभिः, वा, न, उपजनम्, स्मरन्, इदम्, शरीरम्, सः, यथा, प्रयोग्यः, आचरणे, युक्तः, एवम्, एव, अयम्, अस्मिन्, शरीरे, प्राणः, युक्तः ॥

अन्वयः	पदार्थ
एवम् एव	वैसे ही
वा	निश्चय करके
एषः	यह मुक्त
संप्रसादः	जीवात्मा
अस्मात्	इस
शरीरात्	शरीर से
समुत्थाय	निकल कर
परम्	सर्वोत्कृष्ट
ज्योतिः	ज्योति को
उपसंपद्य	प्राप्त होकर
स्वेन	अपने निज
रूपेण	रूप के साथ
अभिनिष्पद्यते	मिल जाता है
सः	वही
उत्तमपुरुषः	स्वरूपावस्थित उत्तम पुरुष है
सः	वही
तत्र	मुक्तावस्था में
जक्षत्	हँसता हुआ
स्त्रीभिः	अपनी स्त्रियों के साथ
क्रीडन्	क्रीड़ा करता हुआ
वा	और
यानैः	विविध भाँति की सवारियों के साथ
वा	अथवा
ज्ञातिभिः	जातिसंबंधियों के साथ
रममाणः	रमता हुआ
+ च	और
उपजनम्	स्त्री पुरुष के योग से उत्पन्न हुए
इदम्	इस अर्थात् अपने
शरीरम्	शरीर को
न स्मरन्	न स्मरण करता हुआ

पर्येति=इधर उधर विचरा करता है	एवम् एव=इसी प्रकार
+ च=और	अस्मिन्=इस
यथा=जैसे	शरीरे=शरीर में
आचरणे=रथ में	अयम्=यह
+ आकर्षणाय=खींचने के लिये	प्राणः=पञ्चप्राण
सः=वह	+ कर्मफल-भोगार्थम्=कर्मफल भोगार्थ
प्रयोग्यः युक्तः=घोड़ा जोता जाता है	नियुक्तः=जुता रहता है

भावार्थ ।

वैसे ही हे सौम्य ! यह मुक्त जीवात्मा इस स्थूल शरीर से निकल कर सर्वोत्कृष्ट ज्योति को प्राप्त होकर अपने निजरूप के साथ मिल-जाता है । वही यह अन्तःकरणविशिष्ट उत्तम पुरुष है। यही मुक्तावस्था में हँसता हुआ अपनी स्त्रियों के साथ क्रीड़ा करता हुआ और विविध भाँति की सवारियों पर चढ़ता हुआ और जातिसंबन्धियों के साथ रमता हुआ और अपने शरीर को न अनुभव करता हुआ, इधर-उधर बिचरा करता है और जैसे रथ में घोड़ा जोता रहता है उसी प्रकार उसके शरीर में कर्मफल भोगार्थ पञ्चप्राण जुते रहते हैं ॥ ३ ॥

मूलम् ।

अथ यत्रैतदाकाशमनुविषण्णं चक्षुः स चाक्षुषः पुरुषो दर्शनाय चक्षुरथ यो वेदेदं जिघ्राणीति स आत्मा गन्धाय घ्राणमथ यो वेदेदमभिव्याहराणीति स आत्माभिव्याहाराय वागथ यो वेदेदꣳ शृणवानीति स आत्मा श्रवणाय श्रोत्रम् ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यत्र, एतत्, आकाशम्, अनुविषण्णम्, चक्षुः, सः, चाक्षुषः,

पुरुषः, दर्शनाय, चक्षुः, अथ, यः, वेद, इदम्, जिघ्राणि, इति, सः, आत्मा, गन्धाय, घ्राणम्, अथ, यः, वेद, इदम्, अभिव्याहराणि, इति, सः, आत्मा, अभिव्याहाराय, वाक्, अथ, यः, वेद, इदम्, शृणवानि, इति, सः, आत्मा, श्रवणाय, श्रोत्रम् ॥

अन्वयः	पदार्थ
अथ	देह से आत्मा को पृथक् मानने पर
यत्र	जिस संसारी दशा में
आकाशम्	देहछिद्र बिषे
एतत्	यह
चक्षुः	नेत्र
अनुविषण्णम्	स्थित है
+ तत्र	उसी में
सः	वह
चाक्षुषः	चक्षुस्थ पुरुष
+ वसति	वास करता है
+ तस्य	उसको
दर्शनाय	रूपज्ञान के लिये
चक्षुः	नेत्र
+ साधनम्	साधन है
अथ	और
इदम्	इस वस्तु को
जिघ्राणि	सूँघूँ मैं
इति	ऐसा
यः	जो
वेद	जानता है
सः	वही
आत्मा	आत्मा है
+ तस्य	उसको

अन्वयः	पदार्थ
गन्धाय	गन्धग्रहणार्थ
घ्राणम्	घ्राणेन्द्रिय
+ साधनम्	साधन है
अथ	और
इदम्	इसको
अभिव्याहराणि	कहूँ मैं
इति	ऐसा
यः	जो
वेद	जानता है
सः	वही
आत्मा	आत्मा है
+ तस्य	उसको
अभिव्याहाराय	भाषणार्थ
वाक्	वागिन्द्रिय
+ साधनम्	साधन है
अथ	और
इदम्	इसको
शृणवानि	सुनूँ मैं
इति	इस प्रकार
यः	जो
वेद	जानता है
सः	वही
आत्मा	आत्मा है

+ तस्य=उसको	श्रोत्रम्=कर्णेन्द्रिय
श्रवणाय=सुनने के लिये	+ साधनम्=साधन है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! जब मुक्त पुरुष को आत्मा से देह पृथक् प्रतीत होता है तब शरीर बिषे जो छिद्र है, उसमें जो नेत्र स्थित है, उसी में जीवात्मा वास करता है । उसके रूप ज्ञान के लिये नेत्र साधन है और जब वह कहता है कि इस वस्तु को मैं सूँघूँ तो जो इस तरह जानता है कि वही आत्मा है, उसके गन्ध ग्रहणार्थ घ्राणेन्द्रिय साधन है और जब वह कहता है कि इसको मैं कहूँ, तो जो ऐसा जानता है वही आत्मा है; उसके भाषणार्थ वाक् इन्द्रिय साधन है और जब यह कहता है कि मैं इसको सुनूँ, तो जो इस प्रकार जानता है वही आत्मा है; उसके सुनने के लिये कर्णेन्द्रिय साधन है । तात्पर्य इस मन्त्र का यह है कि जो इन्द्रियों में बैठा हुआ इन्द्रियों के व्यवहारों को जानता है और जिसको इन्द्रियाँ नहीं जानती हैं और जिसकी शक्ति लेकर सब इन्द्रियाँ अपने-अपने व्यवहारों के करने में समर्थ हैं, वही आत्मा है । वह अपने साधनरूप इन्द्रियों के द्वारा बाह्यविषयों का भोक्ता और ज्ञाता होता है ॥ ४ ॥

मूलम् ।

अथ यो वेदेदं मन्वानीति स आत्मा मनोऽस्य दैवं चक्षुः स वा एष एतेन दैवेन चक्षुषा मनसैतान्कामान्पश्यन् रमते य एते ब्रह्मलोके ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यः, वेद, इदम्, मन्वानि, इति, सः, आत्मा, मनः, अस्य, दैवम्, चक्षुः, सः, वा, एषः, एतेन, दैवेन, चक्षुषा, मनसा, एतान्, कामान्, पश्यन्, रमते, ये, एते, ब्रह्मलोके ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ	और	सः वा	वही
इदम्	इसको	एतेन	इस
मन्वानि	मनन करूँ मैं	दैवेन	दिव्य
इति	ऐसा	चक्षुपा	सूक्ष्मरूप
यः	जो	मनसा	मन करके
वेद	जानता है	ये	जो
सः	वही	एते	ये
एषः	यह	ब्रह्मलोके	इस ब्रह्मरूपी लोक में
आत्मा	आत्मा है	+ सन्ति	मौजूद हैं
अस्य	उसको	एतान्	उन सब
+ मननाय	मनन करने के लिये	कामान्	पदार्थों को
दैवम्	अलौकिक	पश्यन्	देखता हुआ
चक्षुः	दर्शन साधन	रमते	आनन्दभुक् होता है
मनः	मन है		

भावार्थ ।

हे सौम्य ! और जो कहता है कि इसको मैं मनन करूँ और जो इसको ऐसा जानता है, वही यह आत्मा है और उसके मनन करने के लिये यह अलौकिक दर्शन साधन मन है। वही इस दिव्य सूक्ष्म 'मन' करके इस ब्रह्मरूपी लोक में जो कुछ मौजूद हैं, उन सबको देखता हुआ आनन्दभुक् होता है। इस मन्त्र में मन इन्द्रिय को दैव-चक्षु कहा है, इसका कारण यह है कि सब इन्द्रियों का राजा मन है, वे सब इन्द्रियाँ इसके अधीन हैं जिधर मन जाता है उसी तरफ़ सब इन्द्रियाँ दौड़ती हैं। भूत, भविष्यत्, वर्तमान तीनों कालों के विषय को मन ही मनन कर सकता है, इसी के द्वारा मुक्तात्मा जीव सब कामनाओं का भोक्ता है ॥ ५ ॥

मूलम् ।

तं वा एतं देवा आत्मानमुपासते तस्मात्तेषाᳬ सर्वे

च लोका आप्ताः सर्वे च कामाः स सर्वाꣳश्च लोका-नाप्नोति सर्वाꣳश्च कामान्यस्तमात्मानमनुविद्य विजा-नातीति ह प्रजापतिरुवाच प्रजापतिरुवाच ॥ ६ ॥

इति द्वादशः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

तम्, वा, एतम्, देवाः, आत्मानम्, उपासते, तस्मात्, तेषाम्, सर्वे, च, लोकाः, आप्ताः, सर्वे, च, कामाः, सः, सर्वान्, च, लोकान्, आप्नोति, सर्वान्, च, कामान्, यः, तम्, आत्मानम्, अनुविद्य, विजानाति, इति, ह, प्रजापतिः, उवाच, प्रजापतिः, उवाच ॥

अन्वयः	पदार्थ
तम्	पूर्वोक्त
एतम् आत्मानम्	इस आत्मा को
वा	ही
देवाः	देवता लोग
उपासते	उपासना करते हैं
तस्मात्	केवल उपासना करके
तेषाम्	उन देवताओं को
सर्वे च	सब
लोकाः	लोक
च	और
सर्वे	सब
कामाः	कामनाएँ
आप्ताः	प्राप्त होती हैं
यः	जो उपासक
तम्	उस
आत्मानम्	आत्मा को
अनुविद्य	जानकर
विजानाति	साक्षात्करता है
सः	वह
सर्वान् च	सब
लोकान्	लोकों को
च	और
सर्वान्	सब
कामान्	कामों को
आप्नोति	प्राप्त होता है
इति ह	इस प्रकार
प्रजापतिः	ब्रह्मा
उवाच	इन्द्र से कहता भया

भावार्थ ।

हे सौम्य ! ऊपर कहे हुए आत्मा की देवता लोग उपासना करते हैं और उस उपासना के बल करके उन देवताओं को सब लोक

और सब कामनाएँ प्राप्त होती हैं । जो उपासक पुरुष उस आत्मा को जानकर साक्षात् करता है, वह भी सब लोकों और सब कामनाओं को प्राप्त होता है । इस प्रकार ब्रह्मा ने इन्द्र को उपदेश किया ॥ ६ ॥

इति द्वादशः खण्डः ।

अथाष्टमाध्यायस्य त्रयोदशः खण्डः ।

मूलम् ।

श्यामाच्छबलं प्रपद्ये शबलाच्छ्यामं प्रपद्येऽश्व इव रोमाणि विधूय पापं चन्द्र इव राहोर्मुखात्प्रमुच्य धूत्वा शरीरमकृतं कृतात्मा ब्रह्मलोकमभिसंभवामीत्यभिसंभवामीति ॥ १ ॥

इति त्रयोदशः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

श्यामात्, शबलम्, प्रपद्ये, शबलात्, श्यामम्, प्रपद्ये, अश्वः, इव, रोमाणि, विधूय, पापम्, चन्द्रः, इव, राहोः, मुखात्, प्रमुच्य, धूत्वा, शरीरम्, अकृतम्, कृतात्मा, ब्रह्मलोकम्, अभिसंभवामि, इति, अभिसंभवामि, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
श्यामात्	दुःखमय और जड़मय योनि से
शबलम्	दुःख सुख मिश्रित मनुष्यादि योनि को
प्रपद्ये	पाता हूँ
+ च पुनः	और फिर
शबलात्	दुःख सुख मिश्रित योनि से
श्यामम्	दुःख और जड़मय योनि को
प्रपद्ये	प्राप्त होता हूँ
+ परन्तु	परन्तु
इव	जैसे
अश्वः	घोड़ा
रोमाणि	रोमों को

विधूय=झाड़कर
+ च=और
चन्द्रः=चन्द्रमा
इव=जैसे
राहोः मुखात्=राहु के मुख से
प्रमुच्य=छूटकर
+ निर्मलः
+ भवति } =निर्मल होता है
+ तथा इति=वैसे ही
+ ब्रह्मविद्यया=ब्रह्मविद्या करके
कृतात्मा=ब्रह्म को प्राप्त हुआ जीवात्मा
पापम्=पापजनक दुर्वासनाओं को
+ विधूय=दूर करके
+ च=और
शरीरम्=शरीर को
धूत्वा=त्याग करके
अकृतम्=अविनाशी
ब्रह्मलोकम्=ब्रह्म को
अभिसंभवामि=प्राप्त होता है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! दुःखमय और जड़मय योनि से जीव दुःख सुख मिश्रित मनुष्यादि योनि को प्राप्त होता है और फिर दुःख सुख मिश्रित योनि से कर्मानुसार दुःख और जड़मय योनि को प्राप्त होता है, परन्तु जैसे घोड़ा लेट पोट कर रोमों को झाड़कर और जैसे चन्द्रमा राहु के मुख से छूटकर निर्मल होता है वैसे ही यह जीव ब्रह्मविद्या के बल से, ब्रह्म को प्राप्त होता हुआ, पापजन्य दुर्वासनाओं को दूर करके और शरीर को त्याग करके अविनाशी ब्रह्म को प्राप्त होता है ॥ १ ॥

इति त्रयोदशः खण्डः ।

अथाष्टमाध्यायस्य चतुर्दशः खण्डः ।

मूलम् ।

आकाशो वै नाम नामरूपयोर्निर्वहिता ते यदन्तरा तद्ब्रह्म तदमृतꣳ स आत्मा प्रजापतेः सभां वेश्म प्रपद्ये यशोऽहं भवामि ब्राह्मणानां यशो राज्ञां यशो विशां

१—इहाँ पर "प्रपद्ये" और "अभिसंभवामि" उत्तम पुरुष के रूप हैं परन्तु प्रथम पुरुष का अर्थ देते हैं ॥

यशोहमनुप्रापत्सि स हाहं यशसां यशः श्येतमदत्कमदत्कंश्येतं लिन्दु माभिगां लिन्दु माभिगाम् ॥ १ ॥

इति चतुर्दशः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

आकाशः, वै, नाम, नामरूपयोः, निर्वहिता, ते, यदन्तरा, तत्, ब्रह्म, तत्, अमृतम्, सः, आत्मा, प्रजापतेः, सभाम्, वेश्म, प्रपद्ये, यशः, अहम्, भवामि, ब्राह्मणानाम्, यशः, राज्ञाम्, यशः, विशाम्, यशः, अहम्, अनुप्रापत्सि, सः, ह, अहम्, यशसाम्, यशः, श्येतम्, अदत्कम्, अदत्कम्, श्येतम्, लिन्दु, मा, अभिगाम्, लिन्दु, मा, अभिगाम् ॥

अन्वयः	पदार्थ
नाम	प्रसिद्ध
आकाशः	ब्रह्म
वै	निश्चय करके
नामरूपयोः	जगत् के नामरूप का
निर्वहिता	प्रकाशक है
यदन्तरा	जिसमें
ते	ये नामरूप
+ वर्तमाने	वर्तमान हैं
तत्	वही
ब्रह्म	ब्रह्म है
तत्	वही
अमृतम्	अमृत है
सः	वही
आत्मा	आत्मा है
+ कश्चित्	कोई
+ मुमुक्षुः	मुमुक्षु
+ ईश्वरम्	ईश्वर से
+ प्रार्थयते	प्रार्थना करता है
+ अहम्	मैं
प्रजापतेः	परमात्मा के
सभाम् वेश्म	शरण को
प्रपद्ये	प्राप्त होऊँ
ब्राह्मणानाम्	ब्राह्मणों के मध्य में
अहम्	मैं
यशः	यश
भवामि	होऊँ
राज्ञाम्	राजाओं के मध्य में
यशः	यश
+ भवामि	होऊँ
विशाम्	वैश्यों के मध्य में
यशः	यश
+ भवामि	होऊँ
अहम्	मैं
यशः	यश को
अनुप्रापत्सि	प्राप्त होऊँ
सः	वही

अहम्=मैं	श्येतम् लिन्दु=जन्मयोनि को
यशसाम्=यशस्वियों के मध्य	मा=मत
ह=निश्चयपूर्वक	अभिगाम्=प्राप्त होऊँ
यशः=यशस्वी होऊँ	लिन्दु=जन्म को
श्येतम्=पक्व बदरीफल सम	मा=मत
अदत्कम् / अदत्कम् = दन्त न होने पर भी यश, वीर्य, बल और धर्म का नाश करनेवाले	अभिगाम्=प्राप्त होऊँ

भावार्थ ।

हे सौम्य ! ब्रह्म जगत् के नामरूप का प्रकाशक है और उसी ब्रह्म में नामरूप आधेयरूप से स्थित है। वही ब्रह्म हृदय विषे स्थित है। यही अमृत है, यही आत्मा है। कोई मुमुक्षु ईश्वर से प्रार्थना करता हुआ कहता है कि मैं परमात्मा की शरण को प्राप्त होऊँ, ब्राह्मणों के मध्य में मैं यश होऊँ, राजाओं के मध्य में मैं यश होऊँ, वैश्यों के मध्य में मैं यश होऊँ, मैं यश को प्राप्त होऊँ, मैं यशस्वियों के मध्य में यशस्वी होऊँ, मैं पक्के बदरी फलवत् दन्त न होनेपर भी यश, वीर्य, बल और धर्म के नाश करनेवाली जन्मयोनि को न प्राप्त होऊँ ॥ १ ॥

इति चतुर्दशः खण्डः ।

अथाष्टमाध्यायस्य पञ्चदशः खण्डः ।

मूलम् ।

तद्धैतद्ब्रह्मा प्रजापतय उवाच प्रजापतिर्मनवे मनुः प्रजाभ्य आचार्यकुलाद् वेदमधीत्य यथा विधानं गुरोः कर्मातिशेषेणाभिसमावृत्य कुटुम्बे शुचौ देशे स्वाध्याय-मधीयानो धार्मिकान्विदधदात्मनि सर्वेन्द्रियाणि संप्र-तिष्ठाप्याहिंᳫसन्सर्वभूतान्यन्यत्र तीर्थेभ्यः स खल्वेवं

वर्तयन्यावदायुषं ब्रह्मलोकमभिसंपद्यते न च पुनरा-वर्तते न च पुनरावर्तते ॥ १ ॥

इति पञ्चदशः खण्डः ।

पदच्छेदः ।

तत्, ह, एतत्, ब्रह्मा, प्रजापतये, उवाच, प्रजापतिः, मनवे, मनुः, प्रजाभ्यः, आचार्यकुलात्, वेदम्, अधीत्य, यथा, विधानम्, गुरोः, कर्मातिशेषेण, अभिसमावृत्य, कुटुम्बे, शुचौ, देशे, स्वाध्यायम्, अधीयानः, धार्मिकान्, विदधत्, आत्मनि, सर्वेन्द्रियाणि, संप्रतिष्ठाप्य, अहिंसन्, सर्वभूतानि, अन्यत्र, तीर्थेभ्यः, सः, खलु, एवम्, वर्तयन्, यावदायुषम्, ब्रह्मलोकम्, अभिसंपद्यते, न, च, पुनः, आवर्तते, न, च, पुनः, आवर्तते ॥

अन्वयः	पदार्थ
तत्	वही
एतत्	यह ज्ञान है
+ यत्	जिसको
ब्रह्मा	ब्रह्मा ऋषि
प्रजापतये	कश्यप से
उवाच ह	कहता भया
+ च	और
प्रजापतिः	कश्यप
मनवे	अपने पुत्र मनु को
+ च	और
मनुः	मनु
प्रजाभ्यः	इतर प्रजा को
+ उवाच	कहता भया
+ अधुना	अब
+ कर्मविशिष्ट फलदातृत्वम्	कर्मों का विशेष फलदातृत्व
+ उच्यते	कहा जाता है
गुरोः	गुरु की
कर्मातिशेषेण	भली प्रकार सेवा करके
यथाविधानम्	विधिपूर्वक
वेदमधीत्य	वेद को पढ़
आचार्यकुलात्	गुरु के घर से
अभिसमावृत्य	लौटकर
+ दारान्	स्त्री को
+ न्यायतः	शास्त्रानुसार
+ आहृत्य	ब्याहकर
कुटुम्बे	अपने कुटुम्ब में

१—'न च पुनः आवर्तते' यह समाप्त्यर्थ पुनरुक्त है ।

+ स्थित्वा=स्वकर्मानुष्ठान के साथ रहकर
शुचौ देशे=पवित्र स्थान में
स्वाध्यायम्=वेद शास्त्र को
अधीयानः=पढ़ता हुआ
धार्मिकान्=पुत्र शिष्यादि को धार्मिक
विदधत्=करता हुआ
आत्मनि=हृदयस्थ आत्मा में
सर्वेन्द्रियाणि=सब इन्द्रियों को
सम्प्रतिष्ठाप्य=लगाता हुआ
तीर्थेभ्यः=शास्त्राज्ञा (यज्ञादिक) से
अन्यत्र=अलग
सर्वभूतानि=प्राणिमात्र को
अहिंसन्=दुःख न देता हुआ
यावदायुषम्=जीवन पर्यन्त
एवम्=इस तरह
वर्तयन्=वर्तता हुआ
सः=वह
खलु=निश्चयपूर्वक
ब्रह्मलोकम्=ब्रह्म को
अभिसंपद्यते=प्राप्त होता है
च=और
पुनः=फिर
न=नहीं
आवर्तते=जन्म के क्लेश को पाता है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! यह वही ज्ञान है जिसको ब्रह्मा ऋषि ने प्रजापति से कहा था और कश्यप प्रजापति ने अपने पुत्र मनु को दिया था और मनु ने प्रजाओं को दिया था । अब कर्मों का विशेष फल कहा जाता है, सुनो । गुरु की भली प्रकार सेवा करके विधिपूर्वक वेद को पढ़कर, गुरु के घर से लौटकर, स्त्री को शास्त्रानुसार विवाह कर, अपने कुटुम्ब में अपने कर्मानुष्ठान के साथ रहकर, पवित्र स्थानों में वेदशास्त्रों को पढ़ता हुआ, पुत्र और शिष्यादिकों को धार्मिक बनाता हुआ, हृदयस्थात्मा में सब इन्द्रियों को लगाता हुआ, यज्ञादि से अलग किसी प्राणिमात्र को दुःख न देता हुआ और जीवनपर्यन्त ऐसा ही करता हुआ ज्ञानी ब्रह्म को प्राप्त होता है और आवागमन से रहित होता है ॥ १ ॥

इति पञ्चदशः खण्डः ।

इति छान्दोग्योपनिषद्ब्राह्मणे भाषानुवादेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥